नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 24



आगम १८

"जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः [२]

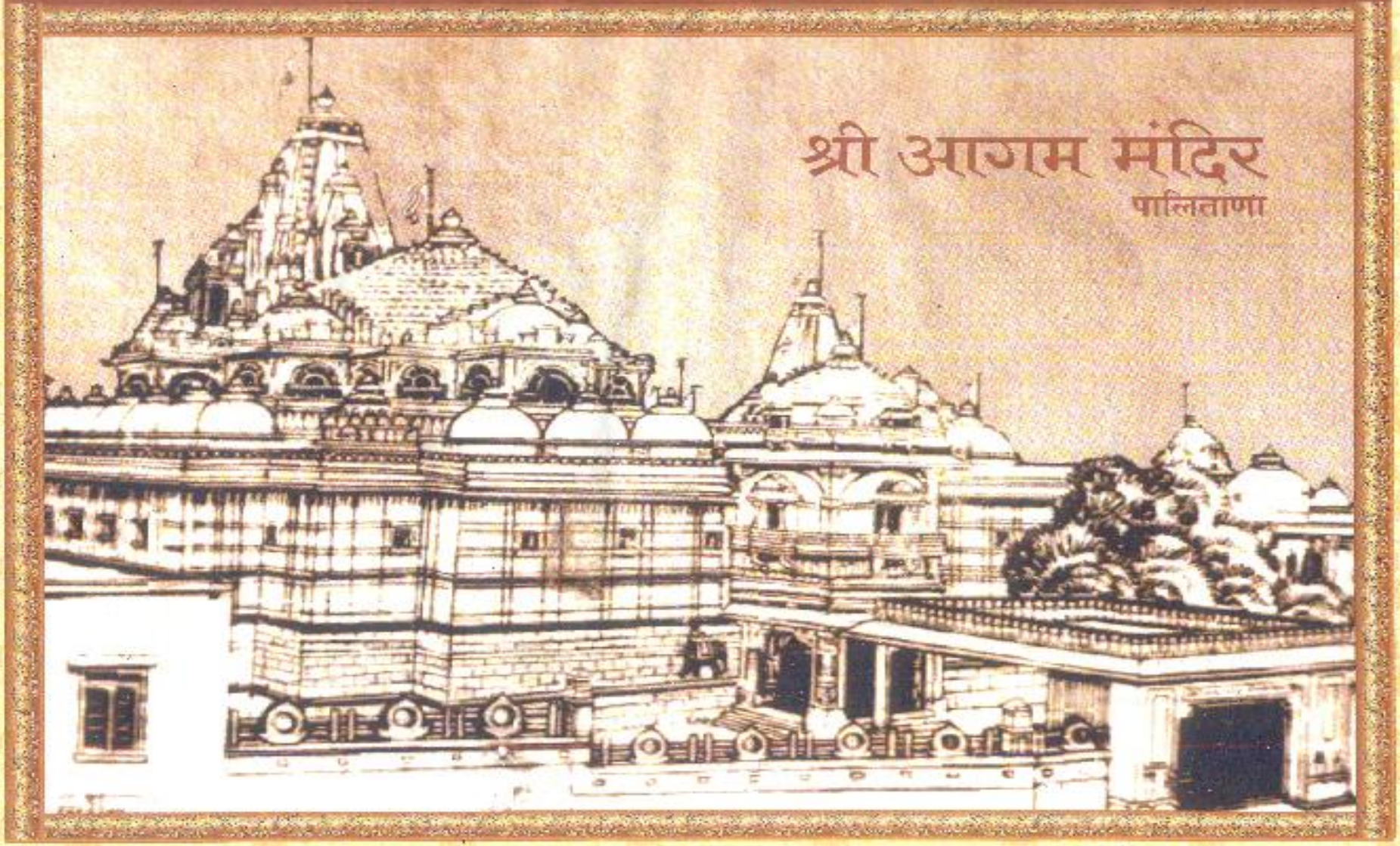
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

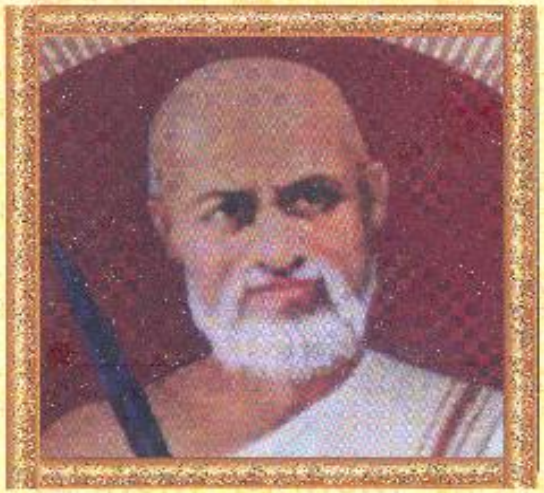
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

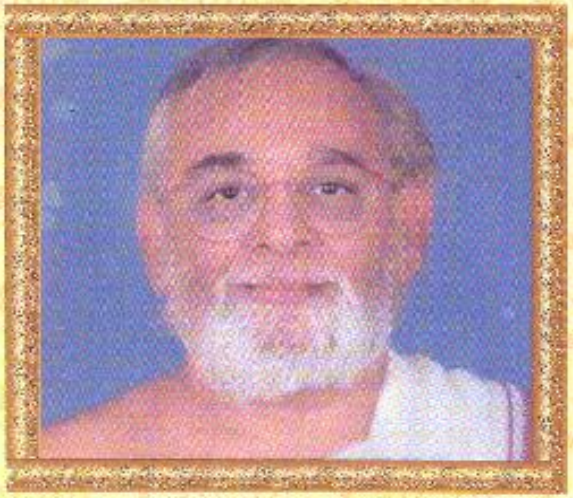
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-२४] श्री जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (उपांगसूत्रम्-७/२)

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति” मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं एवं शांतिचंद्र विहिता वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ ‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग-२४

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त ‘आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट’

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण*" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

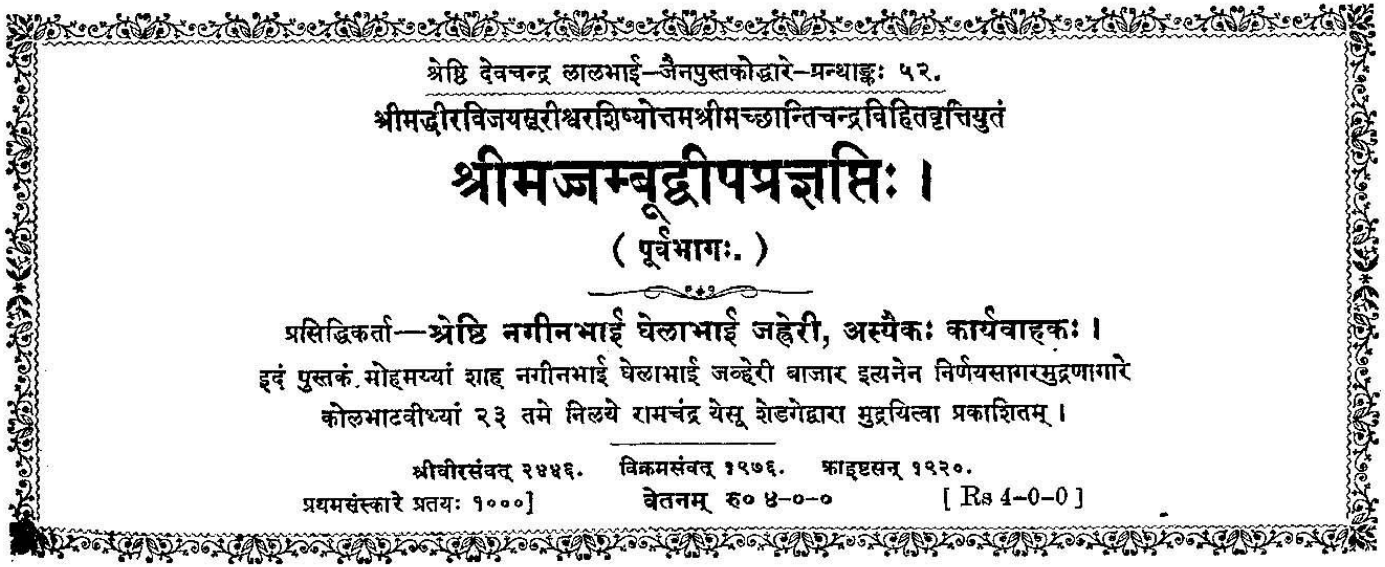
(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

प्रत सूत्रांक [–] दीप अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:



श्रेष्ठि देवचन्द्र लालभाई–जैनपुस्तकोद्धारे–ग्रन्थाङ्कः ५२.

श्रीमद्वीरविजयसूरीश्वरशिष्योत्तमश्रीमच्छान्तिचन्द्रविहितवृत्तियुतं

श्रीमज्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ।

(पूर्वभागः.)

प्रसिद्धिकर्ता—श्रेष्ठि नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी, अस्यैकः कार्यवाहकः ।

इदं पुस्तकं मोहमय्यां शाह नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी बाजार इत्यनेन निर्णयसागरमुद्रणागारे कोलभाटवीथ्यां २३ तमे निलये रामचंद्र येसू शेडगेद्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

श्रीवीरसंवत् २४४६. विक्रमसंवत् १९७६. क्राइष्टसन् १९२०.

प्रथमसंस्कारे प्रतयः १०००] वेतनम् रु० ४–०–० [Rs 4–0–0]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति (उपांग)सूत्रस्य मूल “टाइटल पेज”

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:	मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१	वक्षस्कार: १		०५४	वक्षस्कार: ३	०१२	२१२	वक्षस्कार: ५	
	जंबूद्वीपस्य प्रमाण, संस्थान,			भरतनाम्नस्य हेतु, विनीतानगरी			जिनजन्माभिषेकस्य वर्णनं,	
	स्वरुप, जगति, गवाक्ष.			भरतचक्रवर्ती-वक्तव्यता,			दिक्कुमार्याणां वक्तव्यता,	
	पद्मवरवेदिका, वनखंड,			चक्ररत्नस्य उत्पत्ति,षटखंडयात्रा			इन्द्राणां आगमनम्, पण्डकवनं	
	विजयद्वार एवं राजधानी,			मागध-प्रभास-वरदानानां कथनं			-एवं अभिषेकशीला, सुघोषाघंटा	
	भरतक्षेत्रस्य स्थान, प्रमाण,			चतुर्दश-रत्नानि, रत्नानाम् कार्य				
	विभाग, दक्षिणार्धभरत			-एवं उत्पतिस्थानानि			वक्षस्कार: ६	
	वैताढ्यपर्वत,			भरतचक्रवर्त्या: निधय:, देवा:		२४५	जम्बूद्वीपगता पदार्था:,	
	सिद्धायतनवर्णन			राजान:, सेना:, ग्रामाद्य: --			जम्बूद्वीपे स्थिता: वर्षक्षेत्रा:, -	
	उत्तरार्धभरत.			इत्यादि वर्णनं			-पर्वता:, कूटा:, तीर्थानि, गुफ़ा:,	
							द्रहा:, नद्य: आदि वक्तव्यता	
	.....			.....				
०२२	वक्षस्कार: २		१२७	वक्षस्कार: ४	२१७		वक्षस्कार: ७	
	काल- अवसर्पिणि, उत्सर्पिणि,			चुल्लहिमवंत-वर्षधरपर्वत-वर्णनं,		२५०-	जम्बूद्वीपे अवस्थित चन्द्र -	
	औपमिककाल- पल्योपम, ...			पद्मद्रहवर्णनं, पद्मस्य कथनं,		-३६५	-सूर्य-नक्षत्र-तारादि वक्तव्यता,	
	सागरोपम, कल्पवृक्षवर्णन.			गंगा-सिंधु आदि नद्यानां वर्णनं,			सूर्यमंडल एवं तस्य आयामं,	
	कालस्य षड्विधत्व व तस्मिन्			सिद्धायतन-आदि कूटा:,			विष्कंभ:, परिधि:, अंतर आदि.	
	तस्मिन्काले वास्तव्या मनुष्या			हेमवन्त-हरिवर्ष-महाविदेह-कुरु-			चंद्रमंडल एवं तस्य आयामादि	
	कुलकर वक्तव्यता,			-रम्यक आदि क्षेत्राणां वर्णनं,			-वर्णनं, नक्षत्रमंडल-वक्तव्यता,	
	रुषभदेवस्य वर्णन,			निषध-नीलवंत-रुक्मि-हिमवंतादि			संवत्सराणां भेदा:,	
	नन्दीश्वरद्वीपे अष्टाह्निका-			-पर्वतानां वक्तव्यता,			तिर्थंकरआदि उत्तम पुरुषाणाम्	
	-महोत्सव, पंचभेदे मेघवर्षा			मेरुपर्वतस्य वर्णनं.			वक्तव्यता	

['जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति' - मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्रम्" के नामसे सन १९२० (विक्रम संवत १९७६) में 'देवचन्द्र-लालभाइ-जैनपुस्तकोद्धार' द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई , जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया , मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा , और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और श्रीमद्सागरानंदसूरिजी तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले , ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया , जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी , ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम , फिर वक्षस्कार और मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा वक्षस्कार एवं मूलसूत्र चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके , बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है , उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है , इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है , जिसमे प्रत्येक वक्षस्कार और मूलसूत्र लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है , जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है , जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-२४ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [५४]

अथ तृतीयो वक्षस्कारः ॥ ३ ॥

अथ वर्ण्यमानस्यैतद्वर्षस्य नाम्नः प्रवृत्तिनिमित्तं पिपृच्छिषुराह--

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चई–भरहे वासे २?, गोअमा! भरहे णं वासे वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एगस्स य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अबाहाए लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं चोद्दसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अबाहाए गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं दाहिणद्धभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं विणीआणामं रायहाणी पण्णत्ता, पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिन्ना दुवालसजोअणायामा णवजोअणविच्छिण्णा धणवइमतिणिम्माया चामीयरपागारा णाणामणिपञ्चवण्णकविसीसगपरिमंडिआभिरामा अलकापुरीसंकाशा पमुइयपक्कीलिआ पच्चक्खं देवलोगभूआ रिद्धित्थिमिअसमिद्धा पमुइअजणजाणवया जाव पडिरूवा (सूत्रम् ४१)

अथ–सम्पूर्णभरतक्षेत्रस्वरूपकथनानन्तरं केनार्थेन भगवन्! एवमुच्यते–भरतं वर्षं २?, द्विर्वचनं प्राग्वत्, भगवानाह–गौतम! भरते वर्षे वैताढ्यस्य पर्वतस्य दक्षिणेन चतुर्दशाधिकं योजनशतमेकादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्याबाधया–अपान्तरालं कृत्वा तथा लवणसमुद्रस्योत्तरेण, दक्षिणलवणसमुद्रस्योत्तरेणेत्यर्थः, पूर्वापरसमुद्रयोर्गङ्गासि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तृतिय-वक्षस्कारः आरभ्यते

अथ भरतवर्षस्य नाम्नः हेतु प्रदर्श्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [५४]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥१७९॥

न्धुभ्यां व्यवहितत्वान्न तद्विवक्षा, गङ्गाया महानद्याः पश्चिमायां सिन्ध्वा महानद्याः पूर्वस्यां दक्षिणार्द्धभरतस्य मध्यमतृतीयभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र–एतादृशे क्षेत्रे विनीता–अयोध्यानाम्नी राजधानी–राजनिवासनगरी प्रज्ञप्ता मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिरिति, साधिकचतुर्दशाधिकयोजनशताङ्कोत्पत्तौ त्रियमुत्पत्तिः–भरतक्षेत्रं ५०० योजनानि २६ योजनानि षट् ६ कला योजनैकोनविंशतिभागरूपा विस्तृतं, अस्मात् ५० योजनानि वैताढ्यगिरिव्यासः शोध्यते, जातं ४७३$\frac{6}{19}$ कलाः, दक्षिणोत्तरभरतार्द्धयोर्विभजनयैतस्यार्द्धे २३८$\frac{3}{19}$ कलाः, इयतो दक्षिणार्द्धभरतव्यासात् 'उदीणदाहिणविच्छिण्णा' इत्यादिवक्ष्यमाणवचनाद्विनीताया विस्ताररूपाणि नव योजनानि शोध्यन्ते, जातं २२९$\frac{3}{19}$ कलाः, अस्य च मध्यभागेन नगरीत्यर्द्धकरणे ११४ योजनानि अवशिष्टस्यैकस्य योजनस्यैकोनविंशतिभागेषु कलात्रयक्षेपे जाताः २२ तदर्द्धं ११ कला इति, तामेव विशेषणैर्विशिनष्टि–'पाईणपडीणायया' इत्यादि पूर्वापरयोर्दिशोरायता, उत्तरदक्षिणयोर्विस्तीर्णा, द्वादशयोजनायामा नवयोजनविस्तीर्णा धनपतिमत्या–उत्तरदिक्पालबुद्ध्या निर्माता–निर्मितेत्यर्थः, निपुणशिल्पिविरचितस्यातिसुन्दरत्वात्, यथा च धनपतिना निर्मिता तद् ग्रन्थान्तरानुसारेण किञ्चिद् व्यक्तिपूर्वकमुपदर्श्यते, "श्रीविभो राज्यसमये, शक्रादेशान्नवां पुरीम् । धनदः स्थापयामास, रत्नचामीकरोत्करैः ॥ १ ॥ द्वादशयोजनायामा, नवयोजनविस्तृता । अष्टद्वारमहाशाला, साऽभवत्तोरणोज्ज्वला ॥ २ ॥ धनुषां द्वादशशतान्युच्चैस्त्वेऽष्टशतं तले । व्यायामे शतमेकं स, व्यधाद्वप्रं सखातिकं॥ ३ ॥ सौवर्णस्य च तस्यार्द्धं, कपिशीर्षावलिर्बभौ । मणि-

३वक्षस्कारे विनीतावर्णनं सू.४१

॥१७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र विनितानगरी-वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [५४]

जाऽमरशैलस्थनक्षत्रालिरिवोद्गता ॥ ४ ॥ चतुरस्राश्च त्र्यस्राश्च, वृत्ताश्च स्वस्तिकास्तथा । मन्दाराः सर्वतोभद्रा, एकभूमा द्विभूमिकाः ॥ ५ ॥ त्रिभूमाद्याः सप्तभूमं, यावत्सामान्यभूभुजाम् । प्रासादाः कोटिशस्तत्राभूवन् रत्नसुवर्णजाः ॥ ६ ॥ युग्मं॥ दिश्यैशान्यां सप्तभूमं, चतुरस्रं हिरण्मयम् । सवप्रखातिकं चक्रे, प्रासादं नाभिभूपतेः ॥७॥ दिश्यैन्द्र्यां सर्वतोभद्रं, सप्तभूमं महोन्नतम् । वर्तुलं भरतेशस्य, प्रासादं धनदोऽकरोत् ॥ ८ ॥ आग्नेय्यां भरतस्यैव, सौधं बाहुबलेरभूत् । शेषाणां च कुमाराणामन्तरा ह्यभवन् तयोः ॥ ९ ॥ तस्यान्तरादिदेवस्य, चैकविंशतिभूमिकम् । त्रैलोक्यविभ्रमं नाम, प्रासादं रत्नराजिभिः ॥ १० ॥ सद्वप्रखातिकं रम्यं, सुवर्णकलशावृतम् । चञ्चद्ध्वजपटव्याजान्नृत्यन्तं निर्ममे हरिः ॥ ॥ ११ ॥ युग्मम् । अष्टोत्तरसहस्रेण, मणिजालैरसौ बभौ । तावत्सङ्ख्यमुखैर्भूरि, ब्रुवाणमिव तद्यशः ॥ १२ ॥ कल्पद्रुमैर्वृताः सर्वेऽभूवन् सेभह्यौकसः । सप्राकारा बृहद्वासःपताकामालभारिणः ॥ १३ ॥ सुधर्म्मसदृशी चारु, रत्नमय्यभवत्पुरी । युगादिदेवप्रासादात्, सभा सर्वप्रभाभिधा ॥ १४ ॥ चतुर्दिक्षु विराजन्ते, मणितोरणमालिकाः । पञ्चवर्णप्रभांकूरपूरडम्बरिताम्बराः ॥ १५ ॥ अष्टोत्तरसहस्रेण, मणिबिम्बैर्विभूषितम् । गव्यूतिद्वयमुत्तुङ्गं, मणिरत्नहिरण्मयम् ॥ १६ ॥ नानाभूमिगवाक्षाढ्यं, विचित्रमणिवेदिकम् । प्रासादं जगदीशस्य, व्यधाच्छ्रीदः पुरान्तरा ॥ १७ ॥ युग्मम् । सामन्तमण्डलीकानां, नन्द्यावर्त्तादयः शुभाः । प्रासादा निर्मितास्तत्र, विचित्रा विश्वकर्मणा ॥ १८ ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु, जिनानां भवनान्यभुः । उच्चैर्ध्वजाग्रसंक्षुब्धतीक्ष्णांशुतुरगाण्यथ ॥ १९ ॥ चतुष्पथप्रतिबद्धा, चतुरशीतिरुच्चकैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रासादाश्चार्हतां रम्या, हिरण्यकलशैर्बभुः ॥ २० ॥ सौधानि हिरण्यरत्नमयान्युच्चैः सुमेरुवत् । कौबेर्य्यां सपताकानि, चक्रे स व्यवहारिणाम् ॥ २१ ॥ दक्षिणस्यां क्षत्रियाणां, सौधानि विविधानि च । अभूवन् सात्रागाराणि, तेजांस्यवनि-वासिनाम् ॥ २२ ॥ तद्बहिश्चतुर्दिक्षु, पौराणां सौधकोटयः । व्यराजन्त द्युसद्यानसमानविशदश्रियः ॥ २३ ॥ सामान्यकारुकाणां च, बहिः प्राकारतोऽभवत् । कोटिसङ्ख्याश्चतुर्दिक्षु, गृहाः सर्वधनाश्रयाः ॥ २४ ॥ अपाच्यां च प्रतीच्यां च, कारुकाणां बभुर्गृहाः । एकभूमिमुखास्तस्त्रिभूमिं यावदुच्छ्रिताः ॥ २५ ॥ अहोरात्रेण निर्माय, तां पुरीं धनदोऽकिरत् । हिरण्यरत्नधान्यानि, वासांस्याभरणानि च ॥ २६ ॥ सरांसि वापीकूपादीन्, दीर्घिका देवताल-यान् । अन्यच्च सर्वं तत्राहोरात्रेण धनदोऽकरोत् ॥ २७ ॥ विपिनानि चतुर्दिक्षु, सिद्धार्थश्रीनिवासके । पुष्पाकारं नन्दनं चाभवन् भूयांसि चान्यतः ॥ २८ ॥ प्रत्येकं हेमचैत्यानि, जिनानां तत्र रेजिरे । पवनाहृतपुष्पालिपूजितानि द्रुमैरपि ॥ २९ ॥ प्राच्यामष्टापदोऽपाच्यां महाशैलो महोन्नतः । प्रतीच्यां सुरशैलस्तु, कौबेर्य्यामुदयाचलः ॥ ३० ॥ तत्रैवमभवन् शैलाः, कल्पवृक्षालिमालिताः । मणिरत्नाकराः प्रोच्चैर्जिनावासपवित्रिताः ॥ ३१ ॥ शक्राज्ञया रत्नमयी-मयोध्यापरनामतः । विनीतां सुरराजस्य, पुरीमिव स निर्ममे ॥ ३२ ॥ यद्वास्तव्यजना देवे, गुरौ धर्मे च सादराः । स्थैर्यादिभिर्गुणैर्युक्ताः, सत्यशौचदयान्विताः ॥ ३३ ॥ कलाकलापकुशलाः, सत्सङ्गतिरताः सदा । विशदाः शान्त-सद्भावा, अहमिन्द्रा महोदयाः ॥ ३४ ॥ युग्मम् । तत्पुर्यामृषभः स्वामी, सुरासुरनरार्चितः । जगत्सृष्टिकरो राज्यं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४१]

दीप अनुक्रम [५४]

पाति विश्वस्य रक्षणात् ॥ ३५ ॥ अन्वयोध्यमिह क्षेत्रपुराण्यासन् समन्ततः । विश्वसृष्टृशिल्पिवृन्दघटितानि तदुक्तिभिः ॥ ३६ ॥" इति, सङ्क्षेपेण त्वेतत्स्वरूपं सूत्रकारोऽप्याह—'चामीअरपागारे'त्यादि, चामीकरप्राकारा नानामणिकपिशीर्षकरिमण्डिता अभिरामा अलकापुरी—लौकिकशास्त्रे धनदपुरी तत्संकाशा—तत्सन्निभा प्रमुदितजनयोगान्नगर्यपि 'तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश' इति न्यायात् प्रमुदिता तथा प्रक्रीडिताः—क्रीडितुमारब्धवन्तः क्रीडावन्त इत्यर्थः तादृशा ये जनास्तद्योगान्नगर्यपि प्रक्रीडिता, पञ्चाद्विशेषणसमासः, प्रत्यक्षं—प्रत्यक्षप्रमाणेन तस्यानुमानाद्याधिक्येन विशेषप्रकाशकत्वात् तज्जन्यज्ञानस्य सकलप्रतिपत्तृणां विप्रतिपत्त्यविषयत्वात्, देवलोकभूता—स्वर्गलोकसमाना, 'रूवस्तिमितसमृद्धे'त्यादिविशेषणानि प्राग्वत्, इतिः परिसमाप्तौ, नवरं प्रमुदितजनजानपदेति विशेषणं प्रमुदितप्रक्रीडितेति विशेषणस्य हेतूपन्यस्तं तेन न पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयं। नन्वेवं प्रस्तुतक्षेत्रस्य नामप्रवृत्तिः कथं जातेत्याह—

तत्थ णं विणीआए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी समुप्पज्जित्था, महया हिमवंतमहंतमलयमंदर जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ। विइओ गमो रायवण्णगस्स इमो, तत्थ असंखेज्जकालवासंतरेण उप्पज्जए जसंसी उत्तमे अभिजाए सत्तकीरिअपरक्कमगुणे पसत्थवण्णसरसारसंघयणतणुगबुद्धिधारणमेहासंठाणसीलप्पगई पहाणगारवच्छायागइए अणेगलक्खणप्पहाणे तेअआउत्तलवीरिअजुत्ते अद्धुसिरघणणिचिअलोहसंकलणारायवइरउसहसंघयणदेहधारी झस १ जुग २ भिंगार ३ वद्धमाणग ४ भद्दमाणग ५ संख ६ छत्त ७ वीअणि ८ पडाग ९ चक्क १० णंगल ११ मुसल १२ रह १३ सोत्थिअ १४ अंकुस १५ चंदा १६ इच्च—

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चक्रवर्तीराजा-भरतस्य वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

१७ अग्गि १८ जूय १९ सागर २० इंदज्झय २१ पुहवि २२ पउम २३ कुंजर २४ सीहासण २५ दंड २६ कुम्म २७–गिरिवर २८ तुरगवर २९ वरमउड ३० कुंडल ३१ णंदावत्त ३२ धणु ३३ कोंत ३४ गागर ३५ भवणविमाण ३६–अणेगलक्खणपसत्थसुविभत्तचित्तकरचरणदेसभागे उद्धामुहलोमजालसुकुमालणिद्धमउआवत्तपसत्थलोमविरइअसिरिवच्छच्छण्णविउलवच्छे देसखेत्तसुविभत्तदेहधारी तरुणरविरस्सिबोहिअवरकमलविबुद्धगब्भवण्णे हयपोसणकोससण्णिभपसत्थपिट्ठंतणिरुवलेवे पउमुप्पलकुंदजाइजूहियवरचंपगणागपुप्फसारंगतुल्लगंधी छत्तीसाअहिअपसत्थपत्थिवगुणेहिं जुत्ते अद्धोच्छिण्णातपत्ते पागडउभयजोणी विसुद्धणिअगकुलगयणपुण्णचंदे चंदे इव सोमयाए णयणमणणिव्वुईकरे अक्खोभे सागरो व थिमिए धणवइव्व भोगसमुदयसद्दवयाए समरे अपराइए परमविक्कमगुणे अमरवइसमाणसरिसरूवे मणुअवई भरइचक्कवट्टी भरहं भुंजइ पण्णट्ठसत्तू (सूत्रं ४२)

'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र विनीतायां राजधान्यां भरतो नाम राजा, स च सामन्तादिरपि स्यादत आह–चक्रवर्त्ती स च वासुदेवोऽपि स्यादतश्चत्वारोऽन्ताः–पूर्वापरदक्षिणसमुद्राख्यः चतुर्थो हिमवान् इत्येवंस्वरूपास्ते वश्यतयाऽस्य सन्तीति चातुरन्तः पश्चाच्चक्रवर्त्तिपदेन कर्मधारयः समुदपद्यत, महाहिमवान्–हैमवतहरिवर्षक्षेत्रयोर्विभाजकः कुलगिरिः स इव महान् शेषपृथ्वीपतिपर्वतापेक्षया मलयः–चन्दनद्रुमोत्पत्तिप्रसिद्धो गिरिः मन्दरो–मेरुः यावत्पदात् प्रथमोपाङ्गतः समग्रो राजवर्णको ग्राह्यः कियत्पर्यन्त इत्याह—राज्यं प्रशासयन्–पालयन् विहरतीति, नन्वेवमपि शाश्वती भरतनामप्रवृत्तिः कथं ?, तदभावे च 'सेत्त'मित्यादि वक्ष्यमाणं निगमनमप्यसम्भवीत्याशङ्क्या प्रकारान्त-

Jain Education Intemational For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेण तत्तत्कालभाविभरतनामचक्रवर्त्युद्देशेन राजवर्णनमाह—'विइओ गमो' इत्यादि, द्वितीयो गमः—पाठविशेषोपलक्षितो ग्रन्थो राजवर्णकस्यायं, 'तत्र' तस्यां विनीतायां, असङ्ख्येयः कालो यैर्वर्षैस्तानि वर्षाणि असङ्ख्येयानीत्यर्थः, तेषामन्तरालेन—विचालेन, अयमर्थः— प्रवचने हि कालस्यासङ्ख्येयता असङ्ख्येयैरेव च वर्षैर्व्यवह्रियते, अन्यथा समयापेक्षयाऽसङ्ख्येयत्वे ऐदंयुगीनमनुष्याणामसङ्ख्येयायुष्कत्वव्यवहारप्रसङ्गः, तेनासङ्ख्येयवर्षात्मकासङ्ख्येयकाले गते एकस्माद् भरतचक्रवर्त्तिनोऽपरो भरतचक्रवर्त्ती यतः प्रकृतक्षेत्रस्य भरतेति नाम प्रवर्त्तते स उत्पद्यते इति क्रियाकारकसम्बन्धः, वर्त्तमाननिर्देशः प्राग्वत्, आवश्यकचूर्णौ तु "तत्थ य संखिज्जकालवासाउए" इति पाठः, तत्र च—भरते सङ्ख्यातकालवर्षाणि आयुर्यस्य स सङ्ख्यातकालवर्षायुष्कः, तेनास्य युग्मिमनुष्यत्वव्यवहारो व्यपाकृतो द्रष्टव्यः तेषामसङ्ख्यातवर्षायुष्कत्वादिति, ननु भरतचक्रिणोऽसङ्ख्यातकालेऽतीयुषि सगरचक्रयादिभिरिदं सूत्रं व्यभिचारि, तेषां भरतनामकत्वाभावात्, उच्यते, नहीदं सूत्रमसङ्ख्येयकालवर्षान्तरेण सकलकालवर्त्तिनि चक्रवर्त्तिमण्डले नियमेन भरतनामकचक्रवर्त्तिसम्भवसूचकं किन्तु कदाचित्तत्सम्भवसूचकं, यथा आगामिन्यामुत्सर्पिण्यां भरताख्यः प्रथमचक्री, यत आह—'भरहे अ दीहदंते अ, गूढदंते अ सुद्धदंते अ। सिरिअंदे सिरिभूई, सिरिसोमे अ सत्तमे ॥ १ ॥" इत्यादिसमवायाङ्गतीर्थोद्गारप्रकीर्णकादौ, स च कीदृश इत्याह—'यशस्वी'ति व्यक्तं, उत्तमः शलाकापुरुषत्वात्, अभिजातः—कुलीनः श्रीऋषभादिवंश्यत्वात् सत्त्वं—साहसं वीर्यं—आन्तरं बलं पराक्रमः—शत्रुवित्रासनशक्तिरेते गुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

यस्य, एतेन राजन्योचितसर्वातिशायिगुणवत्त्वमाह, प्रशस्ताः–तत्कालीनजनापेक्षया श्लाघनीयाः वर्णः–शरीरच्छविः स्वरो–ध्वनिः सारः–शुभपुद्गलोपचयजन्यो धातुविशेषः शरीरदार्ढ्यहेतुः संहननं–अस्थिनिचयरूपं तनुकं–शरीरं बुद्धिः–औत्पत्त्यादिका धारणा–अनुभूतार्थवासनाया अविच्युतिः मेधा–हेयोपादेयधीः संस्थानं–यथास्थानमङ्गोपाङ्ग-विन्यासः शीलं–आचारः प्रकृतिः–सहजं ततो द्वन्द्वे, प्रशस्ता वर्णादयोऽर्था यस्य स तथा, भवन्ति च विशिष्टाः वर्ण-स्वरादयः आज्ञैश्वर्यादिप्रधानफलदाः, प्रधाना–अनन्यवर्त्तिनो गौरवादयोऽर्था यस्य स तथा, तत्र गौरवं–महासाम-न्तादिकृताभ्युत्थानादिप्रतिपत्तिः छाया–शरीरशोभा गतिः–सञ्चरणमिति, अनेकेषु–विविधप्रकारेषु वचनेषु–वक्तव्येषु प्रधानो–मुख्यः, अनेकधावचनप्रकारश्चायं निजशासनप्रवर्त्तनादौ "आदौ तावन्मधुरं मध्ये रूक्षं ततः परं कटुकम्। भोजनविधिमिव विबुधाः स्वकार्यसिद्धौ वदन्ति वचः ॥ १ ॥" अथवा "सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्रीभिरलीकमधुरं द्विषा। अनुकूलं च सत्यं च, वक्तव्यं स्वामिना सह ॥ २ ॥" इति, तेजः–परासहनीयः पुण्यः प्रतापः अभेदोपचारेण तद्वान् 'तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते' इत्यादिवत्, आयुर्बलं–पुरुषायुषं तद् यावद्वीर्यं तेन युक्तः, तेन जरारोगादिनोपहत-वीर्यत्वं नास्येति भावः, पुरुषायुषं च तदानीन्तनकाले प्राकृतजनानां पूर्वकोटिसद्भावेऽप्यस्य त्रुटिताङ्गप्रमाणं बोद्धव्यं, नरदेवस्यैतावत एवायुषः सिद्धान्ते भणनात्, एतेन भेदः पूर्वविशेषणादस्येति, अशुषिरं–निश्छिद्रं अत एव घननि-चितं–निर्भरभृतं यल्लोहशृङ्खलं तदिव नाराचवज्रऋषभं प्रसिद्धा वज्रऋषभनाराचं संहननं यत्र तं तथाविधं देहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरन्तीत्येवंशीलः, झषो–मीनः १ युगं–शकटाङ्गविशेषः २ भृङ्गारो–जलभाजनविशेषः ३ वर्द्धमानकं ४ भद्रासनं ५ शङ्खो–दक्षिणावर्त्तः ६ छत्रं–प्रतीतं ७ व्यजनं–पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराद् व्यालव्यजनं अथवा 'ते लुग्वा' (श्रीसिद्ध० अ. ३ पा. २ सू.१०८) इत्यनेन वालपदलोपः, चामरं आर्षत्वात् स्त्रीत्वं तेन व्यजनीतिनिर्देशः ८ पताका ९ चक्रं १० लाङ्गूलं ११ मुशलं १२ रथः १३ स्वस्तिकं १४ अङ्कुशः १५ चन्द्र १६ आदित्या १७ ग्नयः प्रतीताः १८ यूपो–यज्ञस्तम्भः १९ सागरः–समुद्रः २० इन्द्रध्वज २१ पृथ्वी २२ पद्म २३ कुञ्जराः २४ कण्ठ्याः, सिंहासनं–सिंहाङ्कितं नृपासनं २५ दण्ड २६ कूर्म २७ गिरिवर २८ तुरगवर २९ मुकुट ३० कुण्डलानि ३१ व्यक्तानि, नन्द्यावर्त्तः–प्रतिदिग् नवकोणकः ३२ स्वस्तिकः धनुःकुन्तौ व्यक्तौ ३३–३४ गागरः स्त्रीपरिधानविशेषः ३५ भवनं–भवनपतिदेवावासः विमानं–वैमानिकदेवावासः ३६ एतेषां द्वन्द्वः, तत एतानि प्रशस्तानि–माङ्गल्यानि सुविभक्तानि–अतिशयेन विविक्तानि यान्यनेकानि–अधिकसहस्रप्रमाणानि लक्षणानि तैश्चित्रो–विस्मयकरः करचरणयोर्देशभागो यस्य स तथा, अत्र पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तीर्थकृतामिव चक्रिणामप्यष्टाधिकसहस्रलक्षणानि सिद्धान्तसिद्धानि, यदाह निशीथचूर्णौ–'पागयमणुआणं बत्तीसं लक्खणाणि अट्ठसयं बलदेववासुदेवाणं अट्ठसहस्सं चक्कवट्टितित्थगराणं'ति, ऊर्ध्वं मुखं भूमेरुद्गच्छतामङ्कुराणामिव येषां तानि ऊर्ध्वमुखानि यानि लोमानि तेषां जालं–समूहो यत्र स तथा, अनेन च श्रीवत्साकारव्यक्तिर्दर्शिता, अन्यथाऽधोमुखैस्तैः श्रीवत्साकारानुन्नवः स्यात्, सुकुमालस्निग्धानि–नवनीतपिण्डादिद्रव्याणि तानीव मृदुकानि आव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

तैः–चिकुरसंस्थानविशेषैः प्रशस्तानि–मङ्गल्यानि दक्षिणावर्त्तानीत्यर्थः यानि लोमानि तैर्विरचितो यः श्रीवत्सो–महापुरुषाणां वक्षोऽन्तर्वर्त्ती अभ्युन्नतोऽवयवस्ततः पूर्वपदेन कर्मधारयस्तेन छन्नं–आच्छादितं विपुलं वक्षो यस्य स तथा, देशे–कोशलदेशादौ क्षेत्रे–तदेकदेशभूतविनीतानगर्य्यादौ सुविभक्तो–यथास्थानविनिविष्टावयवो यो देहस्तं धरतीत्येवंशीलः, तत्कालावच्छेदेन भरतक्षेत्रे न भरतचक्रितोऽपरः सुन्दराङ्ग इत्यर्थः, तरुणस्य–उद्गच्छतो रवेर्यै रश्मयः–किरणास्तैर्बोधितं–विकासितं यद्वरकमलं–प्रधानसरोजं हेमाम्बुजमित्यर्थस्तस्य विबुधो–विकस्वरो यो गर्भो–मध्यभागस्तद्वर्णः-शरीरच्छविर्यस्य स तथा, हयपोसनं–'पुस उत्सर्गे' इति धातोरनटि हयापानं तदेव कोश इव कोशः सुगुप्तत्वात् तत्सन्निभः प्रशस्तः पृष्ठस्य–पृष्ठभागस्यान्तः–चरमभागोऽपानं तत्र निरुपलेपो लेपरहीतपुरीषकत्वात्, पद्मं प्रतीतं उत्पलं–कुष्ठं कुन्दजातियूथिकाः प्रतीताः वरचम्पको–राजचम्पकः नागपुष्पं–नागकेसरकुसुमं सारङ्गानि–प्रधानदलानि अथवा पदैकदेशे पदसमुदायग्रहणात् सारङ्गशब्देन सारङ्गमदः–कस्तूरी द्वन्द्वे कृते एतेषां तुल्यो गन्धः–शरीरपरिमलो यस्य स तथा, तद्धितलक्षणादिप्रत्ययात् रूपसिद्धिः, षट्त्रिंशता अधिकप्रशस्तैः पार्थिवगुणैर्युक्तः, ते चेमे–'अव्यङ्गो १ लक्षणापूर्णो २, रूपसम्पत्तिभृत्तनुः ३। अमदो ४ जगदोजस्वी ५, यशस्वी ६ च कृपालुहृत् ७ ॥ १ ॥ कलासु कृतकर्मा ८ च, शुद्धराजकुलोद्भवः ९। वृद्धानुग १० स्त्रिशक्ति ११ श्च, प्रजारागी १२ प्रजागुरुः १३ ॥ २ ॥ समर्थनः

१ तैः विरचितः-अलङ्कृतो यः श्रीवत्सः जिनप्रतिमायां प्रसिद्धो वक्षोऽन्तः सुप्रमाणोन्नतमांसलप्रदेशविशेषस्तेन छन्नं (इति हो० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुमर्थानां, त्रयाणां सममात्रया १४। कोशवान् १५ सत्यसन्धश्च १६, चरदृग् १७ दूरमन्त्रदृग् १८ ॥ ३ ॥ आसिद्धि कर्मोद्योगी १९ च, प्रवीणः शस्त्र २० शास्त्रयोः २१। निग्रहा २२ नुग्रहपरो २३, निर्लञ्ज दुष्टशिष्टयोः २४ ॥४॥ उपायार्जितराज्यश्री २५दानशौण्डो २६ ध्रुवंजयी २७। न्यायप्रियो २८ न्यायवेत्ता २९, व्यसनानां व्यपासकः ३० ॥ ५ ॥ अवार्यवीर्यो ३१ गाम्भीर्यौ ३२ दार्य ३३ चातुर्यभूषितः ३४। प्रणामावधिकक्रोध ३५ स्तात्त्विकः सात्त्विको नृपः ३६ ॥ ६ ॥" एते पाठसिद्धार्थाः, नवरमौदार्यं–दाक्षिण्यं, तेन दानशौण्डतागुणादस्य भेदः, यद्यप्येतेषामेव मध्यवर्त्तिनः केचन गुणाः सूत्रकृता साक्षात् पूर्वसूत्रे उक्ता उत्तरसूत्रे च वक्ष्यन्ते तथापि षट्त्रिंशत्संख्यामेलनार्थमत्र ते उक्ता इति न दोषः, उपलक्षणाच्च मानोन्मानादिवृद्धिकृत्त्वभक्तवत्सलत्वादयोऽन्येऽपि उक्तातिरिक्ता ग्राह्या इति, अव्यवच्छिन्नं–अखण्डितमातपत्रं–छत्रं यस्य स तथा, एतेन पितृपितामहक्रमागतराज्यभोक्तेति सूचितं, अथवा संयमकालादर्वाग् न केनापि बलीयसा रिपुणा तस्य प्रभुत्वमाच्छिन्नमिति, प्रकटे–विशदावदाततया जगत्प्रतीते उभययोन्यौ–मातृपितृरूपे यस्य स तथा, अत एव विशुद्धं–निष्कलङ्कं यन्निजककुलं तदेव गगनं तत्र पूर्णचन्द्रः–चन्द्र इव सोमत्वा–मृदुस्वभावेन नयनमनसोर्निर्वृतिकरः आल्हादक इत्यर्थः, अक्षोभो–भयरहितः सागरः–प्रस्तावात् क्षीरसमुद्रादिः स इव स्तिमितः–स्थिरश्चिन्ताकल्लोलवर्जितो न पुनर्वेलावसरवर्द्धिष्णुकल्लोललवणोद इवास्थिरस्वभाव इत्यर्थः, धनपतिरिव–कुबेर इव भोगस्य समुदयः–सम्यगुदयस्तेन सह सद्–विद्यमानं द्रव्यं यस्य स भोगसमुदयसद्द्रव्यस्तस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४२]

दीप अनुक्रम [५५]

भावस्तत्ता तया, भोगोपयोगिभोगाङ्गसमृद्ध इत्यर्थः, समरे–संग्रामे अपराजितो–भङ्गमप्राप्तः परमविक्रमगुणः व्यक्तं, अमरपतेः समानं सदृशमत्यर्थतुल्यं रूपं यस्य स तथा मनुजपतिः–नरपतिर्भरतचक्रवर्त्ती उत्पद्यते इति तु प्राग्यो-जितमेव, अथोत्पन्नः सन् किं कुरुते इत्याह––'भरहे'त्यादि, अनन्तरसूत्रे एव दर्शितस्वरूपो भरतचक्रवर्त्ती भरतं भुङ्क्ते–शास्तीति, प्रनष्टशत्रुरिति व्यक्तं, अत इदं भरतक्षेत्रमुच्यते इति निगमनमग्रे वक्ष्यते। अथ प्रस्तुतभरतस्य दिग्विजयादिवक्तव्यतामाह––

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ आउहघरसालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पज्जित्था, तए णं से आउहघरिए भरहस्स रण्णो आउहघरसालाए दिव्वं चक्करयणं समुप्पण्णं पासइ पासित्ता हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए नंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहिअए जेणामेव दिव्वे चक्करयणे तेणामेव उवागच्छइ २ त्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ २ त्ता करयल जाव कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ २ त्ता आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणामेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणामेव भरहे राया तेणामेव उवागच्छइ २ त्ता करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेइ २ एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिआणं आउहघर-सालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पण्णे तं एअण्णं देवाणुप्पिआणं पिअट्ठयाए पिअं णिवेएमो पिअं भे भवउ, तते णं से भरहे राया तस्स आउहघरिअस्स अंतिए एअमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव सोमणस्सिए विअसिअवरकमलणयणवयणे पयलिअवरकडगतुडिअ-केऊरमउडकुंडलहारविरायंतरइअवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं णरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ २ त्ता पाउआओ ओमुअइ २ त्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ २ त्ता अंजलिमउलिअग्गहत्थे चक्करयणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ भरतस्य दिग्विजय-आदि वक्तव्यता---

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

भिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि णिहट्टु करयलजावअंजलिं कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ २ त्ता तस्स आउहघरिअस्स अद्धामालिअं मउडवज्जं ओमोअं दलइ २ त्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइ २ त्ता सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे । तए णं से भरहे राया कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! विणीअं रायहाणिं सब्भितरबाहिरिअं आसिअसंमज्जिअसित्तसुइसुगंधरत्थंतरवीहिअं मंचाइमंचकलिअं णाणाविहरागवसणऊसिअझयपडागाइपडागमंडिअं लाउल्लोइअमहिअं गोसीससरसरत्तचंदणकलसं चंदणघडसुकयजावगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगंधिअं गंधवट्टिभूअं करेह कारवेह करेत्ता कारवेत्ता य एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह । तए णं ते कोडुंबिअपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता हट्ठ० करयल जाव एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति २ त्ता भरहस्स अंतिआओ पडिणिक्खमंति २ त्ता विणीअं रायहाणिं जाव करेत्ता कारवेत्ता य तमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति । तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुद्धोदएहि अ पुण्णे कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउअसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइअलूहिअंगे सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवडे सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पिअहारद्धहारतिसरिअपालंबपलंबमाणकडिसुत्तसुकयसोहे पिणद्धगेविज्जगअंगुलिज्जगललिअगयललिअकयाभरणे णाणामणिकडगतुडिअथंभिअभूए अहिअसस्सिरीए कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकयवच्छे पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दिआपिंगलं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥१८५॥

गुलीए णाणामणिकणगविमलमहरिहणिउणोअविअमिसिमिसिंतविरइअसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठिअपसत्थआविद्धवीरवलए, किं बहुणा ?, कप्परुक्खए चेव अलंकिअविभूसिए णरिंदे सकोरंट जाव चउचामरवालवीइअंगे मंगलजयजयसद्दकयालोए अणेगगणणायगदंडणायगजावदूअसंधिवाल सद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहणिग्गए इव जाव ससिव्व पियदंसणे णरवई धूवपुप्फगंधमल्लहत्थगए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव आउहघरसाला जेणेव चक्करयणे तेणामेव पहारेत्थ गमणाए । तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसरपभिइओ अप्पेगइआ पउमहत्थगया अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव अप्पेगइआ सयसहस्सपत्तहत्थगया भरहं रायाणं पिट्ठओ २ अणुगच्छंति । तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहूईओ–'खुज्जा चिलाइ वामणिवडभीओ बब्बरी बउसिआओ । जोणिअपल्हविआओ ईसिणिअथारुकिणिआओ ॥ १ ॥ लासिअलउसिअदमिलीसिंहलि तह आरबीपुलिंदी अ । पक्कणि बहलि मुरुंडी सबरीओ पारसीओ अ ॥ २ ॥ अप्पेगइया वंदणकलसहत्थगयाओ चंगेरीपुप्फपडलहत्थगयाओ भिंगारआदंसथालपातिसुपइट्ठगवायकरगरयणकरंडपुप्फचंगेरीमल्लवण्णचुण्णगंधहत्थगयाओ वत्थआभरणलोमहत्थयचंगेरीपुप्फपडलहत्थगयाओ जाव लोमहत्थगयाओ अप्पेगइआओ सीहासणहत्थगयाओ छत्तचामरहत्थगयाओ तिलसमुग्गयहत्थगयाओ—'तेल्ले कोट्ठसमुग्गे पत्ते चोए अ तगरमेला य। हरिआले हिंगुलए मणोसिला सासवसमुग्गे ॥ १ ॥ अप्पेगइआओ तालिअंटहत्थगयाओ अप्पे० धूवकडुच्छुअहत्थगयाओ भरहं रायाणं पिट्ठओ २ अणुगच्छंति, तए णं से भरहे राया सविड्ढीए सव्वजुइए सव्वबलेणं सव्वसमुदयेणं सव्वायरेणं सव्वविभूसाए सव्वविभूईए सव्ववत्थपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव महया वरतुडिअजमगसमगपवाइएणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिमुरजमुइंगदुंदुहिनिग्घोसणाइएणं जेणेव आउहघरसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता

३वक्षस्कारे चक्रोत्पत्तितत्पूजोत्सवः सू. ४३

॥१८५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

आलोए चक्करयणस्स पणामं करेइ २ त्ता जेणेव चक्करयणे तेणेव उवागच्छइ२ त्ता लोमहत्थयं परामुसइ२ त्ता चक्करयणं पमज्जइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ २ त्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहि अ अच्चिणइ पुप्फारुहणं मल्लगंधवण्णचुण्णवत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं सेएहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं चक्करयणस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ तं०–सोत्थिय सिरिवच्छ णंदिआवत्त वद्धमाणग भद्दासण मच्छ कलस दप्पण अट्ठमंगलए आलिहित्ता काऊणं करेइ उवयारंति, किं ते ?, पाडलमल्लिअचंपगअसोगपुण्णागचूअमंजरिणवमालिअबकुलतिलगकणवीरकुंदकोज्जयकोरंटयपत्तदमणयवरसुरहिसुगंधगंधिअस्स कयग्गहगहिअकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमणिगरस्स तत्थ चित्तं जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिगरं करेत्ता चंदप्पभवइरवेरुलिअविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिअमयं कडुच्छुअं पग्गहेत्तु पयतं धूवं दहइ २ त्ता सत्तट्ठपयाइं मच्चोसक्कइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ जाव पणामं करेइ २ त्ता आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ मित्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसीअइ २ त्ता अट्ठारस सेणिपसेणीओ सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं अधरिमं गणिआवरणाडइज्जकलिअं अणेगतालायराणुचरिअं अणुद्धुअमुइंगं अमिलायमल्लदामं पमुइअपक्कीलिअसपुरजणजाणवयं विजयवेजइअं चक्करयणस्स अट्ठाहिअं महामहिमं करेह २ त्ता ममेअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणह, तए णं ताओ अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रन्ना एवं वुत्ताओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

समाणीओ हट्ठाओ जाव विणएणं पडिसुणेंति २ त्ता भरहस्स रण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमेन्ति २ त्ता उस्सुकं उक्करं जाव करेंति अ कारवेंति अ २ त्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाव तमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति (सूत्रं ४३)

'तए ण'मित्यादि, ततो–माण्डलिकत्वप्राप्तेरनन्तरं तस्य भरतस्य राज्ञोऽन्यदा कदाचित् माण्डलिकत्वं भुञ्जानस्य वर्षसहस्रे गते इत्यर्थः, आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नं समुदपद्यत, 'तए णं से'इत्यादि, ततः–चक्ररत्नोत्पत्तेरनन्तरं सः–आयुधगृहिको यो भरतेन राज्ञा आयुधाध्यक्षः कृतोऽस्तीति गम्यं भरतस्य राज्ञः आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नं समुत्पन्नं पश्यति, दृष्ट्वा च हृष्टतुष्टं–अत्यर्थं तुष्टं हृष्टं वा–अहो मया इदमपूर्वं दृष्टमिति विस्मितं तुष्टं–सुष्ठु जातं यन्मयैव प्रथममिदमपूर्वं दृष्टं यन्निवेदनेन स्वस्वामी प्रीतिपात्रं करिष्यति इति सन्तोषमापन्नं चित्तं यत्र तत् यथा भवति तथा आनन्दितः–प्रमोदं प्राप्तः यद्वा हृष्टतुष्टः–अतीव तुष्टः तथा चित्तेन आनन्दितः मकारः प्राकृतत्वात् अलाक्षणिकः ततः कर्मधारयः नन्दितो–मुखसौमतादिभावैः समृद्धिमुपागतः प्रीतिः–प्रीणनं मनसि यस्य स तथा चक्ररत्ने बहुमानपरायण इत्यर्थः परमं सौमनस्यं–सौमनस्कत्वं जातमस्येति परमसौमनस्थितः, एतदेव व्यनक्ति–हर्षवशेन विसर्पद्–उल्लसद् हृदयं यस्य स तथा, प्रमोदप्रकर्षप्रतिपादनार्थत्वान्नैतानि विशेषणानि पुनरुक्ततया दुष्टानि, यतः 'वक्ता हर्षे'ति [वक्ता हर्षभयादिभिराक्षिप्तमनाः स्तुवन् तथा निन्दन् । यत् पदमसकृत् ब्रूयात् तत् पुनरुक्तं न दोषाय ॥ १ ॥] यत्रैव तद्दिव्यं चक्ररत्नं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च त्रिकृत्वः–त्रीन् वारान् आदक्षिणप्रदक्षिणं–दक्षिणहस्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दारभ्य प्रदक्षिणं करोति, त्रिः प्रदक्षिणयतीत्यर्थः, तथा कृत्वा च 'करतल'त्ति अत्र यावत्पदात् 'करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं'ति, अत्र व्याख्या–करतलाभ्यां परिगृहीतः–आत्तस्तं दश करद्वयसम्बन्धिनो नखाः समुदिता यत्र तं शिरसि–मस्तके आवर्त्तः–आवर्त्तनं प्रादक्षिण्येन परिभ्रमणं यस्य तं शिरसाऽप्राप्तमित्यन्ये मस्तके अञ्जलिं–मुकुलितकमलाकारकरद्वयरूपं कृत्वा चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति, कृत्वा च आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति–निर्याति, प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव बाह्यिरिका–आभ्यन्तरिकापेक्षया बाह्या उपस्थानशाला–आस्थानमण्डपो यत्रैव च भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च 'करतल जाव'त्ति पूर्ववत् जयेन–परानभिभवनीयत्वरूपेण विजयेन–परेषामसहमानानामभिभावकत्वरूपेण वर्द्धयति–जयविजयाभ्यां त्वं वर्द्धयस्वेत्याशिषं प्रयुङ्क्ते वर्द्धयित्वा चैवमवादीत्, किं तदित्याह–'एवं खलु'इत्यादि, इत्थमेव यदुच्यते मया, न च विपर्ययादिना यदन्यथा भवति, यद्देवानुप्रियाणां–राजपादानां आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नं समुत्पन्नं तदेव तत् णमिति प्राग्वत् देवानुप्रियाणां प्रियार्थतायै–प्रीत्यर्थं प्रियं–इष्टं निवेदयामः 'एतत्' प्रियनिवेदनं प्रियं 'भे' भवतां भवतु, ततो भरतः किं चक्रे इत्याह––'तते ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा तस्यायुधगृहिकस्य समीपे एनमर्थं श्रुत्वा–आकर्ण्य कर्णाभ्यां निशम्य–अवधार्य हृदयेन तुष्टो यावत्सौमनस्यितः प्राग्वत्, प्रमोदातिरेकाद्ये ये भावा भरतस्य संवृत्तास्तान् विशेषणद्वारेणाह––विकसितकमलवन्नयनवदने यस्य स तथा प्रचलितानि–चक्ररत्नोत्पत्तिश्रवणजनितसम्भ्रमातिरेकात् कम्पितानि वरकटके–प्रधानवलये त्रुटिके–बाहुरक्षकौ

१ जयः सामान्यत उपद्रवादिविषयः विजयः स एव विशिष्टतरः प्रबलपरदलमर्दनसमुद्भवः (इति ही० वृत्तौ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केयूरे–बाह्वोरेव भूषणविशेषौ मुकुटं कुण्डले च यस्य स तथा, सिंहावलोकनन्यायेन प्रचलितशब्दो ग्राह्यः तेन प्रचलितहारेण विराजद्वतिदं च वक्षो यस्य स तथा, पश्चात् पदद्वयस्य कर्मधारयः, प्रलम्बमानः सम्भ्रमादेव प्रालम्बोझुम्बनकं यस्य स तथा, घोलद्–दोलायमानं भूषणं–उक्तातिरिक्तं धरति यः स तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः अत्र पदविपर्यय आर्षत्वात्, ससम्भ्रमं–सादरं त्वरितं–मानसौत्सुक्यं यथा स्यात्तथा चपलं कायौत्सुक्यं यथा स्यात् तथा नरेन्द्रो–भरतः सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति अभ्युत्थाय च पादपीठात्–पदासनात् प्रत्यवरोहति–अवतरति प्रत्यवरुह्य च–अवतीर्य पादुके–पादत्राणे अवमुञ्चति भक्त्यतिशयात् अवमुच्य च एकः शाटो यत्र स तथा, तद्धितलक्षण इकप्रत्ययः अखण्डशाटकमय इत्यर्थः एतादृशमुत्तरासङ्गो–वक्षसि तिर्यग्विस्तारितवस्त्रविशेषं करोति कृत्वा च अञ्जलिना मुकुलितौ–कुड्मलाकारीकृतावग्रहस्तौ–हस्ताग्रभागौ येन स तथा, चक्ररत्नाभिमुखः सप्त वा अष्टौ वा पदानि, अनूपसर्गस्य सन्निधित्वाच्चकृत्वादनुगच्छसि—आसन्नो भवति, दृष्टश्चानुशब्दप्रयोगः सन्निधौ, यथा 'अनुनदि शुश्रुविरे चिरं रुतानि' इति, पदानां सङ्ख्याविकल्पदर्शनमेतादृशभाषाव्यवहारस्य लोके दृश्यमानत्वात्, अनुगत्य च वामं जानुं आकुञ्चयति–ऊर्ध्वं करोतीत्यर्थः, दक्षिणं जानुं धरणीतले निहत्य–निवेश्य 'करतले'त्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् अञ्जलिं कृत्वा चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति, कृत्वा च तस्यायुधगृहिकस्य 'यथामालितं' यथाधारितं यथापरिहितमित्यर्थः, इदं च विशेषणं दानरसातिशयाद्दानं निर्विलम्बेन देयमिति ख्यापनार्थं, यदाह—"सव्यपाणिगतमप्यपसव्यप्रापणावधि न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देयविलम्बः। न ध्रुवत्वनियमः किल लक्ष्म्यास्तद्विलम्बनविधौ न विवेकः ॥१॥ अविलम्बितदानगुणात् समुज्ज्वलं मानवो यशो लभते। प्रथमं प्रकाशदानाद्विशदः पक्षोऽपरः कृष्णः ॥२॥" अवमुच्यते–परिधीयते यस्सोऽवमोचकः–आभरणं, मुकुटवर्जं–मुकुटमन्तरेणेत्यर्थः, अत्र 'उतोऽन्मुकुलादिष्वि' (श्रीसिद्ध-अ.८ पा.१सू.१०७) त्युकारस्याकारः तस्य राजचिन्हालङ्कारत्वेनादेयत्वात्, न कार्पण्यादिना न ददातीति, एतेनान्यमनुष्याणां मौलिवेष्टनस्य राजचिन्हत्वमभ्युपगच्छन्तो ये केचन जिनगृहाद्यभिगमविधौ मौलिवेष्टनमपाकुर्वन्ति ते अशुभदर्शनत्वादपशकुनमितीवाभ्युपगच्छता आगमोक्तविध्यनुष्ठानजन्यफलेन दूरतो मुक्ता इति बोध्यं, दत्त्वा चान्यत् किं करोतीत्याह—विपुलं जीवितार्हं–आजीविकायोग्यं प्रीतिदानं ददाति, सत्कारयति वस्त्रादिना सन्मानयति वचनबहुमानेन, सत्कृत्य सन्मान्य च प्रतिविसर्जयति–स्वस्थानगमनतो ज्ञापयति, प्रतिविसर्ज्य च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः–उपविष्ट इति। अथ भरतो यत्कृतवान् तदाह—'तए ण'मित्यादि, निगदसिद्धं, किमवादीदित्याह—'खिप्पामेव'त्ति, क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया! विनीतां राजधानीं सहाभ्यन्तरेण–नगरमध्यभागेन बाहिरिका–नगरबहिर्भागो यत्र तत्तथा, क्रियाविशेषणं, आसिक्ता–ईषत्सिक्ता गन्धोदकच्छटकदानात् सम्मार्जिता–कचवरशोधनात् सिक्ता जलेनात एव शुचिका संमृष्टा–विषमभूमिभञ्जनाद् रथ्या–राजमार्गोऽन्तरवीथी च–अवान्तरमार्गो यस्यां सा तथा, इदं च विशेषणं योजनाया विचित्रत्वात् सम्मृष्टसम्मार्जितसिक्तासिक्तशुचिकरथ्यान्तरवीथिकामित्येवं दृश्यं सम्मृष्टाद्यनन्तरभावित्वाच्छुचिकत्वस्य, मंचा–माल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काः प्रेक्षणकद्रष्टृजनोपवेशननिमित्तं अतिमञ्चाः–तेषामप्युपरि ये तैः कलिता ता नानाविधो रागो–रञ्जनं येषु तानि कौसुम्भमाञ्जिष्ठादिरूपाणि वसनानि–वस्त्राणि येषु तादृशा ये ऊर्ध्वीकृता–उच्छ्रिता ध्वजाः–सिंहगरुडादिरूपकोपलक्षिता बृहत्पट्टरूपाः पताकाश्च–तदितररूपा अतिपताकाः–तदुपरिवर्त्तिन्यस्ताभिर्मण्डितां, अत्र च 'लाउल्लोइय'इत्यादिको 'गंधवट्टिभुअ'मित्यन्तो विनीतासमारचनवर्णकः प्रागभियोग्यदेवभवनवर्णके व्याख्यात इति न व्याख्यायते, ईदृशविशेषणविशिष्टां कुरुत स्वयं कारयत परैः कृत्वा कारयित्वा च एतामाज्ञप्तिं–आज्ञां प्रत्यर्पयत, ततस्ते किं कुर्वन्तीत्याह—'तए ण'मित्यादि, ततो–भरताज्ञानन्तरं कौटुम्बिकाः–अधिकारिणः पुरुषाः भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः सन्तो हृष्टाः करतलेत्यारभ्य यावत्पदमाह्यं पूर्ववत्, एवं स्वामिन् ! यथाऽऽयुष्मत्पादा आदिशन्ति तथेत्यर्थः, इति कृत्वा–इति प्रतिवचनेनेत्यर्थः, आज्ञायाः–स्वामिशासनस्योक्तलक्षणेन नियमेन, अत्र च 'आणाए विणएण'मिति एकदेशग्रहणेन पूर्णोऽभ्युपगमालापको ग्राह्यः, अंशेनांशी गृह्यते, इति 'वयणं पडिसुणंति'त्ति वचनं प्रतिशृण्वन्ति अङ्गीकुर्वन्तीति, ततस्ते किं कुर्वन्तीत्याह–'पडिसुणित्ता'इत्यादि, प्रतिश्रुत्य तस्यान्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति प्रतिनिष्क्रम्य च विनीतां राजधानीं यावत्पदेनानन्तरोक्तसकलविशेषणविशिष्टां कृत्वा कारयित्वा च तामाज्ञप्तिं भरतस्य प्रत्यर्पयन्ति । अथ भरतः किं चक्रे इत्याह—'तए णं से भरहे'इत्यादि,, ततः स भरतो राजा यत्रैव मज्जनघरं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च मज्जनगृहं अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य च समुक्तेन–मुक्ताफलयुतेन जालेन–गवाक्षेणाकुलो–व्याप्तोऽभिरामश्च यस्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

स्मिन्, विचित्रमणिरत्नमयकुट्टिमतलं–बद्धभूमिका यत्र स तथा तस्मिन्, अत एव समभूमिकत्वात् रमणीये स्नानमण्डपे, नानाप्रकाराणां मणीनां रत्नानां च भक्तयो–यथौचित्येन रचनास्ताभिर्विचित्रैः स्नानपीठे–स्नानयोग्ये आसने सुखेन निषण्णः–उपविष्टस्सन् शुभोदकैः–तीर्थोदकैः सुखोदकैर्वा–नात्युष्णैर्नातिशीतैरित्यर्थः गन्धोदकैः–चन्दनादिरसमिश्रैः पुष्पोदकैः–कुसुमवासितैः शुद्धोदकैश्च–स्वाभाविकैस्तीर्थान्यजलाशयै(यजलै)रित्यर्थः, 'मज्जिए'त्ति उत्तरसूत्रस्थपदेन सह सम्बन्धः, एतेन कान्तिजननश्रमज(ह)ननादिगुणार्थं मज्जनमुक्तं, अथारिष्टविघातार्थमाह—पुनः कल्याणकारिप्रवरमज्जनस्य–विरुद्धग्रहपीडानिवृत्त्यर्थकविहितौषध्यादिस्नानस्य विधिना 'दुमस्जौत् शुद्धौ' इत्यस्य शुद्ध्यर्थकत्वेन स्नानार्थकत्वान्मज्जितः–स्नपितोऽन्तःपुरवृद्धाभिरिति गम्यं, कैर्मज्जित इत्याह–तत्र–स्नानावसरे कौतुकानां–रक्षादीनां शतैर्यद्वा कौतूहलिकजनैः स्वसेवासम्यक्प्रयोगार्थं दर्श्यमानैः कौतुकशतैः–भाण्डचेष्टादिकुतूहलैर्बहुविधैः–अनेकप्रकारैः, अत्र करणे तृतीयेति, अथ स्नानोत्तरविधिमाह—'कल्लाणग'इत्यादि, कल्याणकप्रवरमज्जनावसाने स्नानानन्तरमित्यर्थः पक्ष्मलया–पक्ष्मवत्या अत एव सुकुमालया गन्धप्रधानया कषायेण–पीतरक्तवर्णाश्रयरञ्जनीयवस्तुना रक्ता काषायिकी तया कषायरक्तया शाटिकयेत्यर्थः रूक्षितं–निर्लेपतामापादितं अङ्गं यस्य स तथा, सरससुरभिगोशीर्षचन्दनानुलिप्तगात्रः, अहतं–मलमूषिकादिभिरनुपद्रुतं प्रत्यग्रमित्यर्थः सुमहार्घं–बहुमूल्यं यद्दूष्यरत्नं–प्रधानवस्त्रं तत्सुसंवृतं–सुष्ठु परिहितं येन स तथा, अनेनादौ वस्त्रालङ्कार उक्तः, अत्र च वस्त्रसूत्रं पूर्वं योजनीयं चन्दनसूत्रं पश्चात्, क्रमप्राधा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

न्याख्यानस्य, न हि स्नानोत्थित एव चन्दनेन वपुर्विलिम्पतीति विधिक्रमः, शुचिनी–पवित्रे मालावर्णकविलेपने–पुष्पस्रग्मण्डनकारिकुंकुमादिविलेपने यस्य स तथा, अनेन पुष्पालङ्कारमाह, अधस्तनसूत्रे वपुःसौगन्ध्यार्थमेव विलेपनमभिहितं अत्र तु वपुर्मण्डनायेति विशेषः, आविद्धानि–परिहितानि मणिसुवर्णानि येन स तथा, एतेनास्य रजतरीरीमयाद्यलङ्कारनिषेधः सूचितः, मणिस्वर्णालङ्कारानेव विशेषत आह—कल्पितो–यथास्थानं विन्यस्तो हारः–अष्टादशसरिकोऽर्द्धहारो–नवसरिकस्त्रिसरिकं च प्रतीतं येन स तथा प्रलम्बमानः प्रालम्बो–झुम्बनकं यस्य स तथा, सूत्रे च पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, कटिसूत्रेण–कट्याभरणेन सुष्ठु कृता शोभा यस्य स तथा, अत्र पदत्रयस्य कर्मधारयः अथवा कल्पितहारादिभिः सुकृता शोभा यस्य स तथा, पिनद्धानि–बद्धानि ग्रैवेयकाणि–कण्ठाभरणानि अङ्गुलीयकानि–अङ्गुल्याभरणानि येन स तथा, अनेनाभरणालङ्कार उक्तः, तथा ललिते–सुकुमालेऽङ्गके–मूर्द्धादौ ललितानि–शोभावन्ति कचानां–केशानां आभरणानि–पुष्पादीनि यस्य स तथा, अनेन केशालङ्कार उक्तः, अथ सिंहावलोकनन्यायेन पुनरप्याभरणालङ्कारं वर्णयन्नाह—नानामणीनां कटकत्रुटिकैः–हस्तबाह्याभरणविशेषैर्बहुत्वात् स्तम्भिताविव स्तम्भितौ भुजौ यस्य स तथा, अधिकसश्रीक इति स्पष्टं, कुण्डलाभ्यामुद्द्योतितं आननं–मुखं यस्य स तथा मुकुटदीप्तशिरस्कः स्पष्टं, हारेणावस्तृतं–आच्छादितं तेनैव हेतुना प्रेक्षकजनानां सुकृतरतिकं वक्षो यस्य स तथा, प्रलम्बेन–दीर्घेण प्रलम्बमानेन–दोलायमानेन सुकृतेन–सुष्ठु निर्मितेन पटेन–वस्त्रेण उत्तरीयं–उत्तरासङ्गो यस्य स तथा, प्राकृतत्वात् पूर्वपदस्य

॥१८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीर्घत्वं, मुद्रिकाभिः–साक्षराङ्गुलीयकैः पिङ्गला अङ्गुल्यो यस्य स तथा, बहुव्रीहिलक्षणः कः प्रत्ययः, नानामणिमयं विमलं महार्घं–बहुमूल्यं निपुणेन शिल्पिना 'ओअविअ'त्ति परिकर्मितं 'मिसिमिसेंत'त्ति दीप्यमानं विरचितं–निर्म्मितं सुश्लिष्टं–सुसन्धि विशिष्टं–अन्येभ्यो विशेषवत् लष्टं–मनोहरं संस्थितं–संस्थानं यस्य तत्, पश्चात् पूर्वपदैः कर्मधारयः, एवंविधं प्रशस्तं आविद्धं–परिहितं वीरवलयं येन स तथा, अन्योऽपि यः(दि)कश्चिद्वीरव्रतधारी तदाऽसौ मां विजित्य मोचयत्वेतद्वलयमिति स्पर्द्धयन्(यत्)परिदधाति तद्वीरवलयमित्युच्यते, किं बहुना ? वर्णितेनेति शेषः, 'कप्परुक्खए चेव'त्ति अत्र चेवशब्द इवार्थे तेन कल्पवृक्षक इवालङ्कृतो विभूषितश्च, तत्रालङ्कृतो दलादिभिर्विभूषितः फलपुष्पादिभिः कल्पवृक्षो राजा तु मुकुटादिभिरलङ्कृतो विभूषितस्तु वस्त्रादिभिरिति, नरेन्द्रः 'सकोरंट जाव'त्ति अत्र यावत्करणात् 'सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेण'मिति ग्राह्यं, तत्र सकोरण्टानि–कोरण्टाभिधानकुसुमस्तबकवन्ति, कोरण्टपुष्पाणि हि पीतवर्णानि मालान्ते शोभार्थं दीयन्ते, मालायै हितानि माल्यानि–पुष्पाणीत्यर्थः, तेषां दामानि–माला यत्र तत्तथा, एवंविधेन छत्रेण ध्रियमाणेण शिरसि, विराजमान इति गम्यं, चतुर्णां–अग्रतः पृष्ठतः पार्श्वयोश्च वीज्यमानत्वाच्चतुःसङ्ख्याङ्कानां चामराणां वालैर्वीजितमङ्गं यस्येति, मङ्गलभूतो जयशब्दो जनेन कृत आलोके–दर्शने यस्य स तथा, अनेके गणनायका–मल्लादिगणमुख्याः दण्डनायकाः–तन्त्रपालाः यावत्पदात् 'ईसरतलवरमाडंबिअकोडुंबिअमंतिमहामंतिगणगदोवारिअअमच्चचेडपीढमद्दणगरणिगमसेट्ठिसेणावइसत्थवाह' इति द्रष्टव्यं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

अत्र व्याख्या–तत्र राजानो–माण्डलिकाः ईश्वरा–युवराजानो मतान्तरेण आणमाद्यैश्वर्ययुक्ताः तलवराः–परितुष्टनृपदत्तपट्टबन्धविभूषिता राजस्थानीयाः माडम्बिकाः–छिन्नमडम्बाधिपाः कौटुम्बिकाः–कतिपयकुटुम्बप्रभवोऽवलगकाः मन्त्रिणः–प्रतीताः महामन्त्रिणो–मन्त्रिमण्डलप्रधानाः गणका–गणितज्ञा भाण्डागारिका वा दौवारिकाः–प्रतीहाराः अमात्या–राज्याधिष्ठायकाः चेटाः–पादमूलिका दासा वा पीठमर्दा–आस्थाने आसन्नासन्नसेवकाः वयस्या इत्यर्थः वेश्याचार्या वा नगरं–तास्थ्यात्तव्यपदेशेन नगरनिवासिप्रकृतयः निगमाः–कारणिका वणिजो वा श्रेष्ठिनः–श्रीदेवताध्यासितसौवर्णपट्टभूषितोत्तमाङ्गाः अथवा नगराणां निगमानां च–वणिग्वासानां श्रेष्ठिनो–महत्तराः सेनापतयः–चतुरङ्गसैन्यनायकाः सार्थवाहाः–सार्थनायकाः दूता अन्येषां राज्यं गत्वा राजादेशनिवेदकाः सन्धिपाला–राज्यसन्धिरक्षकाः, एषां द्वन्द्वस्ततस्तैः, अत्र तृतीयाबहुवचनलोपो द्रष्टव्यः, सार्द्धं–सह न केवलं तत्सहितत्वमेव अपि तु तैः समिति समन्तात् परिवृतः–परिकरित इति, नरपतिर्मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामतीति सम्बन्धः, किम्भूतः ?–प्रियदर्शनः, क इव धवलमहामेघः–शरन्मेघस्तस्मान्निर्गत इव, अत्र यावत्पदात् 'गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे' इति संग्रहः, तेन शशिपदाग्रस्थ इवशब्दो ग्रहगणेति विशेषणेन योज्यः, ततोऽयमर्थः सम्पन्न उपमानिर्वाहाय–यथा चन्द्रः शरदभ्रपटलनिर्गत इव ग्रहगणानां दीप्यमानऋक्षाणां–शोभमाननक्षत्राणां तारागणस्य च मध्ये वर्त्तमान इव प्रियदर्शनो भवति तथा भरतोऽपि सुधाधवलान्मज्जनगृहान्निर्गतोऽनेकगणनायकादिपरिवारमध्ये वर्त्तमानः प्रियदर्शनोऽभवत्, पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

कीदृशो नृपतिः प्रतिनिष्क्रामतीत्याह––धूपपुष्पगन्धमाल्यानि पूजोपकरणानि हस्तगतानि यस्य स तथा, तत्र धूपो-दशाङ्गादिः पुष्पाणि–प्रकीर्णककुसुमानि गन्धा–त्रासाः माल्यानि–ग्रथितपुष्पाणीति, प्रतिनिष्क्रम्य च किं कृतवानि-त्याह—'जेणेव'इत्यादि, यत्रैवायुधगृहशाला यत्रैव च चक्ररत्नं तत्रैव प्रधारितवान् गमनाय गन्तुं प्रावर्त्तत इत्यर्थः। अथ भरतगमनानन्तरं यथा तदनुचराश्चकुस्तथाऽऽह––'तए ण'मित्यादि, ततो–भरतागमनादनु तस्य भरतस्य राज्ञो बहव ईश्वरप्रभृतयः यावत्पदसंग्राह्यास्तलवरप्रभृतयः पूर्ववत् अपिर्बाढार्थे एके केचन पद्महस्तगताः एके केचन उत्पलह-स्तगताः, एवं सर्वाण्यपि विशेषणानि वाच्यानि, यावत्पदात् 'अप्पेगइआ कुमुअहत्थगया अप्पेगइया नलिणहत्थगया अप्पेगइया सोगन्धिअहत्थगया अप्पेगइया पुंडरीयहत्थगया अप्पेगइआ सहस्सपत्तहत्थगया' इति संग्रहः, अत्र व्याख्या प्राग्वत्, नवरं भरतं राजानं पृष्ठतः पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति, पृष्ठे २ परिपाट्या चलन्तीत्यर्थः, सर्वेषामपि सामन्तानामेकैव वैनयिकी गतिरिति ख्यापनार्थं वीप्सायां द्विर्वचनं, न केवलं सामन्तनृपा एव भरतमनुजग्मुः, किन्तु किङ्करीजनोऽपी-त्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः सामन्तनृपानुगमनानन्तरं तस्य भरतस्य राज्ञः सम्बन्धिन्यो बह्व्यो दास्यो भरतं राजानं पृष्ठतोऽनुगच्छन्तीति सम्बन्धः, कास्ता इत्याह–कुब्जाः–कुब्जिका वक्रजङ्घा इत्यर्थः चिलात्यः–चिलातदेशो-त्पन्नाः वामनिका–अत्यन्तह्रस्वदेहा ह्रस्वोन्नतहृदयकोष्ठा वा वडभिका–महडकोष्ठा वक्राधःकाया वा इत्यर्थः बर्बर्यो–बर्बरदेशोत्पन्नाः बकुशिकाः–बकुशदेशजाः जोनिक्यो–जोनकनामकदेशजाः पल्हविकाः–पल्हवदेशजाः ईसणिआ था-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

रुकिणिआओत्ति देशद्वयभवाः ईसिनिकाः थारुकिनिकाः, लासिक्यो–लासकदेशजाः लकुशिक्यो–लकुशदेशजाः द्रविड्यो–द्रविडदेशजाः सिंहल्यः–सिंहलदेशजाः आरब्यः–आरबदेशजाः पुलिन्ध्यः–पुलिन्द्रदेशजाः पक्कण्यः–पक्कणदेशजाः बहल्यो–बहलिदेशजाः मुरुण्ड्यो–मुरुंडदेशजाः शबर्यः–शबरदेशजाः पारसीकाः–पारसदेशजाः, अत्र चिलात्यादयोऽष्टादश पूर्वोक्तरीत्या तत्तद्देशोद्भवत्वेन तत्तन्नामिका ज्ञेयाः, कुब्जादयस्तु तिस्रो विशेषणभूताः, अथ यथाप्रकारेणोपकरणेन ता अनुययुस्तथा चाह—अप्येकिका वन्दनकलशा–मङ्गल्यघटा हस्तगता यासां तास्तथा, एवं भृङ्गारादिहस्तगता अपि वाच्याः, तद्व्याख्यानं तु प्राग्वत्, नवरं पुष्पचङ्गेरीत आरभ्य मालादिपदविशेषितास्तच्चङ्गेर्य्यो ज्ञातव्याः, लोमहस्तकचङ्गेरी तु साक्षादुपात्ताऽस्ति, अन्यास्तु लाघवार्थकत्वेन सूत्रे साक्षान्नोक्ताः, आद्यन्तग्रहणेन मध्यग्रहणस्य स्वयमेव लभ्यमानत्वात्, एवं पुष्पपटलहस्तगता माल्यादिपटलहस्तगताश्च वाच्याः, अप्येकिकाः सिंहासनहस्तगताः अप्येकिकाः छत्रचामरहस्तगताः तथा अप्येकिकाः तैलसमुद्गाः–तैलभाजनविशेषास्तद्धस्तगताः एवं कोष्ठसमुद्गकहस्तगता यावत्सर्षपसमुद्गकहस्तगताः, अत्र समुद्गकसंग्रहमाह—'तेले कोट्ठसमुग्गे' इति सूत्रोक्ताः, एतदर्थस्तु राजप्रश्नीयवृत्तितोऽवगन्तव्यः, अप्येकिकास्तालवृन्तहस्तगताः–व्यञ्जनपाणयः अप्येकिका धूपकडुच्छुकहस्तगता इति, अथ यया समृद्ध्या भरत आयुधशालागृहं प्राप तामाह—'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा यत्रैवायुधगृहशाला तत्रैवोपागच्छतीति सम्बन्धः, किम्भूत इत्याह–सर्वर्द्ध्या–समस्तया आभरणादिरूपया लक्ष्म्या युक्त इति गम्यं, एवमन्यान्यपि पदानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजनीयानि, नवरं युतिः–मेलः परस्परमुचितपदार्थानां तया बलेन–सैन्येन समुदयेन–परिवारादिसमुदयेन आदरेण–प्रयत्नेन आयुधरत्नभक्त्युत्थबहुमानेन विभूषया–उचितनेपथ्यादिशोभया विभूत्या–विच्छर्दैन एवंविधविस्तारेण, उक्तामेव विभूषा व्यक्त्याऽऽह—'सव्वपुप्फे'त्यादि, अत्र पुष्पादिपदानि प्राग्वत्, नवरं अलङ्कारो–मुकुटादिरेतद्रूपया सर्वेषां त्रुटितानां–तूर्याणां यः शब्दो–ध्वनिर्यश्च स सङ्गतो निनादः–प्रतिध्वनिस्तेन, अत्र शब्दसन्निनादयोः समाहारद्वन्द्वः, अथ 'सर्वमनेन भाजनस्थं घृतं पीत'मिति लोकोक्तेः प्रसिद्धत्वात् सर्वशब्देनाल्पीयोऽपि निर्दिष्टं भवेत्ततश्च न तथा विभूतिर्वर्णिता भवतीत्याशङ्कमानं प्रत्याह–'महया इड्ढीए'इत्यादि, योजना तु प्राग्वदेव, यावत्शब्दात् महायुत्यादिपरिग्रहः, महता–बृहता वरत्रुटितानां–निःस्वानादीनां तूर्याणां यमकसमकं–युगपत्प्रवादितं–भावे क्तप्रत्ययविधानात् प्रवादनं ध्वनितमित्यर्थस्तेन, शङ्खः–प्रतीतः पणवो–भाण्डपटहो लघुपटह इत्यन्ये पटहस्त्वेतद्विपरीतः भेरी–ढक्का झल्लरी–चतुरङ्गुलनालिः करटिसदृशी वलयाकारा खरमुही–काहला मुरजो–महामर्दलः मृदङ्गो–लघुमर्दलः दुन्दुभिः–देववाद्यं, एषां निर्घोषनादितेन, तत्र निर्घोषो–महाध्वनिर्नादितं च प्रतिरवः, एकवद्भावादेकवचनं, पूर्वविशेषणं तूर्यसामान्यविषयमिदं तु तद्व्यक्तिसूचकमित्यनयोर्भेदः, आयुधगृहशालाप्रास्थनन्तरं विधिमाह–'उवागच्छित्ता' इत्यादि, तत्रोपागत्य आलोके–दर्शनमात्र एव चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति, क्षत्रियैरायुधवरस्य प्रत्यक्षदेवतात्वेन सङ्कल्पनात्, यत्रैव चक्ररत्नं तत्रैवोपागच्छति, लोमहस्तकं–प्रमार्जनिकां परामृशति–हस्तेन स्पृशति गृह्णातीत्यर्थः, परामृश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च चक्ररत्नं प्रमार्जयति, यद्यपि न तादृशे रत्ने रजःसम्भवस्तथापि भक्तजनस्य विनयप्रक्रियाज्ञापनार्थमयमुपन्यासः, प्रमार्ज्य च दिव्ययोदकधारया अभ्युक्षति–सिञ्चति स्नपयतीत्यर्थः अभ्युक्ष्य च सरसेन गोशीर्षचन्दनेनानुलिम्पति, अनुलिप्य च अग्रैः–अपरिभुक्तैरभिनवैर्वरैर्गन्धमाल्यैश्चार्चयति, एतदेव व्यक्त्या दर्शयति–पुष्पारोपणं माल्यारोपणं वर्णारोपणं चूर्णारोपणं वस्त्रारोपणं आभरणारोपणं करोति, कृत्वा च अच्छैः–अमलैः श्लक्ष्णैः–अतिप्रतलैः श्वेतैः–रजतमयैरत एव अच्छो रसो येषां ते अच्छरसाः, प्रत्यासन्नवस्तुप्रतिबिम्बाधारभूता इवातिनिर्मला इति भावः, एतादृशैस्तण्डुलैः, अत्र पूर्वपदस्य दीर्घान्तता प्राकृतत्वात्, स्वस्तिकादयोऽष्टाष्टमङ्गलकानि–मङ्गल्यवस्तूनि आलिखति–विन्यस्यति, अत्र चाष्टाष्टेति वीप्सावचनात् प्रत्येकमष्टाविति ज्ञेयं, यद्वा अष्टेति सङ्ख्याशब्दः अष्टमङ्गलकानीति चाखण्डः संज्ञाशब्दः, अष्टानामपि मङ्गलकानां, अथोक्तानामेव मङ्गलकानां व्यक्तितो नामानि कथयन् पुनर्विध्यन्तरमाह—'तद्यथा–स्वस्तिक'मित्यादि, व्याख्या तु प्राग्वत्, अत्र द्वितीयालोपः प्राकृतत्वात्, इमान्यष्टमङ्गलकानि आलिख्य–आकारकरणेन कृत्वा–अन्तर्वर्णकादिभरणेन पूर्णानि कृत्वेत्यर्थः, करोति उपचारं–उचितसेवामिति, तमेव व्यनक्ति–किन्ते इति तद्यथेत्यर्थे, तेन विवक्षित उपचारः उपन्यस्त इत्यर्थः, पाटलं–पाटलपुष्पं मल्लिका–विचकिलपुष्पं, यल्लोके वेलि इति प्रसिद्धं, चम्पकाशोकपुन्नागाः प्रतीताः चूतमञ्जरी–आम्रमञ्जरी बकुलः–केसरो यः स्त्रीमुखसीधुसिक्तो विकसति तत्पुष्पं, तिलको यः स्त्रीकटाक्षनिरीक्षितो विकसति तत्पुष्पं, कणवीरं कुन्दं च प्रतीते, कुब्जकं–कूबो इति नाम्ना वृक्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

विशेषस्तत्पुष्पं, कोरण्टकं प्राग्वत्, पत्राणि–मरुवकपत्रादीनि दमनकः–स्पष्टः एतैर्वरसुरभिः–अत्यन्तसुरभिः तथा सुगन्धाः–शोभनचूर्णास्तेषां गन्धो यत्र स तथा, तद्धितलक्षण इकप्रत्ययः, पश्चाद्विशेषणद्वयस्य कर्मधारयस्तस्य, तथा कचग्रहो–मैथुनसंरम्भे मुखचुम्बनाद्यर्थं युवत्याः पञ्चाङ्गुलिभिः केशेषु ग्रहणं तद्व्यायेन गृहीतस्तथा तदनन्तरं करतलाद्विप्रमुक्तः सन् प्रभ्रष्टः, प्राकृतत्वात् पदव्यत्ययः, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयस्तस्य, दशार्द्धवर्णस्य–पञ्चवर्णस्य कुसुमनिकरस्य–पुष्पराशेः तत्र–चक्ररत्नपरिकरभूमौ चित्रं–आश्चर्यकारिणं जानूत्सेधप्रमाणेन–जानुं यावदुच्चत्वप्रमाणं प्रमाणोपेतपुरुषस्य चतुरङ्गुलचरणचतुर्विंशत्यङ्गुलजङ्घोच्चत्वमीलनेनाष्टाविंशत्यङ्गुलरूपं तेन समाना मात्रा यस्य स तथा तं, अवधिना–मर्यादया निकरं–विस्तारं कृत्वा चन्द्रप्रभाः–चन्द्रकान्ता वज्राणि–हीरका वैडूर्याणि–वालवायजानि तन्मयो विमलो दण्डो यस्य स तथा तं काञ्चनमणिरत्नानां भक्तयो–विच्छित्तयो रचनास्ताभिश्चित्रं, कृष्णागुरुः प्रतीतः कुन्दुरुक्कः–चीडा तुरुष्कः–सिल्हकस्तेषां यो धूपो गन्धोत्तमः–सौरभ्योत्कृष्टः, अत्र विशेषणपरनिपातः, प्राकृतत्वात्, तेनानुविद्धा–मिश्रा व्याप्तेत्यर्थः तां चशब्दो विशेषणसमुच्चये स च व्यवहितसम्बन्धः, तेन धूमवर्त्तिं च–धूमश्रेणिं विनिर्मुञ्चन्तं, वैडूर्यमयं–केवलवैडूर्यरत्नघटितं स्थालकस्थगनकाद्यवयवेषु दण्डवच्चन्द्रकान्तादिरत्नमयत्वे तु अङ्गारधूमसंसर्गजनिता विच्छायता प्रादुर्भवेत्, 'कडुच्छुकं' धूपाधानकं 'प्रगृह्य' गृहीत्वा 'प्रयतः' आद्रियमाणो धूपं दहति, धूपं दग्ध्वा च प्रमार्जनादिकारणविशेषेण सन्निधीयमानमपि चक्ररत्नं अत्यासन्नतया मा आशातितं भूयादिति सप्ताष्टपदानि प्रत्यपसर्पति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चादपसरति प्रत्यपसर्प्य च वामं जानुं अञ्चति यावत्करणाद् 'दाहिणं जाणुं धरणिअलंसि निहट्टु करयलपरिग्गहिअं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु' इति संग्रहः, व्याख्या च पूर्ववत्, प्रणामं करोति–समीहितार्थसम्पादकमिदमिति बुद्ध्या प्रीतः प्रणमति, प्रणामं कृत्वा च आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति–निर्गच्छतीति, 'पडिणिक्खमित्ता' इत्यादि, प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषीदति–उपविशति, संनिषद्य च अष्टादश श्रेणीः–कुम्भकारादिप्रकृतीः प्रश्रेणीस्तदवान्तरभेदान् शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीदिति, अष्टादश श्रेणयश्चेमाः–"कुंभार १ पट्टइल्ला २ सुवण्णकारा य ३ सूवकारा य ४ । गंधव्वा ५ कासवगा ६ मालाकारा य ७ कच्छकरा ८ ॥१॥ तंबोलिआ ९ य एए नवप्पयारा य नारुआ भणिआ ।

१ अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणीः–अष्टादशसंख्याकान् स्वदेशचिन्तानियुक्ततन्त्रपालाद्यधिकारिविशेषान् शब्दापयति–आह्वयति, यत्तु केचित् 'सूआर–इति गाथात्रयमालोक्य एत एवाष्टादश श्रेणिप्रश्रेणय इति विकल्पयन्ति तन्न संभवति, यतो राज्याभिषेकावसरे देवादीनामिव श्रेणिप्रश्रेणीनामप्यभिषेकाधिकारं वक्ष्यते, तत्र च कारुनारूणां प्रवेशस्याप्यसंभव इति (इति हीव्वृत्तौ) अत्रेदं संभवास्पदं–यदा हि मज्जनगृहात् निर्जगाम चक्री तदैव बभूव सार्धं तन्त्रपालाद्या इति न तेषामाकारणीयता, न च ग्रामकौटुम्बिकानां ग्रहणं तेषामपि मज्जनगृहात् सहैव चक्रिणा निर्गमात्, तथा च प्रजानियुक्ता ये ग्रामाग्रेसराः स्वस्वज्ञातीयाधिकारपरास्तेऽत्र श्रेणिप्रश्रेणिशब्देन गृह्यन्ते, कारुनार्वादीनामपि प्रजाजनत्वात् करवृद्धयादीनां तत्सांमत्येनापि स्थापनात् युक्तमत्र प्रजाजनाग्रेसराणां श्रेणिप्रश्रेणिवाच्यानामाह्वानं अभिषेकेऽपि च तन्त्रपालानां सदा सहवर्त्तित्वाभावात् मागधतीर्थसाधनाद्युत्सवावसरे तदाह्वानासंभवात्, अभिषेकश्चैतेषां सूपकाराभिषेकादन्विति सार्थवाहाद्याश्च पश्चादभिषिषिचुश्चक्रिणं तेभ्य इति च तन्त्रपालना नोचिताऽऽसां ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

अह णं णवप्पयारे कारुअवण्णे पवक्खामि ॥२॥ चम्मयरु १ जंतपीलग २ गंछिअ ३ छिंपाय ४ कंसकारे ५ य । सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला ८ धीवर ९ वण्णाइ अट्ठदस ॥ ३ ॥" चित्रकारादयस्तु एतेष्वेवान्तर्भवन्ति, अथ पौरान् प्रति किमवादीदित्याह—'खिप्पामेव'त्ति क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाश्चकरत्नस्याष्टानां अह्नां समाहारोऽष्टाह्नं तदस्ति यस्यां महिमायां सा अष्टाह्निका तां महामहिमां कुरुतेत्यन्वयः, कृत्वा च मम एतामाज्ञप्तिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयतेति, अथ क्रमेण विशेषणानि व्याकरोति—कीदृशी ?—उन्मुक्तं शुल्कं—विक्रेतव्यभाण्डं प्रति राजदेयं द्रव्यं यस्यां सा तथा तां, एवमुत्करां उत्कृष्टां च, तत्र करो गवादीन् प्रति प्रतिवर्षं राजदेयं द्रव्यं, कृष्टं तु—कर्षणं लभ्यग्रहणायाकर्षणं, अदेयां—विक्रयनिषेधेन अविद्यमानदातव्यां, न केनापि कस्यापि देयमित्यर्थः, अमेयां—क्रयविक्रयनिषेधादेव अविद्यमानमातव्यां, अभटप्रवेशां—अविद्यमानो भटानां—राजपुरुषाणामाज्ञादायिनां प्रवेशः कुटुम्बिगृहेषु यस्यां सा तथा तां, दण्डलभ्यं द्रव्यं दण्डः कुदण्डेन निर्वृत्तं कुदण्डिमं—राजद्रव्यं तन्नास्ति यस्यां सा तथा तां, तत्र दण्डो यथापराधं राजग्राह्यं द्रव्यं कुदण्डस्तु कारणिकानां प्रज्ञाद्यपराधात् महत्यप्यपराधिनोऽपराधे अल्पं राजग्राह्यं द्रव्यं, अधरिमं—न विद्यते धरिमं—ऋणद्रव्यं यस्यां सा तथा तां, उत्तमर्णाधमर्णाभ्यां परस्परं तदृणार्थं न विवदनीयं किन्तु अस्मत्पार्श्वे द्युम्नं गृहीत्वा ऋणं मुत्कलनीयमित्यर्थः, गणिकावरैः—विलासिनीप्रधानैर्नाटकीयैः—नाटकप्रतिबद्धपात्रैः कलिता या सा तथा तां, अनेके ये ताला—चराः—प्रेक्षाकारिविशेषास्तैरनुचरितां—आसेवितां, 'अनुद्भूतां' आनुरूप्येण यथामार्दङ्गिकविधि उद्भूता—वादनार्थमु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४३] + गाथा: दीप अनुक्रम [५६-६०]

क्षिप्ता मृदङ्गा यस्यां सा तथा तां, अम्लानानि माल्यदामानि–पुष्पमाला यस्यां सा तथा तां, म्लानाः पुष्पमाला उत्सार्य नवा नवा आरोपणीया इत्यर्थः, प्रमुदिता–हृष्टाः प्रक्रीडिताः–क्रीडितुमारब्धाः सपुरजना–अयोध्यावासिजनसहिताः जनपदाः–कोशलदेशवासिनो जना यत्र सा तथा तां, विजयवैजयिकीं–अतिशयेन विजयो विजयविजयः स प्रयोजनं यस्यां सा तथा तां, इदमायुधरत्नं सम्यगाराधितं मदभिप्रेतं महाविजयं साधयतीत्यर्थः, 'प्रत्यये ङीर्वा' इति (श्री-सिद्ध० अ. ८ पा.३ सू.३१) प्राकृतसूत्रेण ङीविकल्पस्तेन विजयवेजइअमिति पाठः, क्वचिद्विजयवैजयन्तचक्करयणस्सत्ति पाठस्तत्र विजयसूचिका वैजयन्तीति विजयवैजयन्ती साऽस्यास्तीति विजयवैजयन्तं विजयग्रहणे किमपि परं न मत्त उत्कृष्टमिति ध्वजबन्धं विधत्ते इत्यर्थः एतादृशं यच्चक्ररत्नं तस्याष्टाहिकामिति प्राग्वदिति । अथ श्रेणिप्रश्रेणयो यच्चक्रुस्तदाह–'तए ण'मित्यादि सर्वं पाठसिद्धं । अथाष्टाहिकामहामहिमापरिसमाप्त्यनन्तरं किमभूदित्याह—

तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्ठाहिआए महामहिमाए निवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणाएणं आपूरेंते चेव अंबरतलं विणीआए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं मागहतित्थाभिमुहे पयाते आवि होत्था, तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं मागहतित्थाभिमुहं पयातं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ जाव हियए कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवरजोहक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिग्विजयकथा एवं चक्ररत्नस्य गमनं

लिअं चाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेह, एतमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते कोडुंबिअ जाव पच्चप्पिणंति, तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता समुत्तजालाभिरामे तहेव जाव धवलमहामेहणिग्गए इव ससिव्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता हयगयरहपवरवाहणभडचडगरपहकरसंकुलाए सेणाए पहिअकित्ती जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंजणगिरिकडगसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे। तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्तसिरए णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मरुअरायवसभकप्पे अब्भहिअरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे पसत्थमंगलसएहिं संथुव्वमाणे जयसद्दकयालोए हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेअवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं २ जक्खसहस्ससंपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई अमरवइसण्णिभाइ इड्ढीए पहिअकित्ती गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूले णं गामागरणगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसहस्समंडिअं थिमिअमेइणीअं वसुहं अभिजिणमाणे २ अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे २ तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे २ जोअणंतरिआहिं वसहीहिं वसमाणे २ जेणेव मागहतित्थे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मागहतित्थस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं णवजोअणविच्छिण्णं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेसं करेइ २ त्ता वड्ढइरयणं सद्दावेइ सद्दावइत्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! ममं आवासं पोसहसालं च करेहि करेत्ता ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि, तए णं से वड्ढइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे जाव अंजलिं कट्टु एवं सामी तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ २ त्ता एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणंति, तए णं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णाओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पोसहसालं अणुपविसइ २ त्ता पोसहसालं पमज्जइ २ त्ता दब्भसंथारगं संथरइ २ त्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ २ त्ता मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे णिक्खित्तसत्थमुसले दब्भसंथारोवगए एगे अबीए अट्ठमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ। तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ हयगय-रहपवरजोहकलिअं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पेहत्तिकट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता समुत्त तहेव जाव धवलमहामेहणिग्गए जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता हयगयरहपवरवाहण जाव सेणावइ पहिअकित्ती जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चाउग्घंटं आसरुहं दुरूढे (सूत्रं–४४)

'तए णं से'इत्यादि, ततस्तद्दिव्यं चक्ररत्नं अष्टाहिकायां महामहिमायां निर्वृतायां–जातायां सत्यां आयुधगृहशा-लातः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य च अन्तरिक्षं प्रतिपन्नं–नभः प्राप्तं, यक्षसहस्रसंपरिवृतं–चक्रधरचतुर्दशरत्नानां प्रत्येकं देवसहस्राधिष्ठितत्वात्, दिव्यत्रुटितशब्दसन्निनादेन पूर्वव्याख्यातेन आपूरयदिवाम्बरतलं–शब्दाद्वैतं नभः कुर्वदिवेत्यर्थः, विनीतायाः राजधान्याः मध्यंमध्येन मध्यभागेनेत्यर्थः निर्गच्छति, निर्गत्य च गङ्गानाम्न्या महानद्या दाक्षिणात्ये कूले उभयत्र णंशब्दो वाक्यालंकारे समुद्रपार्श्ववर्त्तिनि तटे इत्यर्थः, अयं भावः–विनीतासमश्रेण्यौ हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [६१]

प्राच्यां वहन्ती गङ्गा मागधतीर्थस्थाने पूर्वसमुद्रं प्रविशति, इदमपि मागधतीर्थसिसाधयिषया पूर्वां दिशं यियासुः अनुनदीतटमेव गच्छति, तच्च तटं दक्षिणदिग्वर्त्तित्वेन दाक्षिणात्यमिति व्यवह्रियते, अत एव दाक्षिणात्येन कूलेन पूर्वां दिशं मागधतीर्थाभिमुखं प्रयातं–चलितं चाप्यभवत्, एतच्च प्रयाणप्रथमदिने यावत् क्षेत्रमतिक्रम्य स्थितं तावद् योजनमिति व्यवह्रियते, तच्च प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नतया भरतचक्रिणः स्कन्धावारः स्वशक्त्यैव निर्वहति, अन्येषां तु दिव्यशक्त्या इति वृद्धाः, ततः किं जातमित्याह–'तए ण'मित्यादि, उक्तार्थप्रायं, किमवादीदित्याह—'खिप्पामेव'त्ति क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! आभिषेक्यं–अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्नं पट्टहस्तिनमिति भावः प्रतिकल्पयत–सज्जीकुरुत, हयगजरथप्रवरयोधकलितां चतुरङ्गिनीं, अत्र चतुःशब्दस्याऽऽत्वं प्राकृतसूत्रेण, उक्तैरेवाङ्गैश्चतुःप्रकारां सेनां सन्नाहयत–सन्नद्धां कुरुत, शेषं प्राग्वत्, 'तए ण'मित्यादि, अत्र यावत्शब्दात् 'पुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ' इति ग्राह्यं, इदं चाभ्युपगमसूत्रमिश्रमाज्ञाकरणसूत्रं स्पष्टमिति, अथ भरतो दिग्यात्रायियासया यं विधिमकार्षीत् तमाह—'तए ण'मित्यादि, स्नानसूत्रं पूर्ववत्, 'हये'त्यादि, हयगजरथाः प्रवराणि वाहनानि–वेसरादीनि भटा–योद्धारस्तेषां चडगरपहकरत्ति–विस्तारवृन्दं, इदं च देशीशब्दद्वयं, तेन संकुलया–व्याप्तया सेनया सार्द्धमिति शेषः, प्रथितकीर्त्तिर्भरतो यत्रैव बाह्योपस्थानशाला यत्रैव चाभिषेक्यं हस्तिरत्नं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च अञ्जनगिरेः कटको–नितम्बभागस्तत्सन्निभमेतावत्प्रमाणमुच्चत्वेनेत्यर्थः गजपतिं–राजकुञ्जरं नरपतिर्दुरूढे इति–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरूढ इति । आरूढश्च कीदृशया ऋद्ध्या चक्ररत्नोपदर्शितं स्थानं याति तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः स भरताधिपो—भरतक्षेत्रपतिः स च भरताधिपदेवोऽप्यतो नरेन्द्रः प्रस्तावाद्वृषभसूनुः चक्री इत्यर्थः, एतेनास्यैवालापकस्योत्तरसूत्रे नरिंदेत्तिपदेन न पौनरुक्त्यमिति, 'हारोत्थये'त्यादि विशेषणत्रयं प्राग्वत्, नरसिंहः सूरत्वात्, नरपतिः स्वामित्वात्, नरेन्द्रः परमैश्वर्ययोगात्, नरवृषभः स्वीकृतकृत्यभरनिर्वाहकत्वात्, 'मरुद्राजवृषभकल्पो' मरुतो—देवा व्यन्तरादयस्तेषां राजानः—सन्निहितादय इन्द्रास्तेषां मध्ये वृषभा—मुख्याः सौधर्मेन्द्रादयस्तत्कल्पः—तत्सदृश इत्यर्थः, अभ्यधिकराजतेजोलक्ष्म्या दीप्यमान इति स्पष्टं, प्रशस्तैर्मङ्गलशतैः—मङ्गलसूचकवचनैः कृत्वा स्तूयमानो बन्दिभिरिति शेषः, 'जयसद्दकयालोए' इति प्राग्वत्, हस्तिस्कन्धवरं गतः—प्राप्तः, केन सहेत्याह—'सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन सह, कोऽर्थः ?—यदा नृपो हस्तिस्कन्धगतो भवति तदा छत्रमपि हस्तिस्कन्धगतमेव ध्रियते, अन्यथा छत्रधरणस्यासङ्गतत्वात्, एवं श्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैः—वीज्यमानैः सह इति, तेन गयवई णरवई दुरूढे इति पूर्वसूत्रेण सहास्य भेदः, अधिकार्थप्रस्तावनार्थकत्वादस्य यक्षाणां—देवविशेषाणां सहस्राभ्यां संपरिवृतः, चक्रवर्त्तिशरीरस्य व्यन्तरदेवसहस्रद्वयाधिष्ठितत्वात्, 'वेसमणे चेव धणवई'ति वैश्रमण इव धनपतिः अमरपतेः सन्निभया ऋद्ध्या प्रथितकीर्त्तिर्गङ्गाया महानद्या दाक्षिणात्यकूले उभयत्र णंशब्दो प्राग्वत् अथवा सप्तम्यर्थे तृतीया ग्रामाकरादीनां—प्राक्प्रथमारकवर्णने युग्मिवर्णनाधिकारे उक्तस्वरूपाणां सहस्रैर्मण्डितां तदानीं वासबहुलत्वाद्धरतभूमेः स्तिमितमेदिनीकां प्रस्तु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

तनृपस्य प्रजाप्रियत्वात् स्तिमिता–निर्भयत्वेन स्थिरा मेदिनी–मेदिन्याश्रितजनो यस्यां सा तथा तां, बहुव्रीहिलक्षणः कप्रत्ययः, अत्र मेदिनीशब्देन 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इति न्यायात्तन्निवासी जनो लक्ष्यते, एवंविधां वसुधां अभिजयन् २–तत्रत्याधिपवशीकरणेन स्ववशे कुर्वन् २ इत्यर्थः, अग्र्याणि वराणि–अत्यन्तमुत्कृष्टानि रत्नानि–तत्तज्जातिप्रधानवस्तूनि आज्ञावशंवदीकृततत्तद्देशाधिपादिप्राभृतीकृतानि प्रतीच्छन् २–गृण्हन् २ तद्दिव्यं चक्ररत्नमनुगच्छन्, चक्ररत्नगत्यङ्कितमार्गेण चलन्नित्यर्थः,योजनं–चतुःक्रोशात्मकं तदन्तरिताभिर्वसतिभिर्विश्रामैर्वसन्२,अयमर्थः–एकस्माद्विश्रामाद्योजनं गत्वा परं विश्राममुपादत्ते इति, यत्रैव मागधतीर्थं तत्रैवोपागच्छति, तत्रोपागतः सन् किं चकारेत्याह–'उवागच्छित्ता'इत्यादि,उपागत्य च मागधतीर्थस्य दूरं च–विप्रकृष्टं सामन्तं च–आसन्नं दूरसामन्तं ततोऽन्यत्र, नातिदूरे नात्यासन्न इत्याशयः, द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशं विजययुक्तःस्कन्धावारः–सैन्यं तस्य निवेशं–स्थापनां करोति, कृत्वा च वर्द्धकिरत्नं–सूत्रधारमुख्यं शब्दयति,शब्दयित्वा च एवमवादीदिति, किमवादीदित्याह–'खिप्पामेव'त्ति क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय! मम कृते आवासं पौषधशालां च, तत्र पौषधं–पर्वदिनानुष्ठेयं तप उपवासादिः तदर्थं शाला–गृहविशेषः तां कुरु, कृत्वा मम एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयेति। 'तए ण'मित्यादि, स्पष्टं,नवरं 'आवसहं' आवासमिति, अथ भरतः किं चक्रे इत्याह—'तए ण'मित्यादि,ततः स भरतो राजा आभिषेक्याद् हस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य च यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च पौषधशालामनुप्रविशति,अनुप्रविश्य च पौषधशालां प्रमार्जयति,प्रमार्ज्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च दर्भसंस्तारकं संस्तृणाति,संस्तीर्य च दर्भसंस्तारकं दुरूहति–आरोहति,आरुह्य च मागधतीर्थकुमारनाम्नो देवस्य साधनायेति शेषः, अथवा चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, तेन मागधतीर्थकुमाराय देवाय, अष्टमभक्तं समयपरिभाषयोपवासत्रयमुच्यते, यद्वा अष्टमभक्तमिति सान्वर्थं नाम, तच्चैवं–एकैकस्मिन् दिने द्विवारभोजनौचित्येन दिनत्रयस्य षण्णां भक्तानामुत्तरपारणकदिनयोरेकैकस्य भक्तस्य च त्यागेनाष्टमं भक्तं त्याज्यं यत्र तथा, प्रगृह्णाति, अनेनाहारपौषधमुक्तं, प्रगृह्य च पौषधशालायां 'पौषधिकः' पौषधवान्, पौषधं नामेहाभिमतदेवतासाधनार्थकव्रतविशेषोऽभिग्रह इतियावत्, नत्वेकादशव्रतरूपस्तद्व्रतः सांसारिककार्यचिन्तनानौचित्यात्, नन्वेवमेकादशव्रतिकोचितानि तद्व्रतो ब्रह्मचर्याद्यनुष्ठानानि सूत्रे कथमुपात्तानि?, उच्यते, ऐहिकार्थसिद्धिरपि संवरानुष्ठानपूर्विकैव भवतीत्युपायोपेयभावदर्शनार्थं, अभयकुमारमन्त्रिश्रीविजयराजधम्मिल्लादीनामिव, अत एव परमजागरूकपुण्यप्रकृतिकाः संकल्पमात्रेण सिसाधयिषितसुरसाधनसिद्धिनिश्चयं जानाना जिनचक्रिणोऽतिसातोदयिनः कष्टानुष्ठानेऽष्टमादौ नोपतिष्ठन्ते, किन्तु मागधतीर्थाधिपादिः सुरः प्रभुणा हृदि चिन्तितः सन् गृहीतप्राभृतकः सहसैव सेवार्थमभ्युपैति, यदाहुः श्रीहेमचन्द्रसूरिपादाः श्रीशान्तिनाथचरित्रे–"ततो मागधतीर्थाभिमुखं सिंहासनोत्तमे । जिगीषुरप्यनाबद्धविकारो न्यषदत् प्रभुः ॥१॥ ततो द्वादशयोजन्यां, तस्थुषो मागधेशितुः । सिंहासनं तदा सद्यः, खड्गपादमिवाचलत् ॥ २ ॥" इत्यादि, यत्तु श्रामण्ये जगद्गुरवो दुर्विषहपरिषहादीन्, सहन्ते तत्कर्मक्षयार्थमिति, अनेनैव साधर्म्येण पौषधशब्दप्रवृत्तिरपि, यथा चास्य पौषधव्रतेन साधर्म्यं तथा चाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [६१]

ब्रह्मचारी–मैथुनपरित्यागी, अनेन ब्रह्मचर्यपौषधमुक्तं, उन्मुक्तमणिसुवर्णः–त्यक्तमणिस्वर्णमयाभरणः, व्यपगतानि माला-वर्णकविलेपनानि यस्मात् स तथा, वर्णकं–चन्दनं, अनेन पदद्वयेन शरीरसत्कारपौषधमुक्तं, निक्षिप्तं–हस्ततो विमुक्तं शस्त्रं–क्षुरिकादि मुसलं च येन स तथा, अनेनेष्टदेवताचिन्तनरूपमेकं व्यापारं मुक्त्वाऽपरव्यापारत्यागरूपं पौषधमुक्तं, दर्भसंस्तारोपगत इति व्यक्तं, एकः आन्तरव्यक्तरागादिसहायवियोगात् अद्वितीयस्तथाविधपदात्यादिसहायविरहात्, अष्टमभक्तं प्रतिजाग्रत् २–पालयन् २ विहरति–आस्ते इति । 'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजाऽष्टमभक्ते परि-णमति–पूर्यमाणे,परिपूर्णप्राये, इत्यर्थः,अत्र वर्त्तमाननिर्देशः आसन्नातीतत्वात् 'सत्सामीप्ये'(श्रीसिद्ध० अ.५ पा.४ सू.१) इत्यनेन, पौषधशालातः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव बाह्योपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति,उपागत्य च कौटु-म्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! हयगजरथप्रवरयोधकलितां चतुर-ङ्गिणीं सेनां सन्नाहयत, चतस्रो घण्टाश्छत्रिकैकदिशि तत्सन्नाहात् अवलम्बिता यत्र स तथा तं, चकारः समुच्चये, स चाश्वरथमित्यत्र योजनीयः, अश्ववहनीयो रथोऽश्वरथो नियुक्तोभयपार्श्वतुरङ्गमो रथ इत्यर्थः, अनेनास्य सांग्रा-मिकरथत्वमाह, तं प्रतिकल्पयत–सज्जीकुरुत इतिकृत्वा–कथयित्वा आदिश्येत्यर्थः, मज्जनगृहमनुप्रविशतीति, 'अणुप-विसित्ता' इत्यादि, अनुप्रविश्य च मज्जनगृहं समुक्ताजालाकुलाभिरामे इत्यादि, तथैव प्रागुक्तास्थानाधिकारगमव-दित्यर्थः, यावद् धवलमहामेघनिर्गतो यावन्मज्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य च हयगजरथप्रवरवाहनयावत्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४४]

दीप अनुक्रम [६१]

दात् 'भडचडगरपहगरसंकुल'त्ति ग्राह्यं, 'सेणाए(वई) पहिअकित्ती'इत्यादि प्राग्वत्, अत्र निष्ठितपौषधस्य सतो मागधतीर्थमभिययासोर्भरतस्य यत् स्नानं तदुत्तरकालभाविबलिकर्माद्यर्थं, यदाह श्रीहेमचन्द्रसूरिपादाः आदिनाथचरित्रे- "राजा सर्वार्थनिष्णातस्ततो बलिविधिं व्यधात् । यथाविधि विधिज्ञा हि, विस्मरन्ति विधिं न हि ॥ १ ॥" इति, अत्र च सूत्रेऽनुक्तमपि बलिकर्म "व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति"रिति न्यायेन ग्राह्यमिति ॥ अथ कृतस्नानादिविधिर्भरतो यच्चक्रे तदाह—

तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे हयगयरहपवरजोहकलिआए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुआयमग्गे महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभिअमहासमुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ पुरत्थिमदिसाभिमुहे मागहतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला, तए णं से भरहे राया तुरगे निगिण्हई २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता धणुं परामुसइ, तए णं तं अइरुग्गयबालचन्दइंदधणुसंकासं वरमहिसदरिअदप्पिअदढघणसिंगरइअसारं उरगवरपवरगवलपवरपरहुअभमरकुलणीलिणिद्धधंतधोअपट्टं णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयणघंटिआजालपरिक्खित्तं तडितरुणकिरणतवणिज्जबद्धचिंधं दद्दरमलयगिरिसिहरकेसरचामरवालद्धचंदचिंधं कालहरिअरत्तपीअसुकिल्लबहुण्हारुणिसंपिणद्धजीवं जीविअंतकरणं चलजीवं धणूं गहिऊण से णरवई उसुं च वरवइरकोडिअं वइरसारतोंडं कंचणमणिकणगरयणधोइट्ठसुकयपुंखं अणेगमणिरयणविविहसुविरइयनामचिंधं वइसाहं ठाईऊण ठाणं आयतकण्णायतं च काऊण उसुमुदारं इमाइं वयणाइं तत्थ भाणिअ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]

से णरवई–हंदि सुणंतु भवंतो बाहिरओ खलु सरस्स जे देवा । णागासुरा सुवण्णा तेसिं खु णमो पणिवयामि ॥ १ ॥ हंदि सुणंतु भवंतो अब्भिंतरओ सरस्स जे देवा । णागासुरा सुवण्णा सव्वे मे ते विसयवासी ॥ २ ॥ इतिकट्टु उसुं णिसिरइत्ति–'परिगरणिगरिअमज्जो वाऊद्धुअसोभमाणकोसेज्जो । चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥३॥ तं चंचलायमाणं पंचमिचंदोवमं महाचावं । छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥ ४ ॥ तए णं से सरे भरहेणं रण्णा णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव दुवालस जोअणाइं गंता मागहतित्थाधिपतिस्स देवस्स भवणंसि निवइए, तए णं से मागहतित्थाहिवई देवे भवणंसि सरं णिवइअं पासइ२ त्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिक्किए कुविए मिसिमिसेमाणे तिवलिअं भिउडिं णिडाले साहरइ २ त्ता एवं वयासी–केस णं भो एस अपत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे हिरिसिरिपरिवज्जिए जे णं मम इमाए एआणुरूवाए दिव्वाए देविड्ढीए दिव्वाए देवजुईए दिव्वेणं दिव्वाणुभावेणं लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पिं अप्पुस्सुए भवणंसि सरं णिसिरइत्तिकट्टु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तं णामाहयंकं सरं गेण्हइ णामंकं अणुप्पवाएइ णामंकं अणुप्पवाएमाणस्स इमे एआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–उप्पण्णे खलु भो! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं मागहतित्थकुमाराणं देवाणं राईणमुवत्थाणीअं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीअं करेमित्तिकट्टु एवं संपेहेइ संपेहेत्ता हारं मउडं कुंडलाणि अ कडगाणि अ तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए चवलाए जयणाए सीहाए सिग्घाए उद्धुआए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे २ जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणीआइं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]

पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिए करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिर जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता एवं वयासी–अभिजिए णं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे पुरच्छिमेणं मागहतित्थमेराए तं अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासी अहण्णं देवाणुप्पिआणं आणत्तीकिंकरे अहण्णं देवाणुप्पिआणं पुरच्छिमिल्ले अंतवाले तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ ! ममं इमेआरूवं पीइदाणं-तिकट्टु हारं मउडं कुंडलाणि अ कडगाणि अ जाव मागहतित्थोदगं च उवणेइ, तए णं से भरहे राया मागहतित्थकुमारस्स देवस्स इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ २ त्ता मागहतित्थकुमारं देवं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ, तए णं से भरहे राया रहं परावत्तेइ २ त्ता मागहतित्थेणं लवणसमुद्दाओ पच्चुत्तरइ २ त्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तुरए णिगिण्हइ २ त्ता रहं ठवेइ २ रहाओ पच्चोरुहति २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति २ मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता जाव ससिव्व पिअदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २ त्ता भोअणमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया उस्सुक्कं उक्करं जाव मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिअं महामहिमं करेह २ त्ता मम एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ताओ अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ताओ समाणीओ हट्ठ जाव करेंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति, तए णं से दिव्वे चक्करयणे वइरामयतुंबे लोहिअक्खामया-रए जंबूणयणेमीए णाणामणिखुरप्पथालपरिगए मणिमुत्ताजालभूसिए सणंदिघोसे सखिंखिणीए दिव्वे तरुणरविमंडलणिभे णाणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]

मणिरयणघंटिआजालपरिक्खित्ते सव्वोउअसुरभिकुसुमआसत्तमल्लदामे अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअसद्दसण्णिणादेणं पूरेंते चेव अंबरतलं णामेण य सुदंसणे णरवइस्स पढमे चक्करयणे मागहतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं वरदामतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था (सूत्रं ४५)

'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा चतुर्घण्टमश्वरथमारूढः सन् हयगजरथप्रवरयोधकलितया, अर्थात् सेनया इति गम्यं, सार्द्धं संपरिवृतो 'महया' इति महाभटानां चडगरत्ति–विस्तारवन्तः 'पहगरत्ति' समूहास्तेषां यद्वृन्दं–समूहो विस्तारवत्समूह इत्यर्थः, तेन परिक्षिप्तः–परिकरितः चक्ररत्नादेशितमार्गः, अनेकेषां राजवराणां–आबद्धमुकुटराज्ञां सहस्रैरनुयातः–अनुगतो मार्गः–पृष्ठं यस्य स तथा, महता–तारतरेण उत्कृष्टिः–आनन्दध्वनिः सिंहनादः–प्रतीतः बोलो–वर्णव्यक्तिरहितो ध्वनिः कलकलश्च–तदितरो ध्वनिस्तल्लक्षणो यो रवस्तेन प्रक्षुभितो–महावायुवशादुत्कल्लोलो यो महासमुद्रस्तस्य रवं 'भूङ् प्राप्ता'विति सौत्रो धातुरिति वचनाद् भूतं–प्राप्तमिव दिग्मण्डलमिति गम्यते कुर्वन्नपि चशब्दोऽत्र इवादेशो ज्ञातव्यः, पूर्वदिगभिमुखो मागधनाम्ना तीर्थेन–घट्टेन लवणसमुद्रमवगाहते–प्रविशति, कियदवगाहते इत्याह–यावत् 'से' तस्य रथवरस्य कूर्परावि कूर्परौ कूर्पराकारत्वात् पिञ्जनके इति प्रसिद्धौ रथावयवौ आर्द्रौ स्यातां, अत एव सूत्रबलादन्यत्र एतदासन्नभूतो रथचक्रनाभिरूपोऽवयवो विवक्ष्यते, यदाह—"रथाङ्गनाभिद्वयसं, गत्वा जलनिधेर्जलम् । रथस्तस्थौ रथाग्रस्थसारथिस्खलितैर्हयैः ॥ १ ॥" इति, 'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

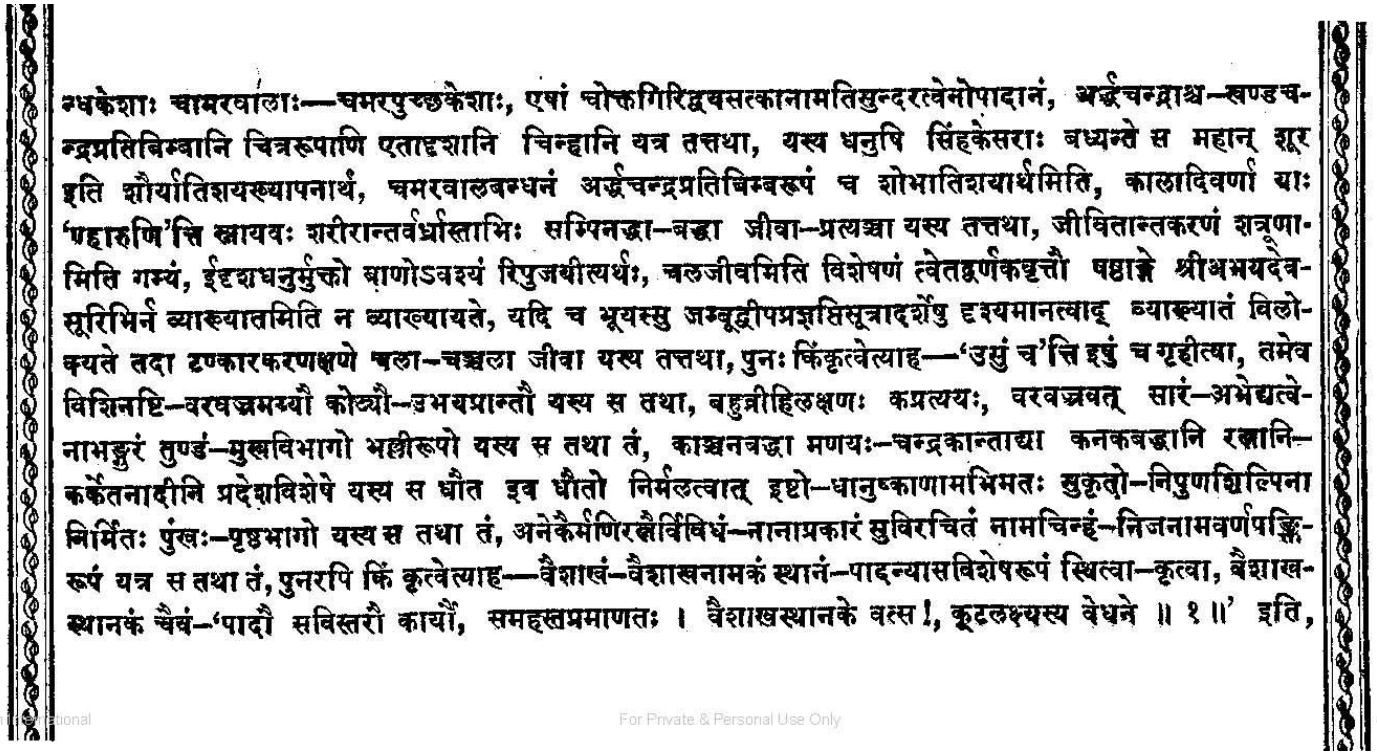
प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]

राजा तुरगान् निगृह्णाति, अत्र तुरगाविति द्विवचनेन हयद्विके व्याख्यायमाने सूत्रार्थसिद्धौ सत्यामपि वरदामसूत्रे हयचतुष्टयस्य वक्ष्यमाणत्वात् बहुवचनेन व्याख्या, निगृह्य च रथं स्थापयति, स्थापयित्वा च धनुः परामृशति–स्पृशति, अथ यादृशं परामर्शं तादृशं धनुर्वर्णयन्नाह–'तए ण'मित्यादि, ततो–धनुःपरामर्शानन्तरं स नरपतिरिमानि–वक्ष्यमाणानि वचनानि 'भाणीअ'त्ति अभाणीदिति सम्बन्धः, किं कृत्वेत्याह–धनुर्गृहीत्वा, किंलक्षणमित्याह–तत्–प्रसिद्धं अचिरोद्गतो यो बालचन्द्रः–शुक्लपक्षद्वितीयाचन्द्रस्तेन यत्तु उत्तरसूत्रे पंचमिचंदोवममिति तदारोपितगुणस्यातिवक्रताज्ञापनार्थमिति, इन्द्रधनुषा च वक्रतया सन्निकाशं–सदृशं यत्तत्तथा, दृप्तः–दर्पितो द्वयोः समानार्थयोरतिशयवाचकत्वेन सञ्जातदर्पातिशयो यो वरमहिषः–प्रधानसेरिभो विशेषणपरनिपातः प्राकृतत्वात् तस्य दृढानि–निबिडपुद्गलनिष्पन्नानि अत एव घनानि–निच्छिद्राणि यानि शृङ्गाग्राणि तै रचितं सारं च यत्तत्तथा, उरगवरो–भुजगवरः प्रवरगवलं–वरमहिषशृङ्गं प्रवरपरभृतो–वरकोकिलो भ्रमरकुलं–मधुकरनिकरो नीली–गुलिका एतानीव स्निग्धं–कालकान्तिमत् श्मातमिव श्मातं च–तेजसा ज्वलद्धौतमिव धौतं च–निर्मलं पृष्ठं–पृष्ठभागो यस्य तत्तथा, निपुणेन शिल्पिना ओपितानां–उज्ज्वालितानां 'मिसिमिसिंत'त्ति देदीप्यमानानां मणिरत्नघण्टिकानां यज्जालं तेन परिक्षिप्तं–वेष्टितं यत्तत्तथा तडिदिव–विद्युदिव तरुणाः–प्रत्यग्राः किरणा यस्य तत्तथा, एवंविधस्य तपनीयस्य सम्बन्धीनि बद्धानि चिह्नानि–लाञ्छनानि यत्र तत्तथा, दर्दरमलयाभिधौ यौ गिरी तयोर्यानि शिखराणि तत्सम्बन्धिनो ये केसराः–सिंहस्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]



न्धकेशाः चामरवालाः—चमरपुच्छकेशाः, एषां चोक्तगिरिद्वयसत्कानामतिसुन्दरत्वेनोपादानं, अर्द्धचन्द्राश्च—खण्डचन्द्रप्रतिबिम्बानि चित्ररूपाणि एतादृशानि चिन्हानि यत्र तत्तथा, यस्य धनुषि सिंहकेसराः बध्यन्ते स महान् शूर इति शौर्यातिशयख्यापनार्थं, चमरवालबन्धनं अर्द्धचन्द्रप्रतिबिम्बरूपं च शोभातिशयार्थमिति, कालादिवर्णा याः 'ण्हारुणि'त्ति स्नायवः शरीरान्तर्वर्त्तास्ताभिः सम्पिनद्धा—बद्धा जीवा—प्रत्यञ्चा यस्य तत्तथा, जीवितान्तकरणं शत्रूणामिति गम्यं, ईदृशधनुर्मुक्तो बाणोऽवश्यं रिपुजयीत्यर्थः, चलजीवमिति विशेषणं त्वेतद्वर्णकवृत्तौ षष्ठाङ्गे श्रीअभयदेवसूरिभिर्न व्याख्यातमिति न व्याख्यायते, यदि च भूयस्सु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रादर्शेषु दृश्यमानत्वाद् व्याख्यातं विलोक्यते तदा टण्कारकरणक्षणे चला—चञ्चला जीवा यस्य तत्तथा, पुनः किंकृत्वेत्याह—'उसुं च'त्ति इषुं च गृहीत्वा, तमेव विशिनष्टि—वरवज्रमय्यौ कोट्यौ—उभयप्रान्तौ यस्य स तथा, बहुव्रीहिलक्षणः कप्रत्ययः, वरवज्रवत् सारं—अभेद्यत्वेनाभङ्गुरं तुण्डं—मुखविभागो भल्लीरूपो यस्य स तथा तं, काञ्चनबद्धा मणयः—चन्द्रकान्ताद्या कनकबद्धानि रत्नानि—कर्केतनादीनि प्रदेशविशेषे यस्य स धौत इव धौतो निर्मलत्वात् इष्टो—धानुष्काणामभिमतः सुकृतो—निपुणशिल्पिना निर्मितः पुंखः—पृष्ठभागो यस्य स तथा तं, अनेकैर्मणिरत्नैर्विविधं—नानाप्रकारं सुविरचितं नामचिन्हं—निजनामवर्णपङ्क्तिरूपं यत्र स तथा तं, पुनरपि किं कृत्वेत्याह—वैशाखं—वैशाखनामकं स्थानं—पादन्यासविशेषरूपं स्थित्वा—कृत्वा, वैशाखस्थानकं चैवं—'पादौ सविस्तरौ कार्यौ, समहस्तप्रमाणतः । वैशाखस्थानके वत्स!, कूटलक्ष्यस्य वेधने ॥ १ ॥' इति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२०१॥

भूयोऽपि किं कृत्वेत्याह—इषुमुदारं—उद्भटं आयतं—प्रयत्नवद् यथा भवत्येवं कर्णं यावदायतं—आकृष्टं कृत्वा इमानि वचनान्यभाणीदिति, अन्वययोजनं तु पूर्वमेव कृतं, कानि तानि वचनानीत्याह—हंदि इति सत्ये, तेन यथाशयं वदामीत्यर्थः, अथवा हंदीति सम्बोधने, शृण्वन्तु भवन्तः, शरस्य—मत्प्रयुक्तस्य बहिस्तात्—त्वग्भागे ये देवा अधिष्ठायकास्त्वग्दार्ढ्यादिकारिणस्ते इत्यर्थः, खलु वाक्यालङ्कारे, ते के इत्याह—नागा असुराः सुपर्णा—गरुडकुमाराः तेभ्यः खुः—निश्चये नमोऽस्तु विभक्तिपरिणामात् तान् प्रणिपतामि—नमस्करोमि, नम इत्यनेन गतार्थत्वेऽपि प्रणिपतामीति पुनर्वचनं भक्त्यतिशयख्यापनार्थं, अनेन शरप्रयोगाय साहाय्यकर्तृणां बहिर्भागवासिनां देवानां सम्बोधनमुक्तं, अथाभ्यन्तरभागवर्त्तिदेवानां सम्बोधनायाह—हन्दीति प्राग्वत्, नवरं अभ्यन्तरतो गर्भभागे शरस्य येऽधिष्ठायकास्तद्दार्ढ्यादिकारिण इत्यर्थः, तेऽत्र सम्बोध्या इत्यर्थः, सर्वे ते देवा मम विषयवासिनो—मम देशवासिन इत्यर्थः, सूत्रे चैकवचनं प्राकृतत्वात्, इदं च वचनं सर्वे एते देवा मदाज्ञावशंवदत्वेन मदिष्टस्य शरप्रयोगस्य साहायकं करिष्यन्तीत्याशयेनेति, यथाऽत्रादिचरित्रादौ शरस्य पुंखमुखरूपं देवाधिष्ठातव्यं स्थानद्वयमधिकमुक्तमस्ति तत्तयोः शरे प्राधान्यख्यापनार्थं, ननु यद्येते देवा आज्ञावशंवदास्तर्हि नमस्कार्यत्वमनुपपन्नं, उच्यते, क्षत्रियाणां शस्त्रस्य नमस्कार्यत्वे व्यवहारदर्शनात् चक्ररत्नस्येव, तेन तदधिष्ठातृणामपि स्वाभिमतकृत्यसाधकत्वेन नमस्कार्यत्वं नानुपपन्नमिति, इतिकृत्वा—निवेद्य इषुं निसृजति—मुञ्चति । अथ भरतस्यैतत्प्रस्तावववर्णनाय पद्यद्वयमाह—'परिगर'त्ति परिकरेण—मल्लकच्छबन्धेन युद्धोचित-

३वक्षस्कारे मागधतीर्थकुमारसाधनं सू. ४५

॥२०१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्रबन्धविशेषेणेत्यर्थः, निगडितं–सुबद्धं मध्यं यस्य स तथा, वातेन–प्रस्तावात् समुद्रवातेनोद्भूतं–उत्क्षिप्तं शोभमानं कौशेयं–वस्त्रविशेषो यस्य स तथा, चित्रेण धनुर्वरेण शोभते स भरत इत्यध्याहारः, इन्द्र इव प्रत्यक्षं–साक्षात्तत्प्रागुक्तस्वरूपं महाचापं चञ्चलायमानं–सौदामिनीयमानं कान्तिझात्कारेणेत्यर्थः, आरोपितगुणत्वेन पञ्चमीचन्द्रोपमं 'छज्जइ'त्ति राजते 'राजेरग्घछज्जसहरीहरहा'इति (श्रीसिद्ध०८–४–१००) प्राकृतसूत्रेण रूपसिद्धिः, वामहस्ते नरपतेरिति, तस्मिन् विजये–मागधतीर्थेशसाधने इति । 'तए णं'इत्यादि, ततः स शरो भरतेन राज्ञा निसृष्टः सन् क्षिप्रमेव द्वादश योजनानि गत्वा मागधतीर्थाधिपतेर्देवस्य भवने निपतितः, ततः किं वृत्तमित्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः स मागधपतिर्देवो भवने अर्थात् स्वकीये शरं निपतितं पश्यति दृष्ट्वा च आशु–शीघ्रं रुष्टः–क्रोधोदयाद्विमूढः, 'रुप लुप च विमोहने' इति वचनात्, स्फुरितकोपलिङ्गो वा, रुष्टः–उदितक्रोधः चाण्डिक्यितः–सञ्जातचाण्डिक्यः, प्रकटितरौद्ररूप इत्यर्थः, कुपितः–प्रवृद्धकोपोदयः, 'मिसिमिसेमाणे'त्ति क्रोधाग्निना दीप्यमान इव, एकार्थिका वैते शब्दाः कोपप्रकर्षप्रतिपादनार्थमुक्ताः, त्रिवलिकां–तिस्रो वलयः–प्रकोपोत्थललाटरेखारूपा यस्यां सा तथा तां भृकुटिं–कोपविकृतभ्रूरूपां संहरति–निवेशयति, संहृत्य च एवमवादीत्, किमवादीदित्याह—'केस ण'मित्यादि, केसत्ति–कः अज्ञातकुलशीलसहजत्वादनिर्दिष्टनामकः सकारः प्राकृतशैलीभवः 'मणसा वयसा कायसा' इत्यादिवत् णमिति प्राग्वत् भो इति सम्बोधने देवानां एषः–बाणप्रयोक्ता अप्रार्थितं–केनाप्यमनोरथगोचरीकृतं प्रस्तावात् मरणं तस्य प्रार्थको–अभिलाषी, अय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा:

दीप अनुक्रम [६२-६७]

मर्थः–यो मया सह युयुत्सुः स मुमूर्षुरेवेति, दुरन्तानि–दुष्टावसानानि प्रान्तानि–तुच्छानि लक्षणानि यस्य स तथा, हीनायां पुण्यचतुर्दश्यां जातो हीनपुण्यचातुर्दशः, तत्र चतुर्दशी किल तिथिर्जन्माश्रिता पुण्या पवित्रा शुभा इतियावत् भवति, सा च पूर्णाऽत्यन्तभाग्यवतो जन्मनि भवति अत आक्रोशता इत्थमुक्तं, क्वचिद् 'भिन्नपुण्णचाउद्दसे'त्ति, तत्र भिन्ना–परतिथिसङ्गमेन भेदं प्राप्ता या पुण्यचतुर्दशी तस्यां जात इति, ह्रिया–लज्जया श्रिया–शोभया च परिवर्जितः यो णमिति पूर्ववत् मम अस्याः–प्रत्यक्षानुभूयमानायाः एतद्रूपायाः एतदेव न समयान्तरे भङ्गुरत्वादिरूपान्तरभाक् रूपं–स्वरूपं यस्याः सा तथा तस्या दिव्यायाः–स्वर्गसम्भवा याः प्रधानाया वा देवानामृद्धिः–श्रीर्भवनरत्नादिसम्पत् तस्याः, एवं सर्वत्र, नवरं द्युतिः–दीप्तिः शरीराभरणादिसम्पत् तस्याः युतिर्वा–इष्टपरिवारादिसंयोगलक्षणा तस्याः दिव्येन–प्रधानेन देवानुभावेन–भाग्यमहिम्नाऽथवा दिव्येन–देवसम्बन्धिनाऽनुभावेन–अचिन्त्यवैक्रियादिकरणमहिम्ना सह 'पिता पुत्रेण सहागत' इत्यादिवत्, लब्धाया–जन्मान्तरार्जिताया: प्राप्ताया–इदानीमुपस्थिताया: अभिसमन्वागताया:–भोग्यतां गतायाः उपरि आत्मना उत्सुको–मनसोत्कण्ठुलः परसम्पत्स्यभिलाषी पदच्यत्ययादुत्सुकात्मा वा भवने निसृजति, इतिकृत्वा सिंहासनादभ्युत्तिष्ठतीति। उत्थानानन्तरं यत्कर्त्तव्यं तदाह—'जेणेव से णा'इत्यादि, यत्रैव स नामरूपोऽहतः–अखण्डितः अङ्कः–चिन्हं यत्र स तथा नामाङ्क इत्यर्थः, एवंविधः शरस्तत्रैवोपागच्छति, तं नामाहताङ्कं शरं गृह्णाति नामकं अनुप्रवाचयति–वर्णानुपूर्वीक्रमेण पठति, नामकमनुप्रवाचयतोऽयं–वक्ष्यमाण एतद्रूपो–वक्ष्यमाणस्वरूपः आत्मन्यधि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म तत्र भव आध्यात्मिकः आत्मविषय इत्यर्थः, सङ्कल्पश्च द्विधा–ध्यानात्मकः चिन्तात्मकश्च, तत्र आद्यः स्थिराध्यवसायलक्षणस्तथाविधदृढसंहननादिगुणोपेतानां द्वितीयश्चलाध्यवसायलक्षणस्तदितरेषामिति, तयोर्मध्येऽयं चिन्तितः–चिन्तारूपश्चेतसोऽनवस्थितत्वात्, स चानभिलाषात्मकोऽपि स्यादित्यत आह—प्रार्थितः–प्रार्थनाविषयः, अयं मम मनोरथः फलेग्रहिर्भूयादित्यभिलाषात्मक इत्यर्थः, मनोगतो–मनस्येव यो गतो न बहिर्वचनेन प्रकाशित इति, सङ्कल्पः समुदपद्यत, तमेवाह–उत्पन्नः खलुः–निश्चये भो इत्यामन्त्रणे विचाराभिमुख्यकरणाय स्वात्मन एव, तेनेह मागधकुमारेति योज्यं, जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे भरतो नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्त्ती तत्–तस्माज्जीतमेतत् अतीतप्रत्युत्पन्नानागतानां 'मागधतीर्थकुमाराणा'मिति मागधतीर्थस्याधिपतिः कुमारो मागधतीर्थकुमारः मध्यपदलोपेन समासः, कुमारपदवाच्यत्वं चास्य नागकुमारजातीयत्वात्, तन्नामकानां देवानां राज्ञां–नरदेवानां उपस्थानिकं–प्राभृतं कर्त्तुं तद् गच्छामि णमिति प्राग्वत् अहमपि भरतस्य राज्ञ उपस्थानिकं करोमि, इतिकृत्वा–इति मनसिकृत्य एवं–वक्ष्यमाणं निजर्द्धिसारं संप्रेक्षते–पर्यालोचयति, ततः किं करोतीत्याह—'संपेहेत्ता' इत्यादि, सम्प्रेक्ष्य च हारादीनि प्रतीतानि चकारः सर्वत्र समुच्चये शरं च भरतस्य प्रत्यर्प्पणाय नामाहतं नामाहताङ्कमिति निर्देशे कर्त्तव्ये लाघवार्थमित्थमुपन्यासः यद्वा नाम आहतं–लक्षणया लिखितं यत्र स तथा तं मागधतीर्थोदकं च राज्याभिषेकोपयोगि एतानि गृह्णातीति सम्बन्धः, तदनन्तरं किं विदधे इत्याह—'गिण्हित्ता ताएं उक्किट्ठाए'इत्यादि, गृहीत्वा च तया दिव्यया देव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]

गत्या गत्यालापकव्याख्या प्राग्वत् नवरं सिंहया–सिंहगतिसमानया अतिमहता बलेनारब्धत्वात्, यच्च पूर्वं ऋषभदेवनिर्वाणकल्याणाधिकारे गत्यालापककथनं यावत्पदेन अत्र च तत्कथनं विस्तरेण तद्विचित्रत्वात् सूत्रकारप्रवृत्तेरिति मन्तव्यं, यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति उपागत्य चान्तरिक्षप्रतिपन्नो–नभोगतो देवानामभूमिचारित्वात् सकिंकिणीकानि–क्षुद्रघण्टिकाभिः सह गतानि पञ्चवर्णानि च वस्त्राणि प्रवरं विधिपूर्वकं यथा स्यात् तथा परिहितः–परिहितवान्, यथा पञ्चवर्णानि वस्त्राणि परिहितवान् तथा किंकिणीरपीत्यर्थः, किमुक्तं भवति?–किंकिणीग्रहणेन तस्य नटादियोग्यवेषधारित्वदर्शनेन भृशं तस्य भरते भक्तिः प्रकटिता, अथवा किंकिणीसमुत्थशब्देन सर्वजनसमक्षं सेवकोऽस्मि न तु छन्नमिति ज्ञापनार्थं तत्सहित उपागतः, अथवा सकिंकिणीकानि–बद्धकिंकिणीकानि, तद्बन्धश्च शोभातिशयार्थं, करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा चैवमवादीत्, अत्र प्राग्वद् व्याख्यानमिति। किमवादीदित्याह—'अभिजिए ण'मित्यादि, अभिजितं–आज्ञावशंवदीकृतं देवानुप्रियैः–वन्द्यपादैः केवलकल्पं–सम्पूर्णत्वात् केवलज्ञानसदृशं भरतं वर्षं–भरतक्षेत्रं पूर्वस्यां मागधतीर्थमर्यादया–मागधतीर्थं यावत्, तदहं देवानुप्रियाणां विषयवासी–देशवासी अत एवाहं देवानुप्रियाणामाज्ञप्तिकिङ्करः–आज्ञाकारी सेवकः, अहं देवानुप्रियाणां पौरस्त्यः–पूर्वदिक्सम्बन्धी अन्तं–त्वदादेश्यदेशसम्बन्धिनं पालयति–रक्षयति उपद्रवादिभ्य इत्यन्तपालः पूर्वदिग्देशलोकानां देवादिकृतसमस्तोपद्रवनिवारक इत्यर्थः, 'अहण्णं देवाणुप्पिआणं'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा: दीप अनुक्रम [६२-६७]

इत्यादिपदानां भिन्नभिन्नप्रकारेण योजनीयत्वादत्र न पौनरुक्त्यं, तत्प्रतीच्छन्तु–गृह्णन्तु देवानुप्रिया! मम इदम्–अग्रत उपनीतं एतद्रूपं प्रत्यक्षानुभूयमानस्वरूपं प्रीतिदानं–सन्तोषदानं प्राभृतरूपमित्यर्थः, इतिकृत्वा–विज्ञप्य हारादिकमुपनयति–प्राभृतीकरोतीति, 'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा मागधतीर्थकुमारनाम्नो देवस्य इदमेतद्रूपं प्रीतिदानं तत्प्रीत्युत्पादनार्थमलुब्धतया प्रतीच्छति–गृह्णाति, प्रतीष्य च मागधतीर्थकुमारं देवं सत्कारयति वस्त्रादिना सन्मानयति तदुचितप्रतिपत्त्या सत्कार्य सन्मान्य च प्रतिविसर्जयति–स्वस्थानगमनायानुमन्यते। अथ तदुत्तरकर्त्तव्यमाह— 'तए णं से भरहे राया रह'मित्यादि, ततः स भरतो राजा रथं परावर्त्तयति–भरतवर्षाभिमुखं करोति, परावर्त्त्य च मागधतीर्थेन लवणसमुद्रात् प्रत्यवतरति प्रत्यवतीर्य च यत्रैव विजयस्कन्धावारनिवेशो यत्रैव च–बाह्या उपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य च रथं स्थापयति स्थापयित्वा च रथात् प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य च यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च मज्जनगृहमनुप्रविशति अनुप्रविश्य 'जाव'त्ति यावत्करणात् संपूर्णः स्नानालापको वाच्यः 'ससिव्व पिअदंसणे' इति विशेषणं यावत्, स च प्राग्वत्, नरपतिर्मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च भोजनमण्डपे सुखासनवरगतः सन्नष्टमभक्तं पारयति पारयित्वा च भोजनमण्डपात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैव बाह्योपस्थानशाला यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च यावत्सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखो निषीदति निषद्य च अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणीः शब्दयति शब्द-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्वा चैवमवादीदिति, अत्र सूत्रे यावच्छब्दो लिपिप्रमादापतित एव दृश्यते, संग्राहकपदाभावात्, अन्यत्र तद्गमादावदृश्यमानत्वाच्चेति, अथ किमवादीदित्याह–'खिप्पामेवे'ति, सर्वं प्राग्वत्, यथा राजाज्ञां पौरा विदधुस्तथा चाह–'तए ण'मित्यादि, व्यक्तं, ततो मागधतीर्थकुमारदेवविजयाष्टाहिकामहामहिमानन्तरं चक्ररत्नं कीदृशं क्व च सञ्चचारेत्याह—'तए ण'मित्यादि, ततस्तद्दिव्यं चक्ररत्नं वज्रमयं तुम्बं–अरकनिवेशस्थानं यत्र तत्तथा, लोहिताक्षरत्नमया अरका यत्र तत्तथा, जाम्बूनदं–पीतसुवर्णं तन्मयो नेमिः–धारा यत्र तत्तथा, नानामणिमयं अन्तः क्षुरप्राकारत्वात् क्षुरप्ररूपं स्थालं–अन्तःपरिधिरूपं तेन परिगतं यत्तत्तथा, मणिमुक्ताजालाभ्यां भूषितं, नन्दिः–भम्भामृदङ्गादिर्द्वादशविधसूर्यसमुदायस्तस्य घोषस्तेन सहगतं यत्तत्तथा, सकिङ्किणीकं–क्षुद्रघण्टिकाभिः सहितं, दिव्यमिति विशेषणस्य प्रागुक्तत्वेऽपि प्रशस्ततातिशयख्यानार्थं पुनर्वचनं, तरुणरविमण्डलनिभं नानामणिरत्नघण्टिकाजालेन परिक्षिप्तं–सर्वतो व्याप्तं, 'सव्वोउअ'इत्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् नाम्ना च सुदर्शनं नरपतेः–चक्रिणः प्रथमं–प्रधानं सर्वरत्नेषु तस्य मुख्यत्वाद्वैरिविजये सर्वत्रामोघशक्तिकत्वाच्च चक्ररत्नं, प्रथमशब्दस्य 'पढमे चंदयोगे' इत्यादौ प्रधानार्थकत्वेन प्रयोगदर्शनान्नेदमसङ्गतिभाग् व्याख्यानमिति, मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्यां आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च दक्षिणपश्चिमां दिशं–नैर्ऋतीं विदिशं प्रतीति शेषः, वरदामतीर्थाभिमुखं प्रयातं–चलितं चाप्यभवत्, अयं भावः–शुद्धपूर्वास्थितस्य शुद्धदक्षिणवर्त्तिवरदामतीर्थं व्रजतः आग्नेय्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४५] + गाथा:

दीप अनुक्रम [६२-६७]

विदिशागमने–प्रतीचीदिशागमने वक्रः पन्थाः तेनैवमुक्तं, यच्च ऋषभचरित्रे–"दक्षिणस्यां वरदामतीथ प्रति ययौ ततः । चक्रं तच्चक्रवर्त्ती च, धातुं प्रादिरिवान्वगात् ॥ १ ॥" इत्युक्तं तन्मूलजिगमिषितदिग्विवक्षणात्, यच्चात्र चक्ररत्नस्य पूर्वतः दक्षिणदिशि गमनं तत्सृष्टिक्रमेण दिग्विजयसाधनार्थम् ।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं वरदामतित्थाभिमुहं पयातं चावि पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ० कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! हयगयरह पवर चाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेह आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहत्तिकट्टु मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता तेणेव कमेणं जाव धवलमहामेहणिग्गए जाव सेअवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं २ माइअवरफलयपवरपरिगरखेडयवरवम्मकवयमाढीसहस्सकलिए उक्कडवरमउडतिरीडपडागझयवेजयंतिचामरचलंतछत्तंधयार कलिए असिखेवणिखग्गचावणारायकणयकप्पणिसूललउडभिंडिमालधणुहतोणसरपहरणेहि अ कालणीलरुहिरपीअसुक्किलअणेगचिंधसयसण्णिविट्ठे अप्फोडिअसीहणायछेलिअहयहेसिअहत्थिगुलुगुलाइअअणेगरहसयसहस्सघणघणेंतणीहम्ममाणसद्दसहिएण जमगसमगभंभाहोरंभकिणिंतखरमुहिमुगुंदसंखिअपरिलिवज्जपरिवाइणिवंसवेणुवीपंचिमहतिकच्छभिरिगिसिगिअकलतालकंसतालकरधाणुत्थिदेण महता सद्दसण्णिणादेण सयलमवि जीवलोगं पूरयंते बलवाहणसमुदएणं एवं जक्खसहस्सपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई अमरपतिसण्णिभाइ इड्ढीए पहिअकित्ती गामागरणगरखेडकव्वड तहेव सेसं जाव विजयखंधावारणिवेसं करेइ २ त्ता वद्धइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! मम आवसहं पोसहसालं च करेहि, ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि (सूत्रं ४६)

श्रीजम्बू. ३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चक्ररत्नस्य दिग्विजय-साधनार्थे गमनं वक्तव्यता वर्तते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४६]

दीप अनुक्रम [६८]

'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा तद्दिव्यं चक्ररत्नं दक्षिणपश्चिमां दिशं प्रति वरदामतीर्थाभिमुखं प्रयातं चापि पश्यति, दृष्ट्वा च हट्ठतुट्ठत्ति आलापकादिपदैकदेशग्रहणात् सम्पूर्णालापको ग्राह्यः, स चायं–'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए' इत्यादिकः प्रागुक्त एव, कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीत्, किमवादीदित्याह–'खिप्पामेव'त्ति प्राग्व्याख्यातार्थं, अत्र लाघवार्थमतिदेशवाक्येनाह–'तेणेव कमेण'मित्यादि, तेनैव क्रमेण–पूर्वोक्तस्नानाधिकारसूत्रपरिपाट्या तावद् वाच्यं यावद् 'धवलमहामेहणिग्गए' इत्यादि निगमनसूत्रं, तदनु यावच्छ्वेतवरचामरैरुद्धूयमानैरित्यन्तं राजकुञ्जराधिरोहणसूत्रं वाच्यमिति, अथ यथाभूतो भरतो वरदामतीर्थं प्राप्तो यथा च तत्र स्कन्धावारनिवेशमकरोत्तथाऽऽह, अत्र च सूत्रे वाक्यद्वयं, तत्र चादिवाक्ये तहेव सेसमित्यतिदेशपदेन सूचिते ग्रन्थे 'जेणेव वरदामतित्थे तेणेव उवागच्छइ' इत्यनेनान्वययोजना कार्या, सा चैवम्–स भरतो यत्रैव वरदामतीर्थं तत्रैवोपागच्छतीति, द्वितीयवाक्ये च विजयस्कन्धावारनिवेशं करेइ इत्यनेनेति, किंलक्षण इत्याह—'माइय'त्ति हस्तपाशितं वरफलकं–प्रधानखेटकं यैस्ते तथा प्रवरः परिकरः–प्रगाढगात्रिकाबन्धः खेटकं च येषां ते तथा, फलकं दारुमयं खेटकं च वंशशलाकादिमयमिति न पौनरुक्त्यं, वरवर्म्मकवचमाद्यः–सन्नाहविशेषा येषां ते तथा, एषां च विशेषस्तत्कलाकुशलेभ्यो वेदितव्यः, यथा वर्म्म लोहकुतूहलिकामयं इत्यादि, ततः पदत्रयकर्म्मधारयः, तेषां सहस्रैः–वृन्दवृन्दैः कलितो यः स तथा, राज्ञां हि प्रयाणसमये युद्धाङ्गानां सह सञ्चरणस्यावश्यकत्वात्, उत्कटवराणि–उन्नतप्रवराणि मुकुटानि प्रतीतानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किरीटानि–तान्येव शिखरत्रयोपेतानि पताका–लघुपटरूपा ध्वजा–बृहत्पटरूपा वैजयन्त्यः–पार्श्वतो लघुपताकिकाद्वय-युक्ताः पताका एव, चामराणि चलन्ति छत्राणि तेषां सम्बन्धि यदन्धकारं–छायारूपं तेन कलितः, अत्रान्धकारश-ब्दान्तसमासपदाग्रे आर्षत्वात् तृतीयैकवचनलोपो द्रष्टव्यः कलित इति च पृथगेव तेन वक्ष्यमाणानन्तरसूत्रे कलित-शब्दो योजनीयोऽन्यथा तत्स्थचकारस्य नैरर्थक्यापत्तेः, यद्वा अत्र समस्तोऽपि कलितशब्दश्चकारकरणबलादेव तत्रापि योजनीय इति, प्रस्तुतविशेषणस्यायं भावार्थः–चलतश्चक्रिणो मुकुटादिका तत्सैन्यस्य च छत्रव्यतिरिक्ता सामग्री तथा अस्ति यथाऽध्वनि मनागपि आतपक्लेशो नास्तीति, अत्र भरतसैन्यसम्बद्धा छाया भरतस्य विशेषणत्वेन सम्बद्ध्यते, सैन्यकृतो जयः स्वामिन्येवेति व्यवहारदर्शनात्, पुनर्भरतमेव विशिनष्टि–असयः–खड्गविशेषाः क्षिप्यन्ते सीसकगु-टिका आभिरिति क्षेपिण्यो–हयनालिरिति लोकप्रसिद्धा खड्गाः सामान्यतः चापाः–कोदण्डाः नाराचाः–सर्वलोह-बाणाः कणका–बाणविशेषाः कल्पन्यः–कृपाण्यः शूलानि–प्रतीतानि लकुटाः–प्रतीताः भिन्दिपाला–हस्तक्षेप्याः महा-फला दीर्घा आयुधविशेषाः धनूंषि–वंशमयबाणासनानि किरातजनप्राह्याणि तूणाः–तूणीराः शराः–सामान्यतो बाणाः इत्यादिभिः प्रहरणैः, अत्र चकारेण पूर्वविशेषणद्वयः समस्तोऽसमस्तो वा कलितशब्दो योज्यः, तेन तैः संयुक्त इति, दिग्विजयोद्यतानां राज्ञां हि शस्त्राणि बहूनि भवन्तीति ज्ञापितं, कथमुक्तप्रहरणैः कलित इत्याह—'काले–' त्यादि, अत्र रुधिरशब्दो रक्तार्थः तेन कालनीलरक्तपीतशुक्लानि जातितः पञ्चवर्णानि व्यक्तितस्तु तदवान्तरभेदादने-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करूपाणि यानि चिह्नशतानि तानि सन्निविष्टानि येषु तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणतया बोध्यं, कोऽर्थः ?–राज्ञां हि शस्त्राध्यक्षास्तत्तज्जातीयतत्तद्देशीयशस्त्राणां निर्विलम्बं परिज्ञानाय शस्त्रकोशेषु उक्तरूपाणि चिह्नानि निवेशयन्ति शस्त्रेषु च तत्तद्वर्णमयान् केशान् कुर्वन्तीत्यर्थः, अथ तूर्यसामग्रीकथनद्वारा भरतमेव विशिनष्टि–आस्फोटितं–करास्फोटरूपं सिंहनादः–सिंहस्येव शब्दकरणं 'छेलिअ'त्ति सेंटितं हर्षोत्कर्षेण सीत्कारकरणं हयहेषितं–तुरङ्गमशब्दः हस्तिगुलुगुलायितं–गजगर्जितं अनेकानि यानि रथशतसहस्राणि तेषां 'घणघणेंत'त्ति अनुकरणशब्दस्तथा निहन्यमानानामश्वानां च तोत्रादिजशब्दास्तैः सहितेन तथा यमकसमकं–युगपत् भम्भा–ढक्का होरम्भा–महाढक्का इत्यादि तूर्यपदव्याख्या प्रागुक्तत्रुटिताङ्गकल्पद्रुमाधिकारतो ज्ञेया नवरं कलो–मधुरस्तालो–घनवाद्यविशेषः कंसताला–प्रसिद्धा करध्मानं–परस्परं हस्ततादनं एतेभ्य उत्थितः–उत्पन्नो यस्तेन महता शब्दसन्निनादेन सकलमपि जीवलोकं–ब्रह्माण्डं पूरयन्, बलं–चतुरङ्गसैन्यं वाहनं–शिबिकादि एतयोः क्रमेण समुदयो–वृद्धिर्यस्य स तथा, णमिति वाक्यालङ्कारे, अथवा बलवाहनयोः समुदयेन युक्त इति गम्यं, एवमुक्तेन प्रकारेण भरतचक्रिविशेषणत्वेनेत्यर्थः, मागधतीर्थप्रकरणोक्तानि यक्षसहस्रसम्परिवृतं इत्यादीनि विशेषणानि ग्राह्याणि, तत्र सूत्रे साक्षाल्लिखितानीति, अथ प्रथमवाक्ये अत्र लिखितानि 'तहेवसेस'मित्यतिदेशपदेन सूचितानि च विशेषणानि वाचयितृणां सौकुमार्यायैकीकृत्य लिख्यन्ते, यथा–'जक्खसहस्ससंपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई अमरवई सण्णिभाए इड्ढीए पहिअकित्ती गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४६]

दीप अनुक्रम [६८]

समसंवाहसहस्समंडिअं थिमिअमेइणीअं वसुहं अभिजिणमाणे २ अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे २ तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे २ जोअणंतरिआहिं वसहीहिं वसमाणे २ जेणेव वरदामतित्थे तेणेव उवागच्छइ'त्ति व्याख्या च प्राग्वत्, अथ द्वितीयवाक्येऽपि अत्रोक्तविशेषणसहितो यावत्पदसूचितो ग्रन्थो लिख्यते यथा–'उवागच्छित्ता वरदामतित्थस्स अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारणिवेसं करेइ'त्ति प्राग्वत्, अथ ततः किं चक्रे इत्याह—'करित्ता'इत्यादि, सर्वमुक्तार्थं । अथ राजाऽऽज्ञप्त्यनन्तरं कीदृग् वर्द्धकिरत्नं कीदृशं च वैनयिकमाचचारेत्याह—

तए णं से आसमदोणमुहगामपट्टणपुरवरखंधावारगिहावणविभागकुसले एगासीतिपदेसु सव्वेसु चेव वत्थूसु णेगगुणजाणए पंडिए विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं वत्थुपरिच्छाए णेमिपासेसु भत्तसालासु कोट्टणिसु अ वासघरेसु अ विभागकुसले छेज्जे वेज्जे अ दाणकम्मे पहाणबुद्धी जलयाणं भूमियाण य भायणे जलथलगुहासु जंतेसु परिहासु अ कालनाणे तहेव सद्दे वत्थुप्पएसे पहाणे गब्भिणिकण्णरुक्खवल्लिवेढिअगुणदोसविआणए गुणड्ढे सोलसपासायकरणकुसले चउसट्ठिविकप्पविहियमई णंदावत्ते य वद्धमाणे सोत्थिअरुअग तह सव्वओभद्दसण्णिवेसे अ बहुविसेसे चइंडिअदेवकोट्टदारुगिरिखायवाहणविभागकुसले–इअ तस्स बहुगुणड्ढे थवईरयणे णरिंदचंदस्स । तवसंजमनिद्दिट्ठे किं करवाणीतुवट्ठाई ॥१॥ सो देवकम्मविहिणा खंधावारं णरिंदवयणेणं । आवसहभवणकलिअं करेइ सव्वं मुहुत्तेणं ॥२॥ करेत्ता पवरपोसहघरं करेइ २ त्ता जेणेव भरहे राया जाव एतमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणह, सेसं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ वास्तु-निवेशविधिः वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६८-७२]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥२०७॥

तहेव जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव पालघंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ (सूत्रं ४७)

'तए ण'मित्यादि, ततस्तद्गर्द्धभिरज्ञमहं किं करवाणि आदिशन्तु देवानुप्रिया इतिकर्त्तव्यमित्युदित्वोपतिष्ठते, राजानमिति शेषः, राज्ञ आसन्नमायातीत्यर्थः, इत्यन्वययोजनमग्रेतनपदैः सह कार्यं, कीदृशं तद्गर्द्धभिरज्ञमित्याह— आश्रमादयः प्राग्व्याख्यातार्थाः नवरं स्कन्धावारगृहापणाः प्रतीताः एतेषां विभागे–विभजने उचितस्थाने तदवयव-निवेशने कुशलम्, अथवा–'पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः । श्वपचादयोऽन्त्यजातास्तेष्वेव विवृद्धि-मायान्ति ॥१॥' इत्यादियोग्यायोग्यस्थानविभागज्ञं, एकाशीतिः पदानि–विभागाः प्रतिदैवतं विभक्तव्यवास्तुक्षेत्रखण्डा-नीतियावत् तानि यत्र तानि तथा एवंविधेषु वास्तुषु–गृहभूमिषु सर्वेषु चैव–चतुःषष्टिपदशतपदरूपेषु वास्तुषु, चैवशब्दः समुच्चये, स च वास्त्वन्तरपरिग्रहार्थः, अनेकेषां गुणानामुपलक्षणाद् दोषाणां च ज्ञायकं, पण्डा जाता अस्येति तारकादित्वादिते पण्डितं–सातिशयबुद्धिमत्, अथ यदि वास्तुक्षेत्रस्यैकाशीत्याद्या विभागास्तर्हि तावतां विभागानां विभाजकास्तावत्यो देवता भविष्यन्तीत्याशङ्क्याह–विधिज्ञं–पञ्चचत्वारिंशतो देवतानां उचितस्थाननिवेशनार्चनादिवि-धिज्ञमित्यर्थः । अथ यथा पञ्चचत्वारिंशतोऽपि देवानामेकाशीत्यादिपदवास्तुन्यासस्तथा तच्छिल्पिशास्त्रानुसारेण दर्श्यते, यथा स्थापना—

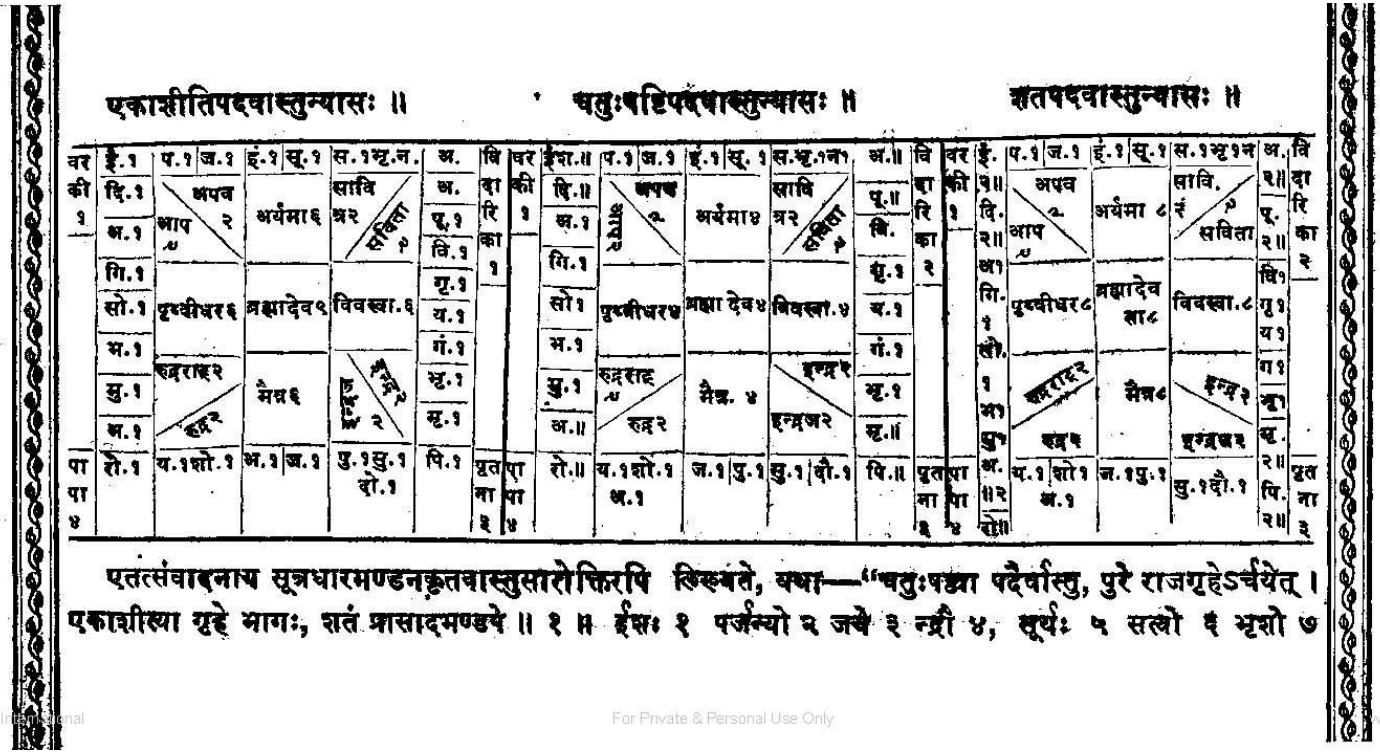
३वक्षस्कारे वास्तुनिवे-शविधिः सू. ४७

॥२०७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६८-७२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:



एकाशीतिपदवास्तुन्यासः ॥ चतुःषष्टिपदवास्तुन्यासः ॥ शतपदवास्तुन्यासः ॥

एतत्संवादनाय सूत्रधारमण्डनकृतवास्तुसारोक्तिरपि लिख्यते, यथा—"चतुःषष्ट्या पदैर्वास्तु, पुरे राजगृहेऽर्चयेत् । एकाशीत्या गृहे भागः, शतं प्रासादमण्डपे ॥ १ ॥ ईशः १ पर्जन्यो २ जये ३ न्द्रौ ४, सूर्यः ५ सत्यो ६ भृशो ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६८-७२]

नभः ८। अग्निः ९ पूषा १० थ वितथो ११, गृहक्षत १२ यमौ १३ ततः ॥ २ ॥ गन्धर्वो १४ भृङ्गराज १५ श्च, मृगः १६ पितृगण १७ स्तथा। दौवारिकोऽथ १८ सुग्रीव १९ पुष्पदन्तौ २० जलाधिपः २१ ॥ ३ ॥ असुरः २२ शोष २३ यक्ष्माणौ २४, रोगो २५ऽहि २६ र्मुख्य २७ एव च। भल्लाट २८ सोम २९ गिरय ३० स्तथा बाह्येऽदिति-३१ र्दितिः ३२ ॥ ४ ॥ आपो ३३ ऽपवत्सा ३४ वीशेऽन्तः, सावित्रः ३५ सविता ३६ ऽग्निगौ। इन्द्र ३७ इन्द्रजयो-३८ ऽन्यस्मिन्, वायौ रुद्र ३९ श्च रुद्रराट् ४० ॥ ५ ॥ मध्ये ब्रह्मा ४१ ऽस्य चत्वारो, देवाः प्राच्यादिदिग्गताः। अर्यमाख्यो ४२ विवस्वां ४३ श्च, मैत्रः ४४ पृथ्वीधरः ४५ क्रमात् ॥ ६ ॥ ईशकोणादितो बाह्ये, वरकी १ च विदा-रिका २। पूतना ३ पापा ४ राक्षस्यो, हेतुकाद्याश्च निष्पदाः ॥ ७ ॥ चतुःषष्टिपदैर्वास्तु, मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः। अर्य-माद्याश्चतुर्भागा, द्वित्र्यंशा मध्यकोणगाः ॥ ८ ॥ बहिः कोणेष्वर्द्धभागाः, शेषा एकपदाः सुराः। एकाशीतिपदे ब्रह्मा, नवार्याद्यास्तु षट्पदाः ॥ ९ ॥ द्विपदा मध्यकोणेऽष्टौ, बाह्ये द्वात्रिंशदेकशः। शते ब्रह्माष्टसङ्ख्यांशो, बाह्यकोणेषु सार्द्धगौ ॥ १० ॥ अर्यमाद्यास्तु वस्वंशाः, शेषाः स्युः पूर्ववास्तुवत्। हेमरत्नाक्षताद्यैस्तु, वास्तुक्षेत्राकृतिं लिखेत् ॥११॥ अभ्यर्च्य पुष्पगन्धाढ्यैर्बलिदध्याज्यमोदनम्। दद्यात् सुरेभ्यः सोङ्कारैर्नमोऽन्तैर्नामभिः पृथक् ॥ १२ ॥ वास्त्वारंभे प्रवेशे वा, श्रेयसे वास्तुपूजनम्। अकृते स्वामिनाशः स्यात्, तस्मात्पूज्यो हितार्थिभिः ॥ १३ ॥" अत्र च वराहमिहिरोक्त एका-शीतिपदस्य स्थापनाविधिरयं–"एकाशीतिविभागे दश २ पूर्वोत्तरायता रेखाः। अंतस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोष्ठस्थाः

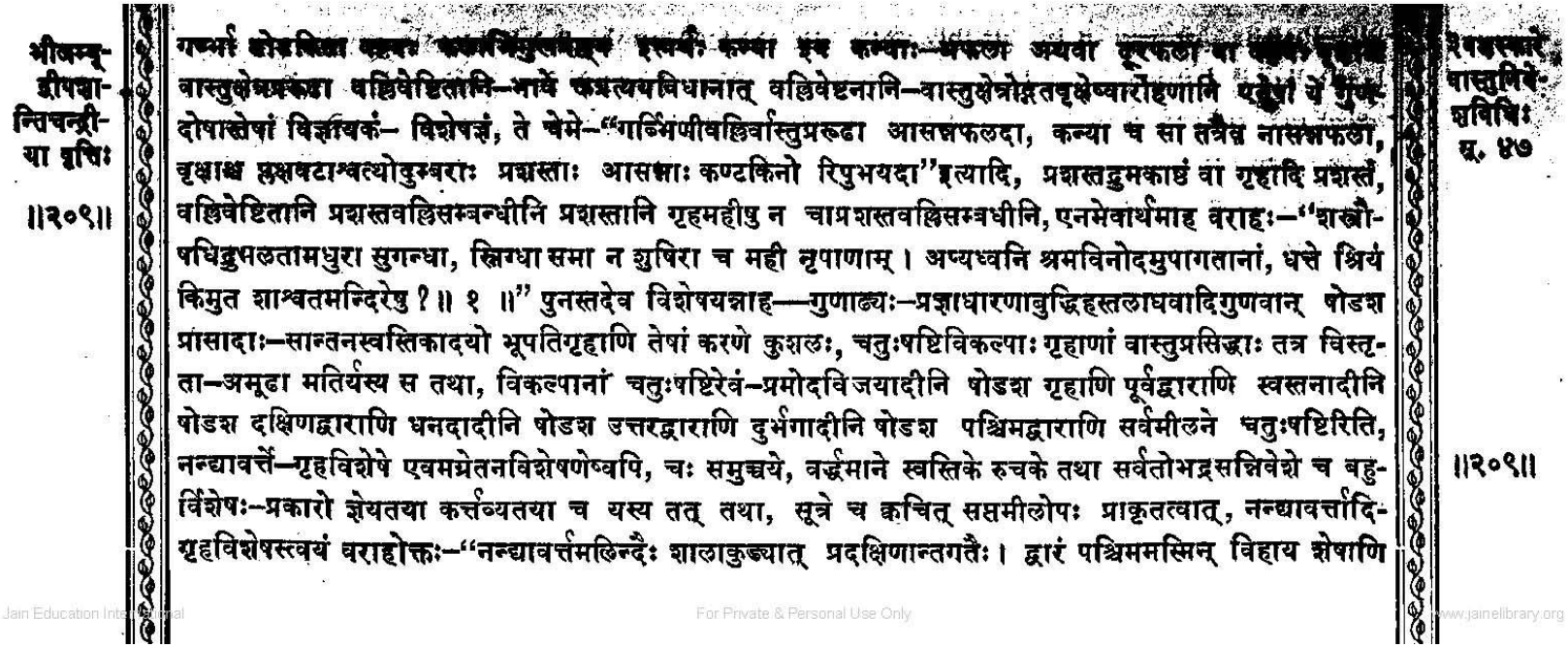
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ १ ॥" इति । अथ प्रकृतं प्रस्तूयते—'वत्थुपरिच्छाए'त्ति, अत्र चशब्दोऽध्याहार्यस्तेन वास्तुपरीक्षायां च विधिज्ञमिति योज्यं, "गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् । यद्यूनमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं चेत् ॥१॥" इत्यादि, अथवा वास्तूनां परिच्छदे–आच्छादनं–कटकम्बादिभिरावरणं तत्र विधिज्ञं यथार्हकटकम्बादिविनियोजनात् ,तथा नेमिपार्श्वेषु–सम्प्रदायगम्येषु भक्तशालासु–रसवतीशालासु कोट्टनीषु–कोट्टं–दुर्गं स्थायिराजसत्कं नयन्ति–प्रापयन्ति यायिराज्ञामिति व्युत्पत्त्या कोट्टन्यः–याः कोट्टग्रहणाय प्रतिकोट्टभित्तय उत्थाप्यन्ते तासु, चशब्दः समुच्चये, तथा वासगृहेषु–शयनगृहेषु विभागकुशलं–यथौचित्येन विभाजकं, चः समुच्चये, तथा छेद्यं–छेदनार्हं काष्ठादि वेध्यं–वेधनार्हं तदेव चः समुच्चये दानकर्म–अङ्कनार्थं गिरिकरक्तसूत्रेण रेखादानं तत्र प्रधानबुद्धिः, तथा जलगानां–जलगतानां भूमिकानां जलोत्तरणार्थकपद्याकरणाय भाजनं–यथौचित्येन विभाजकं, चः समुच्चये, उन्मग्गानिमग्गानद्याद्युत्तरे तस्यैतादृशसामर्थ्यस्य सुप्रतीतत्वात्, जलस्थलयोः सम्बन्धिनीषु गुहास्विव गुहासु सुरङ्गास्वित्यर्थः तथा यन्त्रेषु–घटीयन्त्रादिषु परिखासु–प्रतीतासु, चः पूर्ववत् कालज्ञाने–चिकीर्षितवास्तुप्रशस्ताप्रशस्तलक्षणपरिज्ञाने, "वैशाखे श्रावणे मार्गे, फाल्गुने क्रियते गृहम् । शेषमासेषु न पुनः, पौषो वाराहसम्मतः ॥ १ ॥" इत्यादिके, तथैवेति वाच्यान्तरसंग्रहे शब्दे–शब्दशास्त्रे सर्वकलाव्युत्पत्तेरेतन्मूलकत्वात् वास्तुप्रदेशे–गृहक्षेत्रैकदेशे "ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम् । नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ॥ १ ॥" इत्यादिगृहावयवविभागे शास्त्रोक्तविधिविधाने प्रधानं–मुख्यं गर्भिण्यो–जात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६८-७२]



भीजम्बू-द्वीपप्रज्ञप्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२०९॥

गर्भाः शोभनिका वाच्याः कथमित्याह-सुलक्षणैः कन्या इव कन्याः-सफलाः अथवा तूफलो वा वृक्षः [illegible] वास्तुक्षेत्रप्रकटा वल्लिवेष्टितानि-भावे क्तप्रत्ययविधानात् वल्लिवेष्टनानि-वास्तुक्षेत्रोद्गतवृक्षेष्वारोहणानि एतेषां ये गुण-दोषास्तेषां विज्ञायकं- विशेषज्ञं, ते चेमे-"गर्भिणीवल्लिर्वास्तुप्ररूढा आसन्नफलदा, कन्या च सा तत्रैव नासन्नफला, वृक्षाश्च प्लक्षवटाश्वत्थोदुम्बराः प्रशस्ताः आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदा" इत्यादि, प्रशस्तद्रुमकाष्ठं वा गृहादि प्रशस्तं, वल्लिवेष्टितानि प्रशस्तवल्लिसम्बन्धीनि प्रशस्तानि गृहमहीषु न चाप्रशस्तवल्लिसम्बधीनि, एनमेवार्थमाह वराहः-"शस्यौ-षधिद्रुमलतामधुरा सुगन्धा, स्निग्धा समा न शुषिरा च मही नृपाणाम् । अभ्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां, धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ? ॥ १ ॥" पुनस्तदेव विशेषयन्नाह-गुणाढ्यः-प्रज्ञाधारणाबुद्धिहस्तलाघवादिगुणवान् षोडश प्रासादाः-सान्तनस्वस्तिकादयो भूपतिगृहाणि तेषां करणे कुशलः, चतुःषष्टिविकल्पाः गृहाणां वास्तुप्रसिद्धाः तत्र विस्तृ-ता-अमूढा मतिर्यस्य स तथा, विकल्पानां चतुःषष्टिरेवं-प्रमोदविजयादीनि षोडश गृहाणि पूर्वद्वाराणि स्वस्तनादीनि षोडश दक्षिणद्वाराणि धनदादीनि षोडश उत्तरद्वाराणि दुर्भगादीनि षोडश पश्चिमद्वाराणि सर्वमीलने चतुःषष्टिरिति, नन्द्यावर्त्ते-गृहविशेषे एवमग्रेतनविशेषणेष्वपि, चः समुच्चये, वर्द्धमाने स्वस्तिके रुचके तथा सर्वतोभद्रसन्निवेशे च बहु-र्विशेषः-प्रकारो ज्ञेयतया कर्त्तव्यतया च यस्य तत् तथा, सूत्रे च क्वचित् सप्तमीलोपः प्राकृतत्वात्, नन्द्यावर्त्तादि-गृहविशेषस्त्वयं वराहोक्तः-"नन्द्यावर्त्तमलिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः । द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि

वक्षस्कारे वास्तुनिवेशविधिः सू. ४७

॥२०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७] + गाथा: दीप अनुक्रम [६८-७२]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

कार्याणि ॥ १ ॥ द्वारालिंदोऽन्तगतः प्रदक्षिणोऽन्यः शुभस्ततश्चान्यः । तद्वच्च वर्द्धमाने द्वारं तु न दक्षिणं कार्यम् ॥२॥ अपरान्तगतोऽलिन्दः प्रागन्तगतौ तदुत्थितौ चान्यौ । तदवधिविधृतश्चान्यः प्राग्द्वारं स्वस्तिकं शुभदम् ॥ ३ ॥ अप्रतिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्रम् । नृपविबुधसमूहानां कार्यं द्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ ४ ॥" पुनस्तदेव विशिनष्टि–ऊर्ध्वं दण्डे भव उद्दण्डिकः, भवार्थे इकः, अर्थात् ध्वजः, देवाः–इन्द्रादिप्रतिमाः कोष्ठः–उपरितनगृहं धान्यकोष्ठो वा दारूणि–वास्तूचितकाष्ठानि गिरयो–दुर्गादिकरणार्थं जनावासयोग्याः पर्वताः खातानि–पुष्करिण्यादिकानि वाहनानि–शिविकादीनि एतेषां विभागे कुशलं, ध्वजविभागस्त्वेवं–"दण्डः प्रकाशे प्रासादे, प्रासादकरसङ्ख्यया। सान्धकारे पुनः कार्यो, मध्यप्रासादमानतः ॥ १ ॥" शेषं तत्तद्ग्रन्थेभ्योऽवसेयं, इत्युक्तप्रकारेण बहुगुणाढ्यं तस्य नरेन्द्रचन्द्रस्य–भरतचक्रिणः स्थपतिरत्नं–वर्द्धकिरत्नं तपःसंयमाभ्यां करणभूताभ्यां निर्विष्टं–लब्धमिति, किं करवाणीत्यादि तु प्राग्योजितमेव, अथोपस्थितः सन् वर्द्धकिर्यदकरोत्तदाह—'सो देव'इत्यादि, स–वर्द्धकिः देवकर्मविधिना–देवकृत्यप्रकारेण चिन्तितमात्रकार्यकरणरूपेणेत्यर्थः स्कन्धावारं नरेन्द्रवचनेन आवासा–राज्ञां गृहाणि भवनानीतरेषां तैः कलितं करोति सर्वं मुहूर्त्तेन निर्विलम्बमित्यर्थः, कृत्वा च प्रवरपौषधगृहं करोति, कृत्वा च भरतो राजा यावत्पदात् 'तेणेव उवागच्छइ २ त्ता' इति ग्राह्यम्, एतामाज्ञप्तिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयति, 'सेसं तहेवे'त्यादि सर्वं प्राग्वत् ।

उवागच्छित्ता तते णं तं धरणितलगमणलहुं ततो बहुलक्खणपसत्थं हिमवंतकंदरंतरणिवायसंवड्ढिअचित्ततिणिसदलिअं जंबू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ चतुर्घन्टा अश्वरथस्य वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

णयसुकयकूवरं कणयदंडियारं पुलयवरिंदणीलसासगपवालफलिहवररयणलेट्ठुमणिविद्दुमविभूसिअं अडयालीसारइयतवणिज्जपट्टसंग-हिअजुत्ततुंबं पघसिअपसिअनिम्मिअनवपट्टपुट्ठपरिणिट्ठिअं विसिट्ठलट्ठणवलोहबद्धकम्मं हरिपहरणरयणसरिसचक्कं कक्केयणइंदणी-लसासगसुसमाहिअबद्धजालकडगं पसत्थविच्छिण्णसमधुरं पुरवरं च गुत्तं सुकिरणतवणिज्जजुत्तकलिअं कंकटयणिजुत्तकप्पणं पहरणाणुजायं खेडगकणगधणुमंडलग्गवरसत्तिकोंततोमरसरसयवत्तीसतोणपरिमंडिअं कणगरयणचित्तं जुत्तं हलीमुहबलागगथदंत-चंदमोत्तिअतणसोलिअकुंदकुडयवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहारकासप्पगासधवलेहिं अमरमणपवणजइणचवलसिग्घगामीहिं चउहिं चामराकणगविभूसिअंगेहिं तुरगेहिं सच्छत्तं सज्झयं सघंटं सपडागं सुकयसंधिकम्मं सुसमाहिअसमरकणगगंभीरतुलघोसं वरकुप्परं सुचक्कं वरनेमीमंडलं वरधारातोंडं वरवइरबद्धतुंबं वरकंचणभूसिअं वरायरिअणिम्मिअं वरतुरगसंपउत्तं वरसारहिसुसंपग्गहिअं वरपुरिसे वरमहारहं दुरूढे आरूढे पवररयणपरिमंडिअं कणयखिंखिणीजालसोभिअं अउज्झं सोआमणिकणगतविअपंकयजासुअण-जलणजलिअसुअतोंडरागं गुंजद्धबंधुजीवगरत्तहिंगुलगणिगरसिंदूररुइलकुंकुमपारेवयचलणणयणकोइलदसणावरणरइतातिरेगरत्तासो-गकणगकेसुअगयतालुसुरिंदगोवगसमप्पभप्पगासं बिंबफलसिलप्पवालउट्ठितसूरसरिसं सव्वोउअसुरहिकुसुमआसत्तमल्लदामं ऊसिअसेअ-ज्झयं महामेहरसिअगंभीरणिद्धघोसं सत्तुहिअयकंपणं पभाए अ सस्सिरीअं णामेणं पुहविविजयलंभंति विस्सुतं लोगविस्सुतज-सोऽहयं चाउग्घंटं आसरहं पोसहिए णरवई दुरूढे, तए णं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सेसं तहेव दाहि-णाभिमुहे वरदामतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहइ जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला जाव पीइदाणं से, णवरिं चूडामणिं च दिव्वं उर-त्थगेविज्जगं सोणिअसुत्तगं कडगाणि अ तुडिआणि अ जाव दाहिणिल्ले अंतवाले जाव अट्ठाहिअं महामहिमं करेति २ त्ता एअमाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४९]

दीप अनुक्रम [७३]

त्तिअं पच्चप्पिणति, तए णं से दिवे चक्करयणे वरदामतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए निवत्ताए समाणीए आउह-घरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जाव पूरंते चेव अंबरतलं उत्तरपच्चत्थिमं दिसिं पभासतित्थाभिमुहे पयाते यावि होत्था, तए णं से भरहे राया तं दिवं चक्करयणं जाव उत्तरपच्चत्थिमं दिसिं तहेव जाव पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पभा-सतित्थेणं लवणसमुद्दं ओगाहेइ २ त्ता जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला जाव पीढदाणं से णवरं मालं मउडिं मुत्तजालं हेमजालं कडगाणि अ तुडिआणि अ आभरणाणि अ सरं च णामाहयंकं पभासतित्थोदगं च गिण्हइ २ त्ता जाव पच्चत्थिमेणं पभासतित्थ-मेराए अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासी जाव पच्चत्थिमिल्ले अंतवाले, सेसं तहेव जाव अट्ठाहिआ निवत्ता। (सूत्रं ४९)★

'उवागच्छित्ता तते ण'मित्यादि, उपागत्य च णमिति प्राग्वत् तं प्रसिद्धं वरपुरुषो–भरतचक्री वरमहारथं आरूढ इति सम्बन्धः, कीदृशमित्याह–धरणितलगमने लघुं–शीघ्रं शीघ्रगामिनमित्यर्थः, कीदृशो वरपुरुष इत्याह–ततः–सर्वत्र जयसम्भावनाजनितप्रमोदरसपुलकिततया विस्तीर्णः प्रफुल्लहृदय इत्यर्थः, अथ पुना रथं विशिनष्टि–बहुलक्षणप्रशस्तं हिमवतः–क्षुद्रहिमवद्गिरेः निर्वातानि–वातरहितानि यानि कन्दरान्तराणि–दरीमध्यानि तत्र संवर्द्धितात्रिचा–विवि-धास्तिनिशा–रथद्रुमास्त एव दलिकानि–दारूणि यस्य तं, सूत्रे च पदव्यत्ययः आर्षत्वात्, जाम्बूनदसुवर्णमयं सुकृतं–सुघटितं कूबरं–युगन्धरं यत्र तं, कनकदण्डिकाः–कनकमयलघुदण्डरूपाः अरा यत्र तं, पुलकानि वरेन्द्रनीलानि सास-कानि एकजिशेषाः प्रवालानि स्फटिकवररत्नानि च प्रतीतानि लेष्टवो–विजातिरत्नानि मणयः–चन्द्रकान्ताद्याः विद्रुमः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

★ अत्र मूल संपादने सूत्रक्रमांकने एका स्खलना दृश्यते – सू० ४८ स्थाने मुद्रणशुद्धि-स्खलनत्वात् 'सू० ४९' इति मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [४९]

दीप अनुक्रम [७३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२११॥

प्रवालविशेषः अनयोश्च वर्णादितारतम्यकृतो विशेषो बोध्यः तैर्विभूषितं, रचिताः प्रतिदिशं द्वादश २ सद्भावात् अष्टाचत्वारिंशदरा यत्र ते तथा, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, तपनीयपट्टै–रक्तस्वर्णमयपट्टकैर्लोके महल्लू इति प्रसिद्धैः संगृहीते–दृढीकृते तथा युक्ते–उचिते नातिलघुनी नातिमहती इत्यर्थः ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः एतादृशे तुम्बे यस्य स तथा तं, प्रघर्षिताः–प्रकर्षेण घृष्टाः प्रसिताः–प्रकर्षेण बद्धाः ईदृशा निर्मिता–निवेशिताः नवाः–अजीर्णाः पट्टाः–पट्टिका यत्र तत्तथाविधं यत्पृष्ठं–चक्रपरिधिरूपं यल्लोके पूंठी इति प्रसिद्धं तत्परिनिष्ठितं–सुनिष्पन्नं कार्यनिर्वाहकत्वेन यस्य स तं, अत्र पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, विशिष्टलष्टे–अतिमनोज्ञे नवे–सद्यस्के लोहवर्ध्रे–अयश्चर्मरज्जुके तयोः कर्म–कार्यं यत्र स तं, अयमर्थः–तत्र रथे येऽवयवास्ते लोहवर्ध्राभ्यां बद्धा इति, हरिः–वासुदेवस्तस्य प्रहरणरत्नं–चक्रं 'चक्कमुसलजोही'ति वचनात् तत्सदृशे चक्रे यस्य स तं, कर्केतनेन्द्रनीलशस्यकरूपरत्नत्रयमयं सुष्ठु–सम्यग् आहितं–निवेशितं कृतसुन्दरसंस्थानमित्यर्थः ईदृशं बद्धं जालकटकं–जालकसमूहो यत्र स तथा तं, अयं भावः–रथगुप्तौ जालकपदवाच्या सच्छिद्ररचनाविशिष्टा अवयवविशेषा बहवस्तत्र शोभां जनयन्तीति, तथा प्रशस्ता विस्तीर्णा समा–अवक्रा धूर्यत्र स तं, पुरमिव गुप्तं समन्ततः कृतवरूथं, रथे हि प्रायः सर्वतो लोहादिमयी आवृतिर्भवति, पुरवरदृष्टान्तकथनेनायमर्थः सम्पन्नः–यथा पुरं गोपुरभागपरित्यागेन समन्ततो वप्रगुप्तं भवति तथाऽयमप्यारोहस्थानसारथिस्थाने विहाय गुप्त इति, सुकिरणं–शोभमानकान्तिकं यत्तपनीयं–रक्तं सुवर्णं तन्मयं योक्त्रं तेन कलितं, योक्त्रेण हि वोढृस्कन्धे युगं

३वक्षस्कारे प्रभासतीर्थ साधनं सू. ४९

॥२११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल संपादने सूत्रक्रमांकने एका स्खलना दृश्यते – सू० ४८ स्थाने मुद्रणशुद्धि-स्खलनत्वात् 'सू० ४९' इति मुद्रितं

बद्ध्यत इति, अत्र च एतत्सूत्रादर्शेषु 'तवणिज्जजालकलिअ'मिति पाठोऽशुद्ध एव सम्भाव्यते, आवश्यकचूर्णौ अस्यैव पाठस्य दर्शनात्, कंकटकाः–सन्नाहास्तेषां नियुक्ता–स्थापिता कल्पना–रचना यत्र स तथा तं, यथाशोभं तत्र सन्नाहाः स्थापिताः सन्तीति भावः, तथा प्रहरणैरनुयातं–भृतमित्यर्थः, एतदेव व्यक्तित आह–खेटकानि प्रतीतानि कणका–बाणविशेषाः धनूंषि मण्डलाग्राः–तरवारयः वरशक्तयः–त्रिशूलानि कुन्ता–भल्लाः तोमराश्च–बाणविशेषाः शराणां शतानि येषु तादृशा ये द्वात्रिंशत्तूणा–भस्त्रकास्तैः परिमण्डितं–समन्ततः शोभितं कनकरत्नचित्रं, तथा युक्तं तुरगैरित्यनेन सम्बद्ध्यते, किंविशिष्टैरित्याह–हलीमुखं रूढिगम्यमिति बलाको–बकः गजदन्तचन्द्रौ प्रतीतौ मौक्तिकं–मुक्ताफलं तणसोल्लिअत्ति–मल्लिकापुष्पं कुन्दं–श्वेतः पुष्पविशेषः कुटजपुष्पाणि–वरसिन्दुवाराणि निर्गुण्डीपुष्पाणि कन्दलानि–कन्दलवृक्षविशेषपुष्पाणि वरफेननिकरो हारो–मुक्ताकलापः काशाः–तृणविशेषास्तेषां प्रकाशः–औज्ज्वल्यं तद्वद्धवलैः अमरा–देवा मनांसि–चित्तानि पवनो–वायुस्तान् वेगेन जयतीति अमरमनःपवनजयिनः, अत एव च–पलशीघ्रं–अतिशीघ्रं गामिनो–गमनशीलाः, ततः पदद्वयकर्मधारयः, तैश्चतुर्भिः–चतुःसङ्ख्यकैः तथा चामरैः कनकैश्च भूषितमङ्गं येषां ते तथा तैः, चामरस्य स्त्रीत्वं आर्षत्वात्, अथ पुना रथं विशिनष्टि–सच्छत्रं सध्वजं सघण्टं सपताकमिति प्राग्वत्, सुकृतं–सुष्ठु निर्मितं सन्धिकर्म्म–सन्धियोजनं यत्र स तं, सुसमाहितः–सम्यग्यथोचितस्थाननिवेशितो यः समरकणकः–संग्रामवाद्यविशेषस्तस्य वीराणां वीररसोत्पादकत्वेन तुल्यो गम्भीरो घोषः–चीत्काररूपो ध्वनिर्यस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स तं, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, वरे कूर्परे पिञ्जनके इति प्रसिद्धे यस्य स तं, सुचक्रं वरनेमीमण्डलं–प्रधानचक्रधारावृतं वरे–शोभमाने धूस्तुंडे–धूम्रौकूबरे यस्य स तं, वरवज्रैर्बद्धे तुंबे यस्य स तं, वरकाञ्चनभूषितं, वराचार्यः–प्रधानशिल्पी तेन निर्मितं वरतुरगैः सम्प्रयुक्तं वरसारथिना सुष्ठु संगृहीतं स्वायत्तीकृतमिति, इह च चक्रादीनां पुनर्वचनं रथावयवेषु प्रधानताख्यापनार्थं, 'वरपुरिसे'इत्यादि तु पूर्वं योजितं, 'दुरूढे आरूढे' इत्यत्र समानार्थकं पदद्वयोपादानं सुखारूढताज्ञापनार्थं, अथवा दुरूढे इत्यस्य सौत्रशब्दस्य विवरणरूपोऽयमारूढशब्द इति, अथार्थान्तरारम्भार्थं पुनरुक्तिर्न दोषायेति उक्तमेवार्थं नामप्रकटनाय रथस्यारोहकालप्रकटनाय चाह–'पवररयणपरिमंडिअ'मित्यादि, प्रवररत्नपरिमण्डितं कनककिङ्किणीजालशोभितं, अयोध्यमनभिभवनीयमित्यर्थः, सौदामिनी–विद्युत्, तप्तं यत्कनकं तच्चानलोत्तीर्णं रक्तवर्णं भवतीति तप्तशब्देन विशेषितं पङ्कजं–कमलं तच्च सामान्यतो रक्तं वर्ण्यते 'जासुअण'त्ति जपाकुसुमं ज्वलितज्वलनो–दीप्ताग्निः अत्र पदविपर्यासः प्राकृतशैलीभवः शुकस्य तुण्डं–मुखं एतेषामिव रागो–रक्तता यस्य स तं, गुञ्जार्द्धं–रक्तिकारागभागः बन्धुजीवकं–द्विप्रहरविकाशिपुष्पं रक्तः–संमर्दितो हिंगुलकनिकरः सिन्दूरं–प्रतीतं रुचिरं कुङ्कुमं–जात्यघुसृणं पारापतचलनः प्रतीतः कोकिलनयने पदव्यत्ययः आर्षत्वात् दृशनावरणं–अधरोष्ठं तच्च सामुद्रिकेऽत्यरुणं व्यावर्ण्यते इति रतिदो–मनोहरोऽतिरक्तः–अधिकारुणोऽशोकतरुः ईदृशं च कनकं किंशुकं–पलाशपुष्पं तथा गजतालु सुरेन्द्रगोपको–वर्षासु रक्तवर्णः शुभ्रजन्तुविशेष एभिः समा–सदृशा प्रभा–छविर्यस्य तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल संपादने सूत्रक्रमांकने एका स्खलना दृश्यते – सू० ४८ स्थाने मुद्रणशुद्धि-स्खलनत्वात् 'सू० ४९' इति मुद्रितं

एवंविधः प्रकाशः—तेजःप्रसरो यस्य स तं, बिम्बफलं—गोलकं 'सिलप्पवालं'ति अत्र अश्लीलशब्द इव श्रियं लातीति ऋफिडादित्वाल्लत्वे श्लीलं एवंविधं यत्प्रवालं श्लीलप्रवालं—परिकर्मितविद्रुमः शिलाप्रवालं वा विद्रुमः उत्तिष्ठत्सूरः—उद्गच्छत्सूर्यस्तेषां सदृशं सर्वर्तुकानि—षड्ऋतुभवानि सुरभीणि कुसुमानि—अग्रथितपुष्पाणि माल्यदामानि च—ग्रथितपुष्पाणि यत्र स तं, उच्छ्रितः—ऊर्ध्वीकृतः श्वेतध्वजो यत्र स तं, महामेघस्य यद्गर्जितं तद्वद् गम्भीरः स्निग्धो घोषो यस्य स तं, शत्रुहृदयकम्पनं, प्रभाते च—अष्टमतपःपारणकदिनमुखे चतुर्घण्टमश्वरथं पौषधिकः—आसन्नपारितपौषधव्रतो नरपतिरारूढ इति सम्बन्धः,सश्रीकं नाम्ना पृथ्वीविजयलाभमिति विश्रुतं,अत्रारूढः पुरुषो भूविजयं लभते इति सान्वर्थनामकमित्यर्थः, कीदृशो नरपतिरित्याह—लोकविश्रुतयशाः,अहतं—क्वचिदप्यवयवेऽखण्डितं सर्वत्रास्खलितप्रचारं वा रथमित्यर्थः। रथारोहानन्तरं भरतः किं चक्रे इत्याह—'तए ण'मित्यादि,ततः स भरतो राजा चतुर्घण्टमश्वरथमारूढः सन् शेषं तथैवेति,किंयत्पर्यन्तमित्याह—'जाव दाहिणाभिमुहे' इत्यादि, शेषं सूत्रं मागधतीर्थगमानुसारेण ज्ञेयं, अथोक्तं यावद्दक्षिणाभिमुखो वरदामतीर्थेन वरदामनाम्नाऽवतरणमार्गेण लवणसमुद्रमवगाहते, 'सेसं तहेव'त्ति वचनात् 'हयगयरहपवरजोहकलिआए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते चक्करयणदेसिअमग्गो अणेगरायवरसहस्साणुआयमग्गे महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभिअमहासमुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २' इत्यन्तं सूत्रं दृश्यं, किंयद्दूरं लवणसमुद्रमवगाहते इत्याह—यावत्तस्य रथवरस्य कूर्परावाद्यौ भवतः, अत्र यावच्छब्दो न संग्राह्यपदसंग्राहकः किन्तु जलावगाहप्रमाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूचनार्थः, 'जाव पीइदाणं'ति, अत्रापि मागधदेवसाधनाधिकारोक्तं सूत्रं तावद्वक्तव्यं यावत्प्रीतिदान, 'से' तस्य तीर्थाधिपसुरस्य प्रीतिदानशब्देनोपचारात् प्रीतिदानार्थकविवक्षितचूडामण्यादि वस्तूच्यते, अत्र तु 'जाव दाहिणिल्ले अंतवाले'इति सूत्रस्याग्रतो न्यासान्यथानुपपत्त्या तस्य ग्रहणं ज्ञेयं, न तु दानं, तस्य 'जाव अट्ठाहिअं महामहिमं करेंति'त्ति सूत्रस्थयावच्छब्देन गृहीतत्वात्, तेनायमर्थः–प्रीतिदाननिमित्तकचूडामण्यादिवस्तुग्रहणप्रतिपादकसूत्रं यावद्वक्तव्यमिति, तत्रायं पिण्डार्थः–तुरगनिग्रहणरथस्थापनधनुःपरामर्शशरमोक्षकोपोत्पादकोपापनोदनिजर्द्धिसारसंप्रेक्षणप्रीतिदानसूत्राणि मागधतीर्थसूत्राधिकारवद् ज्ञेयानीति, नवरमयं विशेषः प्रीतिदाने चूडामणिं च दिव्यं–मनोहरं सर्वविषापहारि शिरोभूषणविशेषं उरस्थः–वक्षोभूषणविशेषं ग्रैवेयकं–ग्रीवाभरणं श्रोणिसूत्रकं–कटिमेखलां कटकानि–च त्रुटिकानि च, कियद्दूरं वक्तव्यमित्याह—'यावद्दाहिणिल्ले अंतवाले' इति यावद्दाक्षिणात्योऽहमन्तपाल इति, प्रीतिवाक्यप्राभृतोपढौकनभरतकृततत्स्वीकरणदेवसन्माननविसर्जनरथपरावृत्तिस्कन्धावारप्रत्यागमनमज्जनगृहगमनस्नानभोजनकरणश्रेणिप्रश्रेणिशब्दनादिप्रतिपादकंसूत्रं वक्तव्यम्, किमन्तमित्याह–'अट्ठाहिअं महामहिमं करेंति' अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणयोऽष्टाहिकां महामहिमां प्रकुर्वन्ति, एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्प्पयन्तीति। अथ प्रभासतीर्थाधिपसाधनायोपक्रमते–'तए ण'मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं उत्तरपश्चिमां–वायवीं दिशं शुद्धदक्षिणवर्त्तिनो वरदामतीर्थतः शुद्धपश्चिमावर्त्तिनि प्रभासे गमनाय इत्थमेव पथः सरलत्वात्, अन्यथा वरदामतः पश्चिमागमने अनुवारिधिवेलं गमनेन प्रभासतीर्थप्राप्तिर्दूरेण स्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल संपादने सूत्रक्रमांकने एका स्खलना दृश्यते – सू० ४८ स्थाने मुद्रणशुद्धि-स्खलनत्वात् 'सू० ४९' इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [४९]

दीप अनुक्रम [७३]

दिति, प्रभासनामतीर्थं यत्र सिन्धुनदी समुद्रं प्रविशति, अथ तादृक् चक्ररत्नं दृष्ट्वा यन्नृपश्चक्रे तदाह–'तए ण'मित्यादि, सर्वं पूर्ववत्, परं प्रीतिदाने विशेषः, तमेव च सूत्रे दर्शयति–'णवरि'त्ति नवरं मालां–रत्नमालां मौलिं–मुकुटं मुक्ताजालं–दिव्यमौक्तिकराशिं हेमजालं–कनकराशिमिति, 'सेसं तहेव'त्ति शेषं–उक्तातिरिक्तं प्रीतिदानोपढौकनस्वीकरणसुरसन्माननविसर्जनादि तथैव–मागधसुराधिकार इव वक्तव्यं, आवश्यकचूर्णौ तु वरदामप्रभाससुरयोः प्रीतिदानं व्यत्यासेनोक्तमिति। अथ सिन्धुदेवीसाधनाधिकारमाह—

तए णं से दिवे चक्करयणे पभासतित्थकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जाव पूरेते चेव अंबरतलं सिंधूए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरच्छिमं दिसिं सिंधुदेवीभवणाभिमुहे पयाते आवि होत्था। तए णं से भरहे राया तं दिवं चक्करयणं सिंधूए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं सिंधुदेवीभवणाभिमुहं पयातं पासइ२त्ता हट्ठतुट्ठचित्त तहेव जाव जेणेव सिंधूए देवीए भवणं तेणेव उवागच्छइ२त्ता सिंधूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोयणविच्छिण्णं वरणगरसारिच्छं विजयखंधावारणिवेसं करेइ जाव सिंधुदेवीए अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव दब्भसंथारोवगए अट्ठमभत्तिए सिंधुदेविं मणसि करेमाणे चिट्ठइ। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सिंधूए देवीए आसणं चलइ, तए णं सा सिंधुदेवी आसणं चलिअं पासइ २ त्ता ओहिं पउंजइ२ त्ता भरहं रायं ओहिणा आभोएइ २ त्ता इमे एआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–उप्पण्णे खलु भो जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी, तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं सिंधूणं देवीणं भरहाणं राईणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सिन्धुदेवी साधना-अधिकारः वर्तते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५०]

दीप अनुक्रम [७४]

उवत्थाणिअं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणिअं करेमित्ति कट्टु कुंभट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताणि अ दुवे कणगभद्दासणाणि य कडगाणि अ तुडिआणि अ जाव आभरणाणि अ गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव एवं वयासी–अभिजिए णं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासिणी अहण्णं देवाणुप्पिआणं आणत्तिकिंकरी तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ ! मम इमं इमं एआरूवं पीइदाणंतिकट्टु कुंभट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगकडगाणि अ जाव सो चेव गमो जाव पडिविसज्जेइ, तए णं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे जाव जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं परियादियइ २ त्ता जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सद्दावेइ २ त्ता जाव अट्ठाहिआए महामहिमाए तमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति । (सूत्रम् ५०)

'तए ण'मित्यादि, व्यक्तार्थं, नवरं पूर्वां दिशमित्यत्र पश्चिमदिग्वर्त्तिनः प्रभासतीर्थत आगच्छन् वैताढ्यगिरिकुमारदेवसिसाधयिषया तद्वासकूटाभिमुखं यियासुः प्रथमतः अनुपूर्वमेव याति, एतच्च दिग्विभागज्ञानं जम्बूद्वीपपट्टादावालेख्यदर्शनाद् गुरुजनसंदर्शितात् सुबोधं, सिन्धुदेवीगृहाभिमुखं च चक्ररत्नं प्रयातं, ननु सिन्धुदेवीभवनं अत्रैव सूत्रे उत्तरभरतार्द्धमध्यमखण्डे सिन्धुकुण्डे सिन्धद्वीपे वक्ष्यते तत्कथमत्र तत्सम्भवः ?, उच्यते, महर्द्धिकदेवीनां मूलस्थानादन्यत्रापि भवनादिसम्भवो नानुपपन्नो यथा सौधर्मेन्द्राद्यग्रमहिषीणा सौधर्मादिदेवलोके विमानसद्भावेऽपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दीश्वरे कुण्डले वा राजधान्यः, यथा वाऽस्या एव देव्या असङ्ख्येयतमे द्वीपे राजधानी सिन्ध्वावर्त्तनकूटे च प्रासादावतंसक इति, एवं सिन्धुद्वीपे सिन्धुदेवीभवनसद्भावेऽपि अत एव सूत्रबलादत्रापि तदस्तीति ज्ञायते, तथा च सति 'सिन्धूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते' इत्यादिकं 'खंधावारनिवेसं करेइ' इत्यन्तं वक्ष्यमाणसूत्रमप्युपपद्यतेऽन्यथा तदपि विघटतेति । तदनु भरतः किं कृतवानित्याह—'तए ण'मित्यादि, सुबोधं 'जाव सिंधूए'इत्यादि, अत्र यावत्करणात् वर्द्धकिरत्नशब्दापनपौषधशालाविधापनादि सर्वं ग्राह्यं, तेन पौषधशालायां सिन्धुदेव्याः साधनायेति शेषः अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति प्रगृह्य च पौषधिकः—पूर्वव्याख्यातपौषधव्रतवान् अत एव ब्रह्मचारी 'जाव दब्भसंथारोवगए' इत्यादि यावद्दर्भसंस्तारकोपगतः, अत्र यावत्करणात् उन्मुक्तमणिसुवर्ण इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं ग्राह्यं, अष्टमभक्तिकः—कृताष्टमतपाः सिन्धुदेवीं मनसि कुर्वन्—ध्यायंस्तिष्ठति । 'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञोऽष्टमभक्ते परिणमति—परिपूर्णप्राये जायमाने सिन्ध्वा देव्या आसनं चलति, ततः सा सिन्धुदेवी आसनं चलितं पश्यति दृष्ट्वा अवधिं प्रयुनक्ति प्रयुज्य च भरतं राजानं अवधिना आभोगयति—उपयुङ्क्ते आभोग्य च स्थितायास्तस्या इत्यध्याहार्यं अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकश्चिन्तितः प्रार्थितो मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत इत्थमेवान्वयसङ्गतिः स्यात् अन्यथा भिन्नकर्तृकयोः क्रिययोः क्त्वाप्रत्ययप्रयोगानुपपत्तिः स्यात्, भिन्नकर्तृकता चैवं—सिन्धुदेवी आभोगयित्री सङ्कल्पश्च समुत्पादकः, इयं च सिन्धुदेवी आसनकम्पनाद्दत्तोपयोगा सती स्मृतजातीया स्वत एवानुकूलाशया संजज्ञे, तेन न शरप्रमो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षणाद्यत्र वक्तव्यं, एवं च कर्मचक्रिणां वैताढ्यसुरादीनां साधनेऽपि जिनचक्रिणां तु सर्वत्र दिग्विजययात्रायां शरप्रमोक्षणादिकमन्तरेणैव प्रवृत्तिः यतस्तत्र तेषां तथैव साध्यसिद्धिरिति, स च कः सङ्कल्प इत्याह—'उप्पण्णे'त्ति उत्पन्नः खलुः—निश्चये जम्बूद्वीपनाम्नि द्वीपे भरतनामनि वर्षे—क्षेत्रे भरतो नाम राजा चतुरन्तचक्रवर्त्ती तज्जीतमेतत्—आचार एषः अतीतवर्त्तमानानागतानां सिन्धुनाम्नीनां देवीनां भरतानां राज्ञां, अत्र बहुवचनं कालत्रयवर्त्तिनां चक्रयर्द्धचक्रिणां परिग्रहार्थं, उपस्थानिकं—प्राभृतं कर्तुं वर्त्तते इति, तद् गच्छामि णमिति प्राग्वत्, अहमपि भरतस्य राज्ञ उपस्थानिकं करोमीति, चिन्तितं हि कार्यं कृतमेव फलदं भवतीत्याह—'इतिकट्टु'इत्यादि, इतिकृत्वा—चिन्तयित्वा कुम्भानामष्टोत्तरं सहस्रं रत्नचित्रं नानामणिकनकरत्नानां भक्तिः—विविधरचना तया चित्रे च द्वे कनकभद्रासने ऋषभचरित्रे तु रत्नभद्रासने उक्ते कटकानि च त्रुटिकानि च यावदाभरणानि च गृह्णाति, गृहीत्वा च तयोत्कृष्टयेत्यादि यावदेवमवादीदिति, अत्र यावत्पदसंग्रहो व्यक्तः, किमवादीदित्याह—'अभिजिए ण'मित्यादि, अभिजितं देवानुप्रियैः—श्रीमद्भिः केवलकल्पं—परिपूर्णं भरतं वर्षं तेनाहं देवानुप्रियाणां विषयवासिनी—देशवास्तव्या अहं देवानुप्रियाणामाज्ञप्तिकिङ्करी—आज्ञासेविका तत् प्रतीच्छन्तु—गृह्णन्तु देवानुप्रियाः! ममेदमेतद्रूपं प्रीतिदानमिति, अत्र णं सर्वत्र प्राग्वत्, इतिकृत्वा कुम्भाष्टाधिकसहस्रं रत्नचित्रं नानामणिकनकरत्नभक्तिचित्रे वा द्वे कनकभद्रासने कटकानि च यावत् स एव मागधसुरगमोऽत्रानुसर्त्तव्यः तावद्यावत्प्रतिविसर्जयति। तत उत्तरविधिमाह—'तए ण मि'त्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५०]

दीप अनुक्रम [७४]

तावद् वक्तव्यं यावत्ताः श्रेणिप्रश्रेणयोऽष्टाहिकाया महामहिमायास्तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्प्पयन्ति यथाऽष्टाहिकोत्सवः कृत इति । अथ वैताढ्यसुरसाधनमाह—

तए णं से दिवे चक्करयणे सिंधूए देवीए अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरच्छिमं दिसिं वेअड्ढपव्वयाभिमुहे पयाए आवि होत्था, तए णं से भरहे राया जाव जेणेव वेअड्ढपव्वए जेणेव वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेसं करेइ २ त्ता जाव वेअड्ढगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए जाव अट्ठमभत्तिए वेअड्ढगिरिकुमारं देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि वेअड्ढगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ, एवं सिंधुगमो णेअव्वो, पीइदाणं आभिसेक्कं रयणालंकारं कडगाणि अ तुडिआणि अ वत्थाणि अ आभरणाणि अ गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव अट्ठाहिअं जाव पच्चप्पिणंति । तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्ठाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए आवि होत्था, तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहं पयातं पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्तजावतिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं जाव कयमालस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव कयमालगं देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ तहेव जाव वेअड्ढगिरिकुमारस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ वैताढ्यसुर-साधनाधिकारः वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

णवरं पीढाणं इत्थीरयणस्स तिलगचोद्दसं भंडालंकारं कडगाणि अ जाव आभरणाणि अ गेण्हइ २ त्ता तए उक्किट्ठाए जाव सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ जाव भोअणमंडवे, तहेव महामहिमा कयमालस्स पण्णप्पिणंति (सूत्रं ५१)

'तए ण'मित्यादि, प्राग्व्याख्यातार्थं, नवरं उत्तरपूर्वां दिशमिति–ईशानकोणं चक्ररत्नं वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, अयमर्थः–सिन्धुदेवीभवनतो वैताढ्यसुरसाधनार्थं वैताढ्यसुरावासभूतं वैताढ्यकूटं गच्छतः ईशानदिश्येव ऋजुः पन्थाः, 'तए ण'मित्यादि, उक्तप्रायं सर्वं नवरं वैताढ्यपर्वतस्य दाक्षिणात्ये–दक्षिणार्द्धभरतपार्श्ववर्त्तिनि नितम्बे इति, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञोऽष्टमभक्ते परिणमति वैताढ्यगिरौ कुमार इव क्रीडाकारित्वात् वैताढ्यगिरिकुमारस्तस्य देवस्यासनं चलति, एवं सिन्धुदेव्याः गमः–सदृशपाठो नेतव्यः–स्मृतिपथं प्रापणीयः, परं सिन्धुदेवीस्थाने वैताढ्यगिरिकुमारस्तस्य देवस्यासनं चलति, एवं सिन्धुदेव्याः गमः–सदृशपाठो नेतव्यः–स्मृतिपथं प्रापणीयः, परं सिन्धुदेवीस्थाने वैताढ्यगिरिकुमारदेव इति वाच्यं, यच्च सिन्धुदेव्या अतिदेशकथनं तद्भाण्डव्यापारणमन्तरेणैवायमपि साध्य इति सादृश्यख्यापनार्थमिति, प्रीतिदानं आभिषेक्यं–अभिषेकयोग्यं राजपरिधेयमित्यर्थः, रत्नालङ्कारं–मुकुटमिति आवश्यकचूर्णौ तथैव दर्शनात्, शेषं तथैव यावच्छब्दाभ्यां ग्राह्यं, तत्र प्रथमो यावच्छब्दः उक्तातिरिक्तविशेषणसहितां गतिं प्रीतिवाक्यं प्राभृतोपनयनग्रहणे सुरसन्माननविसर्जने स्नानभोजने श्रेणिप्रश्रेण्यामन्त्रणं सूचयति, द्वितीयस्तु अष्टाह्निकादेशदानकरणे इति । अथ तमिस्रागुहाधिपकृतमालसुरसाधनार्थमुपक्रमते–'तए ण'मित्यादि, ततस्तद्दिव्यं चक्ररत्नं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्यां अर्थाद्वैताढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य यावत् पश्चिमादिशं तमिस्रागुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, वैताढ्यगिरिकुमारसाधनस्थानस्य तमिस्रायाः पश्चिमावर्त्तित्वात्, 'तए ण'मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, प्रीतिदानेऽत्र विशेषः, स चायं–स्त्रीरत्नस्य कृते तिलकं–ललाटाभरणं रत्नमयं चतुर्दशं यत्र तत्तिलकचतुर्दशं ईदृशं भाण्डालङ्कारं–प्राकृतत्वादलङ्कारशब्दस्य परनिपाते अलङ्कारभाण्डं आभरणकरण्डकमित्यर्थः, चतुर्दशाभरणानि चैवम्–"हार १ अद्धहार २ इग ३ कणय ४ रयण ५ मुत्तावली ६ उ केऊरे ७ । कडए ८ तुडिए ९ मुद्दा १० कुंडल ११ उरसुत्त १२ चूलमणि १३ तिलयं १४ ॥ १ ॥" ति, कटकानि च, अत्र कटकादीनि स्त्रीपुरुषसाधारणानीति न पौनरुक्त्यमित्यादि तावद् वक्तव्यं यावद् भोजनमण्डपे भोजनं, तथैव–मागधसुरस्येव महामहिमा अष्टाहिका कृतमालस्य प्रत्यर्पयन्त्याज्ञां श्रेणिप्रश्रेणय इति ।

तए णं से भरहे राया कयमालस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी-गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिआ! सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमिल्लं णिक्खुडं ससिंधुसागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि ओअवेत्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि अग्गाइं० पडिच्छित्ता ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि, तते णं से सेणावई बलस्स णेआ भरहे वासंमि विस्सुअजसे महाबलपरक्कमे महप्पा ओअंसी तेअलक्खणजुत्ते मिलक्खुभासाविसारए चित्तचारुभासी भरहे वासंमि णिक्खुडाणं निण्णाण य दुग्गमाण य दुप्पवेसाण य विआणए अत्थसत्थकुसले रयणं सेणावई सुसेणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५२]

दीप अनुक्रम [७६]

हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सए आवासे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवर जाव चाउरंगिणिं सेण्णं सण्णाहेहत्तिकट्टु जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते सन्नद्धबद्धवम्मिअकवए उप्पीलिअसरासणपट्टिए पिणद्धगेविज्जबद्धआविद्धविमलवरचिंधपट्टे गहिआउहप्पहरणे अणेगगणनायगदंडनायगजावसद्धिं संपरिवुडे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मंगलजयसद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढे । तएणं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं हयगयरहपवरजोहकलिआए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते महयाउक्किट्ठिसीहणायबोलकलकलसद्देणं समुद्दरवभूयंपिव करेमाणे २ सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए सव्वबलेणं जाव निग्घोसनाइएणं जेणेव सिंधू महाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चम्मरयणं परामुसइ, तएणं तं सिरिवच्छसरिसरूवं मुत्तारद्धचंदचित्तं अयलमकंपं अभेज्जकवयं जंतं सलिलासु सागरेसु अ उत्तरणं दिव्वं चम्मरयणं सणसत्तरसाइं सव्वधण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वाविआइं, वासं णाऊण चक्कवट्टिणा परामुट्ठे दिव्वे चम्मरयणे दुवालस जोअणाइं तिरिअं पवित्थरइ तत्थ साहिआइं, तए णं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्ठे समाणे खिप्पामेव णावाभूए जाए आवि होत्था, तए णं से सुसेणे सेणावई सखंधावारबलवाहणे णावाभूयं चम्मरयणं दुरूहइ २ त्ता सिंधुं महाणइं विमल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलतुंगवीचिं णावाभूएणं चम्मरयणेणं सबलवाहणे ससेणे समुत्तिण्णे, तओ महाणईमुत्तरित्तु सिंधुं अप्पडिहयसासणे अ सेणावई कहिंचि गामागरणगरपव्वयाणि खेडकब्बडमडंबाणि पट्टणाणि सिंहलए बब्बरए अ सव्वं च अंगलोअं बलायालोअं च परमरम्मं जवणदीवं च पवरमणिरयणगकोसागारसमिद्धं आरबके रोमके अ अलसंडविसयवासी अ पिक्खुरे कालमुहे जोणए अ उत्तरवेअड्ढसंसिआओ अ मेच्छजाई बहुप्पगारा दाहिणअवरेण जाव सिंधुसागरंतोत्ति सव्वपवरकच्छं च ओअवेऊण पडिणिअत्तो बहुसमरमणिज्जे अ भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे, ताहे ते जणवयाण णगराण पट्टणाण य जे अ तहिं सामिआ पभूआ आगरपती अ मंडलपती अ पट्टणपती अ सव्वे घेत्तूण पाहुडाइं आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य वत्थाणि अ महरिहाणि अण्णं च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च इच्छिअव्वं एअं सेणावइस्स उवणेंति मत्थयकयंजलिपुडा, पुणरवि काऊण अंजलिं मत्थयंमि पणया तुब्भे अम्हेऽत्थ सामिआ देवयंव सरणागया मो तुब्भं विसयवासिणोत्ति विजयं जंपमाणा सेणावइणा जहारिहं ठविअ पूइअ विसज्जिआ णिअत्ता सगाणि णगराणि पट्टणाणि अणुपविट्ठा, ताहे सेणावई सविणओ घेत्तूण पाहुडाइं आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य पुणरवि तं सिंधुणामधेज्जं उत्तिण्णे अणहसासणबले, तहेव भरहस्स रण्णो णिवेएइ णिवेइत्ता य अप्पिणित्ता य पाहुडाइं सक्कारिअसम्माणिए सहरिसे विसज्जिए सगं पडमंडवमइगए, तते णं सुसेणे सेणावई ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते जिमिअभुत्तुत्तरागए समाणे जाव सरसगोसीसचंदणुक्खित्तगायसरीरे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्जमाणे २ उवलालि (लभि) ज्जमाणे २ महयाहयणट्टगीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअरवेणं इट्ठे सद्दफरिसरसरूवगंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे भुंजमाणे विहरइ (सूत्रं ५२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तए ण'मित्यादि, निगदसिद्धं, नवरं सुषेणनामानं सेनापतिं–सेनानीरत्नमिति, किमवादीदित्याह–'गच्छाहि ण'मित्यादि, गच्छ भो देवानुप्रिय! सिन्ध्वा महानद्याः पाश्चात्यं–पश्चिमदिग्वर्त्तिनं निष्कुटं–कोणवर्त्तिभरतक्षेत्रखण्डरूपं, एतेन पूर्वदिग्वर्त्तिभरतक्षेत्रखण्डनिषेधः कृतो बोध्यः, इदं च कैर्विभाजकैर्विभक्तमित्याह–पूर्वस्यां दक्षिणस्यां च सिन्धुर्नदी पश्चिमायां सागरः–पश्चिमसमुद्रः उत्तरस्यां गिरिर्वैताढ्यः एतैः कृता मर्यादा–विभागरूपा तया सहितं, एभिः कृतविभागमित्यर्थः, अनेन द्वितीयपाश्चात्यनिष्कुटात् विशेषो दर्शितः, तत्रापि समानि च–समभूभागवर्त्तीनि विषमाणि च–दुर्गभूमिकानि निष्कुटानि च–अवान्तरक्षेत्रखण्डरूपाणि ततो द्वन्द्वस्तानि च–'ओअवेहि'त्ति साधय अस्मदाज्ञाप्रवर्त्तनेनास्मद्वशान् कुरु, अनेन कथनेन प्रथमसिन्धुनिष्कुटसाधनेऽल्पीयसोऽपि भूभागस्य साधने न गजनिमीलिका विधेयेति ज्ञापितं, एवमेवाखण्डषट्खंडक्षितिपतित्वप्राप्तेः, 'ओअवेत्ता' साधयित्वा अग्र्याणि–सद्यस्कानि वराणि–प्रधानानि रत्नानि–स्वस्वजातावुत्कृष्टवस्तूनि प्रतीच्छ–गृहाण, प्रतीष्य च ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्प्पयेति, ततः सुषेणो यथा चक्रे तथाऽऽह–'तते ण'मित्यादि, ततो भरताज्ञानंतरं स सुषेणः एवं स्वामिंस्तथेत्याज्ञया विनयेन वचनं प्रतिश्रृणोति इति पर्यन्तपदयोजना, व्याख्या त्वस्य प्राग्वत्, किंभूतः सुषेणः?–सेना–हस्त्यादिस्कन्धस्तद्रूपस्य बलस्य नेता–प्रभुः स्वातन्त्र्येण प्रवर्त्तकः भरते वर्षे विश्रुतयशाः महतः–अतुच्छस्य बलस्य–सैन्यस्य प्रक्रमात् भरतचक्रवर्त्तिसम्बन्धिनः पराक्रमो यस्मात् तथा, दृष्टं हि बलवति प्रभौ बलं बलवद्भवतीति, एतेन 'ओअंसी'ति पदे न पौनरुक्त्यं, महात्मा–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदात्तस्वभावः ओजस्वी–आत्मना वीर्याधिकः तेजसा शारीरेण लक्षणैश्च–सत्त्वादिभिर्युक्तः, म्लेच्छभाषासु–पारसीआरबीप्रमुखासु विशारदः–पण्डितः, तत्तन्म्लेच्छदेशभाषाज्ञो हि तत्तद्देशीयम्लेच्छान् सामदानादिवाक्यैर्बोद्धुं समर्थो भवति, अत एव चित्रं–विविधं चारु–अग्राम्यतादिगुणोपेतं भाषत इत्येवंशीलः, भरतक्षेत्रे निष्कुटानां निम्नानां च–गम्भीरस्थानानां दुर्गमानां च–दुःखेन गन्तुं शक्यानां दुष्प्रवेशानां–दुःखेन प्रवेष्टुं शक्यानां भूभागानां विज्ञायकस्तत्र तद्वासीव प्रचारचतुरः, अत एवैनां योग्यतां विभाव्यैतादृशे शासने नियुक्तः, अर्थशास्त्रं–नीतिशास्त्रादि तत्र कुशलः रत्नं सेनापतिः–सैन्येशेषु मुख्यः, भरतेन राज्ञा एवमुक्तः सन् हृष्टतुष्टेत्यादि प्राग्वत्, ततः स किं करोतीत्याह—'पडिसुणेत्ता' इत्यादि, सर्वं चैतत् पाठसिद्धं, नवरं सुषेणविशेषणं सन्नद्धं शरीरारोपणात् बद्धं कसाबन्धनतः वर्म्म–लोहकत्तलादिरूपं सञ्जातमस्येति वर्म्मितं ईदृशं कवचं–तनुत्राणं यस्य स तथा, उत्पीडिता–गाढं गुणारोपणाद् दृढीकृता शरासनपट्टिका–धनुर्दण्डो येन स तथा, पिनद्धं ग्रैवेयं–ग्रीवात्राणं ग्रीवाभरणं वा येन स तथा बद्धो–ग्रन्थिदानेन आविद्धः परिहितो मूर्द्धावेष्टनेन विमलवरचिह्नपट्टो–वीरातिवीरतासूचकवस्त्रविशेषो येन स तथा, पश्चात्पदद्वयस्य कर्मधारयः, गृहीतान्यायुधानि प्रहरणानि च येन स तथा, आयुधप्रहरणयोस्तु क्षेप्याक्षेप्यकृतो विशेषो बोध्यः, तत्र क्षेप्यानि बाणादीनि अक्षेप्यानि खड्गादीनि अथवा गृहीतानि आयुधानि प्रहरणाय येन स तथेति । 'तए ण'मित्यादि, प्राग्व्याख्यातार्थं, नवरं वाक्ययोजनायां ततः सुषेणश्चर्म्मरत्नं परामृशति–स्पृशति, इत्यन्तं सम्बन्ध इति, एतत्प्रस्तावाच्चर्म्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नवर्णनमाह—'तएणं त'मित्यादि, तच्चर्म्मरत्नं उक्तविशेषणविशिष्टं भवतीत्यन्वयः, ततो—विस्तीर्णो विस्तृतनामक इत्यर्थः एवंविधः इनः—स्वामी चक्रवर्त्तिरूपो यस्य तत्तेनं, यस्य हस्तस्पर्शतः इच्छया वा विस्तृणाति स स्वामीत्यर्थः, श्रीवत्ससदृशं—श्रीवत्साकारं रूपं यस्य तत्तथा, नन्वस्य श्रीवत्साकारत्वे चत्वारोऽपि प्रान्ताः समविषमा भवन्ति तथा चास्य किरातकृतवृष्ट्युपद्रवनिवारणार्थं तिर्यग्विस्तृतेन वृत्ताकारेण छत्ररत्नेन सह कथं सङ्घटना स्यादिति ?, उच्यते, स्वतः श्रीवत्साकारमपि सहस्रदेवाधिष्ठितत्वाद्यथावसरं चिन्तिताकारमेव भवतीति न काप्यनुपपत्तिः, मुक्तानां—मौक्तिकानां ताराणां—तारकाणां अर्द्धचन्द्राणां चित्राणि—आलेख्यानि यत्र तत्तथा, अचलं अकम्पं—द्वौ सदृशार्थकौ शब्दावतिशयसूचकावित्यत्यन्तदृढपरिणामं चक्रिसकलसैन्याक्रान्तत्वेऽपि न मनागपि कम्पते, अभेद्यं—दुर्भेदं कवचमिवाभेद्यकवचं लुप्तोपमा, वज्रपञ्जरमिव दुर्भेदमित्याशयः, सलिलासु—नदीषु सागरेषु चोत्तरणयन्त्रं पारगमनोपायभूतं दिव्यं—देवकृतप्रातिहार्यं चर्म्मरत्नं—चर्म्मसु प्रधानं, अनलजलादिभिरनुपघात्यवीर्यत्वात्, यत्र शणं—शणधान्यं सप्तदशं—सप्तदशसङ्ख्यापूरकं येषु तानि शणसप्तदशानि सर्वधान्यानि रोहन्ते—जायन्ते एकदिवसेनोप्तानि, अयं सम्प्रदायः—गृहपतिरत्नेनास्मिंश्चर्मणि धान्यानि सूर्योदये उप्यन्ते अस्तमनसमये च लूयन्ते इति, सप्तदश धान्यानि त्विमानि, "सालि १ जव २ वीहि ३ कुद्दव ४ रालय ५ तिल ६ मुग्ग ७ मास ८ चवल ९ चिणा १०। तूअरि ११ मसूरि १२ कुलत्था १३ गोहुम १४ णिप्फाव १५ अयसि १६ सणा १७ ॥ १ ॥" प्रायो बहूपयोगिनीमानीतीयन्त्युक्तानि, अन्यत्र चतु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५२]

दीप अनुक्रम [७६]

विंशतिरप्युक्तानि, लोके च क्षुद्रधान्यानि बहून्यपि, पुनरस्यैव गुणान्तरमाह–वर्ष–जलदवृष्टिं ज्ञात्वा चक्रवर्त्तिना परामृष्टं दिव्यं चर्मरत्नं द्वादशयोजनानि तिर्यक् प्रविस्तृणाति–वर्द्धते, तत्रोत्तरभरतमध्यखण्डवर्त्तिकिरातकृतमेघोपद्रवनिवारणादिकार्ये साधिकानि–किञ्चिदधिकानि, ननु द्वादशयोजनावधि तस्थुषश्चक्रिस्कन्धावारस्यावकाशाय द्वादशयोजनप्रमाणमेवेदं विस्तृतं युज्यते किमधिकविस्तारेण?, उच्यते, चर्म्मच्छत्रयोरन्तरालपूरणायोपयुज्यते साधिकविस्तार इति, यच्चात्र प्रकरणाद् बच्छब्देनैव विशेष्यप्राप्तौ सूत्रे पुनरपि दिव्वे चम्मरयणे इति ग्रहणं तदालापकान्तरव्यवधानेन विस्मरणशीलस्य विनेयस्य स्मारणार्थं, अथ प्रकृतं प्रस्तूयते—'तए ण'मित्यादि, ततस्तद्दिव्यं चर्म्मरत्नं सुषेणसेनापतिना परामृष्ट–स्पृष्टं सत् क्षिप्रमेव–निर्विलम्बमेव नौभूतं–महानद्युत्तारायनौतुल्यं जातं चाप्यभवत्, नावाकारेण जातमित्यर्थः, 'तए ण'मित्यादि, ततः–चर्म्मरत्ननौभवनानन्तरं सुषेणः सेनापतिः–सेनानीः स्कन्धावारस्य–सैन्यस्य ये बलवाहने–हस्त्यादिचतुरङ्गशिबिकादिरूपे ताभ्यां सह वर्त्तते यः सः स्कन्धावारबलवाहनः नौभूतं चर्म्मरत्नमारोहति, सिन्धुमहानदीं विमलजलस्य पुङ्ग–अत्युच्चा वीचयः–कल्लोला यस्यां सा तथा तां नौभूतेन चर्मरत्नेन बलवाहनाभ्यां सह वर्त्तते यः स सबलवाहनः, एवं सशासनो–भरताज्ञासहितः समुत्तीर्ण इति। 'तओ महाणइ'न्ति तत इति कथान्तरप्रस्तावनायां महानदीं सिन्धुमुत्तीर्याप्रतिहतशासनः–अखण्डिताज्ञः सेनापतिः–सेनानीः क्वचिद् ग्रामाकरनगरपर्वतान् सूत्रे स्त्रीवत्वं प्राकृतत्वात्, खेडेत्यादि, सिंहावलोकनन्यायेन क्वचिच्छब्दोऽत्रापि ग्राह्यस्तेन क्वचित् खेटमडम्बानि क्वचि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्पत्तनानि तथा सिंहलकान्–सिंहलदेशोद्भवान् बर्बरकाश्च–बर्बरदेशोद्भवान्, सर्वं च अङ्गलोकं बलावलोकं च परमरम्यं, इमे च द्वे अपि म्लेच्छजातीयजनाश्रयभूते स्थाने, यवनद्वीपं–द्वीपविशेषं, अत्र चकाराः समुच्चयार्थाः एवमग्रेऽपि, त्रयाणामप्यमीषां साधारणविशेषणमाह—प्रवरमणिरत्नकनकानां कोशागाराणि–भाण्डागाराणि तैः समृद्धं–भृशं भृतं, आरबकान्–आरबदेशोद्भवान् रोमकांश्च–रोमकदेशोद्भवान् अलसण्डविषयवासिनश्च पिक्खुरान् कालमुखान् जोनकांश्च–म्लेच्छविशेषान् 'ओअवेऊण'त्ति पदेन योगः, अथैतैः साधितैरशेषमपि निष्कुटं साधितमुत नेत्याह–उत्तरः–उत्तरदिग्वर्त्ती वैताढ्यः, इदं हि दक्षिणसिन्धुनिष्कुटान्तेन, अस्माद्वैताढ्य उत्तरस्यां दिशि वर्त्तते इत्यर्थः, तं संश्रिताः–तदुत्पत्तिकायां स्थिताश्च म्लेच्छजातीर्बहुप्रकाराः उक्तव्यतिरिक्ता इत्यर्थः, अत्र सूत्रे क्वचिद् विभक्तिव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, दक्षिणापरेण–नैर्ऋतकोणेन यावत् सिन्धुसागरान्त इति–सिन्धुनदीसङ्गतः सागरः सिन्धुसागरः मध्यपदलोपे साधुः स एवान्तः–पर्यवसानं तावदवधि इत्याशयः, सर्वप्रवरं कच्छं च–कच्छदेशं 'ओअवेऊण'त्ति साधयित्वा स्वाधीनं कृत्वा प्रतिनिवृत्तः–पश्माद्वलितो बहुसमरमणीये च भूमिभागे तस्य कच्छदेशस्य सुखेन निषण्णः–सुस्थस्तस्थौ, स सुषेण इति प्रकरणाल्लभ्यते, ततः किं जातमित्याह—'ताहे ते जणवयाण'इत्यादि, 'ताहे' तस्मिन् काले ते इति—तच्छब्दस्योत्तरवाक्ये 'सव्वे घेत्तूणे'त्यत्र योजनीयत्वेन व्यवहितः सम्बन्धः आर्षत्वात् जनपदानां–देशानां नगराणां पत्तनानां च प्रतीतानां ये च 'तहिं' तत्र निष्कुटे स्वामिकाः–चक्रवर्त्तिसुषेणसेनान्योरपेक्षया अल्पर्द्धिकत्वेनाज्ञातस्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिन इत्यज्ञातार्थे कप्रत्ययः, ये च प्रभूता–बहवः आकराः–स्वर्णाद्युत्पत्तिभुवस्तेषां पतयः मण्डलपतयो–देशकार्यनियुक्ताः पत्तनपतयश्च, ते गृहीत्वा प्राभृतानि–उपायनानि आभरणानि–अङ्गपरिधेयानि भूषणानि–उपाङ्गपरिधेयानि रत्नानि च वस्त्राणि च महार्घाणि च–बहुमूल्यानि अन्यच्च यद्वरिष्ठं–प्रधानं वस्तु हस्तिरथादिकं राजार्हं–राजप्राभृतयोग्यं यच्च एष्टव्यं–अभिलषणीयं एतत्सर्वं पूर्वोक्तं सेनापतेरुपनयन्ति–उपढौकयन्ति मस्तककृताञ्जलिपुटाः, ततस्ते किं कृतवन्त इत्याह—'पुणरवि'इत्यादि, ते–तत्रत्यस्वामिनः प्राभृतोपनयनोत्तरकाले प्रकृताञ्जलिपरित्यागान्निवर्त्तनावसरे पुनरपि मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा प्रणता–नम्रत्वमुपागताः यूयमस्माकमत्र स्वामिनः प्राकृतत्वात् स्वार्थे कप्रत्ययस्तेन देवतामिव शरणागताः स्मो वयं युष्माकं विषयवासिन इति विजयसूचकं वचो जल्पन्तः सेनापतिना यथार्हं–यथौचित्येन स्थापिताः–नगराद्याधिपत्यादिपूर्वकार्येषु नियोजिताः पूजिता वस्त्रादिभिः विसर्जिताः–स्वस्थानगमनायानुज्ञाताः निवृत्ताः–प्रत्यावृत्ताः सन्तः स्वकानि निजानि नगराणि पत्तनानि चानुप्रविष्टाः । विसर्जनानन्तरं सेनापतिर्यच्चकार तदाह–'ताहे सेणावई'इत्यादि, तस्मिन् काले सेनापतिः सविनयोऽन्तर्धृतस्वामिभक्तिको गृहीत्वा प्राभृतानि आभरणानि भूषणानि रत्नानि च पुनरपि तां सिन्धुनामधेयां महानदीमुत्तीर्णः अणहशब्दोऽक्षतपर्यायो देश्यस्तेनाणहं–अक्षतं क्वचिदप्यखण्डितं शासनं–आज्ञा बलं च यस्य स तथा, तथैव यथा २ स्वयं साधयामास तथा २ भरतस्य राज्ञो निवेदयति २ त्वा प्राभृतानि अर्प्पयित्वा च अत्र स्थित इति गम्यं, अन्यथा क्त्वान्तपदेन सह सङ्गतिर्न स्यात्, ततः प्रभुणा सत्का-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रितो वस्त्रादिभिः सन्मानितो बहुमानवचनादिभिः सहर्षः प्राप्तप्रभुसत्कारत्वात् विसृष्टः–स्वस्थानगमनार्थमनुज्ञातः स्वकं–निजं पटमंडपं–दिव्यपटकृतमण्डपं मध्यपदलोपी समासः पटमण्डपोपलक्षितं प्रासादं वा अतिगतः–प्राविशत्, अथ स्वकावासप्रविष्टो यथा सुषेणो विललास तथा चाह—'तते ण'मित्यादि, ततः स सुषेणः सेनापतिः 'ण्हाए' इत्यादि प्राग्वत्, जिमितो–भुक्तवान् राजभोजनविधिना भुक्त्युत्तरं–भोजनोत्तरकाले आगतः सन् उपवेशनस्थाने इति गम्यं, अत्र यावत्पदादिदं दृश्यं–'आयंते चोक्खे परमसुईभूए' इति, अत्र व्याख्या—आचान्तः–शुद्धोदकयोगेन कृतहस्तमुखशौचः चोक्षो–लेपसिक्थाद्यपनयनेन अत एव परमशुचीभूतः–अत्यर्थं पावनीभूतः, इदं च पदत्रयं योज-नायाः क्रमप्राधान्येन भुक्तुरागए समाणे इति पदात् पूर्वं योज्यं, इत्थमेव शिष्टजनक्रमस्य दृश्यमानत्वात्, अन्यथा भुक्त्युत्तरकाले आचमनादिकं पामराणामिव जुगुप्सापात्रं स्यात्, पुनः सेनापतिं विशिनष्टि–सरसेन गोशीर्षचन्दने-नोक्षिता–सिक्ताः गात्रे–शरीरे भवा गात्राः–शरीरावयवा वक्षःप्रभृतयो यत्र तदेवंविधं शरीरं यस्य स तथा, अत्र यच्च-न्दनेन सेचनमुक्तं तन्मार्गश्रमोत्थवपुस्तापव्यपोहाय, सिक्तं हि चन्दनमङ्गुलितापविरहितत्वादतिशीतलस्पर्शं भवतीति, 'उप्पिं'ति उपरि प्रासादवरस्य सूत्रे च लुप्तविभक्तिकतया निर्देश आर्षत्वात् गतः–प्राप्तः स्फुटद्भिरिव–अतिरभसा-स्फालनवशाद्विदलद्भिरिव मृदङ्गानां–मर्दलानां मस्तकानीव मस्तकानि–उपरितनभागा उभयपार्श्वे चर्मोपनद्धपुटानीति तैरुपनृत्यमान इत्यादि योज्यं, अत्र करणे तृतीया, तथा द्वात्रिंशताऽभिनेतव्यप्रकारैः राजप्रश्नीयोपाङ्गसूत्रविवृतैः पात्रैर्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

बद्धैः–उपसम्पन्नैर्नाटकैः प्रतीतैर्वरतरुणीभिः–सुभगाभिः स्त्रीभिः भूभुजंगरागेषु परममोहनत्वेन तासामेवोपयोगात्, सम्प्रयुक्तैः–प्रारब्धैरुपनृत्यमानो–नृत्यविषयीक्रियमाणस्तदभिनयपुरस्सरं नर्त्तनात्, उपगीयमानस्तद्गुणगानात्, उपलभ्यमानस्तदीप्सितार्थसम्पादनात्, महता इति विशेषणं प्राग्वत् इष्टान्–इच्छाविषयीकृतान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान्–मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान्–कामांश्च भोगांश्च इति प्राप्तसंज्ञकान्, तत्र शब्दरूपे कामौ स्पर्शरसगन्धा भोगा इति समयपरिभाषा, भुञ्जानः–अनुभवन् विहरतीति। अथ तमिस्रागुहाद्वारोद्घाटनायोपक्रमते।

तए णं से भरहे राया अण्णया कयाई सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–गच्छ णं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि २ त्ता मम एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहित्ति, तए णं से सुसेणे सेणावई भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जाव पडिसुणेइ २ त्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सए आवासे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दब्भसंथारगं संथरइ जाव कयमालस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउअमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे धूवपुप्फगंधमल्लहत्थगए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहवे राईस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तमिस्रागुफ़ायाः द्वरोद्घाटनस्य वर्णनं --

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५३]

दीप अनुक्रम [७७]

रतलवरमाडंबिअ जाव सत्थवाहप्पभियओ अप्पेगइआ उप्पलहत्थगया जाव सुसेणं सेणावइं पिट्ठओ २ अणुगच्छंति, तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहूईओ खुज्जाओ चिलाइआओ जाव इंगिअचिंतिअपत्थिअविआणिआउ णिउणकुसलाओ विणीआओ अप्पेगइआओ कलसहत्थगयाओ जाव अणुगच्छंतीति । तए णं से सुसेणे सेणावई सव्विड्ढीए सव्वजुई जाव णिग्घोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइ२त्ता आलोए पणामं करेइ२त्ता लोमहत्थगं परामुसइ२त्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थेणं पमज्जइ २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितले चच्चए दलइ २ त्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि अ मल्लेहि अ अच्चिणेइ २ त्ता पुप्फारुहणं जाव वत्थारुहणं करेइ २ त्ता आसत्तोसत्तविपुलवट्ट जाव करेइ २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं तिमिस्सगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्ठट्ठमंगलए आलिहइ तं०—सोत्थिय सिरिवच्छ जाव कयग्गहगहिअकरयलपब्भट्ठचंदप्पभवइरवेरुलिअविमलदंडं जाव धूवं दलयइ २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता करयल जाव मत्थए अंजलिं कट्टु कवाडाणं पणामं करेइ २ त्ता दंडरयणं परामुसइ, तए णं तं दंडरयणं पंचलइअं वइरसारमइअं विणासणं सव्वसत्तुसेण्णाणं खंधावारे णरवइस्स गड्ढदरिविसमपब्भारगिरिवरपवायाणं समीकरणं संतिकरं सुभकरं हितकरं रण्णो हिअइच्छिअमणोरहपूरगं दिव्वमप्पडिहयं दंडरयणं गहाय सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता तिमिस्सगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे दंडरयणेणं महया २ सद्देणं तिक्खुत्तो आउडेइ, तए णं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणसेणावइणा दंडरयणेणं महया २ सद्देणं तिक्खुत्तो आउडिआ समाणा महया २ सद्देणं कोंचारवं करेमाणा सरसरस्स सगाइं २ ठाणाइं पच्चोसक्किंसु, तए णं से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुवारस्स कवाडे विहाडेइ २ त्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव भरहं रायं करयलपरिग्गहिअं जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता एवं वयासी–विहाडिआ णं देवाणुप्पिआ! तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा एअण्णं देवाणुप्पिआणं पिअं णिवेएमो पिअं भे भवउ, तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अंतिए एअमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव हिअए सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवर तहेव जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवरं णरवई दूरूढे (सूत्रं–५३)

'तए णं से भरहे राया अण्णया'इत्यादि, एतच्च निगदसिद्धं, सम्बन्धसन्तत्यव्युच्छित्त्यर्थं संस्कारमात्रेण विधियते, ततः स भरतो राजा अन्यदा कदाचित् सुसेणं सेनापतिं शब्दयति–आकारयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्–गच्छ क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय! तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ विघाटय–सम्बद्धौ वियोजय उद्घाटयेतियावत्, ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पय, 'तए ण'मित्यादि, अत्र भरताज्ञाप्रतिश्रवणादिकं मज्जनगृहप्रतिनिष्क्रमणान्तं प्राग्वद्व्याख्येयं, नवरं यत्रैव तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ तत्रैव गमनाय प्रधारितवान्–गमनसङ्कल्पमकरोत्, 'तए ण'मित्यादि, ततस्तमिस्रागुहागमनसङ्कल्पकरणानन्तरं तस्य सुषेणस्य बहवो राजेश्वरादयो जनाः सुषेणं सेनापतिं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति, सर्वं चात्र भरतस्य चक्ररत्नाद्यां चिकीर्षोरिव वाच्यं, एवं चेटीसूत्रमपि पूर्ववदेव, नवरं किंलक्षणाश्चेट्यः?–इङ्गितेन–नयनादिचेष्टयैव आस्तां कथनादिभिः चिन्तितं–प्रभुणा मनसि संकल्पितं यद्यत्प्रार्थितं तत्तत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जानन्ति यास्ताः तथा निपुणकुशलाः–अत्यन्तकुशलाः तथा विनीता–आज्ञाकारिण्यः अप्येकका वन्दनकलशहस्त-गता इत्यादि, 'तए ण'मित्यादि, ततस्तमिस्रागुहाभिमुखचलनानन्तरं स सुषेणः सेनापतिः सर्वर्द्ध्या सर्वयुक्त्या सर्व-द्युत्या वा यावन्निर्घोषनादितेन यत्रैव तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च आलोके–दर्शने प्रणामं करोति, तदनु सर्वं चक्ररत्नपूजायामिव वाच्यं, यावदन्ते पुनरपि कपाटयोः प्रणामं करोति, नमनीयवस्तुन उपचारे क्रियमाणे आदावन्ते च प्रणामस्य शिष्टव्यवहारौचित्यात्, प्रणामं कृत्वा च दण्डरत्नं परामृ-शति, अथावसरागतं दण्डरत्नस्वरूपं निरूपयन् कथां प्रवध्नाति–'तए ण'मित्यादि, ततो–दण्डरत्नपरामर्शानन्तरं तद्-ण्डरत्नं–दण्डेषु दण्डजातीयेषु रत्नं–उत्कृष्टं अप्रतिहतं–क्वचिदपि प्रतिघातमनापन्नं दण्डनामकं रत्नं गृहीत्वा सप्ताष्ट-पदानि प्रत्यवष्वष्कते–अपसर्प्पतीत्यनेन सम्बन्धः, अथ कीदृशं तदित्याह–रत्नमय्यः पञ्चलतिकाः–कत्तलिकारूपा अवयवा यत्र तत्तथा, वज्ररत्नस्य यत्सारं–प्रधानद्रव्यं तन्मयं तद्लिकमित्यर्थः, विनाशनं सर्वशत्रुसेनानां, नरपतेः स्कन्धावारे प्रस्तावाद् गन्तुं प्रवृत्ते सति गर्त्तादीनि प्राग्भारान्तपदानि प्राग्वत् गिरयः–पर्वताः, अत्र विशेषणानभिधानेऽपि प्रस्ता-वाद् गिरिशब्देन क्षुद्रगिरयो ग्राह्याः, ये सञ्चरतः सैन्यस्य विघ्नकराः यात्रोन्मुखानां राज्ञां त एवोच्छेद्याः, महागिरयस्तु तेषामपि संरक्षणीया एव, प्रपाता–गच्छज्जनस्खलनहेतवः पाषाणाः भृगवो-वा तेषां समीकरणं समभागापादकमित्यर्थः, शान्तिकरं–उपद्रवोपशामकं, ननु यद्युपद्रवोपशामकं तर्हि सति दण्डरत्ने सगरसुतानां ज्वलनप्रभनागाधिपकृतोपद्रवो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५३]

दीप अनुक्रम [७७]

न कथमुपशशामेति, उच्यते, सोपक्रमोपद्रवविद्रावण एव तस्य सामर्थ्यात्, अनुपक्रमोपद्रवस्तु सर्वथाऽनपासनीय एव, अन्यथा विजयमाने वीरदेवे कुशिष्यमुक्ता तेजोलेश्या सुनक्षत्रसर्वानुभूती अनगारौ कथं भस्मतां निनाय?, अत एवावश्यंभाविनो भावा महानुभावैरपि नापनेतुं शक्या इति, शुभकरं–कल्याणकरं हितकरं–उच्चैरेव गुणैरुपकारिराज्ञः–चक्रवर्त्तिनो हृदयेप्सितमनोरथपूरकं गुहाकपाटोद्घाटनादिकार्यकरणसमर्थत्वात् दिव्यं यक्षसहस्राधिष्ठितमित्यर्थः, अत्र सेनापतेः सप्ताष्टपदापसरणं प्रजिहीर्षोर्गजस्येव दृढप्रहारदानायाधिकप्रहारकरणार्थमिति, प्रत्यवष्वष्कणादनु किं चक्रे इत्याह—'पच्चोसक्किता'इत्यादि; प्रत्यवष्वष्क्य च तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ दण्डरत्नेन महता २ शब्देन त्रिकृत्वः–त्रीन् वारान् आकुट्टयति–ताडयति, अत्र इत्थंभावे तृतीया, यथा महान् शब्द उत्पद्यते तथाप्रकारेण ताडयतीत्यर्थः, अत्र गुहाकपाटोद्घाटनसमये द्वादशयोजनावधिसेनानीरत्नतुरगापसरणप्रवादस्तु आवश्यकटिप्पनके निराकृतोऽस्ति, यथा–"यश्चात्र द्वादशयोजनानि तुरगारूढः सेनापतिः शीघ्रमपसरतीत्यादिप्रवादः सोऽनागामिक इव लक्ष्यते, क्वचिदप्यनुपलभ्यमानत्वादिति," ततः किं जातमित्याह—'तए णं'मित्यादि, ततः–ताडनादनु तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ सुषेणसेनापतिना दण्डरत्नेन महता २ शब्देनाकुट्टितौ सन्तौ महता २ शब्देन दीर्घतरनिनादिनः क्रौंचस्येव बहुव्यापित्वाद् बह्वनुनादित्वाच्च य आरवः–शब्दस्तं कुर्वाणौ 'सरसरस्स'त्ति अनुकरणशब्दस्तेन तादृशं शब्दं कुर्वाणौ कपाटावित्यर्थः स्वके २–स्वकीये २ स्थानेऽवष्टम्भभूततोडुकरूपे यत्रागतास्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५३]

दीप अनुक्रम [७७]

चलतया तिष्ठत इति ते यावत् प्रत्यवाष्वष्किपातां–प्रत्यपससर्प्पतुः, 'तए ण'मित्यादि, इदं च सूत्रमावश्यकचूर्णौ वर्द्धमानसूरिकृतादिचरित्रे च न दृश्यते, ततोऽनन्तरपूर्वसूत्र एव कपाटोद्घाटनमभिहितं, यदि चैतत्सूत्रादर्शानुसारेणेदं सूत्रमवश्यं व्याख्येयं तदा पूर्वसूत्रे सगाइं २ ठाणाइं इत्यत्रार्षत्वात् पञ्चमी व्याख्येया तेन स्वकाभ्यां २ स्थानाभ्यां कपाटद्वयसम्मीलनास्पदाभ्यां प्रत्यवस्तृताविति–किञ्चिद्विकसितावित्यर्थः तेन विघाटनार्थकमिदं न पुनरुक्तमिति, ततः–कपाटप्रत्यपसर्पणादनु स सुषेणः सेनापतिः तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ विघाटयति–उद्घाटयति, ततः किं कृतमित्याह—'विहाडेत्ता' इत्यादि, प्रायः प्राग् व्याख्यातार्थं, नवरं विघाटितौ देवानुप्रियाः ! तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ एतद्देवानुप्रियाणां प्रियं निवेदयामः, अत्र निवेदकस्य सेनानीरत्नस्यैकत्वात् क्रियायां एकवचनस्यौचित्ये यन्निवेदयाम इत्यत्र बहुवचनं तत्सपरिकरस्याप्यात्मनो निवेदकत्वख्यापनार्थं तच्च बहूनामेकवाक्यत्वेन प्रत्ययोत्पादनार्थं, एतत् प्रियं–इष्टं भे–भवतां भवतु, ततो भरतः किं चक्रे इत्याह—'तए ण'मित्यादि, व्यक्तं, गजारूढः सन् यन्नृपतिश्चक्रे तदाह—

तए णं से भरहे राया मणिरयणं परामुसइ तोतं चउरंगुलप्पमाणमित्तं च अणग्घं तंसिअं छलंसं अणोवमजुइं दिव्वं मणिरयणपतिसमं वेरुलिअं सव्वभूअकंतं जेण य मुद्धागएणं दुक्खं ण किंचि जाव हवइ आरोग्गे अ सव्वकालं तेरिच्छिअदेवमाणुसकया य उवसग्गा सव्वे ण करेंति तस्स दुक्खं, संगामेऽवि असत्थवज्झो होइ णरो मणिवरं धरेंतो ठिअजोव्वणकेसअवट्ठिअणहो हवइ अ

॥२२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ मण्डल-आलेखनस्य वर्णनं क्रियते

सव्वभयविप्पमुक्को, तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए कुंभीए णिक्खिवइ, तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइअवच्छे जाव अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहिअकित्ती मणिरयणकउज्जोए चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगरायसहस्सा-णुआयमग्गे महयाउक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता तिमिसगुहं दाहिणिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससिव्व मेहंधयारनिवहं। तए णं से भरहे राया छत्तलं दुवालसंसिअं अट्ठकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं अट्ठसोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइत्ति। तए णं तं चउरंगुलप्पमाणमित्तं अट्ठसुवण्णं च विस-हरणं अउलं चउरंससंठाणसंठिअं समतलं माणुम्माणजोगा जतो लोगे चरंति सव्वजणपण्णवगा, ण इव चंदो ण इव तत्थ सूरे ण इव अग्गी ण इव तत्थ मणिणो तिमिरं णासेंति अंधयारे जत्थ तयं दिव्वं भावजुत्तं दुवालसजोअणाइं तस्स लेसाउ विवड्ढंति तिमिरणिगरपडिसेहिआओ, रत्तिं च सव्वकालं खंधावारे करेइ आलोअं दिवसभूअं जस्स पभावेण चक्कवट्टी, तिमिसगुहं अतीति सेण्णसहिए अभिजेत्तुं बितिअमद्धभरहं रायवरे कागणिं गहाय तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लपच्चत्थिमिल्लेसुं कडएसुं जोअणंतरिआइं पंचधणुसयविक्खंभाइं जोअणुज्जोअकराइं चक्कणेमीसंठिआइं चंदमंडलपडिणिकासाइं एगूणपण्णं मंडलाइं आलिहमाणे २ अणुप्प-विसइ, तए णं सा तिमिसगुहा भरहेणं रण्णा तेहिं जोअणंतरिएहिं जाव जोअणुज्जोअकरेहिं एगूणपण्णाए मंडलेहिं आलिहिज्ज-माणेहिं २ खिप्पामेव आलोगभूआ उज्जोअभूआ दिवसभूआ जाया यावि होत्था (सूत्रं–५४)

'तए णं से भरहे राया मणिरयण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा मणिरत्नं परामृशति, किंविशिष्टं इत्याह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तोत'मिति सम्प्रदायगम्यं चतुरङ्गुलप्रमाणा मात्रा दैर्घ्येण यस्य तत्तथा, चशब्दाद् व्यङ्गुलपृथुलमिति ग्राह्यं, यदाह–"चतुरंगुलो दुअंगुलपिहुलो अ मणी"इति, अनर्घितं–अमूल्यं न केनापि तस्यार्घः, कर्तुं शक्यते इत्यर्थः तिस्रोऽस्रयः–कोटयो यत्र तत्तथा, ईदृशं सत् षडस्रं–षट्कोटिकं, लोकेऽपि प्रायो वैडूर्यस्य मृदङ्गाकारत्वेन प्रसिद्धत्वान्मध्ये उन्नतवृत्तत्वेनान्तरितस्य सहजसिद्धस्योभयान्तवर्त्तिनोऽस्रित्रयस्य सत्त्वात्, अत्राह—षडस्रमित्यनेनैव सिद्धे त्र्यस्रषडस्रमिति किमर्थं?, उच्यते, उभयोरन्तयोर्निरन्तरकोटिषट्कभवनेनापि षडस्रता सम्भवति ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं त्र्यस्रं सत् षडस्रमित्युक्तं, तथा अनुपमद्युति दिव्यं मणिरत्नेषु–पूर्वोक्तेषु पतिसमं सर्वोत्कृष्टत्वात्, वैडूर्यं वैडूर्यजातीयमित्यर्थः, सर्वेषां भूतानां कान्तं–काम्यं, इदमेवं गुणान्तरकथनेन वर्णयन्नाह—'जेण य मुद्धागएण'मित्यादि, येन मूर्द्धगतेन–शिरोधृतेन हेतुभूतेन न किञ्चिद् दुःखं जायते आरोग्यं च सर्वकालं भवति, तिर्यङ्देवमनुष्यकृताः चशब्दस्य व्यवहितसम्बन्धादुपसर्गाश्च सर्वे न कुर्वन्ति तस्य दुःखं, संग्रामेऽपि च–बहुविरोधिसमरे आस्तामल्पविरोधिसमरे अशस्त्रवध्यः, अत्र न शस्त्रवध्योऽशस्त्रवध्य इति, नञ्समासो वा, 'अः स्वल्पार्थेऽप्यभावेऽपी'त्यनेकार्थवचनात् अ इति पृथगेव नञ्समानार्थनिपातो वा ज्ञेयस्तेन न शस्त्रैर्वध्यो भवति, नरो मणिवरं धरन् स्थितं–विनश्वरस्वभावमप्राप्तं यौवनं यस्य स तथा, स्थायियौवन इत्यर्थः, केशैः सहावस्थिता–अवर्द्धिष्णवो नखा यस्य स तथा, पश्चात् पदद्वयस्य कर्मधारयः, भवति च सर्वभयविप्रमुक्तः, अत्र 'सर्वं भाजनस्थं जलं पीत'मित्यादाविव एकदेशेऽपि सर्वशब्दप्रयोगस्य सुप्रसिद्धत्वादेवम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नुष्यादिप्रतिपक्षोत्थं भयमिह ज्ञेयं, अन्यथाऽश्लोकादिभयानि महतामेव भवेयुरिति, अथैतद् गृहीत्वा नृपतिर्यच्चकार तदाह—'तं मणि'न्ति तन्मणिरत्नं गृहीत्वा स नरपतिर्भरतो हस्तिरत्नस्य दाक्षिणात्ये कुम्भे निक्षिपति—निबध्नाति, 'कुंभीए' इत्यत्र स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, 'तए ण'मित्यादि, ततः स भरताधिपो नरेन्द्रो हारावस्तृतेत्यादिविशेषणकदम्बकं प्राग्वत् मणिरत्नकृतोद्योतश्चक्ररत्नदेशितमार्गो यावत् समुद्रवभूतामिव गुहामिति गम्यं कुर्वन् २ यत्रैव तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च तमिस्रागुहा दाक्षिणात्येन द्वारेणात्येति—प्रविशति, शशीव मेघान्धकारनिवहं। प्रवेशानन्तरं यत्कृत्यं तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा काकणीरत्नं परामृशतीत्युत्तरेण सम्बन्धः, किंविशिष्टमित्याह—चत्वारि चतसृषु दिक्षु द्वे तूर्ध्वमधश्चेत्येवं षट्सङ्ख्याङ्कानि तलानि यत्र तत्तथा, तानि चात्र मध्यखण्डरूपाणि, यैर्भूमावविषमतया तिष्ठन्तीति, द्वादश अध उपरि तिर्यक् चतसृष्वपि दिक्षु प्रत्येकं चतसृणामश्रीणां भावात् अश्रयः—कोटयो यत्र तत्तथा, कर्णिकाः—कोणाः यत्र अश्रित्रयं मिलति तेषां चाध उपरि प्रत्येकं चतुर्णां सद्भावादष्टकर्णिकं, अधिकरणिः—सुवर्णकारोपकरणं तद्वत् संस्थितं—संस्थानं यस्य तत्तथा, तत्सदृशाकारं समचतुरस्रत्वात्, आकृतिस्वरूपं निरूप्यास्य तौल्यमानमाह—अष्टसुवर्णा मानमस्येत्यष्टसौवर्णिकं, तत्र सुवर्णमानमिदं—'चत्वारि मधुरतृणफलान्येकः श्वेतसर्षपः षोडश श्वेतसर्षपा एकं धान्यमाषफलं द्वे धान्यमाषफले एका गुञ्जा पञ्च गुञ्जा एकः कर्ममाषकः षोडश कर्ममाषकाः एक सुवर्ण' इति, एतादृशैरष्टभिः सुवर्णैः काकणीरत्नं निष्पद्यते इति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५४]

दीप अनुक्रम [७८]

अत्र चाधिकारे "एतानि च मधुरतृणफलादीनि भरतचक्रवर्त्तिकालसम्भवीन्येव गृह्यन्ते, अन्यथा कालभेदेन तद्वैषम्यसम्भवे काकणीरत्नं सर्वचक्रिणां तुल्यं न स्यात्, तुल्यं चेष्यते तदि"त्येतस्मादनुयोगद्वारवृत्तिवचनात् एतदेशीयादेव स्थानाङ्गवृत्तिवचनात्, "चउरंगुलो मणी पुण तस्सद्धं चेव होइ विच्छिण्णो । चउरंगुलप्पमाणा सुवण्णवरकागणी नेया ॥ १ ॥ इहाङ्गुलं–प्रमाणाङ्गुलमवगन्तव्यं, सर्वचक्रवर्त्तिनामपि काकण्यादिरत्नानां तुल्यप्रमाणत्वादिति" मलयगिरिकृतबृहत्संग्रहणीबृहद्वृत्तिवचनाच्च केचनास्य प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नत्वं, केचिच्च "एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिणो अट्ठसोवण्णिए कागणिरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठाणसंठिए पण्णत्ते, एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं" इत्यनुयोगद्वारसूत्रबलादुत्सेधाङ्गुलनिष्पन्नत्वं, केऽपि च एतानि सप्तैकेन्द्रियरत्नानि सर्वचक्रवर्त्तिनामात्माङ्गुलेन ज्ञेयानि, शेषाणि तु सप्त पञ्चेन्द्रियरत्नानि तत्कालीनपुरुषोचितमानानीति प्रवचनसारोद्धारवृत्तिबलादात्माङ्गुलनिष्पन्नत्वमाहुः, अत्र च पक्षत्रये तत्त्वनिर्णयः सर्वविद्वेद्यः, अत्र तु बहु वक्तव्यं तत्तु ग्रन्थगौरवभिया नोच्यते इति । अस्य परामर्शानन्तरं यच्चक्रे तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः-परामर्शानन्तरं तत्काकणीरत्नं राजवरो गृहीत्वा यावदेकोनपञ्चाशतं मण्डलान्यालिखन्नालिखन् अनुप्रविशतीत्युत्तरेण सम्बन्धः, कथम्भूतमित्याह—चतुरङ्गुलप्रमाणमात्रं, अस्यैकैका अश्रिश्चतुरङ्गुलप्रमाणविष्कम्भा द्वादशाप्यश्रयः प्रत्येकं चतुरङ्गुलप्रमाणा भवन्तीत्यर्थः, अस्य समचतुरस्रत्वादायामो विष्कम्भश्च प्रत्येकं चतुरङ्गुलप्रमाण इत्युक्तं भवति, यैवास्मिं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूध्वींकृता आयामं प्रतिपद्यते सैव तिर्यग्व्यवस्थापिता विष्कम्भभाग् भवतीत्यायामविष्कम्भयोरेकतरनिर्णयेऽप्यपरनिर्णयः स्यादेवेति सूत्रे विष्कम्भस्यैव ग्रहणं, तद्ग्रहणे चायामोऽपि गृहीत एव, समचतुरस्रत्वात्तस्येति, तदेवं सर्वतश्चतुरङ्गुलप्रमाणमिदं सिद्धं, यत्तु 'तस्स णं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा तं च समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, इत्यनुयोगद्वारसूत्रे उक्तं तन्मतान्तरमवसेयं, तथाऽष्टभिः सुवर्णैर्निष्पन्नमष्टसुवर्णं, अष्टसुवर्णमूलद्रव्येण निष्पन्नमित्यर्थः, चकारो विशेषणसमुच्चये सर्वत्र, तथा विषं जङ्गमादिभेदभिन्नं तस्य हरणं, स्वर्णाष्टगुणानां मध्ये विषहरणस्य प्रसिद्धत्वात्, अस्य च तथाविधस्वर्णमयत्वादिति, अतुलं–तुलारहितमनन्यसदृशमित्यर्थः, चतुरस्रसंस्थानसंस्थितमिति तु विशेषणं पूर्वोक्ताधिकरणिदृष्टान्तेन भाव्यमिति, ननु अधिकरणिदृष्टान्ते भाव्यमाने नास्य पूर्वोक्ता चतुरंगुलतोपपद्येत अधिकरणेरधः संकुचितत्वेन विषमचतुरस्रत्वादित्याह—'समतल'मिति, समानि न न्यूनाधिकानि तलानि षडपि यस्य तत्तथा, अथैतदेव यच्छब्दगर्भितवाक्यद्वारा विशिनष्टि–यतः काकणीरत्नात् मानोन्मान [प्रमाण] योगाः–एते मानविशेषव्यवहारा लोके चरन्ति प्रवर्त्तन्ते इत्यर्थः, तत्र मानं धान्यमानं सेतिकाकुडवादि, रसमानं चतुःषष्टिकादि, उन्मानं कर्षपलादि खण्डगुडादिद्रव्यमानहेतुः, उपलक्षणात् सुवर्णादिमानहेतुः प्रतिमानमपि ग्राह्यं गुञ्जादि, किंविशिष्टास्ते व्यवहाराः?–सर्वजनानां–अधमर्णोत्तमर्णानां प्रज्ञापका–मेयद्रव्याणामियत्तानिर्णायकाः, अयमाशयो–यथा सम्प्रति आप्तजनकृतनिर्णयाङ्कं कुडवादिमानं जनप्रत्ययकं व्यवहारप्रवर्त्तकं च भवति तद्वच्चक्रवर्त्तिकाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५४]

दीप अनुक्रम [७८]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२२७॥

कारणिकपुरुषैः काकणीरत्नाङ्कितं तत्तादृशं भवेदित्यर्थः, यच्छब्दगर्भेणैव वाक्येन माहात्म्यान्तरमाह—नापि चन्द्रः तत्र तिमिरं नाशयतीति योजनीयं, न वा सूर्यः, अत्र इर्वाक्यालङ्कारे एवं सर्वत्र, नवाऽग्निर्दीपादिगतः न वा मणयस्तत्र तिमिरं नाशयन्ति, प्रकाशं कर्त्तुमलंभूष्णव इत्यर्थः, यत्रान्धकारं अन्धकारयुक्तत्वेनाभेदोपचारात् अन्धकारमत्रास्तीति अभ्रादित्वादप्रत्ययविधानाद्वा अन्धकारवतिगिरिगुहादौ तकत्—काकणीरत्नं दिव्यं—प्रभावयुक्तं तिमिरं नाशयति, अथ यदीदं प्रकाशयति तदा कियत् क्षेत्रं प्रकाशयतीत्याह—द्वादश योजनानि तस्य लेश्याः—प्रभा वियर्द्धन्ते, अमन्दाः सत्यः प्रकाशयन्तीत्यर्थः, किंविशिष्टा लेश्याः?—तिमिरनिकरप्रतिषेधिकास्तमिस्रादिगुहायाः पूर्वापरतो द्वादशयोजनविस्तारयोस्तासां प्रसरणात् 'रत्तिं च'त्ति प्रथमान्तयच्छब्दाध्याहारादर्थवशाद्द्वितीयभक्तिपरिणामाच्च यद्रत्नं रात्रौ चो वाक्यान्तरारम्भार्थः सर्वकालं स्कन्धावारे दिवससदृशं, यथा दिवसे आलोकस्तथा रात्रावपीत्यर्थः, आलोकं करोति, यस्य प्रभावेण चक्रवर्त्ती तमिस्रां गुहां अत्येति—प्रविशति सैन्यसहितो द्वितीयमर्द्धभरतमभिजेतुं उत्तरभरतं वशीकर्त्तुमित्यर्थः, न चात्रान्तरा यच्छब्दगर्भितवाक्यावतारेण वाक्यान्तरप्रवेशो नाम सूत्रदूषणमिति वाच्यं, आर्षत्वात् तस्यादुष्टत्वेन शिष्टव्यवहारात्, यथा आर्षे छन्दस्सु वर्णाद्याधिक्यादावपि न छन्दोभ्रष्टत्वदोषो महापुरुषोपज्ञत्वेनार्घत्वात् तथैव शिष्टव्यवहारात्, राजवरो—भरतः 'कागणिं'ति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् काकणीरत्नं गृहीत्वा—लात्वा तमिस्रागुहायाः पौरस्त्यपाश्चात्ययोः कटकयोः—भित्त्योः प्राकृतत्वाद् द्विवचने बहुवचनं, योजनान्तरितानि प्रमाणांगुल-

३वक्षस्कारे मणिरत्नं काकिणीरत्नेन मण्डलालेखनं च सू. ५४

॥२२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

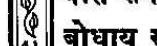
निष्पन्नयोजनमपान्तराले मुक्त्वा कृतानीत्यर्थः, अवगाहनापेक्षयोत्सेधांगुलनिष्पन्नपञ्चधनुःशतमानविष्कम्भाणि, वृत्तत्वाद् विष्कम्भग्रहणेनायामोऽपि तावानेवावगन्तव्यः, उत्सेधांगुलप्रमीयमाणावगाहनाकेन चक्रिणा हस्तात्तत्काकणीरत्नेन क्रियमाणत्वान्मण्डलानां, अयं च मण्डलावगाहः स्वस्वप्रकाश्ययोजनमध्ये एव गण्यते, अन्यथा ४९ मण्डलानामवगाहे पिण्डीक्रियमाणे गुहाभित्त्योरायाम उक्त प्रमाणाधिकप्रमाणः प्रसज्येतेति, अत एव च योजनोद्योतकराणि–योजनमात्रक्षेत्रप्रकाशकानि, यावन्मण्डलान्तरालं तावन्मण्डलप्रकाश्यं गुहाभित्तिक्षेत्रमित्यर्थः, चक्रस्य नेमिः–परिधिस्तत्संस्थानानि वृत्तानीत्यर्थः तथा चन्द्रमण्डलस्य प्रतिनिकाशानि–भास्वरत्वेन सदृशानि, एकोनपञ्चाशतं मण्डलानि–वृत्तहिरण्यरेखारूपाणि, काकणीरत्नस्य सुवर्णमयत्वात्, आलिखन् २–विन्यस्यन् २ अनुप्रविशति गुहामिति प्रकरणाद् ज्ञेयं, वीप्सावचनमाभीक्ष्ण्यद्योतनार्थं, मण्डलालिखनक्रमश्चायं–गुहायां प्रविशन् भरतः पाश्चात्यपान्थजनप्रकाशकरणाय दक्षिणद्वारे पूर्वदिक्कपाटे प्रथमं योजनं मुक्त्वा प्रथमं मण्डलमालिखति, ततो गोमूत्रिकान्यायेनोत्तरतः पश्चिमदिक्कपाटतोऽडुके तृतीययोजनादौ द्वितीयमण्डलमालिखति, ततस्तेनैव न्यायेन पूर्वदिक्कपाटतोऽडुके चतुर्थयोजनादौ तृतीयं, ततः पश्चिमदिग्भित्तौ पञ्चमयोजनादौ चतुर्थं ततः पूर्वदिग्भित्तौ षष्ठयोजनादौ पञ्चमं ततः पश्चिमदिग्भित्तौ सप्तमयोजनादौ षष्ठं ततः पूर्वदिग्भित्तौ अष्टमयोजनादौ सप्तमं एवं तावद् वाच्यं यावदष्टचत्वारिंशत्तममुत्तरदिग्द्वारसत्कपश्चिमदिक्कपाटे प्रथमयोजनादौ एकोनपञ्चाशत्तमं चोत्तरदिग्द्वारसत्कपूर्वदिक्कपाटे द्वितीययोजनादावालिखति, एवमेकस्यां भित्तौ पञ्च-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२२८॥

विंशतिरपरस्यां चतुर्विंशतिरित्येकोनपञ्चाशत्मण्डलानि भवन्ति, एतानि च किल गुहायां तिर्यग् द्वादश योजनानि प्रकाशयन्ति, ऊर्ध्वाधोभावेन चाष्टौ योजनानि, गुहाया विस्तरोच्चत्वस्य च क्रमेण एतावत एव भावात्, अग्रतः पृष्ठतश्च योजनं प्रकाशयन्तीति, ननु गोमूत्रिकाविरचनक्रमेण मण्डलालिखने कथमेषां योजनान्तरितत्वं?, यद्येकभित्तिगतमण्डलापेक्षया तर्हि योजनद्वयान्तरितत्वमापद्येत अन्यथा द्वितीयमण्डलस्यैकभित्तिगतत्वप्रसङ्गः तथा च सति गोमूत्रिकाभङ्गः, अन्यभित्तिगतमण्डलापेक्षया तु तिर्यक् साधिकद्वादशयोजनान्तरितत्वमिति, उच्यते, पूर्वभित्तौ प्रथमं मण्डलमालिखति, ततस्तत्सम्मुखप्रदेशापेक्षया योजनातिक्रमे द्वितीयमण्डलमालिखति, ततस्तत्सम्मुखप्रदेशापेक्षया योजनातिक्रमे पूर्वभित्तौ तृतीयमण्डलमालिखतीत्यादिक्रमेण मण्डलकरणात् गोमूत्रिकाकारत्वं योजनान्तरितत्वं च व्यक्तमेवेति सर्वं सुस्थं, अथ पञ्चाशद्योजनायामायां गुहायामेकोनपञ्चाशता मण्डलैर्यत्प्रकाशकरणमुक्तमित्यस्यार्थस्य सुखावबोधाय संक्षेपेण मण्डलपञ्चकस्य स्थापना दर्श्यते, यथा—

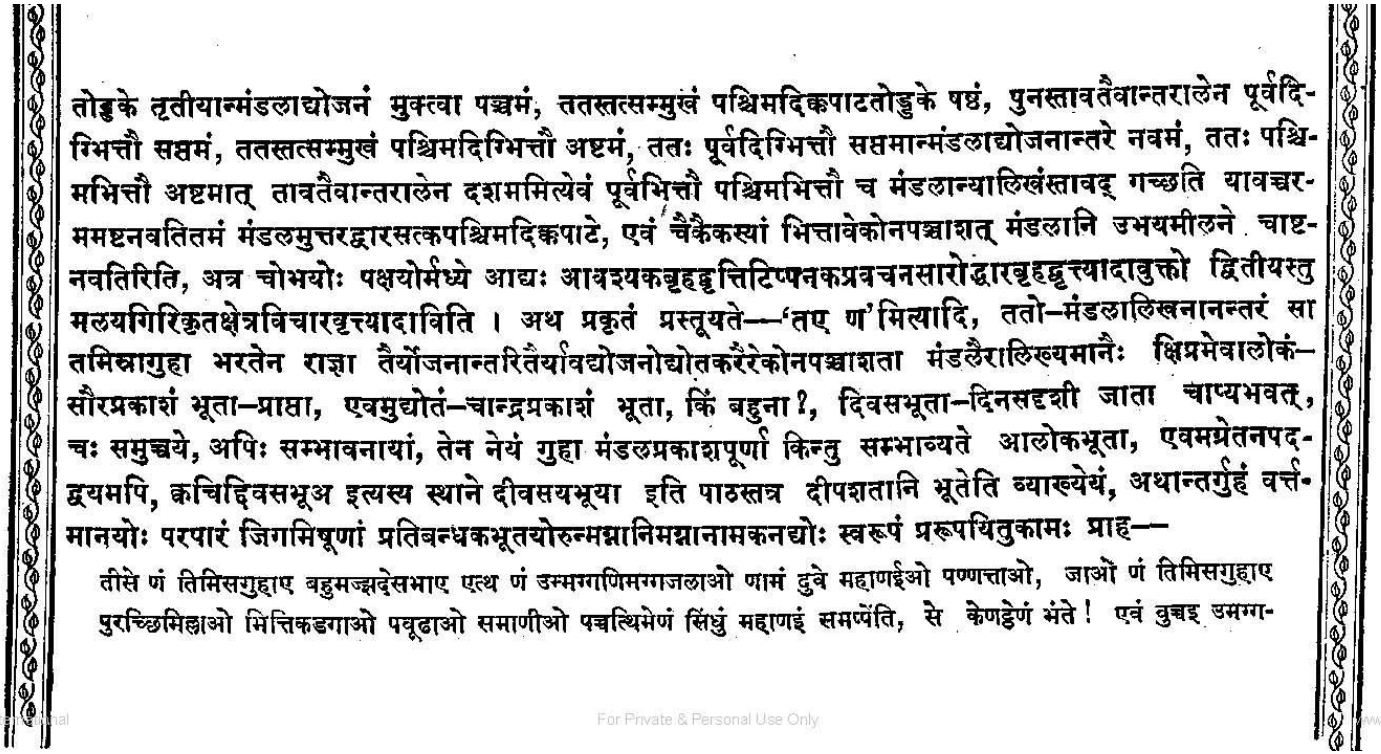


एवं षट्कोष्ठकपरिकल्पितषड्योजनक्षेत्रे एकस्मिन् पक्षे त्रीणि अन्यत्र तु द्वे इत्युभयमीलने पञ्च मण्डलानि भवन्ति, एवमनेन गोमूत्रिकामण्डलकविरचनक्रमेण पञ्चाशद्योजनायामायां गुहायामेकोनपञ्चाशतोऽपि मण्डलकानां स्थापना स्वयं ज्ञेयेति, अन्ये तु पूर्वदिक्कपाटे आदौ योजनं मुक्त्वा प्रथमं मण्डलं करोति, ततः पश्चिमदिक्कपाटे तत्सम्मुखं द्वितीयं, ततः पूर्वदिक्कपाटगतप्रथममंडलादुत्तरतो योजनं मुक्त्वा पूर्वदिक्कपाटतोऽङ्के तृतीयं, ततः पश्चिमदिक्कपाटतोऽङ्के तत्सम्मुखं चतुर्थं, ततः पूर्वदिक्कपाट-

३ वक्षस्कारे मणिरत्नं काकिणीरत्नेन मण्डलालेखनं च सू. ५४

॥२२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



तोडुके तृतीयान्मंडलाद्योजनं मुक्त्वा पञ्चमं, ततस्तत्सम्मुखं पश्चिमदिक्कपाटतोडुके षष्ठं, पुनस्तावतैवान्तरालेन पूर्वदिग्भित्तौ सप्तमं, ततस्तत्सम्मुखं पश्चिमदिग्भित्तौ अष्टमं, ततः पूर्वदिग्भित्तौ सप्तमान्मंडलाद्योजनान्तरे नवमं, ततः पश्चिमभित्तौ अष्टमात् तावतैवान्तरालेन दशममित्येवं पूर्वभित्तौ पश्चिमभित्तौ च मंडलान्यालिखंस्तावद् गच्छति यावच्चरममष्टनवतितमं मंडलमुत्तरद्वारसत्कपश्चिमदिक्कपाटे, एवं चैकैकस्यां भित्तावेकोनपञ्चाशत् मंडलानि उभयमीलने चाष्टनवतिरिति, अत्र चोभयोः पक्षयोर्मध्ये आद्यः आवश्यकबृहद्वृत्तिटिप्पनकप्रवचनसारोद्धारबृहद्वृत्त्यादावुक्तो द्वितीयस्तु मलयगिरिकृतक्षेत्रविचारवृत्त्यादाविति । अथ प्रकृतं प्रस्तूयते—'तए ण'मित्यादि, ततो–मंडलालिखनानन्तरं सा तमिस्रागुहा भरतेन राज्ञा तैर्योजनान्तरितैर्यावद्योजनोद्योतकरैरेकोनपञ्चाशता मंडलैरालिख्यमानैः क्षिप्रमेवालोकं–सौरप्रकाशं भूता–प्राप्ता, एवमुद्योतं–चान्द्रप्रकाशं भूता, किं बहुना?, दिवसभूता–दिनसदृशी जाता चाप्यभवत्, चः समुच्चये, अपिः सम्भावनायां, तेन नेयं गुहा मंडलप्रकाशपूर्णा किन्तु सम्भाव्यते आलोकभूता, एवमग्रेतनपदद्वयमपि, क्वचिद्दिवसभूअ इत्यस्य स्थाने दीवसयभूया इति पाठस्तत्र दीपशतानि भूतेति व्याख्येयं, अथान्तर्गुहं वर्त्तमानयोः परपारं जिगमिषूणां प्रतिबन्धकभूतयोरुन्मग्ननिमग्नानामकनद्योः स्वरूपं प्ररूपयितुकामः प्राह—

तीसे णं तिमिसगुहाए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं उम्मग्गणिमग्गजलाओ णामं दुवे महाणईओ पण्णत्ताओ, जाओ णं तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ पवूढाओ समाणीओ पचत्थिमेणं सिंधुं महाणइं समप्पेंति, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ उम्मग-

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ उन्मग्ना-निमग्ना स्वरुपम् वर्ण्यते

णिमग्गजलाओ महाणईओ ?, गोअमा ! जण्णं उम्मग्गजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा आसे वा हत्थी वा रहे वा जोहे वा मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं उम्मग्गजलामहाणई तिक्खुत्तो आहुणिअ २ एगंते थलंसि एडेइ, जण्णं णिमग्ग-जलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा जाव मणुस्से वा पक्खिप्पइ तण्णं णिमग्गजलामहाणई तिक्खुत्तो आहु-णिअ २ अंतो जलंसि णिमज्जावेइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ–उम्मग्गणिमग्गजलाओ महाणईओ, तए णं से भरहे राया चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगराय० महया उक्किट्ठसीहणाय जाव करेमाणे २ सिंधूए महाणईए पुरच्छिमिल्ले णं कूडे णं जेणेव उम्म-ग्गजला महाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वद्धइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! उम्मग्गणिम-ग्गजलासु महाणईसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे अयलमकंपे अभेज्जकवए सालंवणबाहाए सव्वरयणामए सुहसंकमे करेहि करेत्ता मम एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि, तए णं से वद्धइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए जाव विणएणं पडिसुणेइ २ त्ता खिप्पामेव उम्मग्गणिमग्गजलासु महाणईसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे जाव सुहसंकमे करेइ २ त्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणइ, तए णं से भरहे राया सखंधावारबले उम्मग्गणिमग्गजलाओ महाणईओ तेहिं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठेहिं जाव सुहसंकमेहिं उत्तरइ, तए णं तीसे तिमिस्सगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवा-डा सयमेव महया २ कोंचारवं करेमाणा सरसरस्सगाइं २ ठाणाइं पच्चोसक्कित्था (सूत्रं ५५)

'तीसे ण'मित्यादि, तस्यास्तमिस्रागुहायाः बहुमध्यदेशभागे दक्षिणद्वारतस्तोडुकसमेनैकविंशतियोजनेभ्यः परतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरद्वारतस्तोडुकसमेनैकविंशतियोजनेभ्योऽर्वाक् च उन्मग्नजलानिमग्नजलानाम्न्यौ महानद्यौ प्रज्ञप्ते, ये तमिस्रागुहायाः पौरस्त्यात् भित्ति कटकाद्-भित्तिप्रदेशात् प्रव्यूढे निर्गते–सत्यौ पाश्चात्येन कटकेन विभिन्नेन सिन्धुमहानदीं समाप्नुतः प्रविशत इत्यर्थः, नित्यप्रवृत्तत्वाद्वर्त्तमाननिर्देशः, अथानयोरन्वर्थं पृच्छन्नाह–'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते उन्मग्नजलनिमग्नजले महानद्यौ?, गौतम! यत् णमिति प्राग्वत् उन्मग्नजलायां महानद्यां तृणं वा पत्रं वा काष्ठं वा शर्करा वा–दृषत्खण्डः, अत्र प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्ययः, अश्वो वा हस्ती वा रथो वा योधो वा–सुभटः सेनायाः प्रकरणाच्चतुर्णां सेनाङ्गानां कथनं मनुष्यो वा प्रक्षिप्यते तत् तृणादिकं उन्मग्नजला महानदी त्रिकृत्वः–त्रीन् वारान् आधूय २–भ्रमयित्वा २ जलेन सदाऽऽहत्याहत्येत्यर्थः एकान्ते–जलप्रदेशाद्वीयसि स्थाने निर्जलप्रदेशे 'एडेइ'त्ति छर्दयति, तीरे प्रक्षिपतीत्यर्थः, तुम्बीफलमिव शिला उन्मग्नजले उन्मज्जतीत्यर्थः, अत एवोन्मज्जति शिलादिकमस्मादिति उन्मग्नं, 'कृद् बहुल'मिति वचनात् अपादाने क्तप्रत्ययः, उन्मग्नं जलं यस्यां सा तथा, अथ द्वितीयाया नामान्वर्थः–तत्पूर्वोक्तं वस्तुजातं निमग्नजला महानदी त्रिकृत्वः आधूयाधूय अन्तर्जलं किं? मज्जयति शिलेव तुम्बीफलं निमग्नाजले निमज्जतीत्यर्थः, अत एव निमज्जयत्यस्मिन् तृणादिकमखिलं वस्तुजातमिति निमग्नं, बहुलवचनादधिकरणे क्तप्रत्ययः, निमग्नं जलं यस्यां सा तथा, अथैतन्निगमयति–'से तेणट्ठेण'मित्यादि, सुगमं, अनयोश्च यथाक्रममुन्मज्जकत्वे निमज्जकत्वे वस्तुस्वभाव एव शरणं, तस्य चातर्कणीयत्वात्,इमे च द्वे अपि त्रियोजनविस्तरे गुहाविस्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५५]

दीप अनुक्रम [७९]

रायामे अन्योऽन्यं द्वियोजनान्तरे बोध्ये,अनयोर्यथा गुहामध्यदेशवर्त्तित्वं तथा सुखावबोधाय स्थापनया दर्श्यते, यथा—

[ ] ४ १७ [३|२|३] १७ ४ [ ]

[ ] ४ १७ [ ]

अथ दुरवगाहे नद्यौ विबुध्य भरतो यच्चकार तदाह–'तए ण' मित्यादि, ततः स भरतो राजा चक्ररत्नदेशितमार्गः'अणेगराये'त्यादि सूत्रं व्याख्या च प्राग्वत् सिन्ध्वा महानद्याः पौरस्त्ये कूले–पूर्वतटे उभयत्रापि णंशब्दो वाक्यालङ्कारे,अयमर्थः–तमिस्राया अधो वहन्ती सिन्धुस्तमिस्रापूर्वकटकमवधीकृत्यैवेति,उन्मग्नाऽपि पूर्वकटकान्निर्गताऽस्तीत्युभयोरेकस्थानतासूचनार्थकमिदं सूत्रं,यत्रैवोन्मग्नजला महानदी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च वर्द्धकिरत्नं शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीदिति, यदवादीत् तदाह–'खिप्पामेव'त्ति क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय! उन्मग्ननिमग्नजलयोर्महानद्योः अनेकानि स्तम्भशतानि तेषु सन्निविष्टौ–सुसंस्थितौ अत एवाचलौ महाबलाक्रान्तत्वेऽपि न स्वस्थानाच्चलतः अकम्प्रौ–दृढौ,सकम्पसेतुबन्धे तु तितीर्षूणां सशङ्कं चलनं स्यादिति दृढतरनिर्माणावित्यर्थः, अथवा अचलो–गिरिस्तद्वत् अकम्प्रौ,मकारोऽलाक्षणिकः,अभेद्यकवचाविवाभेद्यकवचौ अभेद्यसन्नाहाविति, जलादिभ्यो न भेदं यात इत्यर्थः,नन्वनन्तरोक्तविशेषणाभ्यामुत्तरतां तदुपरि पातशङ्का न स्यात्तथापि उभयपार्श्वयोर्जलपातशङ्का नापनीता भवतीत्याह–सालम्बने–उपरि गच्छतामवलम्बनभूतेन दृढतरभित्तिरूपेणालम्बनेन सहिते बाहे–उभयपार्श्वौ ययोस्तौ तथा, सर्वात्मना रत्नमयौ आदिदेवचरित्रप्रवचनसारोद्धारवृत्त्योस्तु क्रमेण पाषाणमयकाष्ठमयौ तावुक्तौ स्त इति, तथा सुखेन संक्रमः–पादविक्षेपो यत्र तौ तथा, ईदृशौ संक्रमौ–सेतू कुरुष्व कृत्वा च मामेतामाज्ञप्तिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयेति। अथ स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५५] दीप अनुक्रम [७९]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

किं चकारेत्याह—'तए णं'मित्यादि, अनुवादसूत्रत्वात् सर्वं प्राग्वत्, ननु उन्मग्नजलाजलस्योन्मज्जकत्वस्वभावत्वेन कथं तत्र संक्रमार्थकशिलास्तम्भादिन्यासः सुस्थितो भवति?, स च दीर्घपट्टशालाकारो न च जलोपरिकाष्ठादिमयः सम्भवति, तस्यासारत्वेन भारासहत्वात्, उच्यते, वर्द्धकिरत्नकृतत्वेन दिव्यशक्तेरचिन्त्यशक्तिकत्वात्, अनेन चा चक्रिराज्यपरिसमाप्तेः सर्वोऽपि लोक उत्तरति, गुहा च तावन्तं कालमपावृतैवास्ते मण्डलान्यपि तथैव तिष्ठन्ति, उपरते तु चक्रिणि सर्वमुपरमत इति प्रवचनसारोद्धारवृत्तेरभिप्रायः, त्रिषष्टीयाजितचरित्रे तु "उद्घाटितं गुहाद्वारं, गुहान्तर्मण्डलानि च । तावत्तान्यपि तिष्ठन्ति, यावज्जीवति चक्रभृत् ॥ १ ॥" इत्युक्तमस्ति । 'तए णं'मित्यादि, ततः स भरतो राजा स्कन्धावाररूपबलसहितस्ताभ्यां सङ्क्रमाभ्यां उन्मग्ननिमग्नजले महानद्यौ उत्तरति—परपारं गच्छति, एवं उत्तरतो गच्छति राजराजे उत्तरद्वारे यज्जातं तदाह—'तए णं'मित्यादि, ततो—नद्यतिक्रमणानन्तरं तस्यास्तमिस्रागुहाया उत्तराहस्य द्वारस्य कपाटौ स्वयमेव सेनानीदण्डरत्नाघातमन्तरेणेत्यर्थः महया २ इति सूत्रदेशेन पूर्वसूत्रस्मरणं तेन महया २ सद्देणमिति बोध्यं कौञ्चारवं कुर्वाणौ सरस्सरत्ति कुर्वन्तौ च स्वके स्वके स्थाने प्रत्यवाष्वष्किषातां व्याख्या तु प्राग्वत्, ननु यदि दाक्षिणात्यद्वारकपाटौ सेनापतिप्रयोगपूर्वकमुद्घटेते तथा इमावपि कथं न तथा ?, उच्यते, एकशः सेनापतिसत्यापितकपाटोद्घाटनविधिसन्तुष्टगुहाधिपसुरानुकूलाशयेन द्वितीयपक्षकपाटौ स्वयमेवोद्घटेते इति ॥ अथोत्तरभरतार्द्धविजयं विवक्षुस्तत्रत्यविजेतव्यजनस्वरूपमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ उत्तरार्ध-भरतक्षेत्रस्य विहाय-वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरड्ढभरहे वासे बहवे आवाडाणामं चिलाया परिवसंति अड्ढा दित्ता वित्ता विच्छिण्णविउलभवणसय-णासणजाणवाहणाइन्ना बहुधणबहुजायरूवरययया आओगपओगसंपउत्ता विच्छड्डिअपउरभत्तपाणा बहुदासीदासगोमहिसगवेलग-प्पभूआ बहुजणस्स अपरिभूआ सूरा वीरा विक्कंता विच्छिण्णविउलबलवाहणा बहुसु समरसंपराएसु लद्धलक्खा यावि होत्था, तए णं तेसिमावाडचिलायाणं अण्णया कयाई विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भवित्था, तंजहा—अकाले गज्जिअं अकाले विज्जुआ अकाले पायवा पुप्फंति अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ णच्चंति, तए णं ते आवाडचिलाया विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भूयाइं पासंति पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिआ! अम्हं विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भूआइं तंजहा—अकाले गज्जिअं अकाले विज्जुआ अकाले पायवा पुप्फंति अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ णच्चंति, तं ण णज्जइ णं देवा-णुप्पिआ! अम्हं विसयस्स केइ मन्ने उवद्दवे भविस्सईत्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा चिंतासोगसागरं पविट्ठा करयल पल्हत्थमुहा अट्टज्झा-णोवगया भूमिगयदिट्ठिआ झिआयंति, तए णं से भरहे राया चक्करयणदेसिअमग्गे जाव समुद्दरवभूअं पिव करेमाणे २ तिमिस-गुहाओ उत्तरिल्लेणं दारेणं णीति ससिव्व मेहंधयारणिवहा, तए णं ते आवाडचिलाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं एज्जमाणं पासंति २ त्ता आसुरुत्ता रुट्ठा चंडिक्किआ कुविआ मिसिमिसेमाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिआ! केइ अप्पत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे हिरिसिरिपरिवज्जिए जे णं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ तं तहा णं घत्तामो देवाणुप्पिआ! जहा णं एस अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं णो हव्वमागच्छइत्तिकट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए ए-अमट्ठं पडिसुणेंति २ त्ता सण्णद्धबद्धवम्मियकवआ उप्पीलिअसरासणपट्टिआ पिणद्धगेविज्जा बद्धआविद्धवीमलवरचिंधपट्टा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [८०]

गहिआभरहप्पहरणा जेणेव भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भरहस्स रण्णो अग्गाणीएणं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था, तए णं ते आवाडचिलाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं हयमहिअपवरवीरघाइअविवडिअचिंधद्धयपडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति । (सूत्रं ५६)

'तेणं कालेणं तेणं समएण'मित्यादि, तस्मिन् काले–तृतीयारकप्रान्ते तस्मिन् समये–यत्र भरत उत्तरभरतार्द्धविजिगीषया तमिस्रातो निर्याति, उत्तरार्धभरतनाम्नि वर्षे–क्षेत्रे आपाता इति नाम्ना किराताः परिवसन्ति, आढ्या–धनिनः दृप्ता–दर्पवन्तः वित्ताः–तज्जातीयेषु प्रसिद्धाः विस्तीर्णविपुलानि–अतिविपुलानि भवनानि येषां ते तथा शयनासनानि प्रतीतानि यानानि–रथादीनि वाहनानि–अश्वादीनि आकीर्णानि–गुणवन्ति येषां ते तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, बहु–प्रभूतं धनं–गणिमधरिममेयपरिच्छेद्यभेदात् चतुर्विधं येषां ते तथा, बहु–बहुनी जातरूपरजते–स्वर्णरूप्ये येषां ते तथा ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, आयोगो–द्विगुणादिवृद्ध्यर्थं प्रदानं प्रयोगश्च कलान्तरं तौ संप्रयुक्तौ–व्यापारितौ यैस्ते तथा, विच्छर्दिते–त्यक्ते बहुजनभोजनदानेनावशिष्टोच्छिष्टसम्भवात् सञ्जातविच्छर्दे वा–सविस्तारे बहुप्रकारत्वात् प्रचुरे–प्रभूते भक्तपाने–अन्नपानीये येषां ते तथा, बहवो दासीदासाः गोमहिषाश्च प्रतीताः गवेलका–उरभ्राः एते प्रभूता येषां ते तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, बहुजनेनापरिभूताः, सूत्रे षष्ठी आर्षत्वात्, सूराः प्रतिज्ञातनिर्वहणे दाने वा वीराः संग्रामे विक्रान्ता–भूमण्डलाक्रमणसमर्था विस्तीर्णविपुले–अतिविपुले बलवाहने–सैन्यगवादिके दुःखानाकुलत्वात् येषां ते तथा, बहुषु समरेषु–सम्परायेषु, अनेन चातिभयानकत्वं सूचितं, समररूपेषु संपरायेषु–युद्धेषु लब्धलक्षा–अमोघहस्ताश्चाप्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५६]

दीप अनुक्रम [८०]

भवन्, सामान्यतो युद्धेषु च वल्गनादिरूपेषु केचन लब्धलक्षा भवेयुः परं तद्व्यवच्छेदाय समरेष्वित्युक्तं, अथ यत्तेषां मंडले जातं तदाह—'तए ण'मित्यादि, तत इति—कथान्तरप्रबन्धे तेषामापातकिरातानां अन्यदा कदाचित्—चक्रवर्त्त्यागमनकालात्पूर्वं, अत्र तेषामित्येतावतैवोक्तेन प्रकरणाद् विशेष्यप्राप्तौ यदापातकिरातानामित्युक्तं तद्विस्मरणशीलानां विनेयानां व्युत्पादनायेति, विषये—देशे बहूनि औत्पातिकशतानि—उत्पातसत्कशतानि, अरिष्टसूचकनिमित्तशतानीत्यर्थः, प्रादुरभूवन्—प्रकटीबभूवुः, तद्यथा—अकाले प्रावृट् कालव्यतिरिक्तकाले गर्जितं अकाले विद्युतः अकाले—स्वस्वपुष्पकालव्यतिरिक्तकाले पादपाः पुष्प्यन्ति अभीक्ष्णं २—पुनः २ आकाशे देवता—भूतविशेषा नृत्यन्ति, अथ ते किं चक्रुरित्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः—उत्पातभवनानन्तरं ते आपातकिराता विषये बहूनि औत्पातिकशतानि प्रादुर्भूतानि पश्यन्ति, दृष्ट्वा चान्योऽन्यं शब्दयन्ति—आकारयन्ति, शब्दयित्वा चैवमवादिषुः, किमवादिषुः कीदृशाश्च तेऽभूवन्नित्याह—'एवं खलु'इत्यादि, एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण खलुर्निश्चये देवानुप्रिया—ऋजुस्वभावा अस्माकं विषये बहूनि औत्पातिकशतानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा—अकाले गर्जितं इत्यादि प्राग्वत्, तन्न ज्ञायते देवानुप्रिया! अस्माकं विषयस्य को मन्ये इति वितर्कार्थे निपातः, तेन मन्ये इति सम्भावयामः उपद्रवो भविष्यति इतिकृत्वा अपहृतमनःसंकल्पा—विमनस्काः चिन्तया—राज्यभ्रंशधनापहारादिचिन्तनेन यः शोक एव दुष्पारत्वात् सागरस्तत्र प्रविष्टाः करतले पर्यस्तं—निवेशितं मुखं यैस्ते तथा आर्त्तध्यानोपगताः भूमिगतदृष्टिका ध्यायन्ति, आपतिते सङ्कटे किं कर्त्तव्यमिति चिन्तयन्तीति, अथ

॥२३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तूयमानं भरतस्य चरितमाह—'तए ण'मित्यादि, ततस्तेषामुत्पातचिन्तनानन्तरं स भरतो राजा चक्ररत्नादेशित-मार्गो यावत् समुद्रवभूतामिव गुहां कुर्वन् २ तमिस्रागुहातः औत्तराहेण द्वारेण निरेति–निर्याति शशीव मेघान्ध-कारनिवहात्। 'तए ण'मित्यादि, ततो गुहातो निर्गमानन्तरं ते आपातकिराता भरतस्य राज्ञः अग्रानीकं–सैन्याग्रभागं 'एज्जमाणंति इयत्, आगच्छत् पश्यति दृष्ट्वा च आसुरुत्ता इत्यादि पदपंचकं प्राग्वत् अन्योऽन्यं शब्दयन्ति शब्द-यित्वा चैवमवादिषुरिति, किमवादिषुरित्याह–'तए ण'मित्यादि, एष देवानुप्रियाः ! कश्चिदज्ञातनामकोऽप्रार्थितप्रार्थ-कादिविशेषणविशिष्टो वर्त्तते योऽस्माकं विषयस्य–देशस्योपरि वीर्येणात्मशक्त्या 'हव्वं'ति शीघ्रमागच्छति, तत्तस्मा-त्तथा णमिति–इमं भरतराजानमित्यर्थः 'घत्तामो'त्ति क्षिपामो दिशो दिशि विकीर्णसैन्यं कुर्म्म इत्यर्थः, यथा एषोऽस्माकं विषयस्योपरि वीर्येण नो शीघ्रमागच्छेत्, सूत्रे सप्तम्यर्थे वर्त्तमानानिर्देशः प्राकृतत्वात्, एतस्मिन् समये किं जात-मित्याह—'इतिकट्टु'इत्यादि, इति–अनन्तरोदितं कृत्वा–विचिन्त्यान्योऽन्यस्यान्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति–ओमिति प्रतिपद्यन्ते, प्रतिश्रुत्य च सन्नद्धबद्धेत्यादिपदानि प्राग्वत् यत्रैव भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकेन सार्धं संप्रलग्नाश्चाप्यभूवन्, योद्धुमिति शेषः, युद्धाय प्रवृत्ता इत्यर्थः, अथ ते किं कुर्वन्ती-त्याह–'तए णं ते आवाडचिलाया'इत्यादि, ततो युद्धप्रवृत्त्यनन्तरं ते आपातकिराता भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकं हताः केचन प्राणत्याजनेन मथिताः केचन मानमथनेन घातिताश्च केचन प्रहारदानेन प्रवरवीराः–प्रधानयोधा यत्र तत्तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, विपतिताः–स्वस्थानतो भ्रष्टाश्चिह्नप्रधाना ध्वजा–गरुडध्वजादयः पताकाश्च–तदितरध्वजा यत्र तत्तथा ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, कृच्छ्रेण–महता कष्टेन प्राणान् उपगतं–प्राप्तं कथमपि धृतप्राणमितियावत्, दिशः सकाशादपरदिशि–स्वाभिमतदिक्त्याजनेनापरस्यां दिशि प्रक्षिप्य इति शेषः प्रतिषेधयन्ति–युद्धान्निवर्त्तयन्तीत्यर्थः ॥ इतो भरतसैन्ये किं जातमित्याह—

तए णं से सेणावलस्स णेआ वेढो जाव भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं आवाडचिलाएहिं हयमहियपवरवीर जाव दिसो दिसं पडिसेहिअं पासइ २ त्ता आसुरुत्ते रुट्ठे चंडिक्किए कुविए मिसिमिसेमाणे कमलामेलं आसरयणं दुरूहइ २ त्ता तए णं तं असीइमंगुलमूसिअं णवणउइमंगुलपरिणाहं अट्ठसयमंगुलमायतं बत्तीसमंगुलमूसिअसिरं चउरंगुलकन्नागं वीसइअंगुलबाहागं चउरंगुलजाणूकं सोलसअंगुलजंघागं चउरंगुलमूसिअखुरं मुत्तोलीसंवत्तवलिअमज्झं ईसिं अंगुलपणयपट्ठं संणयपट्ठं संगयपट्ठं सुजायपट्ठं पसत्थपट्ठं विसिट्ठपट्ठं एणीजाणुण्णयवित्थयथद्धपट्ठं वित्तलयकसणिवायअंकेल्लणपहारपरिवज्जिअंगं तवणिज्जथासगाहिलाणं वरकणगसुफुल्लथासगविचित्तरयणरज्जुपासं कंचणमणिकणगपयरगाणाविहघंटिआजालमुत्तिआजालएहिं परिमंडियेणं पट्टेण सोभमाणेण सोभमाणं कक्केयणइंदनीलमरगयमसारगल्लमुहमंडणरइअं आविद्धमाणिक्कसुत्तगविभूसियं कणगामयपउमसुकयतिलकं देवमइविकप्पिअं सुरवरिंदवाहणजोग्गावयं सुरूवं दूइज्जमाणपंचचारुचामरामेलगं धरेंतं अणब्भाहं अभेलणयणं कोकासिअबहुलपत्तलच्छं सयावरणनवकणगतविअतवणिज्जतालुजीहासयं सिरिआमिसेअघोणं पोक्खरपत्तमिव सलिलबिंदुजुअं अचंचलं चंचलसरीरं चोक्खचरग-

॥२३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ अश्वरत्न आदि १४ रत्नानाम् स्वरुपम् तत् कार्याणि सह वर्ण्यते

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा दीप अनुक्रम [८१-८३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

परिवायगोविव हिलीयमाणं २ खुरचलणचचपुडेहिं धरणिअलं अभिहणमाणं २ दोवि अ चलणे जमगसमगं मुहाओ विणिग्गमंतं व सिग्घयाए मुलाणतंतुउद्दगमवि णिस्साए पक्कमंतं जाइकुलरूवपचयपसत्थबारसावत्तगविसुद्धलक्खणं सुकुलप्पसूअं मेहाविभद्रयविणीअं अणुअतणुअसुकुमाललोमनिद्धच्छविं सुजायअमरमणपवणगरुलजइणचवलसिग्घगामिं इसिमिव खंतिखमए सुसीसमिव पचक्खयाविणीयं उद्दगहुतवहपासाणपंसुकद्दमससक्करसवालुइल्लतडकडगविसमपब्भारगिरिदरीसुलंघणपिल्लणणित्थारणासमत्थं अचंडपाडियं दंडयातिं अणंसुपातिं अकालतालुं च कालहेसिं जिअनिद्दंगवेसगं जिअपरिसहं जचजातीअं मल्लिहाणिं सुगपत्तसुवण्णकोमलं मणाभिरामं कमलामेलं णामेणं आसरयणं सेणावई कमेण समभिरूढे कुवलयदलसामलं च रयणिकरमंडलनिभं सत्तुजणविणासणं कणगरयणदंडं णवमालिअपुप्फसुरहिगंधिं णाणामणिलयभत्तिचित्तं च पहोतमिसिमिसिंततिक्खधारं दिव्वं खग्गरयणं लोके अणोवमाणं तं च पुणो बंसरुक्खसिंगट्ठिदंतकालायसविपुललोहदंडकघरवइरभेदकं जाव सव्वत्थअप्पडिहयं किं पुण देहेसु जंगमाणं -पण्णासंगुलदीहो सोलस से अंगुलाइं विच्छिण्णो । अद्धंगुलसोणीको जेट्ठपमाणो असी भणिओ ॥ १ ॥ असिरयणं णरवइस्स हत्थाओ तं गहिऊण जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आवाडचिलाएहिं सद्धिं संपलग्गे आवि होत्था ॥ तए णं से सुसेणे सेणावइ ते आवाडचिलाए हयमहिअपवरवीरघाइअजावदिसोदिसिं पडिसेहेइ (सूत्रं ५७)

'तए ण'मित्यादि, ततः–स्वसैन्यप्रतिषेधनादनन्तरं सेनाबलस्य–सेनारूपस्य बलस्य नेता–स्वामी वेष्टकः–वस्तुविषयवर्णकोऽत्र सेनानीसत्कः संपूर्णः पूर्वोक्तो ग्राह्यः यावद् भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकं आपातकिरातैर्यावत्प्रतिषेधितं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२३४॥

पश्यति दृष्ट्वा च आशुरुक्षादिविशेषणविशिष्टः कमलापीडं कमलामेलं वा नामाश्वरत्नमारोहति, अथ प्रस्तावागतं तद्वर्ण-नमाह–'तए णं तं असीइमंगुलमूसिअं इत्यारभ्य सेणावई कमेण समभिरूढे' इत्येतदन्तेन सूत्रेण, पदयोजना तत इति क्रियाक्रमसूचकं वचनं तं प्रसिद्धगुणं नाम्ना कमलामेलं अश्वरत्नं सेनापतिः क्रमेण–सन्नाहादिपरिधानविधिना सम-भिरूढ–आरूढः, किंविशिष्टमित्याह—अशीत्यङ्गुलानि उच्छ्रितं, अंगुलं चात्र मानविशेषः, नवनवत्यंगुलानि–एको-नशतांगुलप्रमाणः परिणाहो–मध्यपरिधिर्यस्य तत्तथा, अष्टोत्तरशतांगुलानि आयतं–दीर्घं, सर्वत्र मकारोऽलाक्षणिकः, तुरगाणां तुङ्गत्वं खुरतः प्रारभ्य कर्णावधि परिणाहः पृष्ठपार्श्वोदरान्तरावधि आयामो मुखादापुच्छमूलं, यदाह परासरः– "मुखादापेचकं दैर्घ्यं, पृष्ठपार्श्वोदरान्तरात् । आनाह उच्छ्रयः पादाद्, विज्ञेयो यावदासनम् ॥ १ ॥" तत्रोच्चत्वस-ङ्ख्यामेलनाय साक्षादेव सूत्रकृदाह–'बत्तीस'मित्यादि, द्वात्रिंशदंगुलोच्छ्रितशिरस्कं चतुरंगुलप्रमाणकर्णकं, ह्रस्वकर्णत्वस्य जात्यतुरगलक्षणत्वात्, अनेन कर्णयोरुच्चत्वेनास्य स्थिरयौवनत्वमभिहितं शंकुकर्णत्वात्, हयानां यौवनपाते वनिता-स्तनयोरिव अनयोः पातः स्यात्, दीर्घत्वं चार्षत्वात्, अत्र योजनायाः क्रमप्राधान्येन पूर्वं कर्णविशेषणं ज्ञेयं पश्चा-च्छिरसः, अश्वश्रवसो मूर्ध्न उच्चतरत्वात्, विंशत्यङ्गुलप्रमाणा बाहा–शिरोभागाधोवर्त्तीं जानुनोरुपरिवर्त्तीं प्राक्चरण-भागो यस्य तत्तथा, चतुरंगुलप्रमाणं जानु–बाहुजंघासंधिरूपोऽवयवो यस्य तत्तथा, तथा षोडशांगुलप्रमाणा जंघा-जान्वधोवर्तीं खुरावधिरवयवो यस्य तत्तथा, चतुरंगुलोच्छ्रिताः खुराः–पादतलरूपा अवयवा यस्य तत्तथा, एषामवयवा-

३ वक्षस्कारे अश्वरत्नस्व-ङ्गरत्ने सू. ५७

॥२३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा दीप अनुक्रम [८१-८३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

नामुच्चत्वमीलने सर्वसङ्ख्या पूर्वोक्ता अशीत्यंगुलरूपा, मकारः सर्वत्रालाक्षणिकः, यत्तु श्रेष्ठाश्वमानमाश्रित्य लौकिकपारासरग्रन्थे 'जघन्यमध्यश्रेष्ठानामश्वानामायतिर्भवेत् । अंगुलानां शतं हीनं, विंशत्या दशभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥ परिणाहोऽङ्गुलानि स्यात्, सप्ततिः सप्तसप्ततिः । एकाशीतिः समासेन, त्रिविधं स्याद् यथाक्रमम् ॥ २ ॥ तथा षष्टिश्चतुःषष्टिरष्टषष्टिः समुच्छ्रयः । द्विपञ्चसप्तकयुता, विंशतिः स्यान्मुखायतिः ॥ ३ ॥" इत्यत्र सप्तनवत्यंगुलान्यायतिः एकाशीत्यंगुलानि परिणाहः अष्टषष्ट्यंगुलानि समुच्छ्रयः सप्तविंशत्यंगुलानि मुखायतिरित्युक्तमस्ति तदपरश्रेष्ठहयानाश्रित्य न तु हयरत्नमाश्रित्य, दृष्टश्चायं विशेषः पुरुषोत्सेधे सामुद्रिके उत्तमपुरुषाणामष्टोत्तरशतांगुलान्युत्सेधः उत्तमोत्तमानां तु विंशत्युत्तरशतांगुलानि, अनेनास्य प्रमाणोपेतत्वं सूचितं, सम्प्रत्यवयवेषु लक्षणोपेतत्वं सूचयति–मुक्तोलीनाम अधउपरि च सङ्कीर्णा मध्ये त्वीषद्विशाला कोष्ठिका तद्वत् संवृत्तं–सम्यग्वर्तुलं वलितं–वलनस्वभावं न तु स्तब्धं मध्यं यस्य तत्तथा परिणाहस्य मध्यपरिधिरूपस्यात्रैव चिन्त्यमानत्वादुचितेयमुपमा, ईषदंगुलं यावत् प्रणतं–नन्तुमारब्धं अतिप्रणतस्योपवेष्टुर्दुःखावहत्वात् पृष्ठं–पर्याणस्थानं यस्य तत्तथा आरोहकसुखावहपृष्ठकमित्यर्थः, सम्यग्–अधोऽधः क्रमेण नतं पृष्ठं यस्य तत्तथा, सङ्गतं–देहप्रमाणोचितं पृष्ठं यस्य तत्तथा, सुजातं–जन्मदोषरहितं पृष्ठं यस्य तत्तथा, प्रशस्तं–शालिहोत्रलक्षणानुसारि पृष्ठं यस्य तत्तथा, किं बहुना?, विशिष्टपृष्ठं–प्रधानपृष्ठमितियावत्, उक्तं पृष्ठे पर्याणस्थानवर्णनं, अथ तत्रैवावशिष्टभागं विशिनष्टि–एणी–हरिणी तस्या जानुवदुन्नतं उभयपार्श्वयोर्विस्तृतं च चरमभागे स्तब्धं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

॥२३५॥

सुदृढं पृष्ठं यस्य तत्तथा, वेत्रो–जलवंशः लता–कम्बा कशा–चर्म्मदण्डस्तेषां निपातैस्तथा अंकेलणप्रहारैः–तर्जनकविशेषाघातैश्च परिवर्जितं अश्ववारमनोऽनुकूलचारित्वात् अङ्गं यस्य तत्तथा, तपनीयमयाः स्थासका–दर्पणाकारा अश्वालङ्कारविशेषा यत्र तदेवंविधं अहिलाणं–मुखसंयमनविशेषो यस्य तत्तथा, वरकनकमयानि सुष्ठु–शोभनानि पुष्पाणि स्थासकाश्च तैर्विचित्रा रत्नमयी रज्जुः पार्श्वयोः–पृष्ठोदरान्तवर्त्यवयवविशेषयोर्यस्य तत्तथा,बध्यन्ते हि पट्टिकाः पर्याणदृढीकरणार्थमश्वानामुभयोः पार्श्वयोरिति, काञ्चनयुतमणिमयानि केवलकनकमयानि च प्रतरकाणि–पत्रिकाभिधानभूषणानि अन्तरान्तरा येषु तानि तथाभूतानि नानाविधानि घण्टिकाजालानि मौक्तिकजालकानि च तैः परिमण्डितेन पृष्ठेन शोभमानेन शोभमानं कर्केतनादिरत्नमयं मुखमण्डनार्थं रचितं आविद्धमाणिक्यं–प्रीतमाणिक्यं सूत्रकं–हयमुखभूषणविशेषस्तेन विभूषितं कनकमयपद्मेन सुष्ठु कृतं तिलकं यस्य तत्तथा, देवमत्या–स्वर्गिचातुर्येण विविधप्रकारेण कल्पितं–सज्जितं सुरवरेन्द्रवाहनम्–उच्चैःश्रवा हयस्तस्य योग्या–मण्डलीकरणाभ्यासस्तस्या 'व्रज गता'वित्यस्याच्प्रत्यये व्रजं–प्रापकं, ये गत्यर्थास्ते प्राप्त्यर्था इति वचनात् अयं भावः–यादृशं खुरलीश्रममुच्चैःश्रवाः करोति तादृशमयमपि, अत्र षष्ठ्यर्थे द्वितीया प्राकृतत्वात् , तथा सुरूपं–सुन्दरं द्रवन्ति–इतस्ततो दोलायमानानि सहजचञ्चलाङ्गत्वाद् गलभालमौलिकर्णद्वयमूलविनिवेशितत्वेन पञ्चसङ्ख्याकानि यानि चारूणि चामराणि तेषां मेलक–एकस्मिन् मूर्द्धनि सङ्गमस्तं धरद्–वहत् , चामरा इत्यत्र स्त्रीनिर्देशः समयसिद्ध एव; गौडमतेन वा चामरा इत्याबन्तः शब्दः, अत्रापीडशब्दे व्याख्यायमाने मूर्द्धालंकार एवोक्तो

॥२३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

भवति, न तु कर्णाद्यलङ्कारः, दृश्यन्ते च लोके एकं चामरं मूर्द्धालङ्कारभूतं चामरद्वयं च कर्णालङ्कारभूतं एकं च भालालङ्कारभूतं एकं च कंठालङ्कारभूतमिति, तेन यथोक्तव्याख्यानमेव सुन्दरं, अथ देवमतिविकल्पितादिविशेषणविशिष्ट उच्चैःश्रवानाम शक्रहयोऽपि स्यादित्याह—अनभ्रवाहं–अनभ्रचारी अभ्रवाहः अश्वः उच्चैःश्रवास्तदन्यं 'अदब्भवाह'-मिति पाठे तु अदभ्रं–भूरि वहतीति अदभ्रवाहस्तत्, अभेले–दोषादिना असंकुचिते नयने यस्य तत्तथा, अत एव कोकासिते–विकसिते बहले–दृढे अनश्रुपातित्वात् पत्रले–पक्ष्मवती न तु ऐन्द्रलुप्तिकरोगवशाद्रोमरहिते अक्षिणी यस्य तत्तथा, सदावरणे–शोभार्थं दंशमशकादिरक्षार्थं वा प्रच्छादनपटे नवकनकानि–नव्यस्वर्णानि यस्य तत्तथा स्वर्णतन्तुव्यूतप्रच्छादनपटमित्यर्थः, तप्ततपनीयं तद्वदरुणे तालुजिह्वे यत्र तदेवंविधमास्यं यस्य तत्तथा, ततः पूर्वविशेषणेन कर्मधारयः, श्रीकाया–लक्ष्म्या अभिषेकः–अभिषेचनं नाम शारीरलक्षणं घोणायां–नासिकायां यस्य तत्तथा, क्वचित्पाठान्तरे तु सिरिसातिसेअघोणमिति दृश्यते, तत्र शिरीषं–शिरीषपुष्पं तद्वदतिश्वेता घोणा यस्येति, तथा पुष्करपत्रमिव–कमलदलमिव सलिलस्य बिन्दवो यत्र तदेवंविधं, कोऽर्थः ?–यथा पुष्करपत्रं जलान्तरस्थं वाताहतजलबिन्दुयुतं भवति तथेदमपि सलिलं–पानीयं लावण्यमित्यर्थः तस्य बिन्दवः–छटास्तैर्युतं, बिन्दुग्रहणेनात्र प्रत्यङ्गं लावण्यं सूचितं, लोकेऽपि प्रसिद्धमेतत् मुखेऽस्य पानीयमिति, अचंचलं–स्वामिकार्यैकरणे स्थिरं, साधुवाहित्वात्, चञ्चलशरीरं जातिस्वभावात्, अथ यदि चञ्चलाङ्गस्तदाऽमेध्यवस्तुष्वपि स्वाङ्गप्रवर्त्तको भविष्यतीत्याह—चोक्षः–कृतस्नान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

श्चरको–धाटिभिक्षाचरः परिव्राजको–मस्करी ततश्चरकसहितः परिव्राजकश्चरकपरिव्राजकः, प्रथमा द्वितीयार्थे, तेन चरकपरिव्राजकमिव प्राकृतशैल्या अकारप्रश्लेषादभिलीयमानं २–अशुचिसंसर्गशङ्कया आत्मानं संवृण्वन्तं २, आभीक्ष्ण्ये चात्र द्विर्वचनं, एवमग्रेऽपि भाव्यं, अथास्य क्रियाविशेषैर्जात्यत्वं लक्षयति–खुरप्रधानश्चरणाः खुरचरणास्तेषां चच्चपुटाः-आघातविशेषास्तैर्धरणितलमभिन्नदभिन्नद्, ननु भूतलविलिखनं सामान्यतः पुंस इवाश्वस्यापलक्षणमिति, न, एतस्य लक्षणत्वेन शालिहोत्रे प्रतिपादनाद्, यतः "खुरैः खनेद्यः पृथिवीमश्वो लोकोत्तरः स्मृत" इति, अश्ववारप्रयोगनार्त्तितो हि हयोऽग्रपादावुदस्यति, तत्रास्य शक्तिं विशेषणद्वारेण दर्शयति–द्वावपि च चरणौ यमकसमकं–युगपत् मुखाद्विनिर्गमदिव–निस्सारयदिव, कोऽर्थः?–इदमग्रपादादूर्ध्वं नयत्तथा मुखान्तिकं प्रापयति यथा जन उत्प्रेक्षते–इमौ मुखाद्विनिर्गमयति, पुनः क्रियान्तरदर्शनेनैतद्विशिनष्टि–शीघ्रतया–लाघवविशेषेण मृणालं–पद्मनालं तस्य तन्तुः–सूत्राकारोऽवयवविशेषः स च उदकं च ते अपि निश्राय–अवलंब्य आस्तामन्यदू दुर्गादिकं प्रक्रामत्–सञ्चरत्, अयमर्थः–यथा अन्येषां सञ्चरिष्णूनां मृणालतंतूदके पादावष्टम्भके न भवतः तथा नास्येति, सूत्रे चैकवचनमार्षत्वात्, तथा जातिः–मातृपक्षः कुलं–पितृपक्षः रूपं–सदाकारसंस्थानं तेषां प्रत्ययो–विश्वासो येभ्यस्ते च ते प्रशस्ताः प्रदक्षिणावहत्वात् शुभस्थानस्थितत्वाच्च ये द्वादशावर्त्तास्ते यत्र तत्तथा, बहुव्रीहिलक्षणः कप्रत्ययः, विशुद्धानि–दोषामिश्रितानि लक्षणानि अश्वशास्त्रप्रसिद्धानि यस्य तत्तथा, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, द्वादशावर्त्ताश्च इमे वराहोक्ताः–"ये प्रपाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

गलकर्णसंस्थिताः, पृष्ठमध्यनयनोपरिस्थिताः । ओष्ठसक्थिभुजकुक्षिपार्श्वगास्ते ललाटसहिताः सुशोभनाः ॥ ११ ॥"
अत्र वृत्तिलेशः–प्रपाणं–उत्तरोष्ठतलं गलः–कण्ठः यत्र स्थित आवर्त्तो देवमणिनामा हयानां महालक्षणतया प्रसिद्धः कर्णौ–प्रतीतौ एतेषु स्थानेषु संस्थिताः तथा पृष्ठं–पर्याणस्थानं मध्यं प्रतीतं नयने अपि तथैव तदुपरि स्थिताः, तथा ओष्ठौ प्रतीतौ सक्थिनी–पाश्चात्यपादयोर्जानूपरिभागः भुजौ–प्राक्पादयोर्जानूपरिभागः कुक्षिः–अत्र वामो दक्षिण-कुक्ष्यावर्त्तस्य गर्हितत्वात् पार्श्वौ प्रसिद्धौ तद्गताः ललाटं–प्रतीतं तदावर्त्तेन सहिताः, अत्र कर्णनयनादिस्थानानां द्विस-ङ्ख्याकत्वेऽपि जात्यपेक्षया द्वादशैव स्थानानि, स्थानभेदानुसारेण स्थानिभेदा अपि द्वादशैवेति, तथा सुकुलप्रसूतं–हयशास्त्रोक्तक्षत्रियाश्वपितृकं मेधावि–स्वामिपदसंज्ञादिग्राह्यार्थधारकं भद्रकं–अदुष्टं विनीतं–स्वामीष्टकारित्वात् अणु-कतनुकानां–अतिसूक्ष्माणां सुकुमालाना लोम्नां स्निग्धा छविर्यत्र तत्तथा, सुष्ठु यातं–गमनं यस्य तत्तथा, अमरमनःपवन-गरुडाः प्रतीताः तान् वेगाधिक्येन जयतीति अमरमनःपवनगरुडजयि, अत एव चपलशीघ्रगामि च–अतिशीघ्र-गतिकं पश्चात्पदद्वयकर्मधारयः क्षान्त्या–क्रोधाभावेन न त्वसामर्थ्येन या क्षमा तया ऋषिमिव–अनगारमिव, क्षमा-प्रधानत्वात्तस्य, न चरणैर्लत्तादायकं न च मुखेन दशकं न च पुच्छाघातकरमिति, सुशिष्यमिव प्रत्यक्षताविनीतं, अत्र ताकारः प्राकृतशैलीभवस्तेन प्रत्यक्षविनीतं, उदकं हुतवहः–अग्निः पाषाणः पांसू–रेणुः कर्दमः सशर्करं–सलघूपलखण्डं स्थानं सवालुकं–अत्र स्वार्थे इलप्रत्ययः बहुलसिकताकणं स्थानं तटं–नदीतटं कटको–गिरिनितम्बः विषमप्राग्भारौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥२३७॥

प्राग्वद् गिरिदर्यः प्रतीतास्तासु लंघनं–अतिक्रमणं प्रेरणं–आरूढस्य पुंसोऽभिमुखदर्शनधावनादिना संज्ञाकरणपूर्वकं प्रवर्त्तनं निस्तारणा–तत्पारप्रापणा तत्र समर्थं, न चण्डैः–उग्रैः सुभटैः रणे पातितं दण्डवत् पततीत्येवंशीलं दण्डपातिं अतर्कितमेव प्रतिपक्षस्कन्धावारे पतनशीलं, अनेनास्योत्पतनस्वभावोऽपि सूचितः, मार्गादिखेदमेदस्व्यपि नाश्रु पातयतीत्येवंशीलमनश्रुपाति, तथा अकालतालु–अश्यामतालुकं, पूर्वं रक्ततालुत्वे वर्णितेऽपि यत्पुनरकालतालु इति विशेषणं तत्तालुनः श्यामत्वमतितरामपलक्षणमिति तन्निषेधख्यापनार्थं, चः समुच्चये, काले–अराजकानां राजनिर्णयार्थके अधिवासनादिके समये हेषते–शब्दायतीत्येवंशीलं कालहेषि, जिता निद्रा–आलस्यं येन तत् जितनिद्रं त्यक्तालस्यमित्यर्थः, कार्येष्वप्रमादित्वात्, यथाश्रुतार्थे व्याख्यायमाने हयशास्त्रविरोधः–तथाहि–"सदैव निद्रावशगा, निद्राच्छेदस्य सम्भवः । जायते सङ्करे प्राप्ते, कर्करस्य च भक्षणे ॥ १ ॥" इति, यद्वा जितनिद्रत्वं समरावसरप्राप्तत्वादश्वरत्नत्वेनाल्पनिद्राकत्वाच्च, तथा गवेषकं–मूत्रपुरीषोत्सर्गादौ उचितानुचितस्थानान्वेषकं, जितपरीषहं–शीतातपाद्यातुरत्वेऽपि अखिन्नं, जात्या प्रधाना जातिः–मातृपक्षस्तत्र भवं जात्यजातीयं निर्दोषमातृकमित्यर्थः, निर्दोषपितृकत्वं तु प्रागुक्तं, ईदृग्गुणयुक्तो हि समये स्वामिने न द्रुह्यति मातृमुखावगतस्वकाणत्वव्यतिकरप्रकुपितचिन्तितस्वामिद्रोहककिशोरवत्, मल्लिः–विचकिलकुसुमं तद्वच्छुभ्रः अश्लेष्मलत्वेनानाविलमपूतिगन्धि च घ्राणं–घ्रोथो यस्य तत्तथा, ईकारः प्राकृतशैलीभवः, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, शुकपत्रवत्–शुकपिच्छवत् सुष्ठु वर्णो यस्य तत्तथा, कोमलं च कायेन, ततः पदद्व-

३वक्षस्कारे अश्वरत्न-ङ्गरत्ने सू. ५७

॥२३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्य कर्मधारयसमासः, मनोऽभिरामं 'कमलामेलं णामे ण'मित्यादि प्राग्वद् व्याख्येयमिति । ततः स किं कृतवानित्याह–'कुवलय'इत्यादि, तदसिरत्नं नरपतेर्हस्ताद् गृहीत्वा स सेनानीर्यत्रैवापातकिरातास्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चापातकिरातैः सार्द्धं सम्प्रलग्नश्चाप्यभूद्योद्धुमिति शेषः, तच्छब्दवाक्यं यच्छब्दवाक्यमपेक्षत इत्याहियते यदिति, यत् किंविशिष्टमित्याह—कुवलयदलश्यामलं नीलोत्पलदलसदृशमित्यर्थः, चः समुच्चये, रजनिकरमण्डलं–चन्द्रबिम्बं तस्य निभं–सदृशं परिभ्राम्यमाणं यद्वर्तुलिततेजस्कत्वेन चन्द्रमण्डलाकारं दृश्यते इत्यर्थः, अथवा रजनिकरमण्डलनिभं मुखे इति शेषः, शत्रुजनविनाशनं, कनकरत्नमयो दण्डो–हस्तग्रहणयोग्यो मुष्टिर्यस्य तत्तथा, नवमालिकानामकं यत्पुष्पं तद्वत् सुरभिगन्धो यस्य तत्तथा, नानामणिमय्यो लता–वल्ल्याकारचित्राणि तासां भक्तयो–विविधरचनास्ताभिश्चित्रं–आश्चर्यकृत्, चः विशेषणसमुच्चये, प्रधौता–शाणोत्तारेण निष्किट्टीकृता अत एव 'मिसिमिसेंति'त्ति दीप्यमाना तीक्ष्णा धारा यस्य तत्तथा, दिव्यं खड्गरत्नं–खड्गजातिप्रधानं लोकेऽनुपमानं अनन्यसदृशत्वात्, तच्च पुनर्बहुगुणमस्तीति शेषः, कीदृशं ?–वंशा–वेणवः रूक्षा–वृक्षाः शृङ्गाणि महिषादीनां अस्थीनि प्रतीतानि दन्ता हस्त्यादीनां कालायसं–लोहं विपुललोहदण्डकश्च–वरवज्रं हीरकजातीयं तेषां भेदकं, अत्र वज्रकथनेन दुर्भेद्यानामपि भेदकत्वं कथितं, किं बहुना ?–यावत्सर्वत्राप्रतिहतं, दुर्भेदेऽपि वस्तुनि अमोघशक्तिकमित्यर्थः, किं पुनर्जङ्गमानां–चराणां पशुमनुष्यादीनां देहेषु, अत्र यावच्छब्दो न संग्राहकः किन्तु भेदकशक्तिप्रकर्षोक्तियेऽवधिवचनः, अथ तस्य मानमाह–पञ्चा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५७] + गाथा

दीप अनुक्रम [८१-८३]

शदङ्गुलानि दीर्घो यः षोडशांगुलानि विस्तीर्णः अर्द्धांगुलप्रमाणा श्रोणिः–बाहल्यं पिण्डो यस्य स तथा, ज्येष्ठं–उत्कृष्टं प्रमाणं यस्य स तथा, एवंविधः सोऽसिर्भणितः, यदन्यत्रासेर्द्वात्रिंशदंगुलप्रमाणत्वं श्रूयते तन्मध्यममानापेक्षया, यदाह वराहः—"अंगुलशतार्द्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिः खड्गः।" एतयोः सङ्ख्ययोर्मध्ये मध्यम इति, उत्तरवाक्ययोजना तु प्राक् कृता, अथ सैन्येशायोधनादनन्तरं किं जातमित्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः आयोधनादनन्तरं स सुषेणः सेनापतिस्तानापातकिरातान् हतमथितेत्यादिविशेषणविशिष्टान् यावत्करणात् विहडिअचिंधद्धयपडागे किच्छप्पाणोवगए इति ग्राह्यं, दिशो दिशि प्रतिषेधयति । अथ ते किं कुर्वन्तीत्याह—

तए णं ते आवाडचिलाया सुसेणसेणावइणा हयमहिआ जाव पडिसेहिया समाणा भीआ तत्था वहिआ उव्विग्गा संजायभया अत्थामा अबला अवीरिआ अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्जमितिकट्टु अणेगाइं जोअणाइं अवक्कमंति २ त्ता एगयओ मिलायंति २ त्ता जेणेव सिंधू महाणई तेणेव उवागच्छंति २ त्ता वालुआसंथारए संथरेंति २ त्ता वालुआसंथारए दुरूहंति २ त्ता अट्ठमभत्ताइं पगिण्हंति २ त्ता वालुआसंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिआ जे तेसिं कुलदेवया मेहमुहाणामं णागकुमारा देवा ते मणसी करेमाणा २ चिट्ठंति । तए णं तेसिमावाडचिलायाणं अट्ठमभत्तंसि परिणमाणंसि मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं आसणाइं चलंति, तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा आसणाइं चलिआइं पासंति २ त्ता ओहिं पउंजंति २ त्ता आवाडचिलाए ओहिणा आभोएंति २ त्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिआ ! जंबुद्दीवे दीवे उत्तरद्धभरहे वासे आवाडचि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५८]

दीप अनुक्रम [८४]

लाया सिंधूए महाणईए वालुआसंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिआ अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा २ चिट्ठंति, तं सेअं खलु देवाणुप्पिआ! अम्हं आवाडचिलायाणं अंतिए पाउब्भवित्तएत्तिकट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एअमट्ठं पडिसुणेंति पडिसुणेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए जाव वीतिवयमाणा २ जेणेव जंबुद्दीवे दीवे उत्तरद्धभरहे वासे जेणेव सिंधू महाणई जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिंखिणिआइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिआ ते आवाडचिलाए एवं वयासी–हं भो आवाडचिलाया! जण्णं तुब्भे देवाणुप्पिआ! वालुआसंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्ठमभत्तिआ अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा २ चिट्ठह तए णं अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुब्भं कुलदेवया तुम्हं अंतिअण्णं पाउब्भूआ, तं वदह णं देवाणुप्पिआ! किं करेमो केव भे मणसाइए?, तए णं ते आवाडचिलाया मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं अंतिए एअमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ जाव हिअया उट्ठाए उट्ठेन्ति २ त्ता जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयलपरिग्गहियं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता एवं वयासी–एस णं देवाणुप्पिए! केइ अपत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे जाव हिरिसिरिपरिवज्जिए जे णं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ, तं तहा णं घत्तेह देवाणुप्पिआ! जहा णं एस अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं णो हव्वमागच्छइ, तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा ते आवाडचिलाए एवं वयासी–एस णं भो देवाणुप्पिआ! भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी महिद्धीए महज्जुईए जाव महासोक्खे, णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा मंतप्पओगेण वा उद्दवित्तए पडिसेहित्तए वा, तहाविअ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण तुब्भं पिअट्टयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गं करेमोत्तिकट्टु तेसिं आवाडचिलायाणं अंतिआओ अवक्कमन्ति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता महाणीअं विउव्वंति २ त्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयक्खंधावारणिवेसे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता उप्पिं विजयक्खंधावारणिवेसस्स खिप्पामेव पतणुतणयंति खिप्पामेव विज्जुयायन्ति २ त्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिउं पवत्ता यावि होत्था । (सूत्रं ५८)

'तए ण'मित्यादि, ततस्ते आपातकिराताः सुषेणसेनापतिना हतमथिता यावत्प्रतिषेधिताः सन्तो भीता–भयाकुलाः त्रस्ता–नष्टाः व्यथिताः–प्रहारार्दिताः उद्विग्नाः–अथ पुनर्नानेन सार्द्धं युद्धयामहे इत्यपुनःकरणाशयवन्तः, ईदृशाः कुत इत्याह–सञ्जातभयाः–सम्यक् प्राप्तभयाः अस्थामानः–सामान्यतः शक्तिविकलाः अबलाः–शारीरशक्तिविकलाः पुरुषकारः–पुरुषाभिमानः स एव निष्पादितस्वप्रयोजनः पराक्रमस्ताभ्यां रहिताः अधारणीयं–धारयितुमशक्यं परबलमितिकृत्वा अनेकानि योजनान्यपक्रामन्ति–अपसरन्ति पलायन्ते इत्यर्थः, ततः किं कुर्वन्तीत्याह—'अवक्कमित्ता'इत्यादि, अपक्रम्य ते आपातकिराता एकतः–एकस्मिन् स्थाने मेलयन्ति मेलापकं कुर्वन्तीत्यर्थः, मेलयित्वा च यत्रैव सिन्धुर्महानदी तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च वालुकासंस्तारकान् संस्तृणन्ति–सिकताकणमयान् संस्तारान् कुर्वन्ति, संस्तीर्य च वालुकासंस्तारकानारोहन्ति, आरुह्य चाष्टमभक्तं प्रगृह्णन्ति, प्रगृह्य च वालुकासंस्तारोपगता उत्तानकाः–ऊर्ध्वमुखशायिनः अवसना–निर्वस्त्राः, एवं च परमातापनाकष्टमनुभवन्त इत्युक्तं, अष्टमभक्तिका–दिनत्रयमनाहारिणः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये तेषां कुलदेवताः–कुलवत्सला देवा मेघमुखा नाम्ना नागकुमारा देवास्तान् मनसि कुर्वन्तः २ तिष्ठन्तीति । अथ ते देवाः किमकुर्वन्नित्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः–चेतसि चिन्तानन्तरं तेषामापातकिरातानां अष्टमभक्ते परिणमति सति परिपूर्णप्राये इत्यर्थः, मेघमुखानां नागकुमाराणां देवानामासनानि चलन्ति, ततस्ते मेघमुखा नागकुमारा देवा आसनानि चलितानि पश्यन्ति, दृष्ट्वा चावधिं प्रयुञ्जन्ति, प्रयुज्य चावधिना आपातकिरातानाभोगयन्ति, आभोग्य चान्योऽन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा चैवमवादिषुः, किमवादिषुरित्याह—'एवं खलु'इत्यादि, एवं–इत्थमस्ति खलुः–निश्चये हे देवानुप्रियाः ! किं तदित्याह—जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वर्षे आपातकिराताः सिन्ध्वां महानद्यां वालुकासंस्तारकान् उपगताः–प्राप्ताः सन्तः उत्तानका अवसना अष्टमभक्तिका अस्मान् कुलदेवतान् मेघमुखनामकान् नागकुमारान् देवान् मनसि कुर्वाणाः २ तिष्ठन्तीति, ततः श्रेयः खलु भो देवानुप्रिया ! अस्माकमापातकिरातानामन्तिके प्रादुर्भवितुं–समीपे प्रकटीभवितुमितिकृत्वा–पर्यालोच्यान्योऽन्यस्यान्तिके एतमर्थं–अनन्तरोक्तमभिधेयं प्रतिशृण्वन्ति–अभ्युपगच्छन्ति, परस्परं साक्षीकृत्य प्रतिज्ञातं कार्यं कर्त्तव्यमवश्यमिति दृढीभवन्तीत्यर्थः, प्रतिश्रवणानन्तरं ते यच्चकुस्तदाह–'पडिसुणेत्ता'इत्यादि, प्रतिश्रुत्य च ते देवास्तयोत्कृष्टया त्वरितया गत्या यावद् व्यतिव्रजन्तो २ यत्रैव जम्बूद्वीपो द्वीपो यत्रैव चोत्तरभरतार्द्धं वर्षं यत्रैव च सिन्धुर्महानदी यत्रैव चापातकिरातास्तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य चान्तरिक्षप्रतिपन्नाः सकिंकिणीकानि पञ्चवर्णानि वस्त्राणि प्रवराणि परिहितास्तानापातकिरातानेवमवादिषुः,

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमवादिषुरित्याह–'हं भो!'इत्यादि, हं भो! इति सम्बोधने आपातकिराताः यत् णं वाक्यालङ्कारे सर्वत्र यूयं देवानुप्रिया! वालुकासंस्तारकोपगता यावदष्टमभक्तिका अस्मान् कुलदेवता मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् मनसि कुर्वाणा २ स्तिष्ठत, ततो वयं मेघमुखा नागकुमारा देवा युष्माकं कुलदेवताः सन्तो युष्माकमन्तिकं प्रादुर्भूताः तद्ददत देवानुप्रियाः! किं कुर्मः–किं कार्यं विदध्मः किं आचेष्टामहे–कां चेष्टां कुर्म्मः–कस्मिन् व्यापारे प्रवर्त्तामहे किं वा भे–भवतां मनःस्वादितं–मनोऽभीष्टमिति कुलदैवतप्रश्नानन्तरं ते यदचेष्टन्त तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततस्ते आपातकिराता मेघमुखानां नागकुमाराणां देवानामन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य च 'हट्ठतुट्ठे'त्यादि प्राग्वत् उत्थानं उत्था–ऊर्ध्वं भवनं तया उत्तिष्ठन्ति–ऊर्ध्वीभवन्ति इत्यर्थः, उत्थाय च यत्रैव मेघमुखा नागकुमारा देवास्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च 'करयले'त्यादि प्राग्वत्, मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति, वर्धयित्वा चैवमवादिषुरिति, यदवादिषुस्तदाह—'एस ण'मित्यादि, देवानुप्रिया ! एष कश्चिदप्रार्थितप्रार्थकादिविशेषणविशिष्टो अस्मदेशोपर्यागच्छति, तेन तथा प्रकारेण णमिति–एनं घत्तेह–प्रक्षिपत यथा पुनर्नायातीति पिण्डार्थः, अथ यन्मेघमुखा ऊचुस्तदाह—'तए ण'मित्यादि, व्यक्तं, किमवोचुस्ते इत्याह–'एस ण'मित्यादि, हे देवानुप्रिया ! एष भरतो नाम राजा चतुरंतचक्रवर्त्ती महार्द्धिको महाद्युतिको यावन्महासौख्यः नो खलु एष भरतः शक्यः केनचिद्देवेन वा–वैमानिकेन दानवेन वा–भवनवासिना किन्नरेणेत्यादि पदचतुष्कं व्यन्तरविशेषवाचकं तेन वा शस्त्रप्रयोगेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५८]

दीप अनुक्रम [८४]

वा अग्निप्रयोगेण वा मन्त्रप्रयोगेण वा, त्रयाणामप्युत्तरोत्तरबलाधिकता ज्ञेया, शस्त्रेभ्योऽग्निस्तस्मान्मन्त्रो बलाधिक इति, उपद्रवयितुं वा–उपद्रवं कर्तुं प्रतिषेधयितुं वा–युष्मद्देशाक्रमणरूपपापकर्मतो निवर्त्तयितुमिति, सर्वत्र वाशब्दः समुच्चयार्थः, तथापि–इत्थं दुस्साधे कार्ये सत्यपि युष्माकं प्रियार्थतायै–प्रीत्यर्थं भरतस्य राज्ञ उपसर्गं कुर्म्म इतिकृत्वा तेषामापातकिरातानामन्तिकादपक्रामन्ति–यान्ति निस्सरन्तीत्यर्थः इति प्रतिज्ञातवन्तः, ततः किं कृतवन्त इत्याह— 'अवक्कमित्ता वेउविअसमुग्घाएण'मित्यादि, अपक्रम्य च–व्रजित्वा वैक्रियसमुद्घातेन–उत्तरवैक्रियार्थकप्रयत्नविशेषेण समवघ्नन्ति–आत्मप्रदेशान् विक्षिपन्ति शरीराद् बहिर्विकिरन्तीत्यर्थः समवहत्य च तैरात्मप्रदेशैर्गृहीतैः पुद्गलैर्मेघानीकं–अभ्रपटलकं विकुर्वन्ति विकुर्व्य च यत्रैव भरतस्य विजयस्कन्धावारनिवेशस्तत्रैवोपगच्छन्ति उपागत्य च विजयस्कन्धावारनिवेशस्योपरि क्षिप्रमेवेत्यादि सर्वं पुष्कलसंवर्त्तकमेघाधिकार इव वाच्यं यावद्वर्षितुं प्रवृत्ताश्चाप्यभवंस्ते देवा इति । इति व्यतिकरे यद्भरताधिपः करोति तदाह—

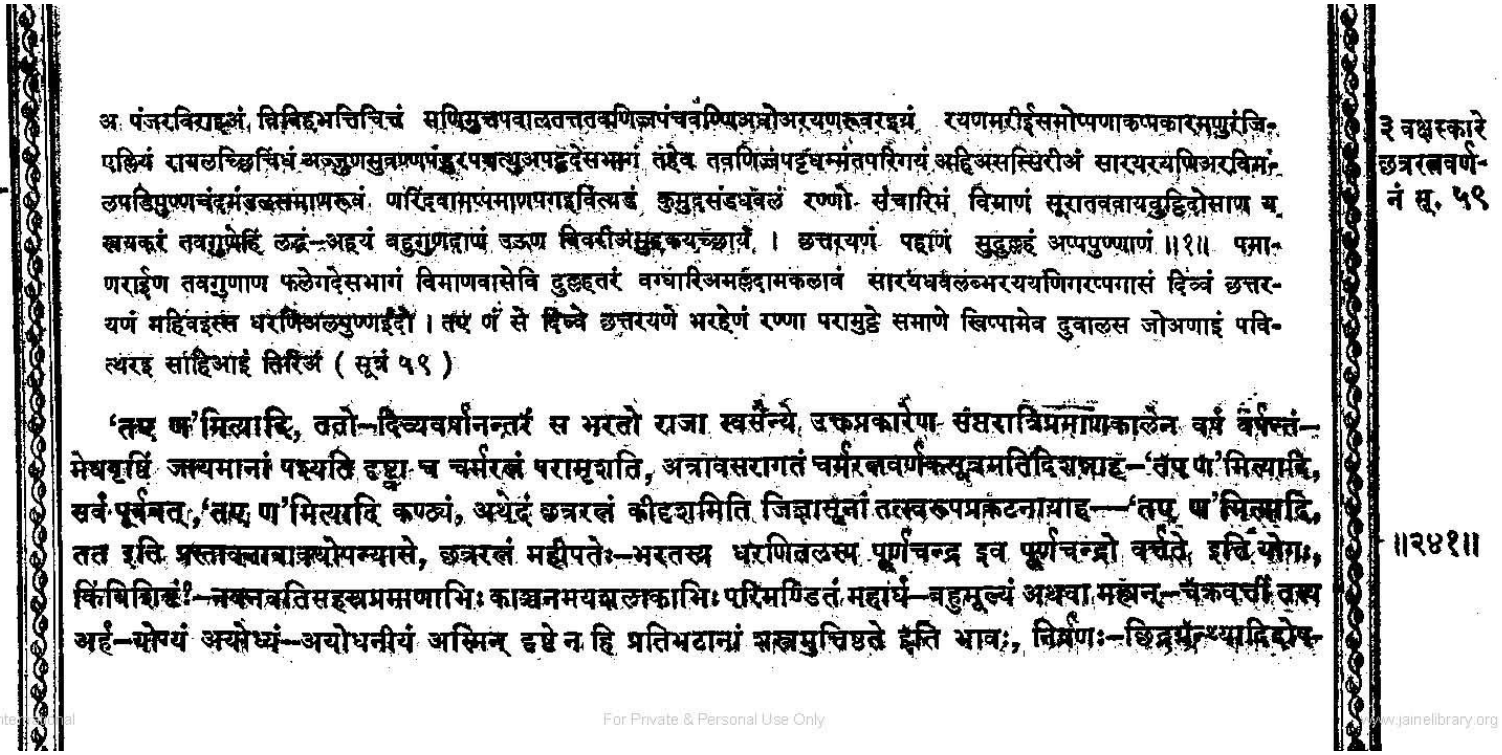
तए णं से भरहे राया उप्पिं विजयक्खंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं पासइ २ त्ता चम्मरयणं परामुसइ, तए णं तं सिरिवच्छसरिसरूवं वेढो भाणिअव्वो जाव दुवालसजोअणाइं तिरिअं पवित्थरइ तत्थ साहिआइं, तए णं से भरहे राया सखंधावारबले चम्मरयणं दुरूहइ २ त्ता दिव्वं छत्तरयणं परामुसइ, तए णं णवणउइसहस्सकंचणसलागपरिमंडिअं महरिहं अउज्झं णिव्वणसुपसत्थविसिट्ठलट्ठकंचणसुपुट्ठदंडं मिउरययवट्टलट्ठअरविंदकण्णिअसमाणरूवं वत्थिपएसे

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [८५-८७]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥२४१॥

अ पंजरविग्गहं, विविहभत्तिचित्तं मणिमुत्तपवालवत्ततवणिज्जपंचवण्णिअग्घोअरयणरूवरइयं रयणमरीईसमोप्पणाकप्पकारमणुरंजि-एलियं रायलच्छिविधं अज्जुणसुवण्णपंडुरपत्तच्छअपट्टदेसभागं तहेव तवणिज्जपट्टधम्मंतपरिगयं अहिअसस्सिरीअं सारयरयणिअरविमं-लपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं णरिंदवामप्पमाणपगइविच्चडं कुमुदसंदधवलं रण्णो संचारिमं विमाणं सूरातवत्तायवुद्धिदोसाण य खयकरं तवगुणेहिं लद्धं–अहयं बहुगुणद्दाप्पं उऊण विवरीअमुद्दकयच्छायं । छत्तरयणं पहाणं सुदुल्लहं अप्पपुण्णाणं ॥१॥ पमा-णरद्देण तवगुणाण फलेगदेसभागं विमाणवासेवि दुल्लहतरं वग्घारिअमल्लदामकलावं सारयधवलब्भरययणिगरप्पगासं दिव्वं छत्तर-यणं महिवइस्स धरणिअलपुण्णइंदो । तए णं से दिव्वे छत्तरयणे भरहेणं रण्णा परामुट्ठे समाणे खिप्पामेव दुवालस जोअणाइं पवि-त्थरइ साहिआइं तिरिअं (सूत्रं ५९)

'तए ण'मित्यादि, ततो–दिव्यवर्षानन्तरं स भरतो राजा स्वसैन्ये उक्तप्रकारेण संसराब्दिप्रमाणकालेन वर्षं वर्षन्तं–मेघवृष्टिं जायमानां पश्यति दृष्ट्वा च चर्मरत्नं परामृशति, अत्रावसरागतं चर्मरत्नवर्णकसूत्रमतिदिशन्नाह–'तए ण'मित्यादि, सर्वं पूर्ववत्, 'तए ण'मित्यादि कण्ठ्यं, अथेदं छत्ररत्नं कीदृशमिति जिज्ञासूनां तत्स्वरूपप्रकटनायाह–'तए ण'मित्यादि, तत इति प्रस्तावान्नाक्योपन्यासे, छत्ररत्नं महीपतेः–भरतस्य धरणितलस्य पूर्णचन्द्र इव पूर्णचन्द्रो वर्त्तते इति योगः, किंविशिष्टं?–नवनवतिसहस्रप्रमाणाभिः काञ्चनमयशलाकाभिः परिमण्डितं महार्घं–बहुमूल्यं अथवा महान्–चक्रवर्त्ती तस्य अर्हं–योग्यं अयोध्यं–अयोधनीयं अस्मिन् हृष्टे न हि प्रतिभटानां शस्त्रमुच्चिष्ठते इति भावः, निर्व्रणः–छिद्रव्रण्यादिदोष-

३ वक्षस्कारे छत्ररत्नवर्णनं सू. ५९

॥२४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [८५-८७]

रहितः सुप्रशस्तो–लक्षणोपेतत्वात् विशिष्टलष्टः–अतिमनोज्ञः अथवा विशिष्टः–अतिभारतया एकदण्डेन दुर्वहत्वात् प्रविरलदण्डसहितः ईदृशश्च यो लष्टः काञ्चनमयः सुपुष्टोऽतिभारसहत्वात् दण्डो यत्र तत्तथा, मृदु–सुकुमालं घृष्टमृष्टत्वात् राजतं–रूप्यसम्बन्धि वृत्तं लष्टं यदरविन्दं तस्य कर्णिका–बीजकोशस्तेन समानं श्वेतत्वाद्वृत्तत्वाच्च रूपं–आकारो यस्य तत्तथा, वस्तिप्रदेशो नाम छत्रमध्यभागवर्त्ती दण्डप्रक्षेपस्थानरूपस्तत्र, चः समुच्चये, पञ्जरेण–पञ्जराकारेण विराजितं, विविधाभिर्भक्तिभिः–विच्छित्तिभी रचनाप्रकारैश्चित्रं–चित्रकर्म यत्र तत्तथा, एतदेव विशिष्याह—मणयः–प्राग्व्यावर्णितस्वरूपाः मुक्ताप्रवाले प्रतीते तसं–मूषोत्तीर्णं यत्तपनीयं–रक्तसुवर्णं पञ्चवर्णिकानि, सूत्रे मत्वर्थीय इकप्रत्ययः, धौतानि–प्राणोत्तारेण दीसिमन्ति कृतानि रत्नानि प्राग्व्यावर्णितस्वरूपाणि तैः रचितानि रूपाणि–पूर्णकलशादिमङ्गल्यवस्तूनाकारा यत्र तत्तथा, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तथा रत्नानां मरीचिसमर्पणा–समारचना तस्यां कल्पकरा–विधिकारिणः परिकर्मकारिण इत्यर्थः तैरनुसम्प्रदायक्रमं रञ्जितं, यथोचितस्थानं रञ्जदानात्, मकारोऽलाक्षणिकः स्वार्थे इलेको प्रत्यवौ प्राकृतशैलीभवौ, राजलक्ष्मीचिन्हं अर्जुनाभिधानं यत्पाण्डुरस्वर्णं तेन प्रत्यवस्तृतः–आच्छादितः पृष्ठदेशभागो यस्य तत्तथा, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तथैवेति विशेषणान्तरप्रारम्भे ध्मायमानं तत्कालध्मातमित्यर्थः यत्तपनीयं तस्य पट्टसेन परिगतं–परिवेष्टितं, चतुर्ष्वपि प्रान्तेषु रक्तसुवर्णपट्टा योजिताः सन्तीति, पदव्यत्ययः पूर्ववत्, अत एवाधिकसश्रीकं शारदः–शरत्कालसत्को रजनिकरः–चन्द्रस्तद्वद्विमलं–निर्मलं प्रतिपूर्णचन्द्रमण्डलसमानरूपं ततो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [८५-८७]

॥२४२॥

विशेषणसमासः, नरेन्द्रः–प्रस्तावाद् भरतस्तस्य व्यायामः–तिर्यक्प्रसारितोभयबाहुप्रमाणो मानविशेषस्तेन प्रमाणेन प्रकृत्या–स्वभावेन विस्तृतं, यत्तु चक्रिपरामृष्टं साधिकद्वादशयोजनानि विस्तृणाति तदस्य कारणिको विस्तार इति सूचितं, कुमुदानि–चन्द्रविकाशीनि तेषां खण्डं–वनं तद्वद्धवलं राज्ञो–भरतस्य 'संचारिम'त्ति सञ्चरणशीलं जङ्गमं विमानं आश्रयिणां सुखावहत्वात्, सूरातपवातवृष्टयः प्रतीतास्तासां ये दोषास्तेषां क्षयकरं यद्वा सूरातपवातवृष्टीनां दोषाणां च–विषादिजन्यानां क्षयकरं, एतच्छत्रच्छायसमाश्रितानां हि विषादिदोषा अपि न प्रभवन्तीति विशेषः, तपो-गुणैः–पूर्वजन्माचीर्णतपोगुणमहिम्ना लब्धं भरतेनेति शेषः, अथ गाथाबन्धेन विशेषणान्याह विचित्रत्वात्सूत्रकार-प्रवृत्तेः, अहतं–न केनापि योधंमन्येन रणे खण्डितमित्यर्थः, बहूनां गुणानां–ऐश्वर्यादीनां दानं यस्य तत्तथा, ऋतूनां–हेमन्तादीनां विपरीता अथवा आर्षत्वात् षष्ठ्यर्थे पञ्चमीव्याख्यानेन ऋतुभ्यो विपरीता उष्णत्तौ शीता शीतत्तौ उष्णा अत एव कृतसुखा छाया यस्य, सूत्रे क्तान्तस्य परनिपातो 'जातिकालसुखादेर्नवा' (श्रीसिद्ध० अ०३ पा० १-सू० १५२) इत्यनेन विकल्पविधानात्, छत्रेषु रत्नं–उत्कृष्टं प्रधानं छत्रगुणोपेतत्वात्, सुदुर्लभमल्पपुण्यानामिति, प्रमाणराज्ञां–स्वस्वकालोचितशरीरप्रमाणोपेतराज्ञां अष्टसहस्रलक्षणलक्षितत्वात् प्रमाणीभूतराज्ञां वा–षट्खण्डाधिपत्वेन सर्वराज-सम्मतत्वात्, एतेन वासुदेवादिव्युदासस्तेषां त्रिखण्डभोक्तृत्वात्, चक्रवर्तिना तपोगुणानां–सुचरितविशेषाणां फलानां एकदेशभागरूपं, सूत्रे क्लीबलिङ्गनिर्देशः प्राकृतत्वात्, कोऽर्थः?–चक्राधिपपूर्वार्जिततपसां फलं–सर्वस्वं नवनिधानचतुर्द-

॥२४२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [८५-८७]

शरत्रादिषु विभक्तं, तेन तदेकदेशभूतमिदं छत्ररत्नं विमानवासेऽपि–देवत्वेऽपि दुर्लभतरं, तत्र चक्रवर्तित्वस्यासम्भवात्, 'वग्घारिअ'त्ति प्रलम्बितो लम्बतयाऽवलम्बितो माल्यदाम्नां–पुष्पमालानां कलापः–समूहो यत्र तत्तथा, समन्ततः पुष्पमालावेष्टितमिति भावः, शारदानि–शरत्कालभावीनि धवलान्यभ्राणि–वार्द्दलानि शारदश्च रजनिकरः–चन्द्रः तद्वत्प्रकाशो–भास्वरत्वजनित उद्द्योतो यस्य तत्तथा, दिव्यं–सहस्रदेवाधिष्ठितं शेषपदयोजना प्राक् कृतैवास्ति, अथ प्रकृतम्–'तए ण'मित्यादि, ततस्तद्दिव्यं छत्ररत्नं भरतेन राजा परामृष्टं–स्पृष्टं सत्क्षिप्रमेव चर्म्मरत्नवत् द्वादशयोजनानि साधिकानि तिर्यक् प्रविस्तृणाति, साधिकत्वं चात्र परिपूर्णचर्मरत्नपिधायकत्वेन, अन्यथा किरातकृतवृष्ट्युपद्रवः स्वसैन्यस्य दुर्वारः स्यादिति॥ अथ छत्ररत्नप्रविस्तरणानन्तरं यच्चक्रे तदाह—

तए णं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ २ त्ता मणिरयणं परामुसइ वेढो जाव छत्तरयणस्स वत्थिभागंसि ठवेइ, तस्स य अणतिवरं चारुरूवं सिलणिहिअत्थमंतमेत्तसालिजवगोहूममुग्गमासतिलकुलत्थसट्ठिगनिप्फावचणगकोद्दवकोत्थुंभरिकंगुवरगरालगअणेगधण्णावरणहारिअगअलगमूलगहलिद्दलाउअतउसतुंबकालिंगकविट्ठअंबअंबिलिअसव्वणिप्फायए सुकुसले गाहावइरयणेत्ति सव्वजणवीसुअगुणे। तए णं से गाहावइरयणे भरहस्स रण्णो तद्दिवसप्पइण्णणिप्फाइअपूइआणं सव्वधण्णाणं अणेगाइं कुंभसहस्साइं उवट्ठवेति, तए णं से भरहे राया चम्मरयणसमारूढे छत्तरयणसमोच्छन्ने मणिरयणकउज्जोए समुग्गयभूएणं सुहंसुहेणं सत्तरत्तं परिवसइ— 'णवि से खुहा ण विलिअं णेव भयं णेव विज्जए दुक्खं। भरहाहिवस्स रण्णो खंधावारस्सवि तहेव ॥ १ ॥ (सूत्रं ६०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६०] + गाथा दीप अनुक्रम [८८-९०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२४३॥

'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतः छत्ररत्नं स्कन्धावारस्योपरि स्थापयति स्थापयित्वा च मणिरत्नं परामृशति, 'वेढो जाव'त्ति अत्र मणिरत्नस्य वेष्टको–वर्णको यावदिति सम्पूर्णो वक्तव्यः पूर्वोक्तः, स च 'तोतं चउरंगुलप्पमाण'–मित्यादिकः, परामृश्य च चर्मरत्नछत्ररत्नसम्पुटमिलनमिरुद्धसूर्यचन्द्रालोके सैन्येऽहर्निशमुद्योतार्थं छत्ररत्नस्य क्षिति-भागे मणिरत्नं स्थापयति, ननु एवं सति सकलसैन्यावरोधः समजनि, तथा च तत्र कथं भोजनादिविधित्याशङ्कमानं प्रत्याह—'तस्स य अणतिवरं'मित्यादि, तस्य भरतस्य राज्ञः चो वाक्यालङ्कारद्योतनार्थः गृहपतिरत्नं–कौटुम्बिकरत्नम-स्तीति गम्यते, किंविशिष्टं?–इति–अमुना प्रकारेण सर्वजनेषु विश्रुता श्रुता यस्य तत्तथा, इतीति किं?–न विद्यते अतिवरं–अतिप्रधानं वस्तु अपरं यस्मात्तत्तथा, चारुरूपमिति व्यक्तं, तथा शिला इव शिला अतिस्थिरत्वेन चर्मरत्नं तत्र निहितमात्राणां–उप्तमात्राणां न तु लौकिकप्रसिद्धभूमिखेटनप्रभृतिकर्मसापेक्षाणां 'अत्थमंत'त्ति अर्थवतां–प्रयोजनवतां भक्षणायार्हाणामित्यर्थः शाल्यादीनां निष्पादकं, यद्वा शिलानिहितानां प्रात इति सम्यं शाल्यादीनां अत्थमंतमेत्तत्ति–अस्तमवति मित्रे–सूर्ये सायमित्यर्थः निष्पादकं, संवादी चायमप्यर्थः, यदुक्तं श्रीहेमाचार्यकृते ऋषभचरित्रे–"चर्म-रत्ने च सुक्षेत्र, इवोप्तानि दिवामुखे । सायं धान्यान्यजायन्त, गृहिरत्नप्रभावतः ॥ १ ॥" इत्यादि, उभयत्र व्याख्याने पदानां व्यत्ययेन निर्देशः प्राकृतत्वात्, तत्र शालयः–कलमाद्याः यवा–हयप्रियाः गोधूमा मुद्गा माषास्तिलाः कुलत्थाः प्रतीताः षष्टिकाः षष्ट्यहोरात्रैः परिपच्यमानास्तन्दुलाः निष्पावा–वल्लाः चणकाः कोद्रवाः प्रतीताः 'कोरदूसरि'त्ति

३वृक्षस्कारे चर्मरत्ने धान्याद्युत्पादनं सू.६० ॥२४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६०] + गाथा दीप अनुक्रम [८८-९०]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

कुस्तुम्भमर्यो–धान्यककणाः कङ्गवो–गृहशिरस्काः 'वरग'त्ति वरट्टाः रालका–अल्पशिरस्काः उपलक्षणात् मैसूरादयोऽन्येऽपि धान्यभेदा ग्राह्याः, अनेकानि धान्या इति–धान्यापत्राणि वरणो–वनस्पतिविशेषस्तत्पत्राणि एतत्प्रभृतीनि यानि हरितकानि पत्रशाकानि मेघनादवास्तुलकादीनि, पूर्वं च कुस्तुंबरीशब्देन धान्यभेदः संगृहीतः इदानीं तत्पत्राणां भक्ष्यत्वेन पत्रशाकेषु संग्रह इति न पौनरुक्त्यं,'अल्लगमूलगहलिह'त्ति आर्द्रकहरिद्रे प्रतीते,एते च सूरणकन्दाद्युपलक्षणभूते, मूलकं–हस्तिदन्तकं, इदं च गृञ्जनादिमूलकोपलक्षणं, एतेन कन्दमूलशाके कथिते, अथ फलशाकान्याह—अलाबुतुम्बं त्रपुषं–चिर्भटजातीयं तुम्बकलिङ्गकपित्थामाम्लिकाः प्रतीताः, इदमपि फलशाकोपलक्षणं तेन जीवन्त्यादिपरिग्रहः, अलाबुतुम्ब्योर्लम्बत्ववृत्तत्वकृतो भेदः, स च तज्जातीयबीजकृत इति जनप्रसिद्धिः, सर्वशब्देन चोक्तातिरिक्तशाकादीनां ग्रहः, ननु यदि गृहपतिरत्नमचिरक्रियया मन्त्रसंस्क्रियया धान्यादिकं निष्पादयति तर्हि किं चर्मरत्ने बीजवपनेन?, तन्निरपेक्षतयैव तत् निष्पादयतु, तस्य दिव्यशक्तिकत्वात्, उच्यते, इतरकारणकलापसंघटनपूर्वकत्वेनैव कारणस्य कार्यजनकत्वनियमात्, अन्यथा सूर्यपाकरसवतीकारा नलादयः सूर्यविद्यामहिम्ना रसवतीं परिपचन्तोऽपि तन्दुलसूपशाकवेषवारादिसामग्रीर्नापेक्षेरन्निति, अत एव सुकुशलं–अतिनिपुणं निजकार्यविधावतिनिपुणं शेषं प्राग्योजितं, अथोक्तगुणयोगि गृहपतिरत्नं यदवसरोचितं चकार तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः चर्मरत्नच्छत्ररत्नसम्पुटसंघटनानन्तरं तद् गृहपतिरत्नं भरतस्य राज्ञः स एव दिवसस्तदिवसः–उपस्थानदिवसस्तस्मिन् प्रकीर्णकानां–उद्यानां निष्पादितानां–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२४४॥

परिपाकदशा प्रापितानां पूतानां–निर्बुसीकृतानां सर्वधान्यानामनेकानि 'कुम्भसहस्राणि' कुम्भानां राशिरूपमानविशे-षाणां सहस्राणि उपस्थापयति–उपढौकयति प्राभृतीकरोतीत्यर्थः, कुम्भमानं त्वेवमनुयोगद्वारसूत्रोक्तं—"दो असईओ पसई दो पसईओ सेइआ चत्तारि सेइआओ कुडओ चत्तारि कुडया पत्थो चत्तारि पत्थया आढयं चत्तारि आढया दोणो सट्ठिं आढयाइं जहण्णए कुंभे असीति आढयाइं मज्झिमए कुंभे आढयसयं उक्कोसए कुंभे"त्ति, अत्र व्याख्या–अत्राशतिः–अवाङ्मुखहस्ततलरूपा मुष्टिरित्यर्थः तत्प्रमाणं धान्यमप्यशतिरेवोच्यते, तद्वत्प्रसृतिः–नावाकारतया व्यव-स्थापिता प्राञ्जलकरतलरूपोच्यते, द्वे प्रसृती सेतिका–मगधदेशप्रसिद्धो मानविशेषो, न तु इह प्रसिद्धा, तस्याः प्रस्थच-तुर्गुणत्वात्, चतस्रः सेतिकाः कुडवः–पल्लिकासमानो माप्यविशेषः, चत्वारः कुडवाः प्रस्थो माणकसमानं माप्यं, चत्वारः प्रस्थाः आढकः–सेतिकाप्रमाणः चत्वार आढका द्रोणः–चतुःसेतिकाप्रमाणः षष्ट्या आढकैः पञ्चदशभिर्द्रोणै-रित्यर्थः जघन्यः अशीत्या आढकैर्विंशत्या द्रोणैरित्यर्थः मध्यमः कुम्भः तथा आढकानां शतेन पञ्चविंशत्या द्रोणैरित्यर्थः उत्कृष्टः कुम्भ इति, अत्र च 'सव्वधण्णाणं'ति सूत्रमुपलक्षणपरं तेनान्यदपि यत्सैन्यस्य भोजनोपयोगि तत् सर्वमुपन-यति, एवं सति तत्र भरतः कथं कियत्कालं च स्थितवानित्याह—'तए ण'मित्यादि, ततो–गृहपतिरत्नकृतधान्योप-स्थापनानन्तरं स भरतः चर्मरत्नारूढश्छत्ररत्नेन समवच्छन्नः–आच्छादितो मणिरत्नकृतोद्योतः समुद्गकसम्पुटं भूत इव–प्राप्त इव सुखंसुखेनेत्यर्थः सप्तरात्रं–सप्त दिनानि यावत्परिवसति, एतदेव व्यक्तीकुर्वन्नाह—'णवि से खुहा ण'

३वक्षस्कारे चर्मरत्ने धा-न्याद्युत्पा-दनं सू.६०

॥२४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६०] + गाथा

दीप अनुक्रम [८८-९०]

इत्यादि, न से–तस्य भरताधिपस्य राज्ञः क्षुद्–बुभुक्षा अपिशब्दः पद्यबन्धत्वेन पादपूरणार्थं एवकारार्थो वा न व्यलीकं–वैलक्ष्यं दैन्यमित्यर्थः, नैव भयं नैव विद्यते दुःखं, इयमेव गाथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत ऋषभचरित्रे तु एवं–'णवि से खुहा णवि तिसा णेव भयं' शेषं प्राग्वत्, 'खंधे'त्यादि, स्कन्धावारस्यापि तथैव, यथा भरतस्य न क्षुदादि तथा सैन्यस्यापि नेत्यर्थः॥ ततः किं जातमित्याह—

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि इमेआरूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–केस णं भो ! अपत्थिअपत्थए दुरंतपंतलक्खणे जाव परिवज्जिए जे णं ममं इमाए एआणुरूवाए जाव अभिसमण्णागयाए उप्पिं विजयखंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठि जाव वासं वासइ। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो इमेआरूवं अब्भत्थिअं चिंतियं पत्थिअं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता सोलस देवसहस्सा सण्णज्झिउं पवत्ता यावि होत्था, तए णं ते देवा सण्णद्धबद्धवम्मिअकवया जाव गहिआउहपहरणा जेणेव ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता मेहमुहे णागकुमारे देवे एवं वयासी–हं भो ! मेहमुहा णागकुमारा ! देवा अप्पत्थिअपत्थगा जाव परिवज्जिआ किण्णं तुब्भि ण याणह भरहं रायं चाउरंतचक्कवट्टिं महिड्ढिअं जाव उद्दवित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि णं तुब्भे भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पिं जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासह, तं एवमवि गते इत्तो खिप्पामेव अवक्कमह अहव णं अज्ज पासह चित्तं जीवलोगं, तए णं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा भीआ तत्था वहिआ उव्विग्गा संजायभया मेघानीकं पडिसाहरंति २ त्ता जेणेव आवाड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [६१] + गाथा: दीप अनुक्रम [९१-९५]

॥२४५॥

चिलाया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता आयाडचिलायं एवं वयासी–एस णं देवाणुप्पिआ! भरहे राया महिड्ढीए जाव णो खलु एस सक्का केणइ देवेण वा जाव अभिएएओगेण वा जाव उद्दवित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि अ णं ते अम्हेहिं देवाणुप्पिआ! तुब्भं विअट्टयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गे करए, तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिआ! ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायवडिआ भरहं रायाणं सरणं उवेह, पणिवइअवच्छला खलु उत्तमपुरिसा जंति मे भरहस्स रण्णो अंतिआओ भयमिति कट्टु, एवं वदित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया। तए णं ते आयाडचिलाया मेहमुहेहिं णागकुमारेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा उट्ठाए उट्ठेंति २ त्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु भरहं राथं जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेंति २ त्ता एवं वयासी–"वसुहर गुणहर जयहर, हिरिसिरिधीकित्तिधारकणरिंद। लक्खणसहस्सधारक रायमिणं पे चिरं धारे॥ १॥ हयवइ गयवइ णरवइ णवणिहिवइ भरहवासपढमवई। बत्तीसजणवयसहस्सराय सामी चिरं जीव॥ २॥ पढमणरीसर ईसर हिअईसर महिलिआसहस्साणं। देवसयसाहसीसर चोद्दसरयणीसर जसंसी॥ ३॥ सागरगिरिमेरागं उत्तरवाईणमभिजिअं वुमए। ता अम्हे देवाणुप्पिअस्स विसए परिवसामो॥ ४॥ अहो णं देवाणुप्पिआणं इड्ढी जुई जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पिआणं इड्ढी जाव जाव अभिसमण्णागए, तं खामेमु णं देवाणुप्पिआ! खमंतु णं देवाणुप्पिआ! खंतुमरहंतु णं देवाणुप्पिआ! णाइ भुज्जो २ एवंकरणयाए

॥२४५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६१] + गाथा: दीप अनुक्रम [९१-९५]

तिकट्टु पंजलिउडा पायवडिआ भरहं रायं सरणं उवेंति । तए णं से भरहे राया तेसिं आवाडचिलायाणं अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छंति २ त्ता ते आवाडचिलाए एवं वयासी–गच्छह णं भो तुब्भे ममं बाहुच्छायापरिग्गहिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहंसुहेणं परिवसह, णत्थि भे कत्तोवि भयमत्थित्तिकट्टु सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ । तए णं से भरहे राया सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिआ ! दोच्चंपि सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमं णिक्खुडं ससिंधुसागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि य ओअवेहि २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि २ त्ता मम एअमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि जहा दाहिणिल्लस्स ओयवणं तहा सव्वं भाणिअव्वं जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति (सूत्रं ६१)

'तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्त'मित्यादि, ततः समुद्गकभूततयाऽवस्थानानन्तरं तस्य भरतस्य राज्ञः सप्तरात्रे परिणमति सति अयमेतद्रूपो यावत्सङ्कल्पः समुदपद्यत, तमेव प्रादुर्भावयन्नाह–'केस णं'मित्यादि, कः एष भोः सैनिकाः अप्रार्थितप्रार्थकादिविशेषणविशिष्टो यो मम अस्यामेतद्रूपायां यावद्दिव्यायां देवानामिव ऋद्धिर्देवस्य वा–राज्ञ ऋद्धिर्देवर्द्धिस्तस्यां सत्यां एवं दिव्यायां देवद्युतौ दिव्येन देवानुभावेन देवानुभागेन वा देवानामिव योऽनुभागोऽनुभावो वा–प्रभावस्तेन सह लब्धायां–प्राप्तायामभिसमन्वागतायां सत्यां उपरि स्कन्धावारस्य 'जुगमुसलमुट्ठि जाव'त्ति युगमुसलमुष्टिप्रमाणमात्राभिर्धाराभिर्वर्षं वर्षति–वृष्टिं करोति, अत्र किरातगृहीतानामेव केषाञ्चिदयमुपद्रवोपक्रम इति सामान्यतो ज्ञानेऽपि 'मानधनानां प्रभूणां गर्वगर्भिता गिरस्त्वंकारेकारबहुला एव भवेयु'रिति क एष इत्यादिक आक्षो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] + गाथा: दीप अनुक्रम [९१-९५]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२४६॥

शस्तत्र एकवचननिर्देशः यथा उपस्थितेष्वपि बहुषु वैरिषु स को वर्त्तते यो मामुपतिष्ठते इत्यादौ, इति भूपतिभावं परिभाव्य यक्षा यच्चक्रुस्तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततश्च—उक्तचिन्तासमुत्पत्त्यनन्तरं भरतस्येममेतादृशं यावत्सङ्कल्पं समुत्पन्नं ज्ञात्वा चतुर्दशरत्नाधिष्ठायकदेवसहस्राणि चतुर्दश द्वे सहस्रे स्वाङ्गाधिष्ठातृदेवभूते इत्येवं षोडशदेवसहस्राः यद्यपि स्त्रीरत्नस्य वैताढ्यसाधने सम्पत्स्यमानत्वेन रत्नानां त्रयोदशसहस्रा एव सम्भवेयुस्तथापि सामान्यत एतद्वचनमिति, सन्नद्धुं प्रवृत्ताश्चाप्यभवन्—युद्धायोद्यता अभूवन्नित्यर्थः, कथमित्याह—'तए ण'मित्यादि, अनुवादसूत्रत्वात्प्राग्वत्, किमवोचुस्ते भरतस्य सन्निहिता देवा इत्याह—हं भो! मेघमुखा इत्यादि प्राग्वत्, किमिति प्रश्ने न जानीथेत्यत्र काकुपाठेन व्याख्येयं, तेन न जानीथ किं यूयं?, अपि तु जानीथ, भरतं राजानं चतुरन्तचक्रवर्त्तिनं यदेष न कैश्चिदपि देवदानवादिभिः शस्त्रप्रयोगादिभिरुपद्रवयितुं वा प्रतिषेधयितुं वा शक्यते इति, अज्ञानपूर्विका हि प्रवृत्तिर्महतेऽनर्थाय प्रवर्त्तकस्य च बाढं बालिशभावोद्भावनाय च भवेदिति भापयन्तस्ते यथा उत्तरवाक्यमाहुस्तथाऽऽह—तथापि—जगत्यजय्यं जानन्तोऽपीत्यर्थः यूयं भरतस्य राज्ञो विजयस्कन्धावारस्योपरि यावद्वर्षं वर्षत तत्—तस्मादेवमविमृष्टकारितायां सत्यामपि गते—अतीते कार्ये किं बहु अधिक्षिपामः?, तस्य क्रियान्तरापादनेन संस्कारानर्हत्वात्, इतः क्षिप्रमेवापक्रामत—मत्कुणा इवापयात, अथवेति विकल्पान्तरे यदि नापक्रामत तर्हि अद्य—साम्प्रतमेव पश्यत चित्रं जीवलोकं—वर्त्तमानभवादन्यं भवं पृथिवीकायिकादिकं, अपमृत्युं प्राप्नुतेत्यर्थः, क्रियादेशेऽत्र पञ्चमीप्रयोगः, ननु निरुपक्र-

३ वक्षस्कारे आपातकिरातसाधनं सू. ६१

॥२४६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मायुषां देवानामपमृत्योरसम्भवात् सबाधमिदं वचनं, उच्यते, सूत्राणां विचित्रत्वेन भयसूत्रत्वेन विवक्षणान्न दोषः। 'तए ण'मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं मेघानीकं प्रतिसंहरन्ति–घनघटामपहरन्ति, वृष्ट्युपरमे च ततः सम्पुटाच्चक्रिसैन्यं निर्गच्छदुपलभ्य लौकिकैरुक्तं ब्रह्मणा सृष्टमिदमण्डकं तत इयं जगतः प्रसूतिरित्येवं सर्वत्र प्रवादोऽभूत्ततोऽपि च ब्रह्माण्डपुराणं नाम शास्त्रमभूदिति प्रसङ्गाद्बोध्यमिति, अथ यदुक्तमेवं वयासित्ति तत्र किमवादिषुरित्याह—'तए ण'–मित्यादि, हे देवानुप्रिया ! एष भरतो राजा महर्द्धिको यावन्नो खलु एष शक्यते देवादिभिरस्त्रप्रयोगादिभिर्यावन्निषेधयितुं तथापि अस्माभिर्देवानुप्रिया! युष्माकं प्रीत्यर्थं भरतस्य राज्ञ उपसर्गः कृतः, तद्गच्छत देवानुप्रिया! यूयं स्नानादिविशेषणाः आर्द्रौ–सद्यःस्नानवशाज्जलक्लिन्नौ पटशाटकौ–उत्तरीयपरिधाने येषां ते तथा, एतेन सेवाविधावविलम्बः सूचितः, अवचूलकं–अधोमुखाञ्चलं मुत्कलाञ्चलं यथा भवत्येवं नियत्थं येषां ते तथा, एतेन परिहितवस्त्रबन्धनकालावध्यपि न विलम्बो विधेय इति सूचितं, अथवाऽनेनाबद्धकच्छत्वं सूचितं, तदुपदर्शनेन स्वदैन्यं दर्शितमिति, बद्धकच्छत्वदर्शने हि उत्कटत्वसम्भावनाया जनप्रसिद्धत्वात्, अग्र्याणि वराणि रत्नानि गृहीत्वा प्राञ्जलिकृताः–कृतप्राञ्जलयः पादपतिताः–चरणन्यस्तमौलयो भरतं राजानं शरणमुपेत–यात प्रणिपतितवत्सलाः–प्रणम्यजनहितकारिणः खलु उत्तमपुरुषाः, नास्ति भे–भवतां भरतस्य राज्ञोऽन्तिकाद्भयमिति कृत्वा इति उदित्येत्यर्थः यस्या दिशः प्रादुर्भूतास्तामेव दिशं प्रति गता इति। अथ भग्नेच्छा म्लेच्छा यच्चक्रुस्तदाह—'तए ण'मित्यादि, सर्वं गतार्थं, नवरं रत्नान्युपनयन्ति–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] + गाथा: दीप अनुक्रम [९१-९५]

प्राभृतीकुर्वन्तीत्यर्थः, अथ यदुक्तं 'एवं वयासि'त्ति तत्र किमवादिषुरित्याह–'वसुहर' इत्यादि, हे वसुधर !–द्रव्यधर षट्खण्डवर्त्तिद्रव्यपते इतियावत्, अथवा तेजोधर गुणधर–गुणवान् जयधर–विद्वेषिभिरधर्षणीय ! ह्रीः–लज्जा श्रीः–लक्ष्मीर्धृतिः–सन्तोषः कीर्त्तिः–वर्णवादः एतेषा धारक नरेन्द्रलक्षणसहस्राणां–अनेकलक्षणानां धारक णो–अस्माकं राज्यमिदं चिरं धारय–पालय इत्यर्थः, अस्मद्देशाधिपतिर्भव चिरकालं यावदिति प्रथमगाथार्थः । 'हयवइ गयवई' इत्यादि, हे हयपते ! गजपते ! हे नरपते ! नवनिधिपते ! हे भरतवर्षप्रथमपते ! द्वात्रिंशज्जनपदसहस्राणां–देशसहस्राणां ये राजानस्तेषां स्वामिन् ! चिरं जीव २ इति द्वितीयगाथार्थः । 'पढमणसरीसर ईसर'इत्यादि, हे प्रथमनरेश्वर ! हे ऐश्वर्यधर ! हे महिलिकासहस्राणां–चतुःषष्टिस्त्रीसहस्राणां हृदयेश्वर–प्राणवल्लभ देवशतसहस्राणां–रत्नाधिष्ठातृ-मागधतीर्थाधिपादिदेवलक्षाणामीश्वर ! चतुर्दशरत्नेश्वर ! यशस्विन् इति तृतीयगाथार्थः॥ तथा 'सागर'इत्यादि, सागरः–पूर्वापरदक्षिणाख्यः समुद्रः गिरिः–क्षुद्रहिमाचलस्तयोर्मर्यादा–अवधिर्यत्र तत्तथा, उक्तदिक्त्रये समुद्रावधिकमुत्तरतो हिमाचलावधिकं, उत्तरापाचीनं–उत्तरार्द्धदक्षिणार्द्धभरतं परिपूर्णभरतमित्यर्थः, त्वयाऽभिजितं, यदत्र भरतस्य हिमवद्गिरिरिपर्यन्तता व्याख्याता तदवश्यं साधयिष्यमाणत्वेन 'भाविनि भूतवदुपचार' इति न्यायात्, अन्यथा नवनिधिपते ! चतुर्दशरत्नेश्वर.इत्यादिविशेषणानामप्यनुपपत्तिः,नवनिधीनां तथा सम्पूणचतुर्दशरत्नानामथैव सम्पत्स्यमानत्वात्, ता–तस्माद् वयं देवानुप्रियस्य विषये परिवसामः, युष्माकं प्रजारूपाः स्म इत्यर्थः, इति चतुर्थगाथार्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा अहो इति आश्चर्ये देवानुप्रियाणां ऋद्धिर्द्युतिर्यशो बलं वीर्यं पुरुषकारः पराक्रमः एतेषां व्याख्यानं प्राग्वत्, ऋद्ध्यादीन्याश्चर्यकारीणि कुत इत्याह–दिव्या–सर्वोत्कृष्टा देवस्येव द्युतिः, एवं दिव्यो देवानुभावो देवानुभागो वा लब्धः–प्राप्तः अभिसमन्वागतो देवपादैरित्यध्याहार्यं, परतः श्रुतेऽपि गुणातिशये आश्चर्योत्पत्तिः स्यात् दृष्टे तु सुतरामित्याशयेनाह—तद् दृष्टा देवानुप्रियाणां ऋद्धिः–सम्पत्, चक्षुःप्रत्यक्षेणानुभूतेत्यर्थः, श्रवणतो दर्शनस्यातिसंवादकत्वात्, एवं चैवेति उक्तन्यायेन दृष्टा देवानुप्रियाणां द्युतिः, एवं यशोबलादिकमपि दृष्टमित्यादि वाच्यं, यावदभिसमन्वागत इति पदं, यावत्पदसंग्रहस्तु 'इड्ढी जसे बले वीरिए' इत्यादिकोऽनन्तरोक्त एव, तत्क्षमयामो देवानुप्रिया वयं, सानुशयाशयत्वात् स्वबालचेष्टितं क्षमन्तां देवानुप्रियाः!, क्षन्तुमर्हन्ति–क्षमा कर्तुं योग्या भवन्ति देवानुप्रियाः महाशयत्वात्, अत्र प्राकृतत्वाद्वर्त्तमानार्थे पञ्चमी, 'णाइ'त्ति नैव आइं इति निपातोऽवधारणे भूय एवंकरणतायै सम्पत्स्यामह इति शेषः, अत्र ताकारः प्राकृतशैलीभवः, इति कृत्वा प्राञ्जलिकृताः पादपतिता भरतं राजानं शरणमुपयान्ति, अथ प्रसादाभिमुखभरतकृत्यमाह—'तए णं से भरहे राया तेसिं आवाडचिलायाण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा तेषामापातकिरातानामग्र्याणि वराणि रत्नानि प्रतीच्छति–गृह्णाति प्रतीच्छ्य च तानापातकिरातानेवमवादीत्–गच्छत भो! देवानुप्रियाः यूयं स्वस्थानमिति शेषः, मम बाहुच्छायया परिगृहीताः–स्वीकृताः मया शिरसि दत्तहस्ताः निर्भया निरुद्विग्नाः–उद्वेगरहिताः सुखंसुखेन परिवसत, अत्र 'छायायां हो कान्तौ वा' इत्यनेन (श्रीसिद्धहै० अ०८ पा०१सू०२४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६१] + गाथा: दीप अनुक्रम [९१-९५]

सूत्रेण वैकल्पिकविधित्वान्न हकारत्वं, नास्ति भे–भवतां कुतोऽपि भयमिति कृत्वा सत्कारयति सन्मानयति सत्कृत्य सन्मान्य च प्रतिविसर्जयति–स्वस्थानगमनायातिदिशति । अथ किरातसाधनोत्तरकालं नरेन्दुः किं चक्रे इत्याह— 'तए णं से भरहे राया सुसेण'इत्यादि, ततः–किरातसाधनानन्तरं भरतः सुषेणं सेनापतिं शब्दयति, शब्दयित्वा च एवमवादीत्–गच्छ भो देवानुप्रिय ! द्वितीयं अपिः समुच्चये पूर्वसाधितनिष्कुटापेक्षया सिन्धो महानद्याः पश्चिमं–पश्चिमभागवर्त्तिं निष्कुटं–प्राग्व्यावर्णितस्वरूपं सिन्धुः नदी सागरः–पश्चिमाब्धिः उत्तरतः क्षुल्लहिमवद्गिरिर्दक्षिणतो वैताढ्यगिरिश्च तैर्मर्यादा यस्य तत्तथा, एतैः कृतविभागमित्यर्थः, शेषं प्राग्वत्, लाघवार्थमतिदेशसूत्रमाह—'जहा दाहिणिल्ल'इत्यादि, यथा दाक्षिणात्यस्य सिन्धुनिष्कुटस्य ओअवणं–साधनं तथा सर्वं भणितव्यं, तावद्वक्तव्यं यावत्सेनानीर्भरतविसृष्टः पञ्चविधान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥ अथ तदनन्तरं किं जातमित्याह—

तए णं दिव्वे चक्करयणे अण्णया कयाइ आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जाव उत्तरपुरच्छिमं दिसिं चुल्लहिमवंतपव्वयाभिमुहे पयाते आवि होत्था, तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयस्स अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं जाव चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, तहेव जहा मागहतित्थस्स जाव समुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ उत्तरदिसाभिमुहे जेणेव चुल्लहिमवंतवासहरपव्वए तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता तहेव जाव आयतकण्णायतं च काऊण उसुमुदारं इमाणि वयणाणि तत्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाणीअ से णरवई जाव सव्वे मे ते विसयवासित्तिकट्टु उड्ढं वेहासं उसुं णिसिरइ परिगरणिगरिअमज्झे जाव तए णं से सरे भरहेणं रण्णा उड्ढं वेहासं णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव बावत्तरिं जोअणाइं गंता चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स मेराए णिवइए, तए णं से चुल्लहिमवंतगिरिकुमारे देवे मेराए सरं णिवइअं पासइ २ त्ता आसुरुत्ते रुट्ठे जाव पीइदाणं सव्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं कडगाणि जाव दहोदगं च गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव उत्तरेणं चुल्लहिमवंतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पिआणं विसयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पिआणं उत्तरिल्ले अंतवाले जाव पडिविसज्जेइ (सूत्रं६२)

'तए णं दिवे चक्करयणे'इत्यादि, ततः—औत्तराहसिंधुनिष्कुटसाधनानन्तरं तद्दिव्यं चक्ररत्नं अन्यदा कदाचित् आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च अंतरिक्षप्रतिपन्नं यावत्पदात् 'जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिवतुडिअसद्दसण्णिणाएणं पूरेन्ते चेव अंबरतल'मिति, उत्तरपूर्वस्यां दिशि—ईशाने कोणे क्षुद्रहिमवत्पर्वताभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः—शिबिरनिवेशात् क्षुद्रहिमवद्गिरिमध्यं यियासोः उत्तरपूर्वायां चलनमेव ऋजुमार्गः, ततो नरेन्दुर्यत्कृतवांस्तदाह—'तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयण'मित्यादि, ततः स भरतस्तद्दिव्यं चक्ररत्नं अभिक्षुद्रहिमवद्गिरि प्रयातं दृष्ट्वा कौटम्बिकपुरुषाज्ञापनं हस्तिरत्नप्रतिकल्पनं सेनासन्नाहनं स्नानविधानं हस्तिरत्नारोहणं मार्गागतपुरनगरदेशाधिपवशीकरणं तत्प्राभृतस्वीकरणं चक्ररत्नानुगमनं योजनान्तरितवसतिवसनं च करोतीत्यादिपिण्डार्थः प्रथमयावत्पदग्राह्यः, अत्र यावत्पदसंग्राह्यसूत्रलिखने बहुविस्तरः स्यादिति तदुपेक्षा, ततः क्षुल्लहिमवद्गिरिसमीपे द्वादशयोजनायामं अत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावच्छब्दान्नवयोजनविस्तीर्णादिविशेषणविशिष्टं स्कन्धावारं निवेशयति, वर्द्धकिरत्नं शब्दयति पौषधशाला विधापयति पौषधं च करोतीत्यादि ज्ञेयं, क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारस्य देवस्य साधनायेति शेषः, कियत्पर्यन्त इत्याह–यावत्समुद्रवभूत-मिव कुर्वाणः कुर्वाण इति, अत्र 'तहेव'त्ति पदवाच्यमष्टमभक्तप्रतिजागरणं तत्समापनं कौटुम्बिकाज्ञापनं सेनासन्नाहनं अश्वरथप्रतिकल्पनं स्नानविधानं अश्वरथारोहणं चक्ररत्नमार्गानुगमनं च करोतीत्यादि ज्ञेयं, सैन्यसमुत्थकलकलरवेण समुद्रवभूतमिव पृथिवीमण्डलं कुर्वन् २ उत्तरदिगभिमुखो यत्रैव च क्षुद्रहिमवद्वर्षधरपर्वतः तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च क्षुल्लहिमवद्वर्षधरपर्वतं त्रिकृत्वः–त्रीन् वारान् रथशिरसा–रथाग्रभागेन काकमुखेनेत्यर्थः स्पृशति, अतिवेगप्रवृत्तस्य वेगिवस्तुनः पुरस्थप्रतिबन्धकभित्त्यादिसंघटने त्रिस्ताडनेन वेगपातदर्शनादत्र त्रिरित्युक्तं, स्पृष्ट्वा च तुरगान् निगृ-ह्णाति–वेगप्रवृत्तान् वाजिनो रक्षति, तदनु वृत्तं यत्तदाह—'णिगिण्हित्ता'इत्यादि, तुरगांश्चनुरोऽपि निगृह्य च तथैव–मागधतीर्थाधिकारवद्वक्तव्यं, कियद्दूरं यावदित्याह–यावदायतकर्णायतं च कृत्वा इषुमुदारमिति, अत्र 'तहेव'त्ति वच-नात् रथस्थापनं धनुर्ग्रहणं शरग्रहणं च वक्तव्यं, ततस्तं शरं तथाविधं कृत्वा तत्र इमानि वचनान्यभाणीत् स नरपतिरत्र यावत्पदेन 'हंदि सुणंतु भवंतो' इत्यादि गाथाद्वयं वाच्यं सर्वे मे ते विसयवासीतिपर्यन्तं इति कृत्वा–इत्युच्चार्य ऊर्ध्वं–उपरि, एतच्च शुभपर्यायं स्यात् यथोर्ध्वलोकः शुभलोक इत्यादि अत उक्तं विहायसि–आकाशे क्षुद्रहिमवद्गिरिकु-मारस्य तत्रावाससम्भवात् इषुं निसृजति, 'परिगरणिगरिअमज्झो जाव'त्ति अत्रावसरे बाणमोक्षप्रकरणाधीतं 'परिग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रणिगरिअमज्झो' इत्यादिपदोपलक्षितं यावच्छब्देन परिपूर्णं गाथाद्वयं वाच्यमिति। ततः किं जातमित्याह—'तए णं से'इत्यादि, ततः स शरो भरतेन राज्ञा ऊर्ध्वं विहायसि निसृष्टः सन् क्षिप्रमेव द्विसप्ततिं योजनानि यावद् गत्वा क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारस्य देवस्य मर्यादायामुचितस्थाने निपतति, 'तए ण'मित्यादि, ततः स क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारो देवो निजमर्यादायां शरं निपतितं पश्यति, दृष्ट्वा च आसुरुत्तो रुष्ट इत्यादिविशेषणविशिष्टो यावत्करणात् भ्रुकुटिं करोति अधिक्षिपति शरं गृह्णाति नाम च वाचयतीत्यादि ग्राह्यं, प्रीतिदानं सर्वौषधीः—फलपाकान्तवनस्पतिविशेषान् राज्याभिषेकादिकार्योपयोगिनः मालां—कल्पद्रुमपुष्पमालां गोशीर्षचन्दनं च—हिमवत्कुञ्जभवं कटकानि यावत्पदात् त्रुटितानि वस्त्राणि आभरणानि शरं च नामाङ्कमिति ग्राह्यं, द्रहोदकं च—पद्मद्रहोदकं गृह्णाति, गृहीत्वा च तयोत्कृष्टयाऽत्र यावत्पदात् देवगत्या व्यतिव्रजति—भरतान्तिकमुपसर्पति विज्ञपयति चेति ज्ञेयं, उत्तरस्यां क्षुद्रहिमवतो गिरेर्मर्यादायां अहं देवानुप्रियाणां विषयवासी यावत्पदात् अहं देवाणुप्पिआणत्तीकिंकरे इति ग्राह्यं, अहं देवानुप्रियाणां औत्तराहो लोकपालः, अत्र यावत्पदात् प्रीतिदानमुपनयति तद् भरतः प्रतीच्छति, देवं सत्कारयति सन्मानयतीति ग्राह्यं, तथा कृत्वा च प्रतिविसर्जयति, अथाधिकोत्साहादष्टमभक्तं तपस्तीरयित्वा कृतपारणक एवावधिप्राप्तदिग्विजयाङ्गं कर्त्तुकामः श्रीऋषभभूः ऋषभकूटगमनायोपक्रमते—

तए णं से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ २ त्ता रहं परावत्तेइ २ त्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता उसहकूडं पव्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतस्य ऋषभकूट-गमनं, तत्र नामलिखनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६३] + गाथा: दीप अनुक्रम [९७--१००]

तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ २ त्ता तुरए निगिण्हइ २ त्ता रहं ठवेइ २ त्ता छत्तलं दुवालसंसिअं अट्ठकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं सोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइ २ त्ता उसभकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लंसि कडगंसि णामगं आउडेइ–ओसप्पिणीइमीसे तइआएँ समाइ पच्छिमे भाए । अहमंसि चक्कवट्टी भरहो इअ नामधिज्जेणं ॥ १ ॥ अहमंसि पढमराया अहयं भरहाहिवो णरवरिंदो । णत्थि महं पडिसत्तू जिअं मए भारहं वासं ॥ २ ॥' इतिकट्टु णामगं आउडेइ णामगं आउडित्ता रहं परावत्तेइ २ त्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जाव दाहिणिं दिसिं वेअड्डपव्वयाभिमुहे पयाते आवि होत्था (सूत्रं ६३)

'तए ण'मित्यादि, ततो–हिमवत्साधनानन्तरं स भरतो राजा तुरगान् निगृह्णाति–दक्षिणपार्श्वस्थहयाबाकर्षति वामपार्श्वस्थहयौ पुरस्करोति, निगृह्य च रथं परावर्त्तयति परावर्त्य च यत्रैवर्षभकूटं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च ऋषभकूटं पर्वतं त्रिकृत्वो रथशीर्षेण स्पृशति, स्पृष्ट्वा च रथं स्थापयति स्थापयित्वा च पट्टतलं द्वादशास्रिकं अष्टकर्णिकं अधिकरणिसंस्थितं सौवर्णिकं–स्वर्णमयमष्टसुवर्णमयत्वात् काकणीरत्नं परामृशति, एतेषां पदानां व्याख्यानं प्राग्वत्, परामृश्य च ऋषभकूटस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये कटके नामैव नामकं स्वार्थे कप्रत्ययः 'आउडेइ'त्ति आकुटति सम्बद्धं करोति लिखतीत्यर्थः, कथं लिखतीत्याह—'ओसप्पिणि'इत्यादि, अवसर्प्पिण्याः, अत्र षष्ठीलोपः प्राकृतत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६३] + गाथा: दीप अनुक्रम [९७--१००]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

अस्या तृतीयायाः समायाः–तृतीयारकस्य पश्चिमभागे तृतीये भागे इत्यर्थः, अहमस्मि चक्रवर्त्ती भरत इति नामधेयेन–नाम्ना ॥ १ ॥ अहमस्मि प्रथमराजा–प्रधानराजा, प्रथमशब्दस्य प्रधानपर्यायत्वाद्यथा 'पढमे चंदजोगे' इत्यादौ, एतद्-व्याख्यानेन ऋषभे प्रथमराजत्वं नागमेन सह विरुध्यते, अहं भरताधिपः–भरतक्षेत्राधिपः नरवराः–सामन्तादयस्ते-षामिन्द्रः नास्ति मम प्रतिशत्रुः–प्रतिपक्षः जितं मया भारतं वर्षमिति कृत्वा नामकं 'आउडेइ'त्ति लिखति, अस्य सूत्रस्य निगमार्थकत्वान्न पौनरुक्त्यं, अथ कृतकृत्यो यद् व्यवस्यति तदाह—'णामगं आउडित्ता'इत्यादि, नामकं लिखित्वा रथं परावर्त्तयति परावर्त्य च यत्रैव विजयस्कन्धावारनिवेशो यत्रैव च बाह्योपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च अत्र यावत्पदात् तुरगान्निगृह्णाति रथं स्थापयति ततः प्रत्यवरोहति मज्जनगृहं प्रविशति स्नाति ततः प्रतिनिष्क्रामति भुङ्क्ते बाह्योपस्थानशालायां सिंहासने उपविशति श्रेणीप्रश्रेणीः शब्दापयति क्षुल्लहिमवद्गिरिकुमारदेव-स्याष्टाहिकाकरणं सन्दिशति ताश्च कुर्वन्ति आज्ञां च प्रत्यर्पयन्तीति ग्राह्यं, ततस्तद्दिव्यं चक्ररत्नं क्षुल्लहिमवद्गिरिकु-मारस्य देवस्याष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्यामायुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च यावच्छ-ब्दादन्तरिक्षप्रतिपन्नादिविशेषणग्रहः, दक्षिणां दिशमुद्दिश्य वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्।

तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता वेअड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंबे दुवालसजोयणायामं जाव पोसहसालं अणुपविसइ जाव णमिविणमीणं विज्जाहरराईणं अट्ठमभत्तं पगिण्हइ २ त्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ चक्रवर्तीभरतं स्त्रीरत्नस्य प्राप्ति-अधिकारः वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

पोसहसालाए जाव णमिविणमिविज्जाहररायाणो मणसी करेमाणे २ चिट्ठइ, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि णमिविणमीविज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइअमई अण्णमण्णस्स अंतिअं पाउब्भवंति २ त्ता एवं वयासी–उप्पण्णे खलु भो देवाणुप्पिआ! जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी तं जीअमेअं तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं विज्जाहरराईणं चक्कवट्टीणं उवत्थाणिअं करेत्तए, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिआ! अम्हेवि भरहस्स रण्णो उवत्थाणिअं करेमो इति कट्टु विणमी णाऊणं चक्कवट्टिं दिव्वाए मईए चोइअमई माणुम्माणप्पमाणजुत्तं तेअस्सिं रूवलक्खणजुत्तं ठिअजुव्वणकेसवट्ठिअणहं सव्वरोगणासणिं बलकरिं इच्छिअसीउण्हफासजुत्तं–तिसु तणुअं तिसु तंबं तिवलीगतिउण्णयं तिगंभीरं । तिसु कालं तिसु सेअं तिआयतं तिसु अविच्छिण्णं ॥ १ ॥ समसरीरं भरहे वासंमि सव्वमहिलप्पहाणं सुंदरथणजघणवरकरचलणणयणसिरसिजदसणजणहिअयरमणमणहरिं सिंगारागार जाव जुत्तोवयारकुसलं अमरवहूणं सुरूवं रूवेणं अणुहरंतीं सुभद्दं भद्दंमि जोव्वणे वट्टमाणिं इत्थीरयणं णमी अ रयणाणि य कडगाणि य तुडिआणि अ गेण्हइ २ त्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए जाव उद्धूआए विज्जाहरगईए जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णा सखिंखिणीयाइं जाव जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता एवं वयासी–अभिजिए णं देवाणुप्पिआ! जाव अम्हे देवाणुप्पिआणं आणत्तिकिंकरा इतिकट्टु तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिआ! अम्हं इमं जाव विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि समप्पेइ । तए णं से भरहे राया जाव पडिविसज्जेइ २ त्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता भोअणमंडवे जाव नमिविनमीणं विज्जाहरराईणं अट्ठाहिअमहामहिमा, तए णं से दिवे चक्करयणे आउहघरसालाओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

पडिणिक्खमइ जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं गंगादेवीभवणाभिमुहे पयाए आवि होत्था, सच्चेव सव्वा सिंधुवत्तव्वया जाव नवरं कुंभट्ठसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताणि अ दुवे कणगसीहासणाइं सेसं तं चेव जाव महिमत्ति (सूत्रं ६४)

'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा सदिव्यं चक्करत्नं दक्षिणादिशि वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयातं पश्यति, दृष्ट्वा च प्रमोदादि तावद् वक्तव्यं यावद् भरतो यत्रैव वैताढ्यस्य पर्वतस्योत्तरपार्श्ववर्ती नितम्बः–कटकस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य च वैताढ्यस्य पर्वतस्योत्तरभागवर्तिनि नितम्बे द्वादशयोजनायामं यावत्पदकरणात् नवयोजनविस्तीर्णमित्यादिकं स्कन्धावारनिवेशादि वाच्यं, पौषधशालामनुप्रविशति भरतः, अत्र यावत्पदात् पौषधविशेषणानि सर्वाणि वाच्यानि, नमिविनम्योः–श्रीऋषभस्वामिमहासामन्तकच्छमहाकच्छसुतयोर्विद्याधरराज्ञोः साधनायाष्टमभक्तं प्रगृह्णाति प्रगृह्य च पौषधशालायां यावच्छब्दात् पौषधिकादिविशेषणविशिष्टो नमिविनमिविद्याधरराजानौ मनसि कुर्वाणो मनसि कुर्वाणस्तिष्ठति, एते स्वगा अनुकम्प्याः एतेषामुपरि बाणमोक्षणेन प्राणदर्शनं न क्षत्रियधर्म इति सिन्ध्वादिसुरीणामिवानयोर्मनसि करणमात्ररूपे साधनोपाये प्रवृत्तः, तेन न द्वादशवार्षिकयुद्धमप्यत्राभिहितं, यत्तु हेमचन्द्रसूरिभिरादिनाथचरित्रे शरमोचनादि चूर्णिकृता तु युद्धमात्रं द्वादशवर्षावधि अण्णे भणंतीत्युक्त्वा उक्तं तन्मतान्तरमवसेयमिति, अत्रान्तरे यज्जातं तदाह—'तए ण'मित्यादि, तस्य भरतस्याष्टमभक्ते परिणमति सति नमिविनमी विद्याधरराजानौ दिव्यया दिव्यानुभावजनितत्वात् मत्या–ज्ञानेन चोदितमती–प्रेरितमतिकौ अवधिज्ञानाद्यभावेऽपि यत्तयोर्भरतमनोविषयक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२५२॥

ज्ञानं तत्सौधर्मेशानदेवीनां मनःप्रविचारिदेवानां कामानुषक्तमनोज्ञानमिव दिव्यानुभावादवगन्तव्यं, अन्यथा तासामपि स्वविमानचूलिकाध्वजादिमात्रविषयकावधिमतीनां तद्विरंसाज्ञानासम्भवेन सुरतानुकूलचेष्टोन्मुखत्वं न सम्भवेदिति, एतादृशावन्योऽन्यस्यान्तिकं प्रादुर्भवतः, प्रादुर्भूय च एवमवादिषातां, किमवादिषातामित्याह—'उप्पण्णे खलु'इत्यादि, उत्पन्नः खलुः—अवधारणे भो देवानुप्रिया! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतवर्षे भरतनामा राजा चतुरन्तचक्रवर्त्ती तस्माज्जीतमेतत्—कल्प एषोऽतीतवर्त्तमानानागतानां विद्याधरराज्ञां चक्रवर्त्तिनामुपस्थानिकं—प्राभृतं कर्तुं, तद् गच्छामो देवानुप्रिया! वयमपि भरतस्य राज्ञ उपस्थानिकं कुर्म्म 'इति कट्टु'इत्यादि इति कृत्वा—इति अन्योऽन्यं भणित्वा विनमिरुत्तरश्रेण्यधिपतिः सुभद्रां नाम्ना स्त्रीरत्नं नमिश्च दक्षिणश्रेण्यधिपती रत्नानि कटकानि त्रुटिकानि च गृह्णातीत्यन्वयः, अथ कीदृशः सन् विनमिः किं कृत्वा सुभद्रां कन्यारत्नं गृह्णातीत्याह—दिव्यया मत्या नोदितमतिः सन् चक्रवर्त्तिनं ज्ञात्वा, अत्रानन्तरोक्तसूत्रतश्चक्रवर्त्तित्वे लब्धेऽपि यत् णाऊण चक्कवट्टिमित्याद्युक्तं तत् सुभद्रा स्त्रीरत्नमस्यैवोपयोगीति योग्यताख्यापनार्थं, किंलक्षणां सुभद्रामित्याह—'मानोन्मानप्रमाणयुक्तां, तत्र मानं—जलद्रोणप्रमाणता उन्मानं—तुलारोपितस्यार्द्धभारप्रमाणता यश्च स्वमुखानि नव समुच्छ्रितः स प्रमाणोपेतः स्यात्, अयमर्थः—जलपूर्णायां पुरुषप्रमाणादीषदतिरिक्तायां महत्यां कुण्डिकायां प्रवेशितो यः पुरुषः सारपुद्गलोपचितो जलस्य द्रोणं त्रिटङ्कसौवर्णिकगणनापेक्षया द्वात्रिंशत्सेरप्रमाणं निष्काशयति जलद्रोणोना वा तां पूरयति स मानोपेतः, तथा सारपुद्गलोपचितत्वादेव

३ वक्षस्कारे नमिविनमिसाधनं स्त्रीरत्नाप्तिः सू. ६४

॥२५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

यस्तुलायामारोपितः सन्नर्द्धभारं पलसहस्रात्मकं तुलयति स उन्मानोपेतः, तथा यद्यस्यात्मीयमङ्गुलं तेनाङ्गुलेन द्वादशांगुलानि मुखं प्रमाणयुक् अनेन च मुखप्रमाणेन नव मुखानि पुरुषः प्रमाणयुक्तः स्यात्, प्रत्येकं द्वादशांगुलैर्नवभिर्मुखैरष्टोत्तरशतमङ्गुलानां सम्पद्यते, ततश्चैतावदुच्छ्रयः पुरुषः प्रमाणयुक्तः स्यात्, एवं सुभद्राऽपि मानोन्मानप्रमाणयुक्ता, तथा तेजस्विनीं व्यक्तं रूपं–सुन्दराकारो लक्षणानि च–छत्रादीनि तैर्युक्तां, स्थितमविनाशित्वाद्यौवनं यस्याः सा तथा, केशवदवस्थिता–अवर्द्धिष्णवो नखा यस्याः सा तथा, ततः पदद्वयकर्मधारये तां, अयं भावः–भुजमूलादिरोमाण्यजहद्रोमस्वभावान्येव तस्याः स्युरिति, अन्यथा तत्केशपाशस्य प्रलम्बतया व्याख्यानं उत्तरसूत्रे करिष्यमाणं नोपपद्येत, सर्वरोगनाशनीं, तदीयस्पर्शमहिम्ना सर्वे रोगा नश्यन्तीति, तथा बलकरीं सम्भोगतो बलवृद्धिकरीं नापरपुरन्ध्रीणामिवास्याः परिभोगे परिभोक्तुर्बलक्षय इति भावः, ननु यदि श्रूयते समये हस्तस्पृष्टाश्वग्लानिदर्शनेन स्त्रीरत्नस्य स्वकामुकपुरुषविभीषिकोत्पादनं तर्हि कथमेतदुपपद्यते?, उच्यते, चक्रवर्त्तिनमेवापेक्ष्यैतद्विशेषणद्वयस्य व्याख्यानात्, यत्तु सत्यपि स्त्रीरत्ने ब्रह्मदत्तचक्रभृतो दाहानुपशमः तत्र समाधानमधस्तनग्रन्थे दण्डवर्णनव्याख्यातोऽवसेयं, ईप्सिता–ऋतुविपरीतत्वेनेच्छागोचरीकृता ये शीतोष्णस्पर्शास्तैर्युक्तां उष्णतौ शीतस्पर्शां शीततौ उष्णस्पर्शां मध्यमत्तौ मध्यम-

१ तस्याः स्पर्शः चक्रवर्तिनः सर्वदोषनाशक इत्यर्थः, न चैवमन्तरामये दाघज्वरोपगते ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिनि व्यभिचारः, प्रत्यासन्नमृत्योस्तदानीं तत्स्पर्शसहने सामर्थ्याभावात् अवश्यंभाविवस्तुत्वाच्च (ही० वृत्तौ)

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

॥२५३॥

स्पर्शामिति भावः, त्रिषु स्थानेषु–मध्योदरतनुलक्षणेषु तनुकां–कृशां तनुमध्या–तनूदरीं तन्वङ्गीतिकविप्रसिद्धेः, ननु सामुद्रिकेऽन्यान्यपि दन्तत्वगादीनि तनूनि कथितानि तथा च सति कथं तनूनां त्रिसङ्ख्याङ्कता युज्यते इति ?, उच्यते, विचित्रत्वात् कविरुचेस्त्रिकसङ्ख्याविशिष्टानुप्रासभासुरं बन्धं निबध्नता ग्रन्थकारेण स्त्रीपुंससाधारणानि यानि त्रिकरूपाणि लक्षणानि तानि तथैव निबद्धानि, यानि तु त्र्यधिकसङ्ख्याकानि तेभ्योऽत्र रत्नप्रस्तावात् केवलं स्त्रीजात्युचितानि लक्षणानि समुच्चित्यानुप्रासाभङ्गार्थं त्रिकरूपत्वेन निबद्धानि तेन नेहापरग्रन्थविरोधः, अत एव दन्तत्वगादीनि तनून्यपि तस्या अत्र न विवक्षितानीति, एवमुत्तरत्रापि भाव्यं, त्रिषु–दृगन्ताधरयोनिलक्षणेषु स्थानेषु ताम्रां–रक्तां, दृगन्तरक्तत्वं हि स्त्रीणां दृक्चुम्बने पुरुषस्यातीव मनोहरं भवतीति, त्रयो वलयो–मध्यवर्तिरेखारूपा यस्याः सा तथा तां, अत्र द्वितीयैकवचनलोपः प्राकृतत्वात्, त्रिवलीकत्वं स्त्रीणामतिप्रशस्यं पुंसां तु तथाविधं न, यदाह—"शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिनमाचार्यं बहुसुतं यथासङ्ख्यम् । एकद्वित्रिचतुर्भिर्वलिभिर्विद्यान्नृपं त्ववलिम् ॥ १ ॥" तथा त्रिषु–स्तनजघनयोनिलक्षणेषु उन्नतां त्रिषु–नाभिसत्त्वस्वररूपेषु गम्भीरां त्रिषु–रोमराजीचूचुककनीनिकारूपेष्ववयवेषु कृष्णां त्रिषु–दन्तस्मितचक्षुर्लक्षणेषु श्वेतां त्रिषु–वेणीबाहुलतालोचनेषु आयतां–प्रलम्बां त्रिषु–श्रोणिचक्रजघनस्थलीनितम्बबिम्बेषु विस्तीर्णां समशरीरां समचतुरस्रसंस्थानत्वात्, भरते वर्षे सर्वमहिलाप्रधानां, सुन्दरं स्तनजघनवरकरचलननयनं यस्याः सा तथा तां, शिरसिजाः–केशाः दशना–दन्तास्तैर्जनहृदयरमणी–द्रष्टृलोकचित्तक्रीडाहेतुकं अत एव मनोहरीं पश्चात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

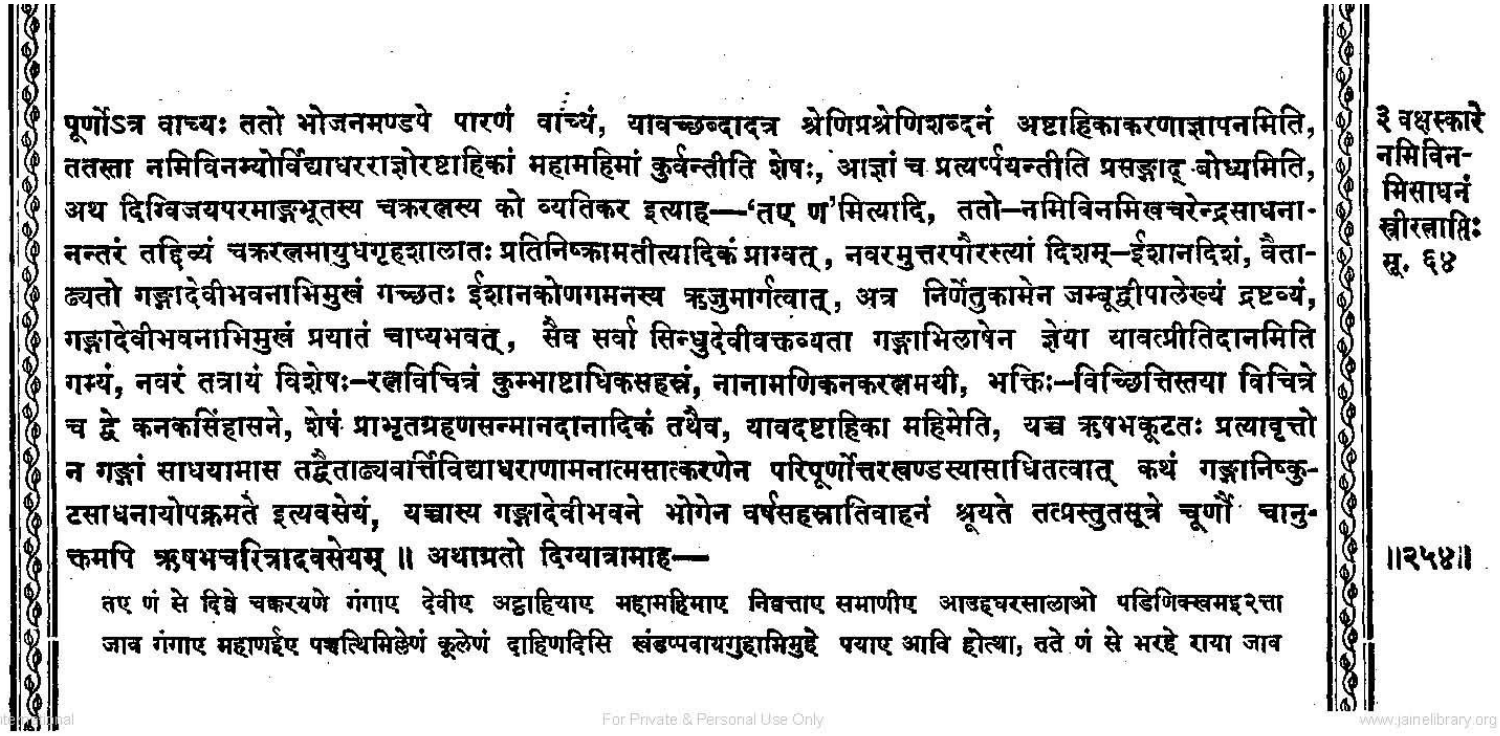
प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

पदद्वयस्य कर्मधारयः, 'सिङ्गारागारे'त्यत्र यावत्पदात् सिङ्गारागारचारुवेसं संगयगयहसिअभणिअचिट्ठिअविलाससल-लिअसंलावनिउण इति संग्रहः, शृङ्गारस्य–प्रथमरसस्यागारं–गृहमिव चारुर्वेषो यस्याः सा तथा तां सङ्गता–उचिता गतहसितभणितचेष्टितविलासा यस्याः सा तथा, तत्र गतं–गमनं हसितं–स्मितं भणितं–वाणी चेष्टितं च–अपुरुषचेष्टा विलासो–नेत्रचेष्टा तथा सह ललितेन–प्रसन्नतया ये संलापाः–परस्परभाषणलक्षणास्तेषु निपुणा या सा तथा, तथा युक्ताः–सङ्गताः ये उपचारा–लोकव्यवहारास्तेषु कुशला या सा तथा, ततः पदत्रयकर्मधारयः तां, अमरवधूनां सुरूपं–सौन्दर्यं रूपेणानुहरन्तीं–अनुकुर्वतीं भद्रे–कल्याणकारिणि यौवने वर्त्तमानां, शेषं तु प्राग्योजितार्थं, 'गिण्हित्ता'इत्यादि, गृहीत्वा तयोत्कृष्टया त्वरितया यावदुद्धूतया विद्याधरगत्या यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छतः, उपागत्य चान्तरिक्षप्रतिपन्नौ सकिंकिणीकानि यावत्पदात् पञ्चवर्णानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितौ इत्यादि जयेन विजयेन वर्द्धयतः वर्द्धयित्वा चैवम-वादिषातां–अभिजितं देवानुप्रियैः यावत्शब्दात् सर्वं मागधगमवद्वाच्यं, नवरमुत्तरेणं चुल्लहिमवंतमेराए इति 'अम्हे णं देवाणुप्पिआणं विसयवासिणो'त्ति आवां देवानुप्रियाणां आज्ञप्तिकिंकराविति कृत्वा तत्प्रतीच्छन्तु देवानुप्रिया ! अस्माकमिदं यावच्छब्दादेतद्रूपं प्रीतिदानमितिकृत्वा विनमिः स्त्रीरत्नं नमिश्च रत्नानि समर्प्पयति । अथ भरतो यदका-र्षीत्तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा यावच्छब्दात् प्रीतिदानग्रहणसत्कारणादि ग्राह्यं, प्रतिविसर्जयति प्रतिविसृज्य च पौषधशालातः प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्राम्य च मज्जनगृहमनुप्रविशति अनुप्रविश्य च स्नानविधिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६४] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०१--१०३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२५४॥

पूर्णोऽत्र वाच्यः ततो भोजनमण्डपे पारणं वाच्यं, यावच्छब्दादत्र श्रेणिप्रश्रेणिशब्दनं अष्टाह्निकाकरणाज्ञापनमिति, ततस्ता नमिविनम्योर्विद्याधरराज्ञोरष्टाह्निकां महामहिमां कुर्वन्तीति शेषः, आज्ञां च प्रत्यर्पयन्तीति प्रसङ्गाद् बोध्यमिति, अथ दिग्विजयपरमाङ्गभूतस्य चक्ररत्नस्य को व्यतिकर इत्याह—'तए ण'मित्यादि, ततो—नमिविनमिखचरेन्द्रसाधनानन्तरं तद्दिव्यं चक्ररत्नमायुधगृहशालातः प्रतिनिष्कामतीत्यादिकं प्राग्वत्, नवरमुत्तरपौरस्त्यां दिशम्—ईशानदिशं, वैताढ्यतो गङ्गादेवीभवनाभिमुखं गच्छतः ईशानकोणगमनस्य ऋजुमार्गत्वात्, अत्र निर्णेतुकामेन जम्बूद्वीपालेख्यं द्रष्टव्यं, गङ्गादेवीभवनाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, सैव सर्वा सिन्धुदेवीवक्तव्यता गङ्गाभिलाषेन ज्ञेया यावत्प्रीतिदानमिति गम्यं, नवरं तत्रायं विशेषः—रत्नविचित्रे कुम्भाष्टाधिकसहस्रं, नानामणिकनकरत्नमयी, भक्तिः—विच्छित्तिस्तया विचित्रे च द्वे कनकसिंहासने, शेषं प्राभृतग्रहणसन्मानदानादिकं तथैव, यावदष्टाह्निका महिमेति, यच्च ऋषभकूटतः प्रत्यावृत्तो न गङ्गां साधयामास तद्वैताढ्यवर्त्तिविद्याधराणामनात्मसात्करणेन परिपूर्णोत्तरखण्डस्यासाधितत्वात् कथं गङ्गानिष्कुटसाधनायोपक्रमते इत्यवसेयं, यच्चास्य गङ्गादेवीभवने भोगेन वर्षसहस्रातिवाहनं श्रूयते तत्प्रस्तुतसूत्रे चूर्णौ चानुक्तमपि ऋषभचरित्रादवसेयम् ॥ अथाग्रतो दिग्यात्रामाह—

तए णं से दिव्वे चक्करयणे गंगाए देवीए अट्ठाहियाए महामहिमाए निवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ२त्ता जाव गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्लेणं कूलेणं दाहिणदिसिं खंडप्पवायगुहाभिमुहे पयाए आवि होत्था, तते णं से भरहे राया जाव

३ वक्षस्कारे नमिविनमिसाधनं स्त्रीरत्नाप्तिः सू. ६४

॥२५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेणेव खंडप्पवायगुहा तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सव्वा कयमालकवत्तव्वया णेअव्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीतिदाणं से आलंकारि-अभंडं कडगाणि अ सेसं सव्वं तहेव जाव अट्ठाहिआ महाम० । तए णं से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्ठाहिआए म० णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ २ त्ता जाव सिंधुगमो णेअव्वो, जाव गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुडं सगंगा-सागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेइ २ त्ता अग्गाणि वराणि रयणाणि पडिच्छइ २ त्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ २ त्ता दोच्चंपि सक्खंधावारबले गंगामहाणईं विमलजलतुंगवीइं णावाभूएणं चम्मरयणेणं उत्तरइ २ त्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ २ त्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेइ । तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छइ २ त्ता सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ, तए णं से सुसेणे सेणावई भरहस्स रण्णो सेसंपि तहेव जाव विहरइ, तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–गच्छण्णं भो देवाणुप्पिआ! खंडगप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि २ त्ता जहा तिमिसगुहाए तहा भाणिअव्वं जाव पिअं मे भवउ सेसं तहेव जाव भरहो उत्तरिल्लेणं दुवारेणं अईइ, ससिव्व मेहंधयारनिवहं तहेव पविसंतो मंडलाइं आलिहइ, तीसे णं खंड-गप्पवायगुहाए बहुमज्झदेसभाए जाव उम्मग्गणिमग्गजलाओ णामं दुवे महाणईओ तहेव णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ कडगाओ पवूढाओ समाणीओ पुरत्थिमेणं गंगं महाणइं समप्पेंति, सेसं तहेव णवरिं पच्चत्थिमिल्लेणं कूलेणं गंगाए संकमवत्तव्वया तहेवत्ति, तए णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

खंडगप्पवायगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा. सयमेव महया २ कोंचारवं करेमाणा २ सरसरस्सगाइं ठाणाइं पच्चोसक्किंत्था, तए णं से भरहे राया चक्करयणदेसियमग्गे जाव खंडगप्पवायगुहाओ दक्खिणिल्लेणं दारेणं णीणेइ ससिव्व मेहंधयारनिवहाओ (सूत्रं६५)

'तए ण'मित्यादि, ततो–गङ्गादेवीसाधनानन्तरं तद्दिव्यं चक्ररत्नं गङ्गाया देव्या अष्टाहिकायां महिमायां निवृत्तायां सत्यामायुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति यावत्पदादन्तरिक्षप्रतिपन्नपदादिपरिग्रहः गङ्गाया महानद्याः पश्चिमे कूले दक्षिणदिशि खण्डप्रपातगुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः स भरतो राजा चक्ररत्नं पश्यतीत्यादिकं तावद्वक्तव्यं यावत्खण्डप्रपातगुहायामागच्छतीति पिण्डार्थः, सर्वा कृतमालवक्तव्यता–तमिस्रागुहाधिपसुरवक्तव्यता नेतव्या–ज्ञातव्येत्यर्थः, नवरं नाट्यमालको नृत्तमालको वा देवो गुहाधिपः प्रीतिदानं 'से' तस्य आलङ्कारिकभाण्डं–आभरणभृतभाजनं कटकानि च शेषं–उक्तविशेषातिरिक्तं सर्वं तथैव–सत्कारसन्मानादिकं कृतमालदेवतावद्वक्तव्यं यावदष्टाहिका, अथ दाक्षिणात्यगङ्गानिष्कुटसाधनाधिकारमाह––'तए ण'मित्यादि, ततः–खण्डप्रपातगुहापतिसाधनानन्तरं स भरतो राजा नाट्यमालकस्य देवस्याष्टाहिकायां पूर्णायां सुषेणं सेनापतिं शब्दयति, शब्दयित्वा च 'जाव सिन्धुगमो'त्ति यावत्परिपूर्णः 'एवं वयासी–गच्छाहि णं भो देवाणुप्पिआ ! सिन्धुए'इत्यादिकः सिन्धुगमः–सिन्धुनदीनिष्कुटसाधनपाठो गङ्गाभिलापेन नेतव्यः यावद् गङ्गाया महानद्याः पौरस्त्यं निष्कुटं–गङ्गायाः पश्चिमतो वहन्त्या सागरेण पूर्वतः परिक्षेपकारिणा गिरिभ्यां दक्षिणतो वैताढ्येन उत्तरतो लघुहिमवता कृता या मर्यादा–व्यवस्था तया सह वर्त्तते यत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा, अन्यत्सर्वं प्राग्वत् सूत्रतो व्याख्यातश्च गङ्गागमेन परिभावनीयं, अथ नाट्यमालदेवस्य वशीकरणप्रयोजनमाह–'तए ण'मित्यादि, ततो–गङ्गानिष्कुटसाधनानन्तरं स भरतः सुषेणं सेनापतिरत्नं शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीदित्यादिकं अत्र गुहाकपाटोद्घाटनाज्ञापनादिकं एकोनपञ्चाशन्मण्डलालेखनान्तं सर्वं तमिस्रागुहायामिव ज्ञेयं, अत्र यो विशेषस्तन्निरूपणार्थमाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्याः–खण्डप्रपातगुहायाः बहुमध्यदेशभागे यावत्पदात् 'एत्थ ण'मिति पदमात्रमवसेयं, उन्मग्नजलानिमग्नजले नाम्ना द्वे महानद्यौ स्तः, तथैव–तमिस्रागुहागतोन्मग्नानिमग्नानदीगमेन ज्ञातव्ये, नवरं खण्डप्रपातगुहायाः पाश्चात्यकटकात् प्रव्यूढे सत्यौ पूर्वेण गङ्गां महानदीं समाप्नुतः–प्रविशतः, शेषं विस्तारायामोद्वेधान्तरादिकं तथैव–तमिस्रागतनदीद्वयप्रकारेणावसेयं, नवरं गङ्गायाः पाश्चात्यकूले संक्रमवक्तव्यतासेतुकरणाज्ञादानतद्विधानोत्तरणादिकं ज्ञेयं, तथैव–प्राग्वद् ज्ञेयमिति, अथैतस्मिन्नवरे दक्षिणतो यज्जातं तदाह—'तए ण'मित्यादि,प्राग्व्याख्यातार्थं, अथोद्घाटितयोर्गुहादक्षिणद्वारकपाटयोः प्रयोजनमाह—'तए ण'मित्यादि, ततः-कपाटोद्घाटनानन्तरं स भरतो राज्ञा चक्ररत्नदेशितमार्गः यावत्करणात् 'अणेगरायवरसहस्साणुआयमग्गे महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभिअमहासमुद्दरवभूअंपिव करेमाणे' इति पदानां परिग्रहः, खण्डप्रपातगुहातो दक्षिणद्वारेण निरेति शशीव मेहान्धकारनिवहात्, प्राग्व्याख्यातं, ननु चक्रिणां तमिस्रया प्रवेशः खण्डप्रपातया निर्गमः किंकारणिकः ?, खण्डप्रपातया प्रवेशस्तमिस्रया निर्गमोऽस्तु, प्रवेशनिर्गमरूपस्य कार्यस्योभयत्र तुल्यत्वात्, उच्यते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६५]

दीप अनुक्रम [१०४]

तमिस्रया प्रवेशे खण्डप्रपातानिर्गमे च सृष्टिः, तया च क्रियमाणस्य तस्य प्रशस्तोदर्कत्वात्, अन्यच्च खण्डप्रपातया प्रवेशे आसन्नोपस्थीयमान ऋषभकूटे चतुर्दिक्पर्यन्तसाधनमन्तरेण नामन्यासोऽपि न स्यादिति ॥ अथ दक्षिणभरतार्द्धगतो भरतो यच्चक्रे तदाह—

तए णं से भरहे राया गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्ले कूले दुवालसजोअणायामं णवजोअणविच्छिण्णं जाव विजयक्खंधावारणिवेसं करेइ, अवसिट्ठं तं चेव जाव निहिरयणाणं अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, तए णं से भरहे राया पोसहसालाए जाव णिहिरयणे मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइत्ति, तस्स य अपरिमिअरत्तरयणा धुअमक्खयमव्वया सदेवा लोकोपचयंकरा उवगया णव णिहिओ लोगविस्सुअजसा, तंजहा—"नेसप्पे १ पंडुअए २ पिंगलए ३ सव्वरयण ४ महपउमे ५। काले ६ अ महाकाले ७ माणवगे महानिही ८ संखे ९॥ १॥ णेसप्पंमि णिवेसा गामागरणगरपट्टणाणं च। दोणमुहमडंबाणं खंधावारावणगिहाणं ॥ १॥ गणिअस्स य उप्पत्ती माणुम्माणस्स जं पमाणं च। धण्णस्स य बीआण य उप्पत्ती पंडुए भणिआ ॥ २॥ सव्वा आभरणविही पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं। आसाण य हत्थीण य पिंगलगणिहिंमि सा भणिआ ॥ ३॥ रयणाइं सव्वरयणे चउदसवि वराइं चक्कवट्टिस्स। उप्पज्जंते एगिंदिआइं पंचिंदिआइं च ॥ ४॥ वत्थाण य उप्पत्ती णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं। रंगाण य धोवाण य सव्वाएसा महापउमे ॥ ५॥ काले कालण्णाणं सव्वपुराणं च तिसुवि वंसेसु। सिप्पसयं कम्माणि अ तिण्णि पयाए हिअकराणि ॥ ६॥ लोहस्स य उप्पत्ती होइ महाकालि आगराणं च। रुप्पस्स सुवण्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं ॥ ७॥ जोहाण य उप्पत्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतस्य दक्षिनार्धभरते दिग्विजय-अर्थे गमनं, नव-निधयः प्राप्तिः वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०५--१२०]

आवरणाणं च पहरणाणं च। सव्वा य जुद्धणीई माणवगे दंडणीई अ ॥८॥ णट्टविही णाडगविही कव्वस्स य चउव्विहस्स उप्पत्ती। संखे महाणिहिंमी तुडिअंगाणं च सव्वेसिं ॥ ९ ॥ चक्कट्ठपइट्ठाणा अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खंभा । बारसदीहा मंजूससंठिआ जण्हवीइ मुहे ॥ १० ॥ वेरुलिअमणिकवाडा कणगमया विविहरयणपडिपुण्णा । ससिसूरचक्कलक्खण अणुसमवयणोववत्ती या ॥ ११ ॥ पलिओवमट्ठिईआ णिहिसरिणामा य तत्थ खलु देवा । जेसिं ते आवासा अकिज्जा आहिवच्चा य ॥ १२ ॥ एए णव णिहिरयणा पभूयधणरयणसंचयसमिद्धा । जे वसमुपगच्छंति भरहाविवचक्कवट्टीणं ॥ १३ ॥ तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, एवं मज्जणघरपवेसो जाव सेणिपसेणिसद्दावणया जाव णिहिरयणाणं अट्ठाहिअं महामहिमं करेइ, तए णं से भरहे राया णिहिरयणाणं अट्ठाहिआए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइरयणं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—गच्छण्णं भो देवाणुप्पिआ! गंगामहाणईए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुडं दुच्चंपि सगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहित्ति । तए णं से सुसेणे तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणिअव्वं जाव ओआवित्ता तमाणत्तिअं पच्चप्पिणइ पडिविसज्जेइ जाव भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। तए णं से दिव्वे चक्करयणे अन्नया कयाइ आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडिअ जाव आपूरेंते चेव विजयक्खंधावारणिवेसं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ दाहिणपच्चत्थिमं दिसिं विणीअं रायहाणिं अभिमुहे पयाए आवि होत्था । तए णं से भरहे राया जाव पासइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ जाव कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं जाव पच्चप्पिणंति (सूत्रं ६६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तए ण'मित्यादि, ततो–गुहानिर्गमानन्तरं स भरतो राजा गङ्गाया महानद्याः पश्चिमे कूले द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तीर्णं यावत्पदात् 'वरणगरसरिच्छं' इति ग्राह्यं, विजयस्कन्धावारनिवेशं करोति, अवशिष्टं–वर्द्धकिरत्नशब्दाज्ञापनादिकं तदेव–यन्मागधदेवसाधनावसरे उक्तमिति, यावच्छब्दात्पौषधशालादर्भसंस्तारकसंस्तरणादि ज्ञेयं, निधिरत्नानामष्टमभक्तं प्रगृह्णाति, ततः स भरतो राजा पौषधशालायां यावत्पदात् 'पोसहि' इत्यादिकं 'एगे अबीए' इत्यन्तं पदकदम्बकं ग्राह्यं, निधिरत्नानि मनसि कुर्वन् २ तिष्ठति, इत्थमनुतिष्ठतस्तस्य किं जातमित्याह—'तस्य य' इत्यादि, तस्य–भरतस्य चशब्दोऽर्थान्तरारम्भे नव निधयः उपागता–उपस्थिता इत्यन्वयः, किंभूताः?–अपरिमितानि रक्तानि उपलक्षणादनेकवर्णानि रत्नानि येषु ते तथा, इदं च विशेषणं तन्मतापेक्षया बोध्यं यन्मते निधिष्वनन्तरमेव वक्ष्यमाणाः पदार्थाः साक्षादेवोत्पद्यन्ते इति, अयमर्थः–एकेषां मते नवसु निधिषु कल्पपुस्तकानि शाश्वतानि सन्ति, तेषु च विश्वस्थितिराख्यायते, केषांचित्तु मते कल्पपुस्तकप्रतिपाद्याः अर्थाः साक्षादेव तत्रोत्पद्यन्ते इति, एनयोरपरमतापेक्षया अपरिमिए इत्यादि विशेषणमिति, तथा ध्रुवास्तथाविधपुस्तकवैशिष्ट्यरूपस्वरूपस्यापरिहाणेः अक्षयाः अवयविद्रव्यस्यापरिहाणेः अव्ययास्तदारम्भकप्रदेशापरिहाणेः, अत्र प्रदेशापरिहाणियुक्तिः समयसंवादिनी पद्मवरवेदिकाव्याख्यासमये निरूपितेति ततोऽवसेया, अत्र पदद्वये मकारोऽलाक्षणिकः, ततः पदत्रयकर्मधारयः, सदेवा अधिष्ठायकदेवकृतसान्निध्या इति भावः लोकोपचयङ्कराः, अत्र नवा खित्कृदन्ते 'रात्रे' (श्रीसि० अ० ६ पा० ४ सू० ११०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रिति सूत्रे योगविभागेन व्याख्याने तीर्थंकरादिशब्दवत् साधुत्वं ज्ञेयं, यद्वा 'देवंनागसुवण्णकिंनरगणस्सब्भूअभावच्चिए' इत्यादिवदार्षत्वादनुस्वारे लोकोपचयकराः–वृत्तिकल्पककल्पपुस्तकप्रतिपादनेन लोकानां पुष्टिकारकाः लोकविख्यातयशस्का इति, अथ नामतस्तानुपदर्शयति–तद्यथेत्युपदर्शने नैसर्प्पस्य देवविशेषस्यायं नैसर्प्पः, एवमग्रेऽपि भाव्यं, अथ यत्र निधौ यदाख्यायते तदाह—'णेसप्प'मित्यादि, नैसर्प्पनामनि निधौ निवेशाः–स्थापनानि स्थापनविधयो ग्रामादीनां गृहपर्यन्तानां व्याख्यायन्ते, तत्र ग्रामो–वृत्त्यावृतः आकरो–यत्र लवणाद्युत्पद्यते नगरं–राजधानी पत्तनं–रत्नयोनिर्द्रोणमुखं–जलस्थलनिर्गमप्रवेशं मडम्बं–अर्द्धतृतीयगव्यूतान्तर्ग्रामरहितं स्कन्धावारः–कटकं आपणो–हट्टः, गृहं–भवनं उपलक्षणात् खेटकर्बटादिग्रहः १ ॥ अथ द्वितीयनिधानवक्तव्यतामाह—'गणिअस्स'इत्यादि, गणितस्य–सङ्ख्याप्रधानतया व्यवहर्त्तव्यस्य दीनारादेः नालिकेरादेर्वा चशब्दात् परिच्छेद्यधनस्य मौक्तिकादेरुत्पत्तिप्रकारः तथा मानं–सेतिकादि तद्विषयं यत्तदपि मानमेव धान्यादि मेयमिति भावः, तथा उन्मानं–तुलाकर्षादि तद्विषयं यत्तदप्युन्मानं खण्डगुडादि धरिमजातीयं धनमित्यर्थः, ततः समाहारद्वन्द्वस्तस्य च यत्प्रमाणं लिङ्गविपरिणामेन तत्पाण्डुके भणितमिति सम्बन्धः, धान्यस्य–शाल्यादेर्बीजानां च–वापयोग्यधान्यानामुत्पत्तिः पाण्डुके निधौ भणिता २ ॥ अथ तृतीयनिधिस्वरूपं निरूप्यते—'सव्वा आभरण'इत्यादि, सर्वं आभरणविधिर्यः पुरुषाणां यश्च महिलानां तथाऽश्वानां हस्तिनां च स यथौचित्येन पिङ्गलकनिधौ भणितः लिङ्गविपरिणामः प्राकृतशैलीभवः ३ ॥ अथ चतुर्थनिधिः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०५--१२०]

'रयणाइं'इत्यादि, रत्नानि चतुर्दशापि वराणि चक्रवर्त्तिनश्चक्रादीनि सप्तैकेन्द्रियाणि सेनापत्यादीनि च सप्त पञ्चेन्द्रियाणि सर्वरत्नाख्ये महानिधावुत्पद्यन्ते, तदुत्पत्तिः तत्र व्यावर्ण्यत इत्यर्थः, अन्ये त्वेवमाहुः—उत्पद्यन्ते एतत्प्रभावात् स्फातिमद्भवन्तीत्यर्थः ४ ॥ अथ पञ्चमो निधिः—'वत्थाण य'इत्यादि, सर्वेषां वस्त्राणां च या उत्पत्तिस्तथा सर्वविभक्तीनां—वस्त्रगतसर्वरचनानां रङ्गानां च—मञ्जिष्ठाकृमिरागकुसुम्भादीनां 'धोव्वाण य'त्ति सर्वेषां प्रक्षालनविधीनां च या निष्पत्तिः सर्वा एषा महापद्मनिधौ ५ ॥ अथ षष्ठो निधिः—'काले कालण्णाण'मित्यादि, कालनामनि निधौ कालज्ञानं—सकलज्योतिःशास्त्रानुबन्धि ज्ञानं तथा जगति त्रयो वंशाः वंशः प्रवाहः आवलिका इत्येकार्थाः, तद्यथा—तीर्थकरवंशश्चक्रवर्त्तिवंशो बलदेववासुदेववंशश्च तेषु त्रिष्वपि वंशेषु यज्ज्ञाव्यं यच्च पुराणमतीतमुपलक्षणमेतद्वर्त्तमानं शुभाशुभं तत्सर्वमत्रास्ति, इतो महानिधितो ज्ञायत इत्यर्थः, शिल्पशतं—विज्ञानशतं घटलोहचित्रवस्त्रनापितशिल्पानां पञ्चानामपि प्रत्येकं विंशतिभेदत्वात् कर्माणि च—कृषिवाणिज्यादीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि त्रीण्येतानि प्रजाया हितकराणि निर्वाहाभ्युदयहेतुत्वात् एतत्सर्वमत्राभिधीयते ६ ॥ अथ सप्तमो निधिः—'लोहस्स य'इत्यादि, लोहस्य च नानाविधस्योत्पत्तिर्भवति महाकाले निधौ, तत्र तदुत्पत्तिराख्यायते इत्यर्थः, तथा रूप्यस्य सुवर्णस्य च मणीनां—चन्द्रकान्तादीनां मुक्तानां—मुक्ताफलानां शिलानां—स्फाटिकादीनां प्रवालानां च सम्बन्धिनां आकराणामुत्पत्तिर्भवति, महाकाले निधाविति योगः ॥ ७ ॥ अथाष्टमः—'जोहाण य'इत्यादि, योधानां—सूरपुरुषाणां चक्रवर्त्तात्, कातराणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुत्पत्तिरभिधीयते, यथा योधत्वं कातरत्वं च जायते तथाऽत्राभिधीयते इत्यर्थः, तथा आवरणानां च–खेटकानां सन्नाहानां वा प्रहरणानां–अस्त्रादीनां च सर्वा च युद्धनीतिः–व्यूहरचनादिलक्षणा सर्वापि च दण्डेनोपलक्षिता नीतिर्दण्डनीतिः–सामादिश्चतुर्विधा माणवकनाम्नि निधावभिधीयते, ततः प्रवर्त्तत इति भावः ८ ॥ अथ नवमः–'णट्टविही णाडगविही'इत्यादि, सर्वोऽपि नृत्यविधिः–नाट्यकरणप्रकारः सर्वोऽपि च नाटकविधिः–अभिनेयप्रबन्धप्रपञ्चनप्रकारः तथा चतुर्विधस्य काव्यस्य ग्रन्थस्य–धर्म्मा१र्थ२काम३मोक्ष४लक्षणपुरुषार्थनिबद्धस्याथवा संस्कृत १-प्राकृता २ पभ्रंश ३ संकीर्ण ४ भाषानिबद्धस्य गद्य १ पद्य २ गेय ३ चौर्ण ४ पदबद्धस्य वा उत्पत्तिः–निष्पत्तिस्तद्विधिः, तत्राद्यं काव्यचतुष्कं प्रतीतं, द्वितीयचतुष्के संस्कृतप्राकृते सुबोधे अपभ्रंशः–तत्तद्देशेषु शुद्धं भाषितं सङ्कीर्णभाषा–शौरसेन्यादिः, तृतीयचतुष्के गद्यं–अच्छन्दोबद्धं शस्त्रपरिज्ञाध्ययनवत् पद्यं–छन्दोबद्धं विमुक्त्यध्ययनवत् गेयं–गन्धर्व्या रीत्या बद्धं गानयोग्यं चौर्णं–बाहुलकविधिबहुलं गमपाठबहुलं निपातबहुलं निपाताव्ययबहुलं ब्रह्मचर्याध्ययनपदवत्, अत्र चेतरयोर्गद्यपद्यान्तर्भावेऽपि यत्पृथगुपादानं तद्गानधर्मोद्येयधर्मविशिष्टतया विशेषणविवक्षणार्थं, शंखे महानिधौ, तथा त्रुटिताङ्गानां च–तूर्याङ्गाणां सर्वेषां वा तथातथावाद्यभेदभिन्नानामुत्पत्तिः शङ्खे महानिधाविति ९ ॥ अथ नवानामपि निधीनां साधारणं स्वरूपमाह—'चक्कट्ठ'इत्यादि, प्रत्येकमष्टसु चक्रेषु प्रतिष्ठानं–अवस्थानं येषां ते तथा, यत्र यत्र वाद्यन्ते तत्र तत्राष्टचक्रप्रतिष्ठिता एव वहन्ति, प्राकृतत्वादष्टशब्दस्य परनिपातः, अष्टौ योज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

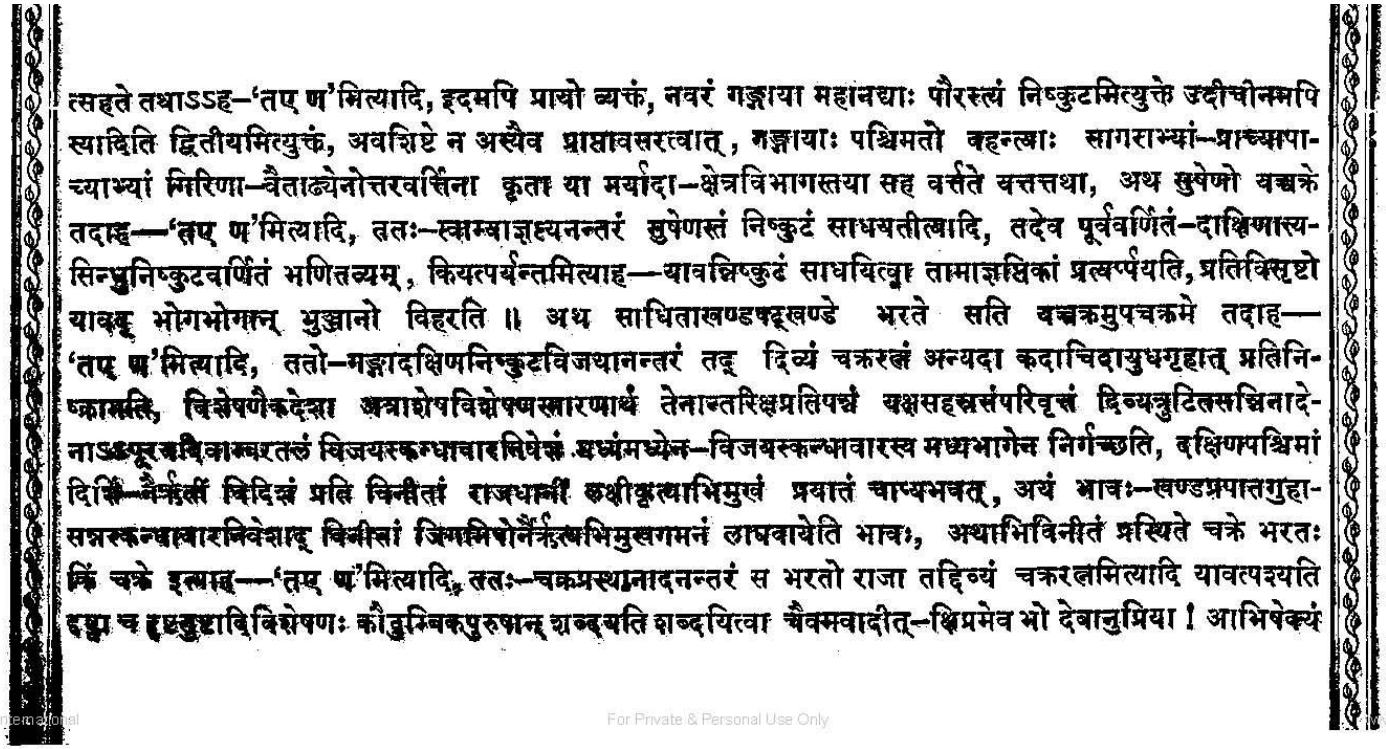
प्रत सूत्रांक [६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०५--१२०]

नानि उत्सेधः–उच्चैस्त्वं येषां ते तथा, नव च योजनानीति गम्यते विष्कम्भेन–विस्तारेण नवयोजनविस्तारा इत्यर्थः, द्वादशयोजनदीर्घाः मंजूषावत्संस्थिताः, जाह्नव्या–गङ्गाया मुखे यत्र समुद्रं गङ्गां प्रविशति तत्र सन्तीत्यर्थः, 'इत्थंभूतलक्षणे वयं मङ्गामुखमागधवासिनः । आगतास्त्वां महाभाग!, त्वद्भाग्येन वशीकृताः ॥ १ ॥" इति त्रिषष्टीयचरित्रोक्तेः, चक्रोत्पत्तिकाले च भरतविजयानन्तरं चक्रिणा सह पातालमार्गेण भाग्यवत्पुरुषाणां हि पदाधःस्थितयो निधय इति चक्रिपुरमनुयान्ति, तथा वैडूर्यमणिमयानि कपाटानि येषां ते तथा, मयट्प्रत्ययस्य लुप्त्या उक्तार्थता, कनकमयाः–सौवर्णाः विविधरत्नप्रतिपूर्णाः शशिसूरचक्राकाराणि लक्षणानि–चिह्नानि येषां ते तथा, प्रथमाबहुवचनलोपः प्राकृतत्वात्, अनुरूपा समा–अविषमा वदनोपपत्तिः–द्वारघटना येषां ते तथा, पल्योपमस्थितिका निधिसदृग्नामानः खलु, तत्र च निधिषु ते देवा येषां देवानां त एव निधयः आवासाः–आश्रयाः, किंभूताः–अक्रेया–अक्रयणीयाः, किमर्थमित्याह–आधिपत्याय–आधिपत्यनिमित्तं, कोऽर्थः?–तेषामाधिपत्यार्थी कश्चित्क्रयेण–मूल्यदानादिरूपेण तान् न लभते इति, किन्तु पूर्वसुचरितमहिम्नैवेत्यर्थः, एते नव निधयः प्रभूतधनरत्नसंचयसमृद्धाः ये भरताधिपानां–षट्खण्डभरतक्षेत्राधिपानां चक्रवर्त्तिनां वशमुपगच्छन्ति–वश्यतां यान्ति, एतेन वासुदेवानां चक्रवर्त्तित्वेऽप्येतद्विशेषणव्युदासः, निधिप्रकरणे चात्र स्थानाङ्गप्रवचनसारोद्धारादिवृत्तिगतानि बहूनि पाठान्तराणि ग्रन्थविस्तरभयादुपेक्ष्यैतत्सूत्रादर्शदृष्ट एव पाठो व्याख्यातः। अथ सिद्धनिधानो भरतो यच्चक्रे तदाह—'तए ण'मित्यादि व्यक्तं, अथ षट्खण्डदत्तदृष्टिर्भरतो यथो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०५--१२०]



त्सहते तथाऽऽह–'तए ण'मित्यादि, इदमपि प्रायो व्यक्तं, नवरं गङ्गाया महानद्याः पौरस्त्यं निष्कुटमित्युक्ते उदीचीनमपि स्यादिति द्वितीयमित्युक्तं, अवशिष्टे न अस्यैव प्रासादवरस्यात्, गङ्गायाः पश्चिमतो वहन्त्याः सागराभ्यां–प्राच्यापाच्याभ्यां गिरिणा–वैताढ्येनोत्तरवर्त्तिना कृता या मर्यादा–क्षेत्रविभागस्तया सह वर्त्तते यत्तत्तथा, अथ सुषेणो यच्चक्रे तदाह–'तए ण'मित्यादि, ततः–स्वाम्याज्ञप्त्यनन्तरं सुषेणस्तं निष्कुटं साधयतीत्यादि, तदेव पूर्ववर्णितं–दाक्षिणात्यसिन्धुनिष्कुटवर्णितं भणितव्यम्, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावन्निष्कुटं साधयित्वा तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयति, प्रतिविसृष्टो यावद् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरति ॥ अथ साधिताखण्डषट्खण्डे भरते सति यच्चक्रमुपचक्रमे तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततो–गङ्गादक्षिणनिष्कुटविजयानन्तरं तद् दिव्यं चक्ररत्नं अन्यदा कदाचिदायुधगृहात् प्रतिनिष्क्रामति, विशेषणैकदेशा अत्राशेषविशेषणस्मारणार्थं तेनान्तरिक्षप्रतिपन्नं यक्षसहस्रसंपरिवृतं दिव्यत्रुटितसन्निनादेनाऽऽपूरयदिवाम्बरतलं विजयस्कन्धावारनिवेशं मध्यंमध्येन–विजयस्कन्धावारस्य मध्यभागेन निर्गच्छति, दक्षिणपश्चिमां दिशं–नैर्ऋतीं विदिशं प्रति विनीतां राजधानीं लक्षीकृत्याभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, अयं भावः–खण्डप्रपातगुहासन्नस्कन्धावारनिवेशाद् विनीतां जिगमिषोर्नैर्ऋत्यभिमुखगमनं लाघवायेति भावः, अथाभिविनीतं प्रस्थिते चक्रे भरतः किं चक्रे इत्याह—'तए ण'मित्यादि, ततः–चक्रप्रस्थानादनन्तरं स भरतो राजा तद्दिव्यं चक्ररत्नमित्यादि यावत्पश्यति दृष्ट्वा च हृष्टतुष्टादिविशेषणः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! आभिषेक्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१०५--१२०]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥२६०॥

यावत्करणात् हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत सेना सन्नाहयत ते च सर्वं कुर्वन्ति आज्ञां च प्रत्यर्पयन्ति ॥ अथोक्तमेवार्थं दिग्विजयकालाद्यधिकार्थविवक्षया विस्तरवाचनया चाह—

तए णं से भरहे राया अज्जिअरज्जो णिज्जिअसत्तू उप्पण्णसमत्तरयणे चक्करयणप्पहाणे णवणिहिवई समिद्धकोसे बत्तीसरायवरसहस्साणुआयमग्गे सट्ठीए वरिससहस्सेहिं केवलकप्पं भरहं वासं ओयवेइ ओअवेत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ२ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं हयगयरह तहेव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे। तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तंजहा—सोत्थिअसिरिवच्छजाव दप्पणे, तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगार दिव्वा य छत्तपडागा जाव संपट्ठिआ, तयणंतरं च वेरुलिअमिसंतविमलदंडं जाव अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं, तयणंतरं च णं सत्त एगिंदिअरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिआ, तं०—चक्करयणे १ छत्तरयणे २ चम्मरयणे ३ दंडरयणे ४ असिरयणे ५ मणिरयणे ६ कागणिरयणे ७, तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तंजहा—णेसप्पे पंडुयए जाव संखे, तयणंतरं च णं सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं बत्तीसं रायवरसहस्सा अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं सेणावइरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए,एवं गाहावइरयणे वद्धइरयणे पुरोहिअरयणे, तयनंतरं च णं इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुव्वीए० तयणंतरं च णं बत्तीसं उडुकल्लाणिआ सहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए० तयणंतरं च णं बत्तीसं जणवयकल्लाणिआसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए तयणंतरं च णं बत्तीसं बत्तीसइबद्धा णा-

३ वक्षस्कारे भरतस्य विनीतायां प्रवेशः सू. ६७

॥२६०॥

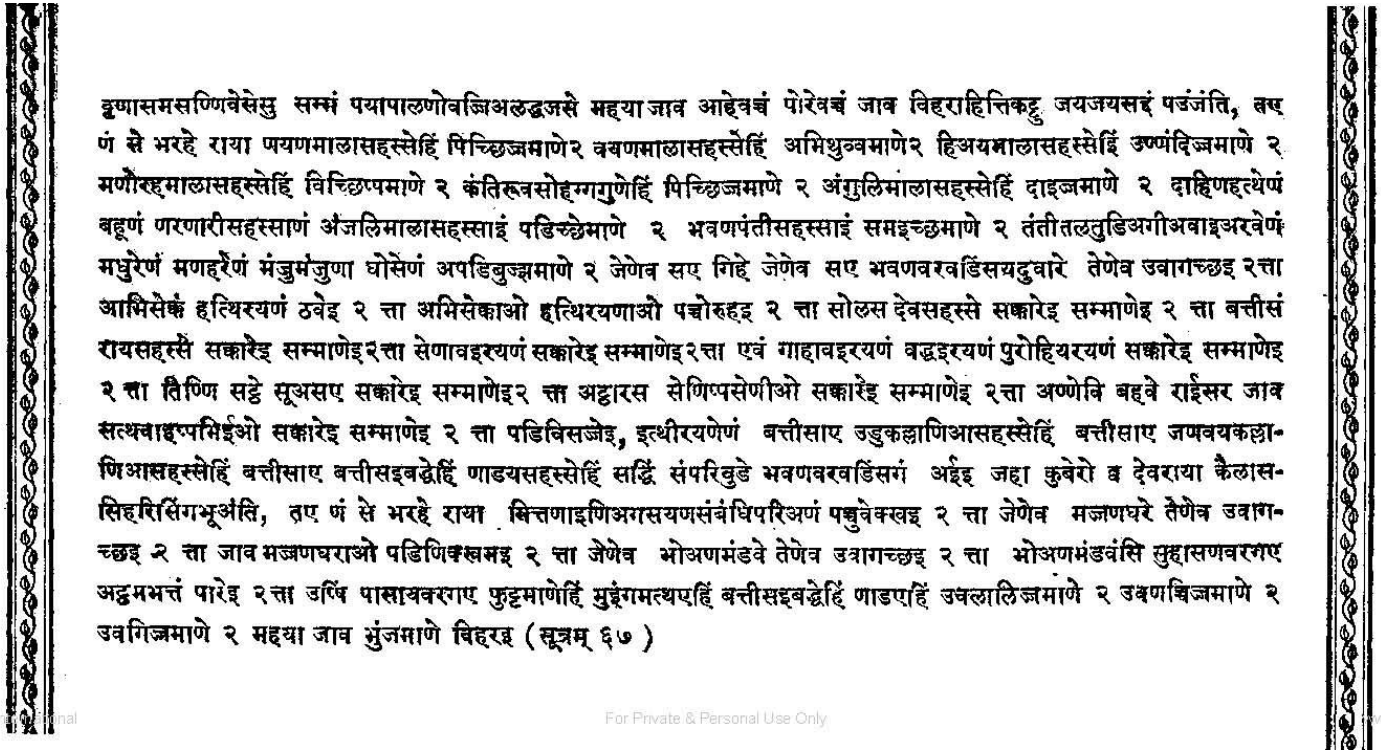
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डगसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए० तयणंतरं च णं तिण्णि सट्ठा सूअसया पुरओ अहाणुपुव्वीए० तयणंतरं च णं अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ पुरओ० तयणंतरं च णं चउरासीइं आससयसहस्सा पुरओ० तयणंतरं च णं चउरासीइं हत्थिसयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए० तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्सकोडीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तयणंतरं च णं बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईओ पुरओ अहाणुपुव्वीइ संपट्ठिआ तयणंतरं च णं बहवे असिग्गाहा लट्ठिग्गाहा कुंतग्गाहा चावग्गाहा चामरगाहा पासग्गाहा फलगग्गाहा परसुग्गाहा पोत्थयग्गाहा वीणग्गाहा कूअग्गाहा हडप्फग्गाहा दीविअंगाहा सएहिं सएहिं रूवेहिं,एवं वेसेहिं चिंधेहिं निओएहिं सएहिं २ वत्थेहिं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिआ, तयणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिहंडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकारगा खेड्डकारगा दवकारगा चाडुकारगा कंदप्पिआ कुक्कुइआ मोहरिआ गायंता य दीवंता य (वायंता) नचंता य हसंता य रमंता य कीलंता य सासेंता य सावेंता य जावेंता य रावेंता य सोभेंता य सोभावेंता य आलोअंता य जयजयसद्दं च पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, एवं उववाइअगमेणं जाव तस्स रण्णो पुरओ महआसा आसधरा उभओ पासिं णागा णागधरा पिट्ठओ रहा रहसंगेल्ली अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ इति । तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइअवच्छे जाव अमरवइसण्णिभाए इद्धीए पहिअकित्ती चक्करयणदेसिअमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुआयमग्गे जाव समुद्दरवभूअंपिव करेमाणे २ सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव णिग्घोसणाइयरवेणं गामागरणगरखेडकव्वडमडंब जाव जोअणंतरिआहिं वसहीहिं वसमाणे २ जेणेव विणीआ रायहाणी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विणीआए रायहाणीए अदूरसामंते दुवालसजोअणायामं णवजोयणविच्छिण्णं जाव खंधावारणिवेसं करेइ २ त्ता वद्धइरयणं सद्दावेइ २ त्ता जाव पोसहसालं अणुपविसइ २ त्ता विणीआए रायहाणीए अट्ठमभत्तं पगिण्हइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ त्ता जाव अट्ठमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ। तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता तहेव जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दूरूढे तं चेव सव्वं जहा हेट्ठा णवरिं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणीआए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिंसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं अणुपविसमाणस्स अप्पेगइआ देवा विणीअं रायहाणिं सब्भंतरबाहिरिअं आसिअसम्मज्जिओवलित्तं करेंति अप्पेगइआ मंचाइमंचकलिअं करेंति, एवं सेसेसुवि पएसु, अप्पेगइआ णाणाविहरागवसणुस्सियधयपडागामंडितभूमिअं अप्पेगइआ लाउल्लोइअमहिअं करेंति, अप्पेगइआ जाव गंधवट्टिभूअं करेंति, अप्पेगइआ हिरण्णवासं वासिंति सुवण्णरयणवइर-आभरणवासं वासेंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं अणुपविसमाणस्स सिंघाडग जाव महापहेसु बहवे अत्थत्थिआ कामत्थिआ भोगत्थिआ लाभत्थिआ इड्ढिसिआ किब्बिसिआ कारोडिआ कारवाहिआ संखिया चक्किआ पंग-लिआ मुहमंगलिआ पूसमाणया वद्धमाणया लंखमंखमाइआ ताहिं ओरालाहिं इट्ठाहिं कंताहिं पिआहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीआहिं हिअयगमणिज्जाहिं हिअयपल्हायणिज्जाहिं वग्गूहिं अणुवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं क्यासी—जय जय णंदा! जय जय भद्दा! भद्दं ते अजिअं जिणाहि जिअं पालयाहि जिअमज्झे वसाहि इंदो विव देवाणं चंदो विव ताराणं चमरो विव असुराणं धरणे विव नागाणं बहूइं पुव्वसयसहस्साइं बहूईओ पुव्वकोडीओ बहूईओ पुव्वकोडाकोडीओ विणीआए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स य केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स गामागरणगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



कुणासमसण्णिवेसेसु सम्मं पयापालणोवज्जिअलद्धजसे महया जाव आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहराहित्तिकट्टु जयजयसद्दं पउंजंति, तए णं से भरहे राया पयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे२ वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे२ हिअयमालासहस्सेहिं उण्णंदिज्जमाणे २ मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे २ कंतिरूवसोहग्गगुणेहिं पिच्छिज्जमाणे २ अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २ दाहिणहत्थेणं बहूणं णरणारीसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छेमाणे २ भवणपंतीसहस्साइं समइच्छमाणे २ तंतीतलतुडिअगीअवाइअरवेणं मधुरेणं मणहरेणं मंजुमंजुणा घोसेणं अपडिबुज्झमाणे २ जेणेव सए गिहे जेणेव सए भवणवरवडिंसयदुवारे तेणेव उवागच्छइ २त्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ २ त्ता अभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता सोलस देवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता बत्तीसं रायसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ२त्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ२त्ता एवं गाहावइरयणं वद्धइरयणं पुरोहियरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता तिण्णि सट्ठे सूअसए सक्कारेइ सम्माणेइ२ त्ता अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ २त्ता अण्णेवि बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ, इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं णाडयसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे भवणवरवडिंसगं अईइ जहा कुबेरो व देवराया कैलाससिहरिसिंगभूअंसि, तए णं से भरहे राया सित्तणाइणिअगसयणसंबंधिपरिअणं पच्चुवेक्खइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २त्ता उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं उवलालिज्जमाणे २ उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्जमाणे २ महया जाव भुंजमाणे विहरइ (सूत्रम् ६७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा अर्जितराज्यो–लब्धराज्यो निर्जितशत्रुरुत्पन्नसमस्तरत्नस्तत्रापि चक्ररत्नप्रधानो नवनिधिपतिः समृद्धकोशः–सम्पन्नभाण्डागारः द्वात्रिंशद्राजवरसहस्रैरनुयातमार्गः षष्ट्या वर्षसहस्रैः केवलकल्पं–परिपूर्णं भरतवर्षं साधयित्वा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! आभिषेक्यं. 'हत्थि'त्ति हस्तिवर्णकस्मारणं 'हयगयरह'त्ति सेनासन्नाहनस्मारणं तथैव पूर्ववत् स्नानविधिभूषणविधिसैन्योपस्थितिहस्तिरत्नोपागमनानि वाच्यानि, अञ्जनगिरिशृङ्गसदृशं गजपतिं नरपतिरारूढवान् । अथ प्रस्थिते नरपतौ के पुरतः के पृष्ठतः के पार्श्वतश्च प्रस्थितवन्त इत्याह–'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञः आभिषेक्यं हस्तिरत्नमारूढस्य सतः इमान्यष्टाष्टमङ्गलकानि पुरतो यथानुपूर्व्या–यथाक्रमं संप्रस्थितानि–चलितानि, तद्यथा–स्वस्तिकश्रीवत्सयावत्पदात् पूर्वोक्तमङ्गलकानि ग्राह्याणि, यद्यप्येकाधिकारप्रतिबद्धत्वेनाखण्डस्याधिकारसूत्रस्य लिखनं युक्तिमत्तथापि सूत्रभूयिष्ठत्वेन वृत्तिर्दूरगता वाचयितॄणां सम्मोहाय स्यादिति प्रत्येकालापकं वृत्तिर्लिख्यते इति, 'तयणंतरं च ण'मित्यादि तदनन्तरं च पूर्णजलभृतं 'कलशभृङ्गारं'कलशः–प्रतीतः भृङ्गारः–कनकालुका ततः समाहारादेकवद्भावः, इदं च जलपूर्णत्वेन मूर्त्तिमद् ज्ञेयं, तेनालेख्यरूपाष्टमङ्गलान्तर्गतकलशादयं कलशो भिन्नः, दिव्येव दिव्या–प्रधाना चः समुच्चये स च व्यवहितसम्बन्धः छत्रविशिष्टा पताका च यावत्पदात् 'सचामरा दंसणरइअ आलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुअविजयवेजयंती अब्भुस्सिआ गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए' इति ग्राह्यं, अत्र व्याख्या–सचामरा–चामरयुक्ता दर्शने–प्रस्थातु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [१२१]

दृष्टिपथे रचिता मङ्गल्यत्वात् अत एवालोके–बहिःप्रस्थानभाविनि शकुनानुकूल्यालोकने दर्शनीया–द्रष्टुं योग्या, ततो विशेषणसमासः,काऽसावित्याह–वातोद्धूता विजयसूचिका वैजयन्ती–पार्श्वतो लघुपताकाद्वययुक्तः पताकाविशेषः प्राग्वत् उच्छ्रिता–उच्चा गगनतलमनुलिखन्ती अत्युच्चतया एते च कलशादयः पदार्थाः पुरतो यथानुपूर्व्या संप्रस्थिता इति, 'तए ण'मित्यादि, ततो वैडूर्यमयो'भिसंत'त्ति दीप्यमानो विमलो दण्डो यस्मिंस्तत्तथा, यावत्पदात् पलम्बं कोरण्टमल्लदामोवसोहिअं चन्दमंडलनिभं समूसिअं विमलं आयवत्तं पवरं सिंहासणं च मणिरयणपायपीढं सपाउआजोगसमाउत्तं बहुकिंकरकम्मकरपुरिसपायत्तपरिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं'ति, अत्र व्याख्या—प्रलम्बेन कोरण्टाभिधानवृक्षस्य माल्यदाम्ना–पुष्पमालयोपशोभितं चन्द्रमण्डलनिभं समुच्छ्रितं–ऊर्ध्वीकृतं विमलमातपत्रं–छत्रं प्रवरं सिंहासनं च मणिरत्नमयं पादपीठं–पदासनं यस्मिंस्तत्तथा, स्वः–स्वकीयो राजसत्क इत्यर्थः पादुकायोगः–पादरक्षणयुगं तेन समायुक्तं, बहवः किङ्कराः–प्रतिकर्म पृच्छाकारिणः कर्मकराः–ततोऽन्यथाविधास्ते च ते पुरुषाश्चेति समासः पादातं–पदातिसमूहस्तैः परिक्षिप्तं–सर्वतो वेष्टितं तैर्धृतत्वादेव पुरतो यथानुपूर्व्या संप्रस्थितं; 'तए ण'मित्यादि, ततः सप्त एकेन्द्रियरत्नानि पृथिवीपरिणामरूपाणि पुरतः संप्रस्थितानि, तद्यथा–चक्ररत्नादीनि प्रागभिहितस्वरूपाणि, चक्ररत्नस्य च एकेन्द्रियरत्नाखण्डसूत्रपाठादेवात्र भणनं, तस्य मार्गदर्शकत्वेन सर्वतः पुरः संचरणीयत्वाद् , अत्र च गत्यानन्तर्यस्य वक्तुमुपक्रान्तत्वादिति, 'तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ पुरओ' इत्यादि, ततो नव महानिधयोऽग्रतः प्रस्थिताः पाता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लमार्गेणेति गम्यं, अन्यथा तेषां निधिव्यवहार एव न सङ्गच्छते, तद्यथा–नैसर्प्पः पाण्डुकी यावच्छङ्खः सर्वे प्राग्वत्, उक्ता स्थावराणां पुरतो गतिः किङ्करजनधृतत्वेन दिव्यानुभावेन वा, अथ जङ्गमानां गतेरवसर इति 'तयणंतरं च णं सोलस देव' इत्यादि, ततः षोडश देवसहस्राः पुरतो यथानुपूर्व्या संप्रस्थिताः, 'तयणंतरं च णं बत्तीस'मित्यादि, व्यक्तं– 'तए णं'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं पुरोहितरत्नं–शान्तिकर्मकृत्, रणे प्रहारार्दितानां मणिरत्नजलच्छटया वेदनोपशामकं, हस्त्यश्वरत्नगमनं तु हस्त्यश्वसेनया सहैव विवक्ष्यते तेन नात्र कथनं, 'तए णं'मित्यादि, ततो द्वात्रिंशत् ऋतुकल्याणिकाः–ऋतुषु षट्स्वपि कल्याणिकाः–ऋतुविपरीतस्पर्शत्वेन सुखस्पर्शाः अथवाऽमृतकन्यात्वेन सदा कल्याणकारिण्यः न तु चन्द्रगुप्तसहायपर्वतभूपतिपाणिगृहीतमात्रप्राणहारिनन्दनृपनन्दिनीविद्विषकन्यारूपास्तासां सहस्राः पुरतः प्रस्थिताः, समर्थविशेषणाद्विशेष्यं लभ्यते इति लक्षणगुणयोगाद्राजकन्या अत्र ज्ञेयास्तासामेव जन्मान्तरोपचितप्रकृष्टपुण्यप्रकृतिमहिम्ना राजकुलोत्पत्तिवद् यथोक्तलक्षणगुणसम्भवात् जनपदाग्रणीकन्यानामग्रेतनसूत्रेणाभिधानाच्च तासां सहस्राः पुरतो यथानुपूर्व्या–यथाज्येष्ठलघुपर्यायं संप्रस्थिताः, तथा द्वात्रिंशत् 'जणवय'त्ति जनपदाग्रणीनां देशमुख्यानां कल्याणिकानां सहस्राः अग्रे तथैव, अत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचाराज्जनपदग्रहणेन जनपदाग्र्यो ज्ञेयाः, न चैवं स्वमतिकल्पितमिति वाच्यं, 'तावतीभिर्जनपदाग्रणीकन्याभिरावृतः' इति श्रीऋषभचरित्रे साम्मत्यदर्शनात्, तदनन्तरं द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशता पात्रैः–अभिनेतव्यप्रकारैर्बद्धाः–संयुक्ता नाटकसहस्राः पुरतो यथानुपूर्व्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमं प्रथमोढापितृप्राभृतीकृतनाटकं ततस्तदनन्तरोढानाटकमिति क्रमेण सम्प्रस्थिताः, एतेषां चोक्तसङ्ख्याकता द्वात्रिंशता राजवरसहस्रैः स्वस्वकन्यापाणिग्रहणकारणे प्रत्येकं करमोचनसमयसमर्पितैकैकनाटकसद्भावात्, 'तयणंतरं च णं तिण्णि सट्ठा सूयसया' इत्यादि ततः त्रीणि सूपानां पूर्ववदुपचारात् सूपकाराणां शतानि षष्टानि–षष्ट्यधिकानि वर्षदिवसेषु प्रत्येकमेकैकस्य रसवतीवारकदानात्, ततः कुम्भकाराद्या अष्टादश श्रेणयः तदवान्तरभेदाः प्रश्रेणयः ततः चतुरशीतिरश्वशतसहस्राः ततश्चतुरशीतिर्हस्तिशतसहस्राः ततः षण्णवतिर्मनुष्याणां पदातीनां कोट्यः पुरतः प्रस्थिताः, 'तयणंतरं च ण'मित्यादि, ततो बहवो राजेश्वरतलवराः यावत्पदात् माडंबिअकोडुंबिय इत्यादिपरिग्रहः सार्थवाहप्रभृतयः पुरतः सम्प्रस्थिताः अर्थः प्राग्वत्, 'तयणंतरं च ण'मित्यादि, ततो बहवोऽसिः–खड्गः स एव यष्टिः–दण्डोऽसियष्टिस्तद्ग्राहाः–तद्ग्राहिणः अथवा असिश्च यष्टिश्चेति द्वन्द्वे तद्ग्राहिण इति, एवमग्रेऽपि यथासम्भवमक्षरयोजना कार्या, नवरं कुन्ताश्चामराणि च प्रतीतानि पाशा–द्यूतोपकरणानि उन्नस्ताश्वादिबन्धनानि वा फलकानि– सम्पुटकफलकानि खेटकानि वा अवष्टम्भानि वा द्यूतोपकरणानि वा पुस्तकानि–शुभाशुभपरिज्ञानहेतुशास्त्रपत्रसमुदायरूपाणि वीणाग्राहा व्यक्तं, कुतपः–तैलादिभाजनं, हडप्फो–द्रम्मादिभाजनं ताम्बूलार्थं पूगफलादिभाजनं वा, पीढगगाहा दीविअगगाहा इति पदद्वयं सूत्रे दृश्यमानमपि संग्रहगाथायामदृष्टत्वेन न लिखितं, तद्व्याख्यानं त्वेवं–पीठं–आसनविशेषः दीपिका च प्रतीतेति, स्वकैः२–स्वकीयैः २ रूपैः–आकारैः एवं स्वकीयैः २ इत्यर्थः वेषैः–वस्त्रालङ्काररूपैः चिह्नैः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

अभिज्ञानैः नियोगैः–व्यापारैः स्वकीयैर्नेपथ्यैः–आभरणैः सहिता इति, अबद्धसूत्रे च पदानि न्यूनाधिकान्यपि लिपि-प्रमादात् सम्भवेयुरिति तन्नियमार्थं संग्रहगाथा सूत्रबद्धा क्वचिदादर्शे दृश्यते, यथा "असिलट्ठिकुंतचावे चामरपासे अ फलगपोत्थे अ। वीणाकूवग्गाहे तत्तो य हडप्फगाहे अ ॥ १ ॥" 'तय ण'मित्यादि, ततो बहवो दण्डिनो–दण्डधारिणः मुण्डिनः–अपनीतशिरोजाः शिखण्डिनः–शिखाधारिणः जटिनो–जटाधारिणः पिच्छिनो–मयूरादिपिच्छवाहिनः हास्यकारका इति व्यक्तं खेड्डुं–द्यूतविशेषस्तत्कारकाः द्रवकारकाः–केलिकराः चाटुकारकाः–प्रियवादिनः कान्दर्पिकाः–कामप्रधानकेलिकारिणः कुक्कुइआ इति–कौत्कुच्यकारिणो भाण्डाः, मोहरिआ इति–मुखरा वाचाला असम्बद्धप्रलापिन इति यावत्, गायन्तश्च गेयानि वादयन्तश्च वादित्राणि नृत्यन्तश्च हसन्तश्च रममाणाश्च अक्षादिभिः क्रीडयन्तश्च कामक्रीडया शासयन्तश्च–परेषां गानादीनि शिक्षयन्तः श्रावयन्तश्च–इदं चेदं च परुत् परारि भविष्यतीत्येवंभूतवचांसि श्रवणविषयीकारयन्तः जल्पन्तश्च–शुभवाक्यानि रावयन्तश्च शब्दान् कारयन्तः स्वजल्पितान्यनुवादयन्त इत्यर्थः शोभमानाश्च–स्वयं शोभयन्तः परान् आलोकमानाश्च–राजराजस्यावलोकनं कुर्वन्तः जयजयशब्दं च प्रयुञ्जानाः पुरतो यथानुपूर्व्या पूर्वोक्तपाठक्रमेण सम्प्रस्थिताः, इह गमे क्वचिदादर्शे न्यूनाधिकान्यपि पदानि दृश्यन्ते इति, एवमुक्तक्रमेण औपपातिकगमेन–प्रथमोपाङ्गगतपाठेन तावद् वक्तव्यं यावत्तस्य राज्ञः पुरतो महाश्वाः–बृहत्तुरङ्गाः अश्वधरा–अश्वधारकपुरुषाश्च उभयतो–भरतोपवाह्यगजरत्नस्य द्वयोः पार्श्वयोर्नागा–गजा नागधरा–गज-

३वक्षस्कारे भरतस्य विनीतायां प्रवेशः सू. ६७

॥२६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारकपुरुषाश्च, पृष्ठतो रथाः रथसङ्गेल्ली–रथसमुदायः, देश्योऽयं शब्दः, चः समुच्चये, आनुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः, अत्र यावत्पदसंग्रहश्चायं–सवर्णकसेनाङ्गानि, तत्राश्वाः–'तयणंतरं च णं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलामउलमल्लिअच्छाणं चंचुच्चि-अललिअपुलिअचलचवलचंचलगईणं लंघणवग्गणधावणधोरणतिवइजइणसिक्खियगईणं ललंतलामगललायवरभूसणाणं मुहभंडगओचूलगथासगअहिलाणचामरगण्डपरिमण्डिअकडीणं किंकरवररुणपरिग्गहिआ अट्ठसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्विए संपट्ठिअं'ति तदनन्तरं 'तरमल्लिहायणाणं'ति तरो–वेगो बलं वा तथा 'मल्ल मल्लि धारणे' ततश्च तरोमल्ली–तरोधारको वेगादिकृत् हायनः–संवत्सरो वर्त्तते येषां ते तथा यौवनवन्त इत्यर्थः, अतस्तेषां वरतुरङ्गाणामिति योगः, 'वरमल्लिभासणाणं'ति क्वचित्पाठः तत्र प्रधानमाल्यवतामत एव दीप्तिमतां चेत्यर्थः, हरिमेला–वनस्पतिविशेषस्तस्या मुकुलं–कुड्मलं मल्लिका च–विचकिलस्तद्वदक्षिणी येषां तथा तेषां ते शुक्लाक्षाणामित्यर्थः, 'चंचुच्चियं'ति प्राकृतत्वेन चंचुरितं–कुटिलगमनं अथवा चंचुः–शुकचंचुस्तद्वद्वक्रतयेत्यर्थः उच्चितं–उच्चिताकरणं पादस्योत्पाटनं चंचुच्चितं च तच्चलितं च–विलासवद्गतिः पुलितं च–गतिविशेषः प्रसिद्ध एव एवंरूपा चलो–वायुराशुगत्वात् तद्वच्चपलचञ्चला–अतीव चपला गतिर्येषां ते तथा तेषां, शिक्षितं–अभ्यस्तं लंघनं–गर्त्तादेरतिक्रमणं वल्गनं–उत्कूर्दनं धावनं–शीघ्रगमनं धोरणं–गतिचातुर्यं तथा त्रिपदी–भूमौ पदत्रयन्यासः पदत्रयस्योन्नमनं वा जयिनी–गत्यन्तरजयनशीला गतिश्च येषां ते तथा तेषां, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, ललन्ति–दोलायमानानि लामत्ति–आर्षत्वाद् रम्याणि गललातानि–कण्ठे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यस्तानि वरभूषणानि येषां ते तथा तेषां, तथा मुखभाण्डकं–मुखाभरणं धवचूलाः–प्रलम्बगुच्छाः स्थासका–दर्पणाकारा अश्वालङ्काराः अहिलाणं–मुखसंयमनं एतान्येषां सन्तीति मुखभाण्डकधवचूलस्थासकाहिलाणाः मत्वर्थीयलोपदर्शनादेवं प्रयोगः, तथा चमरीगण्डैः–चामरदण्डैः परिमण्डिता कटिर्येषां ते तथा ततः कर्मधारयस्तेषां, किङ्करभूता ये वरतरुणा–वरयुवपुरुषास्तैः परिगृहीतानां दक्षरकितानामित्यर्थः, अष्टोत्तरं शतं वरतुरगाणां पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितं । अथेभाः–'तयणंतरं च णं ईसिदंताणं ईसिमत्ताणं ईसितुंगाणं ईसिउच्छंगउन्नयविसालधवलदंताणं कंचणकोसीपविट्ठदन्ताणं कंचणमणिरयणभूसिआणं वेरपुरिसारोहगसंपउत्ताणं गयाणं अट्ठसयं पुरओ अहाणुपुवीए संपत्थिअं'ति ईषद्दान्तानां–मनाग्ग्राहितशिक्षाणां गजानामिति योगः ईषन्मत्तानां यौवनारम्भवर्त्तित्वात् ईषत्तुङ्गानां–उच्चानां तस्मादेव उच्चङ्ग इवोत्सङ्गः–पृष्ठदेशः ईषदुत्सङ्गे उन्नता विशालाश्च यौवनारम्भवर्त्तित्वादेव ते च ते धवलदन्ताश्चेति समासोऽतस्तेषां, काञ्चनकोशी–सुवर्णखोला तस्यां प्रविष्टा दन्ताः अर्थाद् विषाणाख्या येषां ते तथा तेषां, काञ्चनमणिरत्नभूषितानामिति व्यक्तं, वरपुरुषा–ये आरोहका निषादिनस्तैः सम्प्रयुक्तानां–सज्जितानां गजानां–गजकलभानामष्टोत्तरं शतं पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितं । अथ रथाः–'तयणंतरं च णं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघंटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सनंदिघोसाणं सखिंखिणीजालपरिक्खित्ताणं हेमवयचित्ततिणिसकणगणिजुत्तदारुगाणं कालायससुकथणेमिजंतकम्माणं सुसिलिट्ठवत्तमण्डलधुराणं आइण्णवरतुरगसुसंपउत्ताणं कुसलणरच्छेअसारहिसुसंपग्गहिआणं बत्तीसतोणपरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंडिआणं सकंकडवडेंसगाणं सचावसरपहरणावरणभरिअजुद्धसज्जाणं अट्ठसयं रहाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिअं' इति, उक्तार्थं चेदं प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारगतरथवर्णने, नवरमत्र विशेषणानां बहुवचननिर्देशः कार्यः, ततः उक्तविशेषणानां रथानामष्टशतं पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितं । अथ पदातयः—'तयणंतरं च णं असिसत्तिकुंततोमरसूलल-उडभिंडमालधणुपाणिसज्जं पाइत्ताणीअं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिअं'ति, ततः पदात्यनीकं पुरतः सम्प्रस्थितं, कीदृशमित्याह—असयादीनि पाणौ हस्ते यस्य तत्तथा, सज्जं च सङ्ग्रामादिस्वामिकार्ये, तत्रासयादीनि प्रसिद्धानि, नवरं शक्तिः—त्रिशूलं शूलं तु एकशूलं 'लउड'त्ति लकुटो भिंदिपालः प्रागुक्तस्वरूप इति । अथ भरतः प्रस्थितः सन् पथि यद्यत् कुर्वन् यन्नागच्छति तदाह—'तए णं'मित्यादि, ततः स भरताधिपो नरेन्द्रो हारावस्तृतसुकृतरतिदक्षा यावदमरपतिसन्निभया ऋद्ध्या प्रथितकीर्तिश्चक्ररत्नोपदिष्टमार्गोऽनेकराजवरसहस्रानुयातमार्गो यावत्समुद्ररवभूतामिव मेदिनीं कुर्वन् २ सर्वर्द्ध्या सर्वद्युत्या यावन्निर्घोषनादितेन युक्त इति गम्यं, ग्रामाकरनगरखेटकर्वटमडम्बयावत्पदात् द्रोणमुखपत्तनाश्रमसम्बाधसहस्रमण्डितां क्षितिमेदिनीकां वसुधामभिजयन् २ अन्यानि—वराणि रत्नानि प्रतीच्छन् २ तद्दिव्यं चक्ररत्नमनुगच्छन् २ योजनान्तरिताभिर्वसतिभिर्वसन् २ यत्रैव विनीता राजधानी तत्रैवोपागच्छति तत्रागतः सन् यदकरोत्तदाह—'उवागच्छित्ता'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं विनीताया राजधान्या अष्टमभक्तमित्यत्र विनीताधिष्ठायकदेवसाधनाय विनीतां राजधानीं मनसि कुर्वन् २ अष्टमं परिसमापयतीत्यर्थः, नन्विदमष्टमानुष्ठानमनर्थकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६७]

दीप अनुक्रम [१२१]

वासनगर्याश्चक्रवर्त्तिनां पूर्वमेव वश्यत्वात्, उच्यते, निरुपसर्गेण वासस्थैर्यार्थमिति, यदाह—'निरुवसग्गपच्चयत्थं विणीअं रायहाणिं मणसी करेमाणे २ अट्ठमभत्तं पगिण्हइ' इति प्राकृतऋषभचरित्रे, अथाष्टमभक्तसमाप्त्यनन्तरं भरतो यच्चक्रे तदाह—'तए ण'मित्यादि, स्पष्टं, 'तहेव'त्ति पदसंग्रहश्चाभिषेक्यगजसज्जनमज्जनगृहमज्जनादिरूपः, अथ विनीताप्रवेशवर्णके लाघवायातिदेशमाह—'तं चेव सव्व'मित्यादि, तदेव सर्वं वाच्यं यथा हेट्ठा–अधस्तनसूत्रे विनीतां प्रत्यागमने वर्णनं तथाऽत्रापि प्रवेशे वाच्यमित्यर्थः, अत्र विशेषमाह—नवरं महानिधयो नव न प्रविशन्ति, तेषां मध्ये एकैकस्य विनीताप्रमाणत्वात् कुतस्तेषां तत्रावकाशः?, चतस्रः सेना अपि न प्रविशन्ति, शेषः स एव गमः–पाठो वक्तव्यः, कियत्पर्यन्तमित्याह––यावन्निर्घोषनादितेन युक्तो विनीताया राजधान्या मध्यंमध्येन–मध्यभागेन यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव च भवनवरावतंसकस्य–प्रधानतरगृहस्य प्रतिद्वारं–बाह्यद्वारं तत्रैव गमनाय प्रधारितवान्–चिन्तितवान्, प्रवृत्तवानित्यर्थः, प्रविशति चक्रिण्याभियोगिकसुरा यथा २ वासभवनं परिष्कुर्वन्ति तथाऽऽह–'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञो विनीतां राजधानीं मध्यभागेन प्रविशतः अपि–बाढं एके केचन देवा विनीतां साभ्यन्तरबाहिरिकां आसिक्तसम्मार्जितोपलिप्तां कुर्वन्ति, अप्येकके तां मञ्चातिमञ्चकलितां कुर्वन्ति, अप्येकके नानाविधरागवसनोच्छ्रितध्वजपताकामण्डितां अप्येकके लाइउल्लोइअमहितां कुर्वन्ति, अप्येकके गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलेत्यादिविशेषणां कुर्वन्ति, कियद्यावदित्याह—यावद् गन्धवर्त्तिभूतां कुर्वन्ति, अमीषां विशेषणानामर्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राग्वत्, अप्येकके हिरण्यवर्षं वर्षन्ति–रूप्यस्याघटितसुवर्णस्य वा वर्षं वर्षन्ति, एवं सुवर्णवर्षं रत्नवर्षं वज्रवर्षं आभरणवर्षं वर्षन्ति, वज्राणि–हीरकाणि, पुनः प्रविशतो राज्ञो यदभूत्तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञो विनीतां राजधानीं मध्यंमध्येनानुप्रविशतः शृङ्गाटकादिषु यावच्छब्दादत्र त्रिकचतुष्कादिग्रहः महापथपर्यन्तेषु स्थानेषु बहवोऽर्थार्थिप्रभृतयस्ताभिरुदारादिविशेषणविशिष्टाभिर्वाग्भिरभिनन्दयन्तश्चाभिष्टुवन्तश्च एवमवादिषुरिति सम्बन्धः, तत्र शृङ्गाटकादिव्याख्या प्राग्वत्, अर्थार्थिनो–द्रव्यार्थिनः कामार्थिनो–मनोज्ञशब्दरूपार्थिनः भोगार्थिनो–मनोज्ञगन्धरसस्पर्शार्थिनः लाभार्थिनो–भोजनमात्रादिप्राप्त्यर्थिनः ऋद्धिं–गवादिसंपदं इच्छन्त्येषयन्ति वा ऋद्धेषाः स्वार्थिकेकप्रत्ययविधानात् ऋद्धेषिकाः किल्बिषिकाः–परविदूषकत्वेन पापव्यवहारिणो भाण्डादयः कारोटिकाः–कापालिकाः ताम्बूलस्थगीवाहका वा करं–राजदेयं द्रव्यं वहन्तीत्येवंशीलाः कारवाहिनस्त एव कारवाहिकाः कारबाधिता वा शांखिकादयः शब्दाः श्रीऋषभनिष्क्रमणमहाधिकारे व्याख्याता इति ततो व्याख्येया इति, अथ ते किमवादिषुरित्याह–'जय जय नन्दा!' इत्यादि पदद्वयं प्राग्वत्, भद्रं ते–तुभ्यं भूयादिति शेषः, अजितं प्रतिरिपुं जय जितं–आज्ञावशंवदं पालय, जितमध्ये–आज्ञावशंवदमध्ये वस–तिष्ठ विनीतपरिजनपरिवृतो भूया इत्यर्थः, इन्द्र इव देवानां–वैमानिकानां मध्ये ऐश्वर्यभूत्, चन्द्र इव ताराणां–ज्योतिष्काणां चमर इवासुराणां दाक्षिणात्यानामित्यर्थः, एवं धरण इव नागानामित्यत्रापि ज्ञेयं, अन्यथा सामान्यतोऽसुराणामित्युक्ते बलीन्द्रस्य नागानामित्युक्ते च भूतानन्दस्योपमानत्वेनोपन्यासो युक्तिमान् स्यात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाक्षिणात्येभ्य उदीच्यानामधिकतेजस्कत्वात्, बहूनि शतसहस्राणि यावद् बह्वीः पूर्वकोटीः बह्वीः पूर्वकोटाकोटीः विनीतायां राजधान्याः क्षुल्लहिमवद्गिरिसागरमर्यादाकस्य केवलकल्पस्य भरतवर्षस्य ग्रामाकरनगरखेटकर्वटमडम्बद्रोणमुखपत्तनाश्रमसन्निवेशेषु सम्यक् प्रजापालनेनोपार्जितं–सकलं निजभुजवीर्योपार्जितं, न तु नमुचिनेव सेवाद्युपायलब्धं यशो येन स तथा, 'महया जाव'त्ति यावत्पदात् 'हयणट्टगीअवाइअतंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे' इति संग्रहः, आधिपत्यं पौरपत्यं अत्रापि यावत्पदात् 'सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे'त्ति ग्राह्यं, अत्र व्याख्या प्राग्वत्, विचर इति कृत्वा जयजयशब्दं प्रयुञ्जते। अथ विनीतां प्रविष्टः सन् भरतः किं कुर्वन् कांजगामेत्याह—'तए णं से भरहे राया नयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २'इत्यादि, ततः स भरतो राजा नयनमालासहस्रैः प्रेक्ष्यमाण २ इत्यादिविशेषणपदानि श्रीऋषभनिष्क्रमणमहाधिकारे व्याख्यातानीति ततो ज्ञेयानि, नवरं 'अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २' इत्यत्र जनपदागतानां जनानां पौरजनैरङ्गुलिमालासहस्रैर्दर्श्यमान इत्यपि, यत्रैव स्वकं गृहं–पित्र्यः प्रासादः यत्रैव च भवनवरावतंसकं–जगद्वर्त्तिवासगृहशेखरभूतं राजयोग्यं वासगृहमित्यर्थः तस्य प्रतिद्वारं तत्रैवोपागच्छति, ततः किं करोतीत्याह—'उवागच्छित्ता' इत्यादि, उपागत्य आभिषेक्यं हस्तिरत्नं स्थापयति स्थापयित्वा च तस्मात्प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य च विसर्जनीयजनो हि विसर्जनावसरेऽवश्यं सत्कार्य इति विधिज्ञो भरतः षोडश देवसहस्रान् सत्कारयति सन्मानयति, ततो द्वात्रिंशत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजसहस्रान्, ततः सेनापतिरत्नगृहपतिरत्नादीनि त्रीणि सत्कारयति सन्मानयति, ततः त्रीणि षष्टानि–षष्ट्यधिकानि सूपशतानि–रसवतीकारशतानि, ततः अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणीः ततः अन्यानपि बहून् राजेश्वरतलवरादीन् सत्कारयति सन्मानयति सत्कार्य सन्मान्य च पूर्णे उत्सवेऽतिथीनिव प्रतिविसर्जयति, अथ यावत्परिच्छदो राजा यथा वासगृहं प्रविवेश तथाऽऽह–'इत्थीरयणेण'मित्यादि, स्त्रीरत्नेन–सुभद्रया द्वात्रिंशता ऋतुकल्याणिकासहस्रैर्द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्बद्धैर्नाटकसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतो भवनवरावतंसकमतीति–प्रविशति, प्राकरणिकत्वादनुक्तोऽपि भरतः कर्त्ता गम्यतेऽत्र वाक्ये, यथा कुबेरो–देवराजा धनदो–लोकपालः कैलासं–स्फटिकाचलं, किंलक्षणं ?–भवनवरावतंसकं शिखरिशृङ्गं–गिरिशिखरं तद्भूतं–तत्सदृशमुच्चत्वेनेत्यर्थः, लौकिकव्यवहारानुसारेणायं दृष्टान्तः, अन्यथा कुबेरस्य सौधर्मावतंसकनाम्न इन्द्रकविमानादुत्तरतो वल्गुविमाने वासस्य श्रूयमाणत्वादागमेन सह विरुद्ध्यते ॥ प्रविश्य यच्चक्रे तदाह—

तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ रज्जधुरं चिंतेमाणस्स इमेआरूवे जाव समुप्पज्जित्था, अभिजिए णं मए णिअगबलवीरिअपुरिसक्कारपरक्कमेण चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेराए केवलकप्पे भरहे वासे, तं सेअं खलु मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएणं अभिसिंचावित्तएत्तिकट्टु एवं संपेहेति २ त्ता कल्लं पाउप्पभाए जाव जलंते जेणेव भोअणघरे जाव पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअति णिसीइत्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतस्य चक्रवर्तित्वेन अभिषेकः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६८]

दीप अनुक्रम [१२२]

सोलस देवसहस्से वत्तीसं रायवरसहस्से सेणावइरयणे जाव पुरोहियरयणे तिण्णि सट्ठे सूअसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे अ बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिअओ सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—अभिजिए णं देवाणुप्पिआ! मए णिअगबलवीरिअ जाव केवलकप्पे भरहे वासे तं तुब्भे णं देवाणुप्पिआ! ममं महयारायाभिसेअं विअरह, तए णं से सोलस देवसहस्सा जावप्पभिइओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठकरयल मत्थए अंजलिं कट्टु भरहस्स रण्णो एअमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेंति, तए णं से भरहे राया जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव अट्ठमभत्तिए पडिजागरमाणे विहरइ, तए णं से भरहे राया अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि अभिओगिए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! विणीआए राय हाणीए उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एगं महं अभिसेअमण्डवं विउव्वेह २ त्ता मम एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह, तए णं ते आभिओगा देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता विणीआए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखिज्जाइं जोअणाइं दंडं णिसिरंति, तंजहा-रयणाणं जाव रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेंति २ त्ता अहासुहुमे पुग्गले परिआदिअंति २ त्ता दुच्चंपि वेउव्वियसमुग्घायेणं जाव समोहणंति २ त्ता बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउव्वंति से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा० तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेअमण्डवं विउव्वंति अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव गंधवट्टिभूअं पेच्छाघरमंडववण्णगोत्ति, तस्स णं अभिसेअमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेअपेढं विउव्वंति अच्छं सण्हं, तस्स णं अभिसेअपेढस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवए विउव्वंति, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोरणा, तस्स णं अभिसेअपेढस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं सीहासणं विउव्वंति, तस्स णं सीहासणस्स अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव दामवण्णगं समत्तंति । तए णं ते देवा अभिसेअमंडवं विउव्वंति २ त्ता जेणेव भरहे राया जाव पच्चप्पिणंति, तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अंतिए एअमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह २ त्ता हयगय जाव सण्णाहेत्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह जाव पच्चप्पिणंति, तए णं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दूरूढे, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दूरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा जो चेव गमो विणीअं पविसमाणस्स सो चेव णिक्खममाणस्सवि जाव अप्पडिबुज्झमाणे विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव विणीआए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अभिसेअमंडवे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अभिसेअमंडवदुवारे आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठावेइ २ त्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ २ त्ता इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं णाडगसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेअमंडवं अणुपविसइ २ त्ता जेणेव अभिसेअपेढे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अभिसेअपेढं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं दूरूहइ २ त्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णेत्ति । तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा जेणेव अभिसेअमण्डवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अभिसेअमंडवं अणुपविसंति २ त्ता अभिसेअपेढं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा २ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ त्ता करयल जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायाणं जएणं विजएणं वद्धावेंति २ त्ता भरहस्स रण्णो णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा जाव पज्जुवासंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ तेऽवि तह चेव णवरं दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं जाव पज्जुवासंति, तए णं से भरहे राया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! ममं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाभिसेअं उवट्ठवेह, तए णं ते आभिओगिआ देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्ता जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति, एवं जहा विजयस्स तहा इत्थंवि जाव पंडगवणे एगओ मिलायंति एगओ मिलाइत्ता जेणेव दाहिणड्ढभरहे वासे जेणेव विणीआ रायहाणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता विणीअं रायहाणिं अणुप्पयाहिणीकरेमाणा २ जेणेव अभिसेअमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाभिसेअं उवट्ठवेंति, तए णं तं भरहं रायाणं बत्तीसं रायसहस्सा सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोट्ठवयाविजयंसि तेहिं साभाविएहि अ उत्तरवेउव्विएहि अ वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं जाव महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति, अभिसेओ जहा विजयस्स, अभिसिंचित्ता पत्तेअं २ जाव अंजलिं कट्टु ताहिं इट्ठाहिं जहा पविसंतस्स भणिआ जाव विहराहित्तिकट्टु जयजयसद्दं पउंजंति। तए णं तं भरहं रायाणं सेणावइरयणे जाव पुरोहिअरयणे तिण्णि अ सट्ठा सूअसया अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ अण्णे अ बहवे जाव सत्थवाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिंचंति तेहिं वरकमलपइट्ठाणेहिं तहेव जाव अभिथुणंति अ सोलस देवसहस्सा एवं चेव णवरं पम्हसुकुमालाए जाव मउडं पिणद्धेंति, तयणंतरं च णं दद्दरमलयसुगंधिएहिं गंधेहिं गायाइं अब्भुक्खेंति दिव्वं च सुमणोदामं पिणद्धेंति, किं बहुणा?, गंट्ठिमवेढिम जाव विभूसिअं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करेंति, तए णं से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसिंचिए समाणे कोडुंबिअपुरिसे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ! हत्थिखंधवरगया विणीयाए रायहाणीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर जाव महापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अब्भडपवेसं अदंडकुदंडिमं जाव सपुरजणवयं दुवालससंवच्छरिअं पमोअं घोसेह २ ममेअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह त्ति, तए णं ते कोडुंबिअपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं पडिसुणेंति २ त्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसंति २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति, तए णं से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता हत्थिरयणेणं जाव णाडगसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेअपेढाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ २ त्ता अभिसेअमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं जाव दूरूढे, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा अभिसेअपेढाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेअपेढाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दूरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ जाव संपत्थिआ, जोऽविअ अइगच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सो चेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेअव्वो जाव कुबेरोत्ति देवराया कैलासं सिहरिसिंगभूअंति । तए णं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ २ त्ता जाव भोअणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्ठमभत्तं पारेइ २ त्ता भोअणमंडवाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव मज्जणघरवरगए कुट्टिमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं जाव भुंजमाणे विहरइ, तए णं से भरहे राया दुवालससंव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६८]

दीप अनुक्रम [१२२]

छरिअंसि पमोअंसि णिव्वत्तंसि समाणंसि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्ठाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता सोलस देवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेइ २ त्ता बत्तीसं रायवरसहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता जाव पुरोहियरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता एवं तिण्णि सट्ठे सूआरसए अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ २त्ता अण्णे अ बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ सक्कारेइ सम्माणेइ २ त्ता पडिविसज्जेति २ त्ता उप्पिं पासायवरगए जाव विहरइ (सूत्रं ६८)

'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा मित्राणि–सुहृदः ज्ञातयः–सजातीयाः निजकाः–मातापितृभ्रात्रादयः स्वजनाः–पितृव्यादयः सम्बन्धिनः–श्वशुरादयः परिजनो–दासादिः, एकवद्भावे कृते द्वितीया, प्रत्युपेक्षते–कुशलप्रश्नादिभिरापृच्छय २ संभाषत इत्यर्थः, अथवा चिरमदृष्टत्वेन मित्रादीनुत्कण्ठुलतया पश्यति–स्नेहदृशा विलोकयति, प्रत्युपेक्ष्य च यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च यावच्छब्दात् स्नानविधिः सर्वोऽपि वाच्यः, मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामतीत्यादि प्राग्वत् । अत्र च बाहुबल्यादिनवनवतिभ्रातृराज्यानामात्मसात्करणपूर्वकं चक्ररत्नस्यायुधशालायां प्रवेशनमन्यत्र प्रसिद्धमपि सूत्रकारेण नोक्तमिति नोच्यते इति, एवं विहरतस्तस्य यदुदपद्यत तदाह–'तए ण'मित्यादि, ततः तस्य भरतस्य राज्यधुरं चिन्तयतोऽन्यदा कदाचिदयमेतद्रूपः–उक्तविशेषणविशिष्टः सङ्कल्पः समुदपद्यत, स च कः सङ्कल्प इत्याह—'अभिजिए ण'मित्यादि, अभिजितं मया निजकबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमेण क्षुल्लहिमवद्गिरिसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६८]

दीप अनुक्रम [१२२]

गरमर्यादया केवलकल्पं भरतं वर्षं तच्छ्रेयः खलु ममात्मानं महाराज्याभिषेकेणाभिषेचयितुं–अभिषेकं कारयितुं इति कृत्वा–भरतं जितमिति विचार्य एवं सम्प्रेक्षते–राज्याभिषेकं विचारयति, अथैतद्विचारोत्तरकालीनकार्यमाह–'संपेहित्ता' इत्यादि, व्यक्तं, सिंहासने निषद्य यच्चक्रे तदाह—'निसीइत्ता'इत्यादि, कण्ठ्यं, किमवादीदित्याह—'अभिजिए ण–' मित्यादि, अभिजितं मया देवानुप्रिया ! निजकबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमेण क्षुद्रहिमवद्गिरिसागरमर्यादया केवलकल्पं भरतं वर्षं तद्यूयं देवानुप्रिया ! मम महाराज्याभिषेकं वितरत दत्त कुरुतेत्यर्थः, आवश्यकचूर्ण्यादौ तु भक्त्या सुर-नरास्तं महाराज्याभिषेकाय विज्ञपयामासुर्भरतश्च तदनुमेने, अस्ति हि अयं विधेयजनव्यवहारो यत्प्रभूणां समयसेवा-विधौ ते स्वयमेवोपतिष्ठन्ते, सत्यप्येवंविधे कल्पे यद्भरतस्यात्रानुचरसुरादीनामभिषेकज्ञापनमुक्तं तद् गम्भीरार्थकत्वा-दस्मादृशां मन्दमेधसामनाकलनीयमिति । अथ यथा ते अङ्गीचक्रुस्तथाह—'तए ण'मित्यादि, ततस्ते षोडश देवसहस्राः यावत्शब्दात् द्वात्रिंशद्राजसहस्रादिपरिग्रहः यावद्राजेश्वरतलवरादिसार्थवाहप्रभृतयः इति, भरतेन राज्ञा इत्युक्ताः सन्तो 'हट्ठतुट्ठ'त्ति इहैकदेशदर्शनमपि पूर्णतदधिकारसूत्रदर्शकं तेन हृष्टतुष्टचित्तमाणंदिआ इत्यादिपदानि ज्ञेयानि, करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरस्यावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा भरतस्य राज्ञः एतं–अनन्तरोदितमर्थं सम्यग्–विनयेन प्रतिशृण्वन्ति–अङ्गीकुर्वन्ति, अथ 'जलाल्लब्धात्मलाभा कृषिर्जलेनैव वर्द्धत' इति ज्ञातात्तपसाऽऽप्तं राज्यं तपसैवाभिन-न्दतीति चेतसि चिन्तयन् भरतो यदुपचक्रमे तदाह—'तए णं'मित्यादि, प्राग्वत्, 'तए णं से भरहे'इत्यादि, ततः

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स भरतोऽष्टमभक्ते परिणमति सति आभियोग्यान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा च एवमवादीत्, किमवादीदित्याह–'खिप्पामेव'त्ति क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया! विनीताया राजधान्या उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे ईशानकोणे इत्यर्थः तस्याश्चैत्यस्य प्रशस्तत्वात्, अभिषेकाय मण्डपः अभिषेकमण्डपस्तं विकुर्वत विकुर्व्य च मम एतामाज्ञप्तिं प्रत्यर्पयत, 'तए णं'मित्यादि, ततस्ते आभियोग्या देवा भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः सन्तो हृष्टतुष्टादिपदानि प्राग्वत् एवं स्वामिन्! यथैव यूयमादिशत आज्ञया–स्वामिपादानामनुसारेण कुर्म्म इत्येवंरूपेण विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति–अभ्युपगच्छन्ति, 'पडिसुणित्ता' इत्यादि, प्रतिश्रुत्य च विनीताया राजधान्या उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागमपक्रामन्ति–गच्छन्ति, अपक्रम्य च वैक्रियसमुद्घातेन–उत्तरवैक्रियकरणार्थकप्रयत्नविशेषेण समवघ्नन्ति–आत्मप्रदेशान् दूरतो विक्षिपन्ति, तत्स्वरूपमेव दर्शयति–संख्येयानि योजनानि दण्ड इव दण्डः–ऊर्ध्वाधआयतः शरीरबाहल्यो जीवप्रदेशसंतानो निसृजन्ति–शरीराद्बहिर्निष्काशयन्ति निसृज्य च तथाविधान् पुद्गलान् आददते इति, एतदेव दर्शयति, तद्यथा–रत्नानां–कर्केतनादीनां यावत्पदात् 'वइराणं वेरुलिआणं लोहिअक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधिआणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं जायरूवाणं अंकाणं फलिहाण'मिति संग्रहः, रिष्टानामिति साक्षादुपात्तं, एतेषां सम्बन्धिनो यथाबादरान्–असारान् पुद्गलान् परिशातयन्ति–त्यजन्ति यथासूक्ष्मान्–सारान् पुद्गलान् पर्याददते–गृह्णन्ति पर्यादाय च चिकीर्षितनिर्माणार्थं द्वितीयमपि वारं वैक्रियसमुद्घातेन समवघ्नन्ति, समवहत्य च बहुसमरमणीयं भूमिभागं विकु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

र्वन्ति, तद्यथा–'से जहा णामए आलिंगपुक्खरे इ वा' इत्यादि, सूत्रतोऽर्थतश्च प्राग्वत्, ननु रत्नादीनां पुद्गला औदारिकास्ते च वैक्रियसमुद्घाते कथं ग्रहणार्हाः?, उच्यते, इह रत्नादिग्रहणं पुद्गलानां सारतामात्रप्रतिपादनार्थं, न तु तदीयपुद्गलग्रहणार्थं, ततो रत्नादीनामिवेति द्रष्टव्यं, अथवा औदारिका अपि ते गृहीताः सन्तो वैक्रियतया परिणमन्ते, पुद्गलानां तत्तत्सामग्रीवशात्तथातथापरिणमनभावादतो न कश्चिद्दोष इति, पूर्ववैक्रियसमुद्घातस्य जीवप्रयत्नरूपत्वेन क्रमक्रममन्दमन्दतरभावापन्नत्वेन क्षीणशक्तिकत्वात् दृष्टकार्यासिद्धेः, अथ समभूभागे ते यच्चक्रुस्तदाह— 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महान्तमेकमभिषेकमण्डपं विकुर्वन्ति अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टं यावत्पदात् राजप्रश्नीयोपाङ्गगतसूर्याभदेवयानविमानवर्णको ग्राह्यः, स च कियत्पर्यन्तमित्याह–यावद् गन्धवर्तिभूतमिति विशेषणं, अत एव सूत्रकृदेव साक्षादाह–प्रेक्षागृहमण्डपवर्णको ग्राह्य इति, एतत्सूत्रव्याख्ये सिद्धायतनादिवर्णके प्राग्दर्शिते इति नेहोच्येते, 'तस्स ण'मित्यादि, तस्याभिषेकमण्डपस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र–अस्मिन् देशे महान्तमेकमभिषेकपीठं विकुर्वन्ति अच्छं अन्तरजत्वात् श्लक्ष्णं सूक्ष्मपुद्गलनिर्मितत्वात्, 'तस्स ण'मित्यादि, वापीत्रिसोपानप्रतिरूपकवर्णकवदत्र वर्णव्यासो ज्ञेयः यावत्तोरणवर्णनं। अथाभिषेकपीठभूमिवर्णनादि प्रतिपादयन्नाह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्याभिषेकपीठस्य बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तस्य समभूभागस्य मध्ये एकं महत् सिंहासनं विकुर्वन्ति तस्य वर्णकव्यासो विजयदेवसिंहासनवर्त्येव ज्ञेयः यावद्दाम्नां, वर्णको यत्र तद्दाम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६८]

दीप अनुक्रम [१२२]

वर्णकं सम्पूर्णं समस्तं सूत्रं वाच्यमिति शेषः, एनमेवार्थं निगमयन्नाह—'तए ण'मित्यादि, ततो—भरताज्ञानन्तरं ते देवा उक्तविशेषणविशिष्टमभिषेकमण्डपं विकुर्वन्ति विकुर्व्य च यत्रैव भरतो राजा यावत्पदात् 'तेणेव उवागच्छन्ति २ एअमाणत्तिअं' इति ग्राह्यं, 'तए ण'मित्यादि, व्यक्तं, अथैतत्समयोचितं भरतकृत्यमाह—'तए ण'मित्यादि, प्राग्वत्, 'तए ण'मिति ततस्तस्य भरतस्य राज्ञः आभिषेक्यं हस्तिरत्नमारूढस्य सत इमान्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि पुरतः सम्प्रस्थितानीति शेषः, अथ ग्रन्थलाघवार्थमतिदिशति—य एव गमो विनीतां प्रविशतः स एव तस्य निष्क्रामतोऽपि भरतस्य, कियदन्तमित्याह—यावदप्रतिबुद्ध्यन् २ विनीतां राजधानीं मध्यंमध्येन निर्गच्छति, शेषं व्यक्तं, ततः किं चक्रे इत्याह—'पच्चोरुहित्ता इत्थीरयणेण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा स्त्रीरत्नेन सुभद्रया द्वात्रिंशता ऋतुकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्भद्धैर्नाटकसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतोऽभिषेकमण्डपमनुप्रविशति अनुप्रविश्य च यत्रैवाभिषेकपीठं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य चाभिषेकपीठमनुप्रदक्षिणीकुर्वन् २ 'स्वामिदृष्टे भक्तजनः प्रमोदतेतरा'मिति आभियोगिकसुरमनस्तुष्ट्युत्पादनहेतोरित्थमेव सृष्टिक्रमाच्च पौरस्त्येन त्रिसोपानकप्रतिरूपकेण आरोहति, आरुह्य च यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः—सम्यग् यथौचित्येनोपविष्टः, अथानुचरा राजादयो यथोपचेरुस्तथाऽऽह—'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञो द्वात्रिंशद्राजसहस्राणि यत्रैवाभिषेकमण्डपः—तत्रैवोपागच्छतीत्यादि व्यक्तं, नवरमभिषेकपीठं अनुप्रदक्षिणीकुर्वन्तः २ उत्तरत आरोहतां प्रदक्षिणाकरणे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैव सृष्टिक्रमस्य जायमानत्वात्, 'तए ण'मित्यादि पाठसिद्धं, तए ण'मित्यादि ततः स भरतो राजा आभियोग्यान् देवान् शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया! मम महान् अर्थो–मणिकनकरत्नादिक उपयुज्यमानो यस्मिन् स तथा तं महान् अर्घः–पूजा यत्र स तथा तं महं–उत्सवमर्हतीति महार्हस्तं महाराज्याभिषेकमुपस्थापयत–सम्पादयत, आज्ञप्तास्ते यच्चक्रुस्तदाह–'तए ण'मित्यादि, ततः–आज्ञप्त्यनन्तरं ते आभियोग्या देवा भरतेन राज्ञा एव-मुक्ताः सन्तो हृष्टतुष्टचित्तेत्यादिरानन्दालापको ग्राह्यः यावत्पदात् 'करयलपरिग्गहिअं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवो तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति २ त्ता' इति ग्राह्यं, व्याख्या च प्राग्वत्, अत्रातिदेशसू-त्रमाह–एवं–इत्थंप्रकारमभिषेकसूत्रं यथा विजयस्य–जम्बूद्वीपविजयद्वाराधिपदेवस्य तृतीयोपाङ्गे उक्तं तथाऽत्रापि ज्ञेय-मिति, अत्र च सर्वाभिषेकसामग्री वक्तव्या, सा चोत्तरत्र जिनजन्माधिकारे वक्ष्यते, तत्र तत्सूत्रस्य साक्षाद्दर्शितत्वात्, तथापि स्थानाशून्यार्थं तथाशब्दसूचितसंग्रहदर्शनार्थं किञ्चिल्लिख्यते, तदपि लाघवार्थं संस्कृतरूपमेव युक्तमिति तथैव दर्श्यते, अष्टसहस्रं सौवर्णिककलशानां तथा रूप्यमयकलशानां तथा मणिमयकलशानामित्याद्यष्टजातीयकलशानां एवं भृङ्गाराणां आदर्शानां स्थालानां पात्रीणां सुप्रतिष्ठानां मनोगुलिकानां वातकरकाणां चित्ररत्नकरण्डकानां पुष्पचङ्गे-रीणां यावल्लोमहस्तकचङ्गेरीणां पुष्पपटलकानां यावल्लोमहस्तपटलकानां सिंहासनानां छत्राणां चामराणां समुद्गकानां ध्वजानां धूपकडुच्छुकानां प्रत्येकमष्टसहस्रं विकुर्वन्ति विकुर्व्य च स्वाभाविकान् वैक्रियांश्चैतान् पदार्थान् गृहीत्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षीरोदे उदकमुत्पलादीनि च गृह्णन्ति, पुष्करोदे तथैव, ततो भरतैरावतयोर्मागधादितीर्थत्रये उदकं मृदं च ततो गङ्गासिन्धुमहानदीषूदकं मृदं च ततः क्षुल्लहिमाद्रौ सर्वतूबरसर्वपुष्पादीनि, ततः पद्मद्रहपुण्डरीकद्रहयोरुदकमुत्पलादीनि च, एवं प्रतिवर्षं महानद्योरुदकं मृदं च प्रतिवर्षधरं च सर्वतूबरसर्वपुष्पादीनि च द्रहेषु च उदकोत्पलादीनि वृत्तवैताढ्येषु च सर्वतूबरादीनि विजयेषु तीर्थोदकं मृदं च वक्षस्कारगिरिषु सर्वतूबरादीन् तथा अन्तरनदीषु उदकं मृदं च, ततो मेरौ भद्रशालवने सर्वतूबरादीन् ततो नन्दनवने सर्वतूबरादीन् सरसं च गोशीर्षचन्दनं ततः सौमनसवने सर्वतूबरादीन् सरसं च गोशीर्षचन्दनं दिव्यं च सुमनोदाम ततः पण्डकवने सर्वतूबरपुष्पगन्धादीन् गृह्णन्ति, गृहीत्वा चैकतः एकत्र मिलन्ति, एकत्र मिलित्वा यत्रैव दक्षिणार्द्धभरतवर्षं यत्रैव च विनीता राजधानी तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च विनीतां राजधानीमनुप्रदक्षिणीकुर्वन्तः २ यत्रैवाभिषेकमण्डपो यत्रैव च भरतो राजा तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य च तत् पूर्वोक्तं महार्थं महार्घं महार्हं महाराज्याभिषेकोपयोगिक्षीरोदकाद्युपस्करमुपस्थापयन्ति–उपढौकयन्ति । अथोत्तरकृत्यमाह—'तए ण'मित्यादि, ततस्तं भरतं राजानं द्वात्रिंशद्राजसहस्राणि शोभने–निर्दोषगुणोपेते 'तिथिकरणदिवसनक्षत्रमुहूर्त्ते' तिथ्यादिपदानां समाहारद्वन्द्वस्ततः सप्तम्येकवचनं, तत्र तिथिः–रिक्तार्केन्दुदग्धादिदुष्टतिथिभ्यो भिन्ना तिथिः करणं–विष्टिदिवसो दुर्दिनग्रहणोत्पातदिनादिभ्यो भिन्नदिवसः नक्षत्रं–राज्याभिषेकोपयोगि श्रुत्यादित्रयोदशनक्षत्राणामन्यतरत्, यदाह–"अभिषिक्तो महीपालः, श्रुतिज्येष्ठालघुध्रुवैः । मृगानुराधापौष्णैश्च, चिरं शास्ति वसुन्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राम् ॥ १ ॥"इति, मुहूर्त्तः–अभिषेकोक्तनक्षत्रसमानदैवत इति, अत्रैव विशेषमाह—उत्तरप्रौष्ठपदा–उत्तरभद्रपदा नक्षत्रं तस्य विजयो नाम मुहूर्त्तः–अभिजिदाह्वयः क्षणस्तस्मिन्, अयं भावः–मुहूर्त्तापरपर्यायः पञ्चदशक्षणात्मके दिवसेऽष्टमक्षणः, तल्लक्षणं चेदं ज्योतिःशास्त्रप्रसिद्धं–"द्वौ यामौ घटिकाहीनौ, द्वौ यामौ घटिकाधिकौ । विजयो नाम योगोऽयं, सर्वकार्यप्रसाधकः ॥ १ ॥" ततस्तैः पूर्वोक्तैः स्वाभाविकैरुत्तरवैक्रियैश्च वरकमलं आधारभूतं प्रतिष्ठानं–स्थितिर्येषां ते तथा तैः सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णैः, अत्र 'चंदणकयवच्चएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णिअकलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाण'मित्यादिको ग्रन्थो यावत्पदसंग्राह्य उत्तरत्र जिनजन्माभिषेकप्रकरणे व्याख्यास्यते तत्रास्य साक्षाद्दर्शितत्वात्, वाक्यसङ्गत्यर्थं च करणक्रियाविभागो दर्श्यते, उक्तविशेषणविशिष्टैः कलशैः सर्वोदकसर्वमृत्सर्वौषधिप्रभृतिवस्तुभिर्महता २–गरीयसा २ राज्याभिषेकेणाभिषिञ्चन्ति, अभिषेको यथा विजयस्य जीवाभिगमोपाङ्गे उक्तस्तथाऽत्र बोद्धव्यः, अभिषिच्य च प्रत्येकं २ प्रतिनृपं यावत्पदात् 'करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए' इति ग्राह्यं, अंजलिं कृत्वा ताभिरिष्टाभिः अत्रापि 'कंताहिं जाव वग्गूहिं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी–जय २ णंदा जय जय भद्दा ! भद्दं ते अजिअं जिणाहि' इत्यादिको ग्रन्थस्तथा ग्राह्यो यथा विनीतां प्रविशतो भरतस्यार्थार्थिप्रमुखयाचकजनैराशीरित्यर्थाद् गम्यं भणिता, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावद्विहरेतिकृत्वा जय २ शब्दं प्रयुञ्जन्ति, नन्वत्र सूत्रेऽभिषेकसूत्रं जीवाभिगमगतविजयदेवाभिषेकसूत्रातिदेशेनोक्तं, साम्प्रतीन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदीयादर्शेषु च 'अट्ठसएणं सोवण्णिअकलसाण'मित्यादि दृश्यते, अत्र च वृत्तौ 'अट्ठसहस्सेणं सोवण्णिअकलसाण'मित्यादि दर्शितं तत्कथमनयोर्न विरोधः?, उच्यते, जीवाभिगमवृत्तौ तानेव विभागतो दर्शयति, अष्टसहस्रेण सौवर्णिकानां कलशानामष्टसहस्रेण रूप्यमयानां कलशानां अष्टसहस्रेण मणिमयानामित्यादिपाठाशयेनात्र लिखितत्वान्न दोषः, यदि चात्र कलशानामष्टोत्तरशतसङ्ख्या स्यात्तदा तत्रैव सर्वसङ्ख्यया अष्टभिः सहस्रैरित्युत्तरग्रन्थोऽपि नोपपद्येत, किं च–दृश्यमानतत्सूत्रे विकुर्वणाधिकारे अट्ठसहस्सं सोवण्णिअकलसाणं जाव भोमेज्जाणमित्यादि, अभिषेकक्षणे तु अट्ठसएणं सोवण्णिअकलसाणमित्यादीत्यपि विचार्यं । अथ शेषपरिच्छदाभिषेकवक्तव्यतामाह—'तए ण'मित्यादि, ततो–द्वात्रिंशद्राजसहस्राभिषेकानन्तरं भरतं राजानं सेनापतिरत्नं यावत्पदात् गाहावइरयणे वड्ढइरयणे इति ग्राह्यं, गृहपतिवर्द्धकिपुरोहितरत्नानि त्रीणि च षष्टानि–षष्ट्यधिकानि सूपशतानि अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणयः अन्ये च बहवो यावच्छब्दात् राजेश्वरादिपरिग्रहः, ततो राजेश्वरतलवरमाडम्बिअकौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहप्रभृतय एवमेव–राजान इवाभिषिञ्चन्ति, तैर्वरकमलप्रतिष्ठानैस्तथैव कलशविशेषणादिकं ज्ञेयं, यावदभिनन्दन्ति अभिष्टुवन्ति च, ततः षोडशदेवसहस्राः एवमेव–उक्तन्यायेनाभिषिञ्चन्ति, यत्तु आभियोगिकसुराणां चरमोऽभिषेकः तद्भरतस्य मनुष्येन्द्रत्वेन मनुष्याधिकारान्मनुष्यकृताभिषेकानन्तरभावित्वेनेति बोध्यं, यद्वा देवानां चिन्तितमात्रतदादत्वसिद्धिकारकत्वेन पर्यन्ते तथाविधोत्कृष्टाभिषेकविधानार्थमिति, ऋषभचरित्रादौ तु पूर्वमपि देवानामभिषेकोऽभिहित इति, अत्र यो विशेषस्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माह–'णवर'मिति, अयं विशेषः–आभियोगिकसुराणामपरेभ्योऽभिषेचकेभ्यः पक्ष्मलया–पक्ष्मवत्या सुकुमारया च अत्र यावत्पदग्राह्यमिदं 'गन्धकासाइआए गायाइं लूहेंति सरसगोसीसचन्दणेणं गायाइं अणुलिंपंति २ त्ता नासाणीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं कणगखइअंतकम्मं आगासफलिहसरिसप्पभं अहयं दिव्वं देवदूसजुअलं णिअंसावेंति २ त्ता हारं पिणद्धेंति २ त्ता एवं अद्धहारं एगावलिं मुत्तावलिं रयणावलिं पालम्बं अंगयाइं तुडिआइं कडयाइं दसमुद्दिआणंतगं कडिसुत्तगं वेअच्छगसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं कुण्डलाइं चूडामणिं चित्तरयणुक्कडं'ति, अत्र व्याख्या—गन्धकाषायिक्या–सुरभिगन्धकषायद्रव्यपरिकर्मितया लघुशाटिकया इति गम्यं, गात्राणि–भरतशरीरावयवान् रूक्षयन्ति, रूक्षयित्वा च सरसेन गोशीर्षचन्दनेन गात्राण्यनुलिम्पन्ति, अनुलिप्य च देवदूष्ययुगलं निवासयन्ति–परिधापयन्तीति योगः, कथम्भूतमित्याह–नासिकानिःश्वासवातेन वाह्यं–दूरापनेयं श्लक्ष्णतरमित्यर्थः, अयमर्थः–आस्तां महावातः नासावातोऽपि स्वबलेन तद्वस्त्रंयुगलं अन्यत्र प्रापयति, चक्षुर्हरं रूपातिशयत्वात् अथवा चक्षुर्द्धरं–चक्षुरोधकं घनत्वात्, अतिशायिना वर्णेन स्पर्शेन च युक्तं हयलाला–अश्वमुखजलं तस्मादपि पेलवं–कोमलमतिरेकेण–अतिशयेन अतिविशिष्टमुदुत्वलघुत्वगुणोपेतमिति भावः धवलं प्रतीतं कनकेन खचितानि–विच्छुरितानि अन्तकर्माणि–अञ्चलयोर्वानलक्षणानि यस्य तत् तथा आकाशस्फटिको नाम–अतिस्वच्छस्फटिकविशेषस्तत्सदृशप्रभं अहतं दिव्यं निवास्य च हारं पिनह्यन्ति–ते देवाश्चक्रिणः कण्ठपीठे बध्नन्ति, 'एव'मिति एतेनाभिलापेनार्द्ध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हारादीनि वाच्यानि यावन्मुकुटमिति, तत्र हारार्द्धहारौ प्रतीतौ, एकावली प्राग्वत्, मुक्तावली–मुक्ताफलमयी कनकावली–कनकमणिमयी रत्नावली–रत्नमयी प्रालम्बः–तपनीयमयो विचित्रमणिरत्नभक्तिचित्र आत्मप्रमाण आभरणविशेषः अङ्गदे त्रुटिके च प्राग्वत् कटके प्रसिद्धे दशमुद्रिकानन्तकं–हस्तांगुलिमुद्रादशकं कटिसूत्रकं–पुरुषकट्याभरणं वैकक्ष्यसूत्रकं–उत्तरासङ्गं परिधानीयं–शृङ्खलकं मुरवी–मृदङ्गाकारमाभरणं कण्ठमुरवी–कण्ठासन्नं तदेव कुण्डले व्यक्ते चूडामणिः प्राग्वत् चित्ररत्नोत्कटं–विचित्ररत्नोपेतं मुकुटं व्यक्तं । 'तयणंतरं च णं दद्दरमलय'इत्यादि, तदनन्तरं दर्दरमलयसम्बन्धिनो ये सुगन्धाः–शोभनवासास्तेषां गन्धः–शुभपरिमलो येषु ते तथा तैर्गन्धैः–काश्मीरकर्पूरकस्तूरीप्रभृतिगन्धवद्द्रव्यैः प्रकरणाद्रसभावमापादितैरभ्युक्षन्ति–सिञ्चन्ति ते देवा भरतं, कोऽर्थः ?–अनेकसुरभिद्रव्यमिश्रधुसृणरसच्छटकान् कुर्वन्ति, भरतवाससीति भावः, क्वचित् 'सुगन्धगन्धियहिं गन्धेहिं भुकुडंति' इति पाठस्तत्र भूकुर्डतीति–उद्धूलयन्ति, गन्धैः सुरभिचूर्णैः–सुरभिचूर्णं भरतोपरि क्षिपन्ति दिव्यं चः समुच्चये सुमनोदाम–कुसुममालां पिनह्यन्ति, किंबहुना ? उक्तेनेति गम्यं, 'गंठिमवेढिम' यावत्पदात् 'पूरिमसंघाइमेणं चउविहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयंपिव समलंकिय'त्ति ग्राह्यं, अत्र व्याख्या–ग्रन्थनं ग्रन्थस्तेन निर्वृत्तं ग्रन्थिमं, भावादिमप्रत्ययः, यत् सूत्रादिना ग्रथ्यते तद् ग्रन्थिममिति भावः, अथितं सद्वेष्ट्यते यत्तद् वेष्टिमं, यथा पुष्पलंबूसको गेन्दुक इत्यर्थः, पूरिमं येन वंशसलाकादिमयपञ्जरादि पूर्यते संघातिमं यत्परस्परतो नालं संघात्यते, एवंविधेन चतुर्विधेन माल्येन कल्पवृक्षमिवालङ्कृतविभूषितं भरत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रिणं कुर्वन्ति ते देवाः। अथ कृताभिषेको यच्चके तदाह—'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतो राजा महता २ अतिशायिना राज्याभिषेकेणाभिषिक्तः सन् कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा चैवमवादीत्, तदेवाह—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया! यूयं हस्तिस्कन्धवरगताः विनीतायाः राजधान्याः शृङ्गाटकत्रिकचतुष्कचत्वरादिषु प्राग्व्याख्यातेषु आस्पदेषु महता २ शब्देनोद्घोषयन्तो—जल्पन्तो जल्पन्तः, अत्र शत्रन्तस्यापि अविवक्षणान्न कर्मनिर्देशः, आभीक्ष्ण्ये द्विर्वचनं, उच्छुल्कं यावद् द्वादश संवत्सराः कालो मानं यस्यातीति द्वादशसंवत्सरिकस्तं प्रमोदहेतुत्वात् प्रमोदः—उत्सवस्तं घोषयत घोषयित्वा च ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत, उच्छुल्कादिपदव्याख्या प्राग्वत्, अथ ते आज्ञप्ताः यथा प्रवृत्तवन्तस्तथाऽऽह—'तए ण'मिति, ततस्ते कौटुम्बिकपुरुषा भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः सन्तो हृष्टतुष्टचित्तानन्दिताः 'हरिसवस'त्ति हर्षवशविसर्पद्धृदयाः विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति प्रतिश्रुत्य च क्षिप्रमेव हस्तिस्कन्धवरगताः यावत्पदात् 'विणीआए रायहाणीए सिंघाडगतिगे'त्यादि ग्राह्यं, कियदंतमित्याह—यावद् घोषयन्ति २ त्वा च एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति ॥ अथ भरतः किं चक्रे इत्याह—'तए ण'मिति, ततः स भरतो राजा महता २ राज्याभिषेकेणाभिषिक्तः सन् सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति अभ्युत्थाय च स्वीस्वेन यावत् 'बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं' इति ग्राह्यं, द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्भिर्नाटकसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतोऽभिषेकपीठात् पौरस्त्येन त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य चाभिषेकमण्डपात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च यत्रैवाभिषेक्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

हस्तिरत्नं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य चाञ्जनगिरिकूटसन्निभं गजपतिं यावच्छब्दात् नरवइत्ति ग्राह्यं, नरपतिरारूढः, तदनु अनुचरजनो यथाऽनुवृत्तवांस्तथाह—'तए ण'मित्यादि, व्यक्तं, अथ यया युक्त्या चक्री विनीतां प्रविवेश तामाह—'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य भरतस्य राज्ञ आभिषेक्यं हस्तिरत्नमारूढस्य सत इमान्यष्टाष्टमङ्गलकानि पुरतो यावच्छब्दाद्यथानुपूर्व्या संप्रस्थितानि, अत्र ग्रन्थविस्तरभयादतिदेशमाह—योऽपि चातिगच्छतो—विनीतां प्रविशतः क्रमः—परिपाटी प्रथमोऽधस्तनसूत्रोक्तो भरतविनीताप्रवेशवर्णकः कुबेरदृष्टान्तभावितसूत्रावसानः स एव क्रम इहापि सत्कारविरहितो नेतव्यः, अयं भावः—पूर्वं प्रवेशे षोडशदेवसहस्रद्वात्रिंशद्राजसहस्रादीनां सत्कारो यथा विहितस्तथा नात्रेति, अस्य च द्वादशवार्षिकप्रमोदनिर्वर्त्तनोत्तरकाल एवावसरप्राप्तत्वात्। अथ गृहागमनानन्तरं यो विधिस्तमाह—'तए णं से भरहे रायां मज्जणघर'मित्यादि, निगदसिद्धं प्राग् बहुशो निगदितत्वात्, एवं च प्रतिदिनं नवं २ राज्याभिषेकमहोत्सवं कारयतस्तस्य द्वादश वर्षाण्यतिक्रान्तानि, शत्रुंजयमाहात्म्यादौ तु 'राज्याभिषेकोत्सवस्थाने राज्याभिषेक एव द्वादशवार्षिकोऽभिहित इति, अथ तदुत्तरकाले यत्कृत्यं तदाह—"तए ण'मित्यादि प्राग्वत् ॥ ननु सुभूमचक्रवर्त्तिनः पर्शुरामहतक्षत्रियदाढाभृतस्थालमेव चक्ररत्नतया परिणतमिति श्रुतेश्चक्ररत्नानामनियतोत्पत्तिस्थानकत्वं ज्ञायते, तेन प्रस्तुतप्रकरणे तेषां कोत्पत्तिरित्याशंक्याह—अथ चतुर्दशरत्नाधिपतेर्भरतस्य यानि रत्नानि यत्रोदपद्यंत तत्तथाऽऽह—

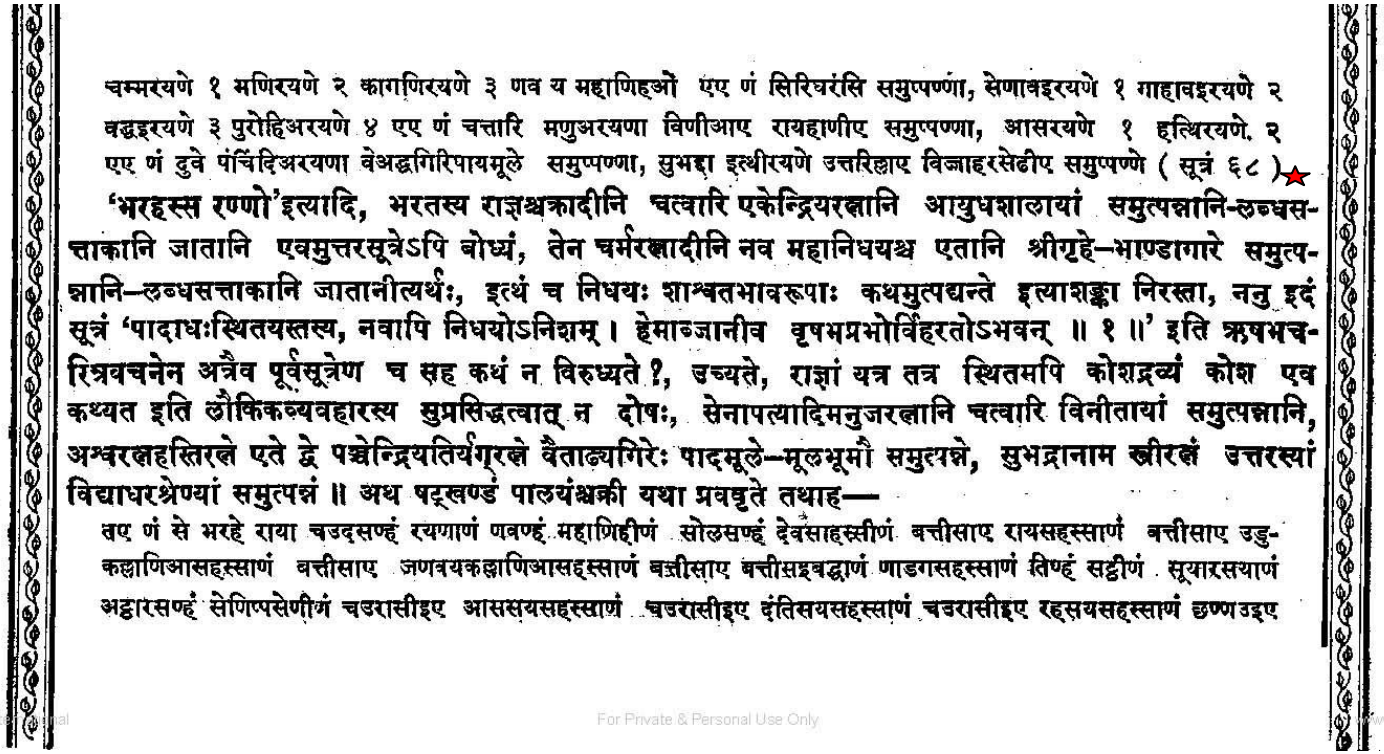
भरहस्स रण्णो चक्करयणे १ दंडरयणे २ असिरयणे ३ छत्तरयणे ४ एते णं चत्तारि एगिंदियरयणे आउहघरसालाए समुप्पण्णा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६८R]

दीप अनुक्रम [१२३]



चम्मरयणे १ मणिरयणे २ कागणिरयणे ३ णव य महाणिहओ एए णं सिरिघरंसि समुप्पण्णा, सेणावइरयणे १ गाहावइरयणे २ वद्धइरयणे ३ पुरोहिअरयणे ४ एए णं चत्तारि मणुअरयणा विणीआए रायहाणीए समुप्पण्णा, आसरयणे १ हत्थिरयणे २ एए णं दुवे पंचिंदिअरयणा वेअद्धगिरिपायमूले समुप्पण्णा, सुभद्दा इत्थीरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए समुप्पण्णे (सूत्रं ६८)★

'भरहस्स रण्णो' इत्यादि, भरतस्य राज्ञश्चक्रादीनि चत्वारि एकेन्द्रियरत्नानि आयुधशालायां समुत्पन्नानि-लब्धसत्ताकानि जातानि एवमुत्तरसूत्रेऽपि बोध्यं, तेन चर्मरत्नादीनि नव महानिधयश्च एतानि श्रीगृहे–भाण्डागारे समुत्पन्नानि–लब्धसत्ताकानि जातानीत्यर्थः, इत्थं च निधयः शाश्वतभावरूपाः कथमुत्पद्यन्ते इत्याशङ्का निरस्ता, ननु इदं सूत्रं 'पादाधःस्थितयस्तस्य, नवापि निधयोऽनिशम् । हेमाज्जानीव वृषभप्रभोर्विहरतोऽभवन् ॥ १ ॥' इति ऋषभचरित्रवचनेन अत्रैव पूर्वसूत्रेण च सह कथं न विरुध्यते ?, उच्यते, राज्ञां यत्र तत्र स्थितमपि कोशद्रव्यं कोश एव कथ्यत इति लौकिकव्यवहारस्य सुप्रसिद्धत्वात् न दोषः, सेनापत्यादिमनुजरत्नानि चत्वारि विनीतायां समुत्पन्नानि, अश्वरत्नहस्तिरत्ने एते द्वे पञ्चेन्द्रियतिर्यग्रत्ने वैताढ्यगिरेः पादमूले–मूलभूमौ समुत्पन्ने, सुभद्रानाम स्त्रीरत्नं उत्तरस्यां विद्याधरश्रेण्यां समुत्पन्नं ॥ अथ षट्खण्डं पालयंश्चक्री यथा प्रवर्तते तथाह—

तए णं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं महाणिहीणं सोलसण्हं देवसाहस्सीणं बत्तीसाए रायसहस्साणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिआसहस्साणं बत्तीसाए जणवयकल्लाणिआसहस्साणं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धाणं णाडगसहस्साणं तिण्हं सट्ठीणं सूयारसयाणं अट्ठारसण्हं सेणिप्पसेणीणं चउरासीइए आससयसहस्साणं चउरासीइए दंतिसयसहस्साणं चउरासीइए रहसयसहस्साणं छण्णउइए

श्रीजम्बू. ४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

★ अत्र मूल-संपादने सूत्रक्रमाकने मुद्रणदोषस्य कारणात् 'सू० ६८' इति द्विवारान् मुद्रितं

***भरत-नरदेवस्य धर्मदेवत्वं प्राप्तिः

मणुस्सकोडीणं बावत्तरीए पुरवरसहस्साणं बत्तीसाए जणवयसहस्साणं छण्णउइए गामकोडीणं णवणउइए दोणमुहसहस्साणं अडयालीसाए पट्टणसहस्साणं चउवीसाए कब्बडसहस्साणं चउवीसाए मडंबसहस्साणं वीसाए आगरसहस्साणं सोलसण्हं खेडसहस्साणं चउदसण्हं संवाहसहस्साणं छप्पण्णाए अंतरोदगाणं एगूणपण्णाए कुरज्जाणं विणीआए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स अण्णेसिं च बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महत्तरगतं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे ओहयणिहएसु कंटएसु उद्धिअमलिएसु सव्वसत्तुसु णिज्जिएसु भरहाहिवे णरिंदे वरचंदणचच्चिअंगे वरहाररइअवच्छे वरमउडविसिट्ठए वरवत्थभूसणधरे सव्वोउअसुरहिकुसुमवरमल्लसोभिअसिरे वरणाडगनाडइज्जवरइत्थिगुम्म सद्धिं संपरिवुडे सव्वोसहिसवरयणसव्वसमिइसमग्गे संपुण्णमणोरहे हयामित्तमाणमहणे पुव्वकयतवप्पभावनिविट्ठसंचिअफले भुंजइ माणुस्सए सुहे भरहे णामधेज्जेत्ति (सूत्रं ६९)

'तए ण'मिति, ततः–षट्खण्डभरतसाधनानन्तरं स भरतो राजा चतुर्दशरत्नादीनां सार्थवाहप्रभृत्यन्तानामाधिपत्यादिकं कारयन् पालयन् मानुष्यकानि सुखानि भुङ्क्ते इत्यन्वयः, सर्वं प्राग्वत् व्याख्यातार्थं, नवरं षट्पञ्चाशतोऽन्तरोदकानां–जलान्तर्वर्त्तिसन्निवेशविशेषाणां न तु समयप्रसिद्धयुग्मिमनुजाश्रयभूतानां षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपानां तेषु कस्याप्याधिपत्यस्यासम्भवात्, एकोनपञ्चाशतः कुराज्यानां–भिल्लादिराज्यानामिति, केषु सत्सु सुखानि भुङ्क्ते इत्याह–उपहतेषु–विनाशितेषु निहतेषु च–अपहृतसर्वसमृद्धिषु कण्टकेषु–गोत्रजवैरिषु उद्धृतेषु–देशान्निर्वासितेषु मर्दितेषु च–मानम्लानिं प्रापितेषु सर्वशत्रुषु–अगोत्रजवैरिषु, एतत्सर्वं कुतो भवतीत्याह—निर्जितेषु–भग्नबलेषु सर्वशत्रुषु उक्तद्विप्रकार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैरिषु अत्र सर्वशत्रुष्विति पदं देहलीप्रदीपन्यायेनोभयत्र योज्यं, कीदृशो भरत इत्याह—भरताधिपो नरेन्द्रः चन्दनेन चर्चितं–समण्डनं कृतमङ्गं यस्य स तथा, वरहारेण रतिदं–द्रष्टृणां नयनसुखकारि वक्षो यस्य स तथा, वरमुकुटविशिष्टकः,चूर्णौ तु 'वरमउडाविद्धए' इति,तत्र आविद्धए इति आविद्धं परिहितं वरमुकुटं अनेन स तथा, प्राकृतत्वात् पदव्यत्ययः, वरवस्त्रभूषणधरः सर्वर्तुकसुरभिकुसुमानां माल्यैः–मालाभिः शोभितशिरस्कः वरनाटकानि–पात्रादिसमुदायरूपाणि नाटकीयानि च–नाटकप्रतिबद्धपात्राणि वरस्त्रीणां–प्रधानस्त्रीणां गुल्मं–अव्यक्तावयवविभागवृन्दं तेन तृतीयालोप आर्षत्वात् सार्द्धं सम्परिवृतः सर्वौषध्यः–पुनर्नवाद्याः सर्वरत्नानि–कर्केतनादीनि सर्वसमितयः–अभ्यन्तरादिपर्षदस्ताभिः समग्रः–सम्पूर्णः, अत एव सम्पूर्णमनोरथः हतानां–पुमर्थत्रयभ्रष्टत्वेन जीवन्मृतानां अमित्राणां–शत्रूणां मानमथनः, कीदृशानि सुखानि भुंक्ते इत्याह—पूर्वकृततपःप्रभावस्य निविष्टसंचितस्य–निकाचिततया संचितस्य तस्यैव ध्रुवफलत्वात्, परनिपातः पदस्यार्षत्वात्, फलानि–फलभूतानि, कीदृशो भरतो?–भरते–अस्मिन् क्षेत्रे प्रथमभरताधिपत्वेन प्रसिद्धं नामधेयं–नाम यस्य स तथा, विशेष्यपदं तु 'तए णं से भरहे राया' इत्यत्रैवोक्तं, अनेनैकवाक्ये द्विर्विशेष्यपदं कथमित्याशङ्का निरस्ता ॥ अथास्य नरदेवस्य धर्मदेवत्वप्राप्तिमूलमाह—

तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता जाव ससिव्व पिअदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव आदंसघरे जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ २ त्ता आदंसघरंसि अत्ताणं देहमाणे २ चिट्ठइ, तए णं तस्स भरहस्स रण्णो सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहिं विसुज्झ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतराज्ञः केवलज्ञान, श्रामण्यं, मोक्षप्राप्तिः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

माणीहिं२ ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स तयावरिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे, तए णं से भरहे केवली सयमेवाभरणालंकारं ओमुअइ २ त्ता सयमेव पंचमुट्ठिअं लोअं करेइ २ त्ता आयंसघराओ पडिणिक्खमइ २ त्ता अंतेउरमज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता दसहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे विणीअं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ २ त्ता मज्झदेसे सुहंसुहेणं विहरइ २ त्ता जेणेव अट्ठावए पव्वते तेणेव उवागच्छइ २ त्ता अट्ठावयं पव्वयं सणिअं २ दुरूहइ २ त्ता मेघघणसण्णिकासं देवसण्णिवायं पुढविसिलावट्टयं पडिलेहेइ २ त्ता संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडिआइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे २ विहरइ, तए णं से भरहे केवली सत्तत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता एगं वाससहस्सं मंडलिअरायमज्झे वसित्ता छ पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्झे वसित्ता तेसीइ पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं देसूणगं केवलिपरिआयं पाउणित्ता तमेव बहुपडिपुण्णं सामन्नपरिआयं पाउणित्ता चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउअं पाउणित्ता मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं खीणे वेअणिज्जे आउए णामे गोए कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबन्धणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुडे अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे ॥ इति भरतचक्रिचरितं (सूत्रं ७०)

'तए ण'मित्यादि, ततो–वर्षसहस्रोनषट्पूर्वलक्षावधिसाम्राज्यानुभवनानन्तरं स भरतो राजा अन्यदा कदाचिद्यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च यावच्छशीव प्रियदर्शनो नरपतिर्मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च स्ववेषसौन्दर्यदर्शनार्थं यत्रैवादर्शगृहं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निषीदति निषद्य चादर्शगृहे आत्मानं प्रेक्षमाणः २–तत्र प्रतिबिम्बितं सर्वाङ्गस्वरूपं पश्यन् पश्यंस्तिष्ठति–आस्ते, अत्र च 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रित्ययं सम्प्रदायो बोध्यः, तद्यथा–'तत्र च प्रेक्षमाणस्य, स्वं वपुर्भरतेशितुः । अङ्गुल्या एकतमस्या, निपपातांगुलीयकम् ॥ १ ॥ तदंगुल्या गलितमप्यंगुलीयं महीपतिः । नाज्ञासीद्बर्हिणो बर्हभाराद्बर्हमिवैककम् ॥ २ ॥ वपुः पश्यन् क्रमेणेक्षांचक्रे तां चत्रयनूर्मिकाम् । अंगुलीं गलितज्योत्स्नां, दिवा शशिकलामिव ॥ ३ ॥ अहो विशोभा किमसावंगुलीति विचिन्तयन् । ददर्श पतितं भूमावंगुलीयं नरेश्वरः ॥ ४ ॥ किमन्यान्यपि विशोभान्यङ्गान्याभरणैर्विना । इति मोक्तुं स आरेभे,भूषणान्यपराण्यपि ॥५॥' इति, एवं प्रवृत्तस्य तस्य किमजनीत्याह–'तए ण–' मित्यादि, ततो–वपुर्न्यस्तभूषणमोचनानन्तरं तस्य भरतस्य राज्ञः शुभेन परिणामेन "अन्तःक्लिन्नस्य विष्ठाद्यैर्मलैः स्रोतोभवैर्बहिः । चिन्त्यमानं किमप्यस्य, शरीरस्य न शोभनम् ॥ १ ॥ इदं शरीरं कर्पूरकस्तूरीप्रभृतीन्यपि । दूषयत्येव पाथोदपयांस्यूषरभूरिव ॥ २ ॥ यत्प्रातः संस्कृतं धान्यं, तन्मध्याह्ने विनश्यति । तदीयरसनिष्पन्ने, काये का नाम सारता ?॥३॥"इति शरीरासारत्वभावनारूपया जीवपरिणत्या प्रशस्तैरध्यवसानैः–उत्तरस्वरूपैर्मनःपरिणामैः लेश्याभिः–शुक्लादिद्रव्योपहितजीवपरिणतिरूपाभिर्विशुद्ध्यन्तीभिः–उत्तरोत्तरविशुद्धिमापद्यमानाभिरापद्यमानाभिर्निरावरणवपुर्वैरूप्यविषयकमीहापोहमार्गणागवेषणं कुर्वतस्तदावरणीयानां–केवलज्ञानदर्शननिबन्धकानां चतुर्णां घातिकर्मणां क्षयेण–सर्वथा जीवप्रदेशेभ्यः तदीयपुद्गलपरिशाटनेन प्राग्व्याख्यातानुत्तरादिविशेषणविशिष्टं केवलज्ञानदर्शनमुत्पन्नमिति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीदृशमित्याह—कर्मरजसां विकिरणकरं–विक्षेपकरं, कीदृशस्य भरतस्य ?–अपूर्वकरणं–अनादौ संसारेऽप्राप्तपूर्वं ध्यानं शुक्लध्यानं प्रविष्टस्य प्राप्तस्येत्यर्थः, अत्र च ईहादिपदेषु समाहारद्वन्द्वः, तत्रावग्रहपूर्वकत्वादीहादीनां प्रथमं तदुल्लेखः, तथाहि—अये ! इह निरलंकारे वपुषि शोभा न दृश्यते इत्यवग्रहः, यथा दूरस्थपुरोवर्त्तिनि वस्तुनि किमिदमिति भावः, अथ सा शोभा औपाधिकी वा नैसर्गिकी वा इत्यवगृहीतार्थाभिमुखा मतिचेष्टा पर्यालोचनरूपा ईहा, यथा तत्रैव स्थाणुर्वा पुरुषो वा, नन्वियं संशयाकारतया संशय एव, स च कथमुत्तरकालभाविसम्यग्निश्चयापरपर्यायस्यापोहस्य हेतुर्भवति, विरुद्धकोट्यवगाहित्वादिति ?, उच्यते, उत्कटकोटिकसंशयरूपत्वेनास्याः सम्भावनारूपाया निश्चयकारणत्वस्याविरुद्धत्वात्, इयमौपाधिक्येव न नैसर्गिकी बाह्यवस्तुसंसर्गजन्यत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् इति ईहितविशेषनिर्णयरूपोऽपोहः, यथा तत्रैव स्थाणुरेवायं न पुरुष इति, अस्याः प्रकर्षापकर्षौ बाह्यवस्तुप्रकर्षापकर्षानुविधायिनावित्यन्वयधर्मालोचनं मार्गणा यथा स्थाणौ निश्चेतव्य इह वल्युत्सर्पणादयो धर्माः सम्भवन्ति, स्वाभाविकत्वे उत्तानदृशां भारभूतस्याभरणस्य वपुषि धारणबुद्धिर्न स्यादिति गवेषणं, यथा तत्रैव इह शिरःकण्डूयनादयः पुरुषधर्मा न दृश्यन्ते इति, अत्र चेहादीनन्तरेण हानोपादानबुद्धिर्न स्यादिति तद्ग्रहणम् ॥ अथोत्पन्नकेवलः किं करोतीत्याह—'तए ण'मित्यादि,ततः–केवलज्ञानानन्तरं स भरतः आसनप्रकम्पावधिना शक्रेण केवलिन्! द्रव्यलिङ्गं प्रपद्यस्व यथाऽहं वन्दे विदधे च निष्क्रमणोत्सवमित्युक्तः सन् स्वयमेवाभरणभूतमलङ्कारं वस्त्रमाल्यरूपमवमुञ्चति–त्यजति, अत्र भूषणा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७०]

दीप अनुक्रम [१२५]

लङ्कारस्य पूर्वं त्यक्तत्वात् केशालङ्कारस्य च तित्यक्ष्यमाणत्वात् परिशेषात् वस्त्रमाल्यालङ्कारयोरवग्रहः, स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति कृत्वा च उपलक्षणात् सन्निहितदेवतयाऽर्पितं साधुलिङ्गं गृहीत्वा चेति गम्यं, ततः शक्रवन्दितुः सन् आदर्शगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य च अन्तःपुरमध्यंमध्येन निर्गच्छति निर्गत्य च दशभी राजसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतो विनीताया राजधान्या मध्यंमध्येन निर्गच्छति निर्गत्य च मध्यदेशे–कोशलदेशस्य मध्ये सुखंसुखेन विहरति। तदनु किं विधत्ते इत्याह—'विहरित्ता जेणेव अट्ठावए' इत्यादि, विहृत्य च यत्रैवाष्टापदः पर्वतस्तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चाष्टापदं पर्वतं शनैः २ सुविहितगत्या 'दवदवस्स न गच्छिज्जा' इति वचनात् आरोहति आरुह्य च घनमेघसन्निकाशं–सान्द्रजलदश्यामं पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् देवानां सन्निपातः–आगमनं रम्यत्वात् यत्र स तथा तं, पृथिवीशिलापट्टकः–आसनविशेषस्तं प्रतिलेखयति, केवलित्वे सत्यपि व्यवहारप्रमाणीकरणार्थं दृष्ट्वा निभालयति, प्रतिलिख्य च सिंहावलोकनन्यायेनात्रापि आरोहतीति बोध्यं, संलिख्यते–कृशीक्रियते शरीरकषायाद्यनयेति सँल्लेखना–तपोविशेषलक्षणा तस्या जोषणा–सेवना तया जुष्टः–सेवितो झूषितो वा–क्षपितः यः स तथा, प्रत्याख्याते भक्तपाने येन स तथा, क्रान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, 'पादोपगतः' पादो–वृक्षस्य भूगतो मूलभागस्तस्येवाप्रकम्पतयोपगतम्–अवस्थानं यस्य स तथा, कालं–मरणमनवकांक्षन्–अवाञ्छन्, उपलक्षणाज्जीवितमप्यवाञ्छन्, अरक्तद्विष्टत्वाद्विहरति, अथ स भरतो यस्मिन् पर्याये यावन्तं कालमतिवाह्य निर्वृते तथाह—'तए ण'मित्यादि, ततः स भरतः केवली सप्तसप्तति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वशतसहस्राणि कुमारवासमध्ये–कुमारभावे उषित्वा भरतप्रसवानन्तरमेतावन्तं कालं ऋषभस्वामिनो राज्यपरिपालनात्, एकं वर्षसहस्रं माण्डलिकराजा–एकदेशाधिपतिः भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य माण्डलिकत्वं तन्मध्ये उषित्वा षट् पूर्वसहस्राणि वर्षसहस्रोनानि महाराजमध्ये–चक्रवर्त्तित्वे उषित्वा त्र्यशीतिं पूर्वशतसहस्राणि अगारवासमध्ये गृहित्वे इत्यर्थः उषित्वा एकं पूर्वशतसहस्रं अन्तर्मुहूर्त्तोनं केवलिपर्यायं प्राप्य–पूरयित्वा गृहित्वे एव भावचारित्रप्रतिपत्त्यनन्तरमन्तर्मुहूर्त्तेन केवलोत्पत्तेः, तदेव पूर्वशतसहस्रं बहुप्रतिपूर्णं–सम्पूर्णं, तेनान्तर्मुहूर्त्तेनाधिकमित्यर्थः, भावचारित्रस्यात्र विवक्षा न तु द्रव्यचारित्रस्य तस्य केवलानन्तरं प्रतिपत्तेः, श्रामण्यपर्यायं–यतित्वं प्राप्य चतुरशीतिं पूर्वशतसहस्राणि सर्वायुः परिपूर्य मासिकेन भक्तेन–मासोपवासैरित्यर्थः अपानकेन–पानकाहारवर्जितेन श्रवणेन नक्षत्रेण योगमुपागतेन चन्द्रेण सहेति गम्यं, क्षीणे वेदनीये आयुषि नाम्नि गोत्रे च भवोपग्राहिकर्मचतुष्टयक्षये इत्यर्थः, 'कालगए' इत्यादि पदानि प्राग्वत्, इतिशब्दोऽधिकारपरिसमाप्तिद्योतकः, स चायं–'से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ भरहे वासे २' इति सूत्रेण नामान्वर्थं पृच्छतो गौतमस्य प्रतिवचनाय 'तत्थ णं विणीआए रायहाणीए भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी समुप्पज्जित्था' इत्यादिसूत्रैर्भरतचरित्रं प्रपञ्चितं, तच्च परिसमाप्तमित्यर्थः, तेन भरतः स्वामित्वेनास्यास्तीत्यश्वादित्वादप्रत्यय इति निरुक्तवशाद् भरतं क्षेत्रमिति तात्पर्यार्थः। अथ प्रकारान्तरेण नामान्वर्थमाह—

भरहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए महज्जुईए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ भरहे वासे २ इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदुत्तरं च णं गो० ! भरहस्स वासस्स सासए णामधिज्जे पण्णत्ते जं ण कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे णिअए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे भरहे वासे (सूत्रं–७१)

भरतश्चात्र देवो महर्द्धिको महाद्युतिको यावत्पदात् 'महायसे' इत्यादि पदकदम्बकं ग्राह्यं, पल्योपमस्थितिकः परिवसति तद् भरतेति नाम, एतेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते भरतं वर्ष २, निरुक्तं तु प्राग्वत्॥ उक्तं यौगिकयुक्त्या नाम, अथ तदेव रूढ्या दर्शयति–'अदुत्तर'मिति, अथापरं चः समुच्चये णं वाक्यालङ्कारे गौतम! भरतस्य वर्षस्य शाश्वतं नामधेयं निर्निमित्तकमनादिसिद्धत्वाद्देवलोकादिवत् प्रज्ञप्तं, शाश्वतत्वमेव व्यक्त्या दर्शयति–यन्न कदाचिन्नासीदित्यादि प्राग्वत्, एतेन भरतनाम्नश्चक्रिणो देवाच्च भरतवर्षनाम प्रवृत्तं भरतवर्षाच्च तयोर्नाम भरतं स्वकीयेनास्यास्तीति निरुक्तवशेन प्रावर्त्ततेत्यन्योऽन्याश्रयदोषो दुर्निवार इति वचनीयता निरस्ता ॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजन्तुजाताभयदानशत्रुञ्जयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमानयुगप्रधानोपमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्यां भरतक्षेत्रप्रवृत्तिनिमित्ताविर्भावकभरतचक्रिचरितवर्णनो नाम तृतीयो वक्षस्कारः ॥ ३ ॥

१ इति भरतक्षेत्रवक्तव्यतानिबद्धः प्रथमोऽधिकारः (इति० ही० वृत्तौ) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र तृतिय-वक्षस्कारः परिसमाप्तः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [१२७]

अथ चतुर्थवक्षस्कारः ॥ ४ ॥

अथ क्षुल्लहिमवद्गिरेरवसरः—

कहि णं भंते! जम्बुद्दीवे २ चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! हेमवयस्स वासस्स दाहिणेणं भरहस्स वासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, एगं जोअणसयं उद्धं उच्चत्तेणं पणवीसं जोअणाइं उव्वेहेणं एगं जोअणसहस्सं बावण्णं च जोअणाइं दुवालस य एगूणवीसइ भाए जोअणस्स विक्खंभेणंति, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ पण्णासे जोअणसए पण्णरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडिणायया जाव पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा चउव्वीसं जोअणसहस्साइं णव य बत्तीसे जोअणसए अद्धभागं च किंचिविसेसूणा आयामेणं पण्णत्ता, तीसे धणुपट्ठे दाहिणेणं पणवीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तीसे जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते, रुअगसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे सण्हे तहेव जाव पडिरूवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्थ-वक्षस्कार: आरभ्यते

अथ क्षुद्रहिमवंतपर्वतस्य वर्णनं आरभ्यते

उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते दुण्हवि पमाणं वण्णगोत्ति । चुल्लहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति जाव विहरंति (सूत्रं–७२)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे क्षुल्लः क्षुद्रो वा–महाहिमवदपेक्षया लघुर्हिमवान् क्षुल्लहिमवान् क्षुद्रहिमवान् (वा) नाम्ना वर्षधरः–पर्वतः प्रज्ञप्तः ?, वर्षे–उभयपार्श्वस्थिते द्वे क्षेत्रे धरतीति वर्षधरः, क्षेत्रद्वयसीमाकारी गिरिरित्यर्थः, स चासौ पर्वतश्च वर्षधरपर्वतः आख्यातस्तीर्थकृद्भिरिति, शेषं सुगमं, नवरं एकं योजनशतं ऊर्ध्वोच्चत्वेन पंचविंशतियोजनानि उद्वेधेन–भूगतत्वेन, उच्चत्वचतुर्थभागस्यैव भूगतत्वात्, एकं योजनसहस्रं द्विपञ्चाशच्च योजनानि द्वादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेन, अस्योपपत्तिस्तु द्विगुणितजम्बूद्वीपव्यासस्य नवत्यधिकशतेन भागहरणे भवति, क्षुद्रहिमवतो भरताद् द्विगुणत्वात्, अत्र च करणविधिर्भरतवर्षविष्कम्भ इव ज्ञेयः, अथास्य बाहे आह—'तस्स बाहा' इत्यादि, तस्य–क्षुद्रहिमवतो बाहे प्रत्येकं पूर्वपश्चिमयोः पंच योजनसहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि पंचाशदधिकानि पंचदश च योजनस्यैकोनविंशतिभागान् एकस्य योजनैकोनविंशतितमभागस्यार्द्धं च यावदायामेन प्रज्ञप्ते, सूत्रे च वचनव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, स्थापना यथा–योजन ५३५० कला १५ अस्य व्याख्यानं वैताढ्याधिकारसूत्रतो ज्ञेयं, प्रायः

१ गुरुधणुपट्ठं लहुधणुपट्ठेणं अद्धिअं बाहा २५२३० ६०; १४५२८ ११; १०७०१ १३×१=५३५० १५ १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७२]

दीप अनुक्रम [१२७]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२८२॥

समसूत्रत्वात् । अथैतस्य जीवामाह–'तस्स जीवा'इत्यादि, तस्य–क्षुद्रहिमवतो जीवा उत्तरतो ग्राह्या, प्राचीनप्रतीचीनायता, जाव पच्चत्थिमिल्लाए इत्यादि प्राग्वत्, यावत्पदात् पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा इति ग्राह्यं, आयामेन चतुर्विंशतियोजनसहस्राणि नव च द्वात्रिंशदधिकानि योजनशतानि अर्द्धभागं च–कलार्द्धं प्रज्ञप्ता किंचिद्विशेषोना किंचिदूना इत्यर्थः, किंचिदूनत्वं चास्या आनयनाय वर्गमूले कृते शेषोत्तरितनराश्यपेक्षया द्रष्टव्यं, अथास्याः परिधिमाह–'तीसे'इत्यादि, तस्याः क्षुद्रहिमवज्जीवायाः धनुःपृष्ठं दक्षिणतो–दक्षिणपार्श्वे पंचविंशतिः योजनसहस्राणि द्वे च त्रिंशदधिके योजनशते चतुरश्च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य परिक्षेपेण–परिधिना प्रज्ञप्तं, यच्चात्र 'तीसे' इतिशब्देन जीवा निर्देशस्तत्स्वस्वजीवापेक्षया स्वस्वधनुःपृष्ठस्य यथोक्तमानतोपपत्त्यर्थं, अन्यथा न्यूनाधिकमानसम्भवात्, अथ पर्वतं विशेषणैर्विशिनष्टि–'रुअग'इत्यादि, रुचकसंस्थानसंस्थितः सर्वकनकमय इत्यादि प्राग्वत्, नवरं द्वयोरपि पद्मवरवेदिकावनखण्डयोः प्रमाणं वर्णकश्च ज्ञातव्याविति शेषः । अथास्य शिखरस्वरूपमाह—'चुल्लहिमवंत'मित्यादि, प्राग्व्याख्यातार्थं, नवरं बहुसमत्वं चात्र नदीस्थानादन्यत्र ज्ञेयं, अन्यथा नदीश्रोतसां संसरणमेव न स्यात् ।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए इत्थ णं इक्के महं पउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते पाईणपडिणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे इक्कं जोअणसहस्सं आयामेणं पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रययामयकूले

४वक्षस्कारे पद्मह्रदस्वरूपं सू.७३

॥२८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पद्मद्रहस्य वर्णनं क्रियते

जाव पासाईए जाव पडिरूवेत्ति, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते वेइआवणसंड-वण्णओ भाणिअव्वोत्ति, तस्स णं पउमद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णावासो भाणिअव्वोत्ति। तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया, तस्स णं पउमद्दहस्स बहुमज्झदेस-भाए एत्थं महं एगे पउमे पण्णत्ते, जोअणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं दो कोसे ऊसिए जलं-ताओ साइरेगाइं दसजोअणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता, से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते जम्बुद्दीवजगइप्पमाणा गवक्खकडएवि तह चेव पमाणेणंति, तस्स णं पउमस्स अयमेआरूवे वण्णावासे पं०, तं०–वइरामया मूला रिट्ठामए कंदे वेरुलिआमए णाले वेरुलिआमयां बाहिरपत्ता जम्बूणयामया अब्भिंतरपत्ता तवणिज्जमया केसरा णाणामणिमया पोक्खरत्थिभाया कणगामई कण्णिगा, सा णं अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं कोसं बाहल्लेणं सव्वकणगामई अच्छा, तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णामए आलिंग०, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे भवणे प० कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे पासाईए दरिसणिज्जे, तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओ दारा पं०, ते णं दारा पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं तावतिअं चेव पवेसेणं सेआवरकणगथूभिआ जाव वणमालाओ णेअव्वाओ, तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा-णामए आलिंग०, तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई एगा मणिपेढिआ पं०, सा णं मणिपेढिआ पंचधणुसयाइं आयामवि-क्खंभेणं अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा, तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं महं एगे सयणिज्जे पण्णत्ते सय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिज्जवण्णओ भाणिअव्वो । से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं पउमाणं तदद्धुव्वत्तप्पमाणमित्ताणं सव्वओ समंता संपक्खित्ते, ते णं पउमा अद्धजोअणं आयामविक्खंभेणं कोसं बाहल्लेणं दसजोअणाइं उव्वेहेणं कोसं ऊसिया जलंताओ साइरेगाइं दसजोअणाइं उव्वत्तेणं, तेसि णं पउमाणं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–वइरामया मूला जाव कणगामई कण्णिआ, सा णं कण्णिआ कोसं आयामेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं सव्वकणगामई अच्छा इति, तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे जाव मणीहिं उवसोभिए, तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तस्स णं पउमस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं महत्तरिआणं चत्तारि पउमा प०, तस्स णं पउमस्स दाहिणपुरत्थिमेणं सिरीए देवीए अब्भितरिआए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, दाहिणेणं मज्झिमपरिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरिआए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं सत्त पउमा पण्णत्ता, तस्स णं पउमस्स चउद्दिसिं सव्वओ समंता इत्थ णं सिरीए देवीए सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, से णं तीहिं पउमपरिक्खेवेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते तं०–अब्भितरकेणं मज्झिमएणं बाहिरएणं, अब्भितरए पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ मज्झिमए पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरए पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं तिहिं पउमपरिक्खेवेहिं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसयसाहस्सीओ भवंतीति अक्खायं । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–पउमद्दहे २?, गोअमा ! पउमद्दहे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे उप्पलाइं जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयसहस्सपत्ताइं पउमद्दहप्पभाइं पउमद्दहवण्णाभाइं सिरी अ इत्थ देवी महिड्ढीआ जाव पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ, से एएणट्ठेणं जाव अदुत्तरं च णं गोअमा! पउमद्दहस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते ण कयाइ णासि न० (सूत्रं ७३)

अथैतन्मध्यवर्त्तिह्रदस्वरूपनिरूपणायाह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य—क्षुद्रहिमवतो बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रावकाशे एको महान् पद्मद्रहो नाम द्रहः पद्मद्रहो नाम ह्रदो वा प्रज्ञप्तः, पूर्वापरायत उत्तरदक्षिणविस्तीर्णः एकं योजनसहस्रमायामेन पंच योजनशतानि विष्कम्भेन दश योजनान्युद्वेधेन—उण्डत्वेन अच्छोऽनाविलजलत्वात्, श्लक्ष्णः सारवज्रादिमयत्वात्, रजतमयकूल इति व्यक्तं, अत्र यावत्करणात् इदं द्रष्टव्यं—'समतीरे वइरामयपासाणे तवणिज्जतले सुवण्णसुब्भरययामयवालुए वेरुलिअमणिफालिअपडलपच्चोअडे सुहोयारे सुहुत्तारे णाणामणितित्थसुबद्धे चाउक्कोणे अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीअलजले संछन्नपत्तभिसमुणाले बहुउप्पलकुमुअसुभगसोगंधिअपुंडरीअसयवत्तफुल्लकेसरोवचिए छप्पयपरिभुज्जमाणकमले अच्छविमलसलिलपुण्णे परिहत्थभमंतमच्छकच्छभअणेगसउणमिहुणपरिअरिए' इति, पासादीए अत्र यावत्पदात् 'दरिसणिज्जे अभिरूवे' इति, एतद्व्याख्या तु जगत्युपरिगतवाप्यादिवर्णकाधिकारतो ज्ञेयेति, 'से ण'मित्यादि, स पद्मद्रहः एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तः, वेदिकावनखण्डवर्णको भणितव्यः, प्राग्वदित्यर्थः, 'तस्स ण'मित्यादि व्यक्तं, 'तेसि ण'मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं णाणामणिमयेत्ति वर्णकैकदेशेन पूर्णस्तोरणवर्णको ग्राह्यः, अथात्र पद्मस्वरूपमाह—'तस्स ण'-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७३]

दीप अनुक्रम [१२८]

मित्यादि, तस्य–पद्मद्रहस्य बहुमध्यदेशभागः अत्रान्तरे महदेकं पद्मं प्रज्ञप्तं, एकं योजनमायामतो विष्कम्भतश्च अर्द्धयोजनं बाहल्येन–पिण्डेन दश योजनान्युद्वेधेन–जलावगाहेन द्वौ क्रोशावुच्छ्रितं जलान्तात्–जलपर्यन्तात्, एवं सातिरेकाणि दश योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि, जलावगाहोपरितनभागसत्ककमलमानमीलने एतावत एव सम्भवात् । 'से ण'मित्यादि, तत्पद्ममेकया जगत्या–प्राकारकल्पया सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तं, सा च जगती जम्बूद्वीपजगतीप्रमाणा वेदितव्या, एतच्च प्रमाणं जलादुपरिष्टाद् ज्ञेयं, दशयोजनात्मकजलावगाहप्रमाणस्याविवक्षितत्वात्, गवाक्षकटकोऽपि–जालकसमूहोऽपि तथैव प्रमाणेन उच्चत्वेनार्द्धयोजनं पञ्चधनुःशतानि विष्कम्भेनेत्यर्थः । अथ पद्मवर्णकमाह–'तस्स'त्ति तस्य–पद्मस्यायमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–वज्रमयानि मूलानि–कन्दादधस्तिर्यग्निर्गतजटासमूहावयवरूपाणि अरिष्टरत्नमयः कन्दो–मूलनालमध्यवर्त्ती ग्रन्थिः वैडूर्यमयं नालं–कन्दोपरि मध्यवर्त्यवयवः वैडूर्यमयानि बाह्यपत्राणि, अत्रायं विशेषो बृहत्क्षेत्रविचारवृत्त्यादौ–बाह्यानि चत्वारि पत्राणि वैडूर्यमयानि शेषाणि तु रक्तसुवर्णमयानि, जम्बूनदं–ईषद्रक्तस्वर्णं तन्मयान्यभ्यन्तरपत्राणि, सिरिनिलयमिति क्षेत्रविचारवृत्तौ तु पीतस्वर्णमयान्युक्तानि, तपनीयमयानि–रक्तस्वर्णमयानि केसराणि–कर्णिकायाः परितोऽवयवाः नानामणिमयाः पुष्करास्थिभागाः–कमलबीजविभागाः कनकमयी कर्णिका–बीजकोशः, अथ कर्णिकामानाद्याह—"सा ण'मित्यादि, सा–कर्णिका अर्द्धयोजनमायामेन विष्कम्भेन च क्रोशं बाहल्येन–पिण्डेन सर्वात्मना कनकमयी, अत एव कनकमयीति पूर्वविशेषणेना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयवविभागेऽपि कनकमयत्वं स्यादित्याशङ्क्य निरस्ता, 'अच्छा' इत्येकदेशेन सण्हा इत्यादिपदान्यपि ज्ञेयानि, तेषां व्याख्या च प्राग्वत्। 'तीसे णं'मित्यादि, एतानि सर्वाण्यपि निगदसिद्धानि, शयनीयवर्णकश्चायं जीवाभिगमोक्तः– 'तस्स णं देवसयणिज्जस्स अयमेआरूवे वण्णावासे पं०, तंजहा–णाणामणिमया पडिपाया सोवण्णिआ पाया णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं जम्बूणयामयाइं गत्ताइं वइरामया संधी णाणामणिमए चिच्चे रययामई तूली लोहिअक्खामया विब्बोअणा तवणिज्जमईओ गंडोवहाणियाओ' इति 'से णं सयणिज्जे सालिंगणवट्टिए उभओविब्बोअणे उभओ उण्णए मज्झेणयगम्भीरे गंगापुलिणवालुआउद्दालसालिसए ओअविअखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे आइणगरूअबूरणवणीअतूलतुल्लफासे सुविरइअरयत्ताणे रत्तंसुअसंवुडे सुरम्मे पासादीए ४'इति, अत्र व्याख्या—तस्य देवशयनीयस्यायमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–नानामणिमयाः प्रतिपादाः, मूलपादानां प्रतिविशिष्टोपष्टम्भकरणाय पादाः प्रतिपादाः, सौवर्णिकाः–सुवर्णमयाः पादाः–मूलपादाः, जाम्बूनदमयानि गात्राणि–ईषादीनि, वज्रमया–वज्ररत्नपूरिताः सन्धयः, 'नानामणिमए चिच्चे'इति चिच्चं नाम व्यूतं विशिष्टं वानमित्यर्थः, रजतमयी तूली लोहिताक्षमयानि विब्बोअणा इति–उपधानकानि उच्छीर्षकाणीतियावत्, तपनीयमय्यो गण्डोपधानिकाः गल्लमसूरकाणीत्यर्थः तच्छयनीयं सह आलिङ्गनवर्त्त्या–शरीरप्रमाणेनोपधानेन यत्तत्तथा, उभयतः–उभौ शिरोऽन्तपादान्तावाश्रित्य विब्बोअणे–उपधाने यत्र तत्तथा, उभयत उन्नतं मध्ये नतं च तत् नम्रत्वात् गम्भीरं च महत्त्वात् तत्तथा, मङ्गापुलिनवालु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७३]

दीप अनुक्रम [१२८]

कायाः अवदालो–विदलनं पादादिन्यासे अधोगमनमिति तेन सालिसे इति–सदृशकं यत्तत्तथा, तथा 'ओअविअ'त्ति विशिष्टं परिकर्म्मितं क्षौमं–कार्प्पासिकं दुकूलं–वस्त्रं तदेव पट्टः स प्रतिच्छादनं–आच्छादनं यस्य तत्तथा, 'आईणगे'त्यादि, प्राग्वत्, सुविरचितं रजस्त्राणं–आच्छादनविशेषोऽपरिभोगावस्थायां यत्र तत्तथा, रक्तांशुकेन–मशकदंशादिनिवारणार्थकमशकगृहाभिधानवस्त्रविशेषेण संवृतं, अत एव सुरम्यं, 'पासादीए'इत्यादि पदचतुष्कं प्राग्वत्। अथास्य प्रथमपरिक्षेपमाह—'से ण'मित्यादि, तत्पद्ममन्येनाष्टशतेन पद्मानां 'तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्राणां' तस्य–मूलपद्मप्रमाणस्यार्द्धं–अर्द्धरूपा उच्चत्वे–उच्छ्राये प्रमाणे च–आयामविस्तारबाहल्यरूपे मात्रा–प्रमाणं येषां तानि तथा तेषां, सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तं, अत्र जलोपरितनभागे उच्चत्वस्य व्यवहारप्राप्तस्य विवक्षणादर्द्धप्रमाणं सम्भवत्यन्यथा जलावगाहसहितोच्चत्वविवक्षायामुत्तरसूत्रे सातिरेकपञ्चयोजनानि इति वक्तव्यं स्यात् सामान्यतः, उक्तमेव मानं व्यनक्ति—'ते ण'मित्यादि, प्रागुक्तप्रायं, एषां वर्णकमाह–'तेसि ण'मित्यादि, व्यक्तं, 'सा ण'मित्यादि, इदमपि व्यक्तं, 'तीसे ण'मित्यादि, व्यक्तं, एषु च श्रीदेव्या भूषणादिवस्तूनि तिष्ठन्ति इति सूत्रानुक्तोऽपि विशेषो बोध्यः। अथ द्वितीयपद्मपरिक्षेपमाह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य–मूलपद्मस्यापरोत्तरस्यां–वायव्यकोणे उत्तरस्यां उत्तरपूर्वस्यां–ईशानकोणे च सर्वसङ्कलनया तिसृषु दिक्षु अत्रान्तरे श्रिया देव्याश्चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चत्वारि पद्मसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तस्य पद्मस्य पूर्वस्यां दिशि अत्र श्रियाश्चतसृणां महत्तरिकाणां चत्वारि पद्मानि प्रज्ञप्तानि, अत्र प्राग्व्याख्यातविजयदेव-

॥२८५॥

॥२८५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहासनपरिवारानुसारेण पार्षद्यादिपद्मसूत्राणि वक्तव्यानि, सुगमत्वाच्च न विव्रियन्ते, यावत्पश्चिमायां सप्तानीकाधिपतीनां सप्त पद्मानि। अथ तृतीयपद्मपरिक्षेपसमयः–'तस्स ण'मित्यादि, तस्य मुख्यपद्मस्य चतसृणां दिशां समाहारश्चतुर्दिक् तस्मिन् चतुर्दिशि सर्वतः समन्तात्, अत्रान्तरे श्रिया देव्याः षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां षोडश पद्मसहस्राणि, तथाहि–चत्वारि पूर्वस्यां चत्वारि दक्षिणस्यां एवं पश्चिमोत्तरयोः। अथोक्तव्यतिरिक्ताः अन्येऽपि त्रयः परिवेषाः सन्तीत्याह—'से णं पउमे'इत्यादि, तत्पद्मं त्रिभिरुक्तव्यतिरिक्तैः पद्मपरिक्षेपैः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तं, तद्यथा–अभ्यन्तरकेण–अभ्यन्तरभवेन मध्यमकेन–मध्यभवेन बाहिरकेण–बहिर्भवेन, एतदेव व्यनक्ति–अभ्यन्तरपद्मपरिक्षेपे द्वात्रिंशत्पद्मानां शतंसहस्राणि–लक्षाणि मध्यमके चत्वारिंशत्पद्मलक्षाणि बाह्येऽष्टचत्वारिंशत्पद्मलक्षाणि प्रज्ञप्तानि, इदं च पद्मपरिक्षेपत्रिकं आभियोगिकदेवसम्बन्धि बोध्यं, अत एव भिन्नत्रिकख्यापनपरं सूत्रं निर्दिष्टं, अन्यथा सूत्रकृत् चतुर्थपञ्चमषष्ठपरिक्षेपाः इत्येवाकथयिष्यत्, ननु तर्हि आभियोगिकजातीयानामेक एवात्मरक्षकाणामिव वाच्यः, उच्यते, उच्चमध्यनीचकार्यनियोज्यत्वेनाभियोगिकानां भिन्नत्वेन परिक्षेपस्यापि भिन्नत्वात्, अथ परिक्षेपत्रिकस्य पद्मसर्वाग्रमाह—'एवमेव'इत्यादि, एवमेव–उक्तन्यायेन सपूर्वापरेण–सपूर्वापरसमुदायेन त्रिभिः पद्मपरिक्षेपैरेका पद्मकोटी विंशतिश्च पद्मलक्षाणि भवन्तीत्याख्यातं मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिः, सङ्ख्यानयनं च स्वयमभ्यूह्यं, षण्णां पद्मपरिक्षेपाणां मुख्यपद्मेन सह मीलने सैव सङ्ख्या पञ्चाशत्सहस्रैकशतविंशत्यधिका ज्ञातव्या, स्थापना यथा–१२०५०१२०, ननु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमलानि कमलिन्याः पुष्परूपाणि भवन्ति, मूलं कन्दश्च कमलिन्या एव भवतः, नतु कमलस्य, तत्कथमत्र मूलकन्दावुक्तौ ?, उच्यते, कमलान्यत्र न वनस्पतिपरिणामानि, किन्तु पृथिवीकायपरिणामरूपाः कमलाकारवृक्षास्तेन तेषामिमौ न विरुद्धाविति, अत्राद्यपरिक्षेपपद्मानां मूलपद्मादर्द्धमानं सूत्रकृता साक्षादुक्तं, उत्तरोत्तरपरिक्षेपपद्मानां तु पूर्व२परिक्षेपपद्मेभ्योऽर्द्धार्द्धमानता युक्तितः सङ्गच्छते विजयप्रासादपंक्तेरिव, अन्यथाऽल्पर्द्धिकमहर्द्धिकदेवानामाश्रयतारतम्यं चतुर्थादिमहापरिक्षेपपद्मानामवकाशः शोभमानस्थितिकत्वं च न सम्भवेत्, अर्द्धार्द्धमानता चैवम्–मूलपद्मं योजनप्रमाणं आद्ये परिक्षेपे पद्मानि द्विक्रोशमानानि द्वितीये क्रोशमानानि तृतीयेऽर्द्धक्रोशमानानि चतुर्थे पञ्चधनुःशतमानानि पञ्चमे सार्द्धद्विशतधनुर्मानानि षष्ठे सपादशतधनुर्मानानि, तथा मूलपद्मापेक्षया सर्वपरिक्षेपेषु जलादुच्छ्रयभागोऽप्यर्द्धार्द्धक्रमेण ज्ञेयः, यथा मूलपद्मं जलात् क्रोशद्वयमुच्छ्रये आद्ये परिक्षेपे क्रोश उच्छ्रयः द्वितीये क्रोशार्द्धं तृतीये क्रोशचतुर्थांशः चतुर्थे क्रोशाष्टांशः पञ्चमे क्रोशषोडशांशः षष्ठे क्रोशद्वात्रिंशांश इति, एवमेव मूलपद्मापेक्षया परिक्षेपपद्मानां बाहल्यमप्यर्द्धार्द्धक्रमेण वाच्यं । ननु षट् परिक्षेपा इति विचार्यं, योजनात्मना सहस्रत्रयात्मकस्य धनुरात्मना द्विकोटिद्विचत्वारिंशल्लक्षप्रमाणस्य ह्रदपरमपरिधेः षष्टपरिक्षेपपद्मानां षष्टिकोटिधनुःक्षेत्रमातव्यानां एकया पंक्त्या कथमवकाशः सम्भवति ? एवं प्रथमपरिक्षेपवर्जं शेषपरिक्षेपाणामपि तत्परिधिमानपद्ममाने परिभाव्य वाच्यं, उच्यते, षट् परिक्षेपा इत्यत्र षड्जातीयाः परिक्षेपा इति ग्राह्यं, आद्या मूलपद्मार्द्धमाना जातिः द्वितीया तत्पादमाना तृतीया तदष्टमभागमाना चतुर्थी तत्षोड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

शभागमाना पञ्चमी तद्द्वात्रिंशत्तमभागमाना षष्ठी तच्चतुःषष्टितमभागमाना, ततश्च तत्परिधिक्षेत्रपरिक्षेपपद्मसङ्ख्या पद्मविस्तारान् परिभाव्य यत्र यावत्यः पंक्तयः सम्भवंति गणितज्ञेन करणीयास्तत्र तावतीभिः पंक्तिभिरेक एव परिक्षेपो ज्ञेयः, पद्मानामेकजातीयत्वात्, किमुक्तं भवति?–महापरिक्षेप एकया पंक्त्या न सम्माति, इह परिधिक्षेत्रस्याल्पत्वात्, पद्मानां च बहुत्वात्, ततः पंक्तिभिः पद्मानि पूरणीयानि, एवं परिक्षेपः पूर्णो भवति, द्रहपरिधिश्च प्रतिपरिक्षेपं भिन्नमानकत्वात् सपद्मपरिक्षेपो भिन्न एव लक्ष्यते इति, न च द्रहक्षेत्रस्याल्पत्वमिति वाच्यं, अत्र गणितपदक्षेत्रस्य पञ्चलक्षयोजनप्रमाणत्वात्, सहस्रयोजनप्रमाणायामस्य पञ्चशतयोजनविष्कम्भेन गुणने एतावत एव लाभात्, पद्मावगाढक्षेत्रं तु सर्वसङ्ख्यया विंशतिः सहस्राणि पञ्चाधिकानि योजनानां षोडशभागीकृतस्यैकस्य योजनस्य त्रयोदश भागाः, २००५$\frac{१३}{१६}$ तथाहि—मूलपद्मावगाहो योजनमेकं जगती द्वादश योजनानि मूले पृथुरिति, जगतीपूर्वापरभागसत्कमूलव्यासयोर्मीलनेन पञ्चविंशतिर्योजनानीति, तथा तत्परिधौ प्रथमः परिक्षेपोऽष्टोत्तरशतपद्मानां तदवगाहक्षेत्रं सप्तविंशतिर्योजनानि, अर्द्धयोजनप्रमाणत्वेन तेषामेकस्मिन् योजने चतुर्णामवकाशाच्चतुर्भिरष्टोत्तरशते भक्ते एतावतामेव लाभात्, ननु योजनार्द्धमानवतां तावतां चतुःपञ्चाशद् योजनानि सम्भवेयुरिति, सत्यं, क्षेत्रबहुत्वादेकपंक्त्या व्यवस्थितत्वेन प्रत्येकं योजनचतुर्थांशावगाहकत्वेन च उक्तसङ्ख्यैव समुचिता, अत्र पद्मरुद्धक्षेत्रस्यैव भणनादिति, तथा द्वितीयः परिक्षेप एकादशाधिकचतुस्त्रिंशत्सहस्राणां, तदवगाहक्षेत्रं द्वे सहस्रे पञ्चविंशत्यधिकं शतं च योजनानां एका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७३]

दीप अनुक्रम [१२८]

दश च भागा योजनस्य षोडशभागीकृतस्य २१२५$\frac{११}{१६}$, उपपत्तिस्तु योजनपादप्रमाणत्वादिमानि षोडश मान्तीति १४०११ इत्ययं परिक्षेपपद्मराशिः षोडशभिर्भज्यते, आगच्छत्यनन्तरोक्तो राशिः, अस्यां च परिक्षेपजातौ पंक्तयः सूत्रोक्तस्वस्व-दिशि निवेशनीयपद्मनिवेशनेन विषमवृत्ताः सम्भाव्यन्ते, पद्मानां विषमसङ्ख्याकत्वादिति, अथ तृतीयः परिक्षेपः षोड-शसहस्रपद्मानां तदवगाहक्षेत्रं द्वे शते पञ्चाशदधिके योजनानां २५०, उपपत्तिस्तु अमूनि योजनाष्टमभागप्रमाणत्वा-द्योजने चतुःषष्टिर्मान्तीति चतुःषष्ट्या १६००० प्रमाणः पद्मराशिर्भज्यते, उपतिष्ठते चायं राशिः, अत्र च पंक्तयः सम-वृत्ता एव निवेशनीयाः, यथेच्छं चतुर्दिक्षु पद्मानां निवेशनादिति, अथ चतुर्थः परिक्षेपो–द्वात्रिंशल्लक्षपद्मानां तदवगा-हक्षेत्रं द्वादश सहस्राणि पञ्चशताधिकानि योजनानां १२५००, आनयनोपायस्तु एषां योजनषोडशभागप्रमाणत्वा-द्योजने २५६ मान्तीति षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयेन ३२००००० इत्ययं पद्मराशिर्भज्यते, ततो यथोक्तो राशिरायातीति, अथ पञ्चमः परिक्षेपः चत्वारिंशल्लक्षपद्मानां, तदवगाहक्षेत्रं त्रीणि सहस्राणि नव शतानि च षडधिकानि योजनानां चत्वा-रश्च षोडशभागा योजनस्य ३९०६$\frac{४}{१६}$, उपपत्तिस्तु एषां योजनद्वात्रिंशत्तमांशप्रमाणत्वादमूनि योजने १०२४ मान्तीति चतुर्विंशत्यधिकसहस्रेण ४०००००० रूपकस्य पद्मराशेर्भागहरणेन प्राप्यते यथोक्तराशिरिति, अथ षष्ठः परिक्षेपः–अष्ट-चत्वारिंशल्लक्षं पद्मानां, तदवगाहक्षेत्रं एकादश शतानि एकसप्तत्यधिकानि योजनानां चतुर्दश च षोडशभागाः योजनस्य ११७१$\frac{१४}{१६}$, उपपत्तिश्चात्र–अमीषां योजनचतुःषष्टितमांशप्रमाणत्वाद्योजने ४०९६ मान्तीति षण्णवत्यधिकचतुःस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्रै ४८०००० रित्यस्य पद्मराशेर्भागहरणात् यथोक्तो राशिरुपपद्यत इति पूर्वापरपद्मक्षेत्रयोजनमीलनेन च पूर्वोक्तं सर्वाग्रं सम्पद्यते, परिक्षेपाश्चात्र वृत्ताकारेण बोद्धव्याः क्षेत्रस्य बहुत्वात् सम्भवन्तीति, पंक्तयश्चात्र द्रहक्षेत्रस्यायतचतुरस्रत्वेन आयामविस्तारयोर्विषमत्वेऽपि पञ्चशतयोजनमर्यादयैव कर्त्तव्या, ततः परं व्याससत्कपञ्चशतयोजनानां पर्यवसितत्वात्, शोभमानाश्चोक्तरीत्यैव भवन्तीति । किञ्च–इमानि पद्मानि शाश्वतानि पार्थिवपरिणामरूपत्वात्, वानस्पतान्यपि बहूनि तत्रोत्पद्यन्ते, यदाहुः श्रीउमास्वातिवाचकपादाः स्वोपज्ञजम्बूद्वीपसमासप्रकरणे—"नीलोत्पलपुण्डरीकशतपत्रसौगन्धिकादिपुष्पाञ्चित" इति, अन्यथा श्रीवज्रस्वामिपादाः श्रीदेवतासमर्पितानुपमेयमहापद्मानयनेन पुरिकापुर्य्यां कथं जिनप्रवचनप्रभावनामकार्षुरिति ? एतानि च न शाश्वतानि, तत्रत्यश्रीदेवतादिभिरवचीयमानत्वात्, यदूचुः, श्रीहेमचन्द्रसूरयःस्वोपज्ञपरिशिष्टपर्वणि—"तदा च देवपूजार्थमवचित्यैकमम्बुजम् । श्रीदेव्या देवतागारं, यान्त्या वज्रर्षिरैक्षत ॥ १ ॥" इति, नन्वयमनन्तरोक्तोऽर्थः कथं प्रत्येतव्यः?, उच्यते, इदमेव द्वितीयपरिक्षेपसूत्रं प्रत्यायकं, तथाहि—अत्रैकादशाधिकचतुस्त्रिंशत्सहस्रकमलानि उक्तदिशि मायायितव्यानि, तानि च क्रोशमानानि एकपंक्त्या च तदाऽवकाशं लभेत यदा द्वितीयपद्मपरिधिरेकादशाधिकचतुस्त्रिंशत्सहस्रक्रोशप्रमाणः स्यात्, स च तदा स्याद् यदा मूलक्षेत्रायामव्यासौ साधिकषड्विंशतिशतप्रमाणौ स्यातां, तौ प्रस्तुते न स्तः, तेन यथासम्भवं पंक्तिभिर्द्वितीयपरिक्षेपपद्मजातिः पूरणीयेति तात्पर्यं, एवमन्यपरिक्षेपेष्वपि यथासम्भवं भावना कार्येति, अथ कथमयमर्थः सिद्धान्ततां प्रापित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति ?, उच्यते, अन्यथाऽनुपपत्त्या, न हि यथाक्षरमात्रसन्निवेशं सूरयः सूत्रव्याख्यानपरा भवन्ति, किन्तु प्राक्परार्थाविरोधेन, यदुक्तम्—"जं जह सुत्ते भणिअं तहेव तं जइ विआलणा नत्थि । किं कालिआणुओगो दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ? ॥ १ ॥ इति [यद्यथा सूत्रे भणितं तथैव तत् यदि विचालना नास्ति । किं कालिकानुयोगो दृष्टो-दृष्टिप्रधानैः ? ॥ १ ॥] अलं प्रसङ्गेनेति । अथ पद्मद्रहनामनिरुक्तं पृच्छन्नाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—पद्मद्रहः पद्मद्रह इति, गौतम ! पद्मद्रहे तत्र तत्र देशे—तस्मिन् देशे २ बहूनि उत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि पद्मद्रहप्रभाणि—पद्मद्रहाकाराणि आयतचतुरस्राकाराणीत्यर्थः, एतेन तत्र वानस्पतानि पद्मद्रहाकाराणि पद्मानि बहूनि सन्ति, न तु केवलं पार्थिवानि वृत्ताकाराणि महापद्मादीन्येव तत्र सन्तीति ज्ञापितं, तथा पद्मद्रहवर्णस्यैवाभा—प्रतिभासो येषां तानि तथा, ततस्तानि तदाकारत्वात्तद्वर्णत्वाच्च पद्मद्रहाणीति प्रसिद्धानि, ततस्तद्योगादयं जलाशयोऽपि पद्मद्रहः, उभयेषामपि च नाम्नामनादिकालप्रवृत्तत्वेन नेतरेतराश्रयदोषः, अथ पार्थिवपद्मतोऽप्यस्य नामप्रवृत्तिर्जाताऽस्तीति ज्ञापयितुं प्रकारान्तरेण नामनिबन्धनमाह—श्रीश्च देवी पद्मवासाऽत्र परिवसति, ततश्च श्रीनिवासयोग्यपद्माश्रयत्वात् पद्मोपलक्षितो द्रह इति पद्मद्रह आख्यायते, मध्यपदलोपिसमासात्, समाधानं शेषं प्राग्वत्'। अथ गङ्गामहानदीस्वरूपमाह—

तस्स ण पउमद्दहस्स पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं गंगा महाणई पवूढा समाणी पुरत्थाभिमुही पञ्च जोअणसयाइं पवएणं गंता गंगा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ गङ्गा-महानद्यः वर्णनं क्रियते

वत्तणकूडे आवत्ता समाणी पञ्च तेवीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ, गंगा महाणई जओ पवडइ इत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता, सा णं जिब्भिआ अद्धजोअणं आयामेणं छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा सण्हा, गंगा महाणई जत्थ पवडइ एत्थ णं महं एगे गंगप्पवाए कुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते सट्ठिं जोअणाइं आयामविक्खंभेणं णउअं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रययामयकूले समतीरे वइरामयपासाणे वइरतले सुवण्णसुब्भरययामयवालुआए वेरुलिअमणिफालिअपडलपच्चोअडे सुहोआरे सुहोत्तारे णाणामणितित्थसुबद्धे वट्टे अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीअलजले संछण्णपत्तभिसमुणाले बहुउप्पलकुमुअणलिणसुभगसोगंधिअपोंडरीअमहापोंडरीअसयपत्तसहस्सपत्तसयसहस्सपत्तपप्फुल्लकेसरोवचिए छप्पयमहुयरपरिभुज्जमाणकमले अच्छविमलपत्थसलिले पुण्णे पडिहत्थभमन्तमच्छकच्छभअणेगसउणगणमिहुणपविअरियसदुन्नइअ महुरसरणाइए पासाईए। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसण्डेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते वेइआवणसंडगाणं पउमाणं वण्णओ भाणिअव्वो, तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पं०, तंजहा–पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा–वइरामया णेम्मा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलिआमया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलया लोहिक्खमईओ सूईओ वयरामया संधी णाणामणिमया आलंबणा आलंबणबाहाओत्ति, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं पत्तेअं तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठसंनिविट्ठा विविहमुत्तंतरोवइआ विविहतारारूवोवचिआ ईहामिअउसह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [१२९]

तुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्तावि अच्चीसहस्समालणीआ रूवगसहस्सकलिआ भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोअणलेसा सुहफासा सस्सिरीअरूवा घंटावलिचलिअमहुरमणहरसरा पासादीआ, तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पं०, तं०–सोत्थिए सिरिवच्छे जाव पडिरूवा, तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे किण्हचामरज्झया जाव सुक्किलचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरामयदण्डा जलयामलगंधिआ सुरम्मा पासाईया ४, तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइच्छत्ता पडागाइपडागा घंटाजुअला चामरजुअला उप्पलहत्थगा पउमहत्थगा जाव सयसहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे गंगादीवे णामं दीवे पण्णत्ते अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्ववइरामए अच्छे सण्हे, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ भाणिअव्वो, गंगादीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं गंगाए देवीए एगे भवणे पण्णत्ते कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणगं च कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे जाव बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियाए सयणिज्जे, से केणट्ठेणं जाव सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं गंगामहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धभरहवासं एज्जेमाणी २ सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आउरेमाणी २ अहे खण्डप्पवायगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालइत्ता दाहिणद्धभरहवासं एज्जेमाणी २ दाहिणद्धभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, गंगा णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाणई पवहे छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं तयणंतरं च णं मायाए २ परिवद्धमाणी २ मुहे बासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च विक्खंभेणं सकोसं जोअणं उव्वेहेणं उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता वेइआवणसंडवण्णओ भाणिअव्वो, एवं सिंधूएवि णेअव्वं जाव तस्स णं पउमद्दहस्स पच्चत्थिमिल्लेणं तोरणेणं सिंधुआवत्तणकूडे दाहिणाभिमुही सिंधुप्पवायकुंडं सिंधुदीवो अट्ठो सो चेव जाव अहेतिमिसगुहाए वेअद्धपव्वयं दालइत्ता पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता समाणा चोद्दससलिला अहे जगइं पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं जाव समप्पेइ, सेसं तं चेवत्ति । तस्स णं पउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसा महाणई पवूढा समाणी दोण्णि छावत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ, रोहिअंसाणामं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता, सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं कोसं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा, रोहिअंसा महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे रोहिअंसापवायकुण्डे णाम कुण्डे पण्णत्ते सवीसं जोअणसयं आयामविक्खंभेणं तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे कुंडवण्णओ जाव तोरणा, तस्स णं रोहिअंसाववायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगो रोहिअंसा णामं दीवे पण्णत्ते सोलस जोअणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं पण्णासं जोयणाइं परिक्खेवेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्वरयणामए अच्छे सण्हे सेसं तं चेव जाव भवणं अट्ठो अ भाणिअव्वोत्ति, तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुंडस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसा महाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जेमाणी २ चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ सद्दावइवट्टवेअद्धपव्वयं अद्धजोअणेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

असंपत्ता समाणी पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, रोहिंअंसा णं पवहे अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं कोसं उव्वेहेणं तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २ मुहमूले पणवीसं जोअणसयं विक्खंभेणं अद्धाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता (सूत्रं ७४)

'तस्स ण'मित्यादि, तस्य–पद्मद्रहस्य पौरस्त्येन तोरणेन गङ्गा नाम्नी महानदी–स्वपरिवारभूतचतुर्दशसहस्रनदीसम्पदुपेतत्वेन स्वतन्त्रतया समुद्रगामित्वेन च प्रकृष्टा नदी, एवं सिन्ध्वादिष्वपि ज्ञेयं, प्रव्यूढा–निर्गता सती पूर्वाभिमुखी पञ्च योजनशतानि पर्वतोपरीत्यर्थः अथवा णमिति प्राग्वत् पर्वते गत्वा गङ्गावर्त्तननाम्नि कूटे, अत्र सामीप्ये सप्तमी वटे गावः सुशेरते इत्यादिवत्, गङ्गावर्त्तनकूटस्याधस्तादावृत्ता सती प्रत्यावृत्त्येत्यर्थः, पञ्चयोजनशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि त्रींश्चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा महान् यो घटस्तन्मुखादिव प्रवृत्तिः–निर्गमो यस्य स तथा तेन, अयमर्थः–यथा घटमुखाज्जलौघो निर्यन् खुभिखुभितिशब्दायमानो बलीयांश्च निर्याति तथाऽयमपीति, मुक्तावलीनां–मुक्तासरीणां यो हारस्तत्संस्थितेन तत्संस्थानेनेत्यर्थः सातिरेकं योजनशतं क्षुद्रहिमवच्छिखरतलादारभ्य दशयोजनोद्वेधप्रपातकुण्डं यावद्धारापातात् मानमस्येति सातिरेकयोजनशतिकस्तेन तथा प्रपातेन–प्रपतज्जलौघेन, अत्र करणे तृतीया, प्रपतति–प्रप्रातकुण्डं प्राप्नोतीत्यर्थः, दक्षिणाभिमुखगमनपञ्चयोजनशतादिसङ्ख्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वेवम्–हिमवद्गिरिव्यासात् योजन १०५२ कला १२ रूपात् गङ्गाप्रवाहव्यासे योजन ६ क्रोश १ प्रमिते शोधिते शेषं १०४६ क्रोशे तु पादोनं कलापञ्चकं तत्कलाद्वादशकात् शोध्यं ततः शेषाः सप्त सपादाः कलाः, गङ्गाप्रवाहः पर्वतस्य मध्यभागेन पद्मद्रहाद्विनिर्याति तेनास्या दक्षिणाभिमुखगङ्गाप्रवाहोनगिरिव्यासार्द्धस्य गन्तव्यत्वेन गङ्गाव्यासोनो गिरिव्यासः योजन १०४६ कलासपादसप्त ७ रूपोऽर्द्धीक्रियते जातं यथोक्तं योजन ५२३ कला ३, यद्यप्यत्र कलात्रिकं किञ्चित्समधिकार्द्धयुक्तमायाति तथाऽप्यल्पत्वान्न विवक्षितमिति। अथ जिव्हिकाया अवसरः–'गङ्गामहाणई जओ पवडइ इत्थ ण'मित्यादि, गङ्गा महानदी यतः स्थानात् प्रपतति अत्रान्तरे महती एका जिव्हिका प्रणालापरपर्याया प्रज्ञप्ता, 'सा णं'इत्यादि, सा जिव्हिका अर्द्धयोजनमायामेन षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन गङ्गामूलव्यासस्य मातव्यत्वात् अर्द्धक्रोशं बाहल्येन–पिण्डेन विवृतं–प्रसारितं यन्मकरमुखं–जलचरविशेषमुखं तत्संस्थानसंस्थिता विशेषणस्य परनिपातः प्राग्वत् सर्वात्मना वज्रमयी इत्यादि कण्ठ्यं। अथ प्रपातकुण्डस्वरूपमाह—'गंगा महाणई'इत्यादि, गङ्गा महानदी यत्र प्रपतति अत्रान्तरे महदेकं गङ्गाप्रपातकुण्डं नाम यथार्थनामकं कुण्डं प्रज्ञप्तं, षष्टिं योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, अत्र करणविभावनायां 'मूले पण्णासं जोअणवित्थारो ५० उवरिं सट्ठी ६०' इति विशेषोऽस्ति, श्रीउमास्वातिवाचककृतजम्बूद्वीपसमाससूत्रादावपि तथैव, इत्थं च कुण्डस्य यथार्थनामतोपपत्तिरपि भवति, एवमन्येष्वपि यथायोगं ज्ञेयमिति, तथा नवतं–नवत्यधिकं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण, श्रीजिन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्रगणिक्षमाश्रमणपादाः खोपज्ञक्षेत्रविचारसूत्रे–'आयामो विक्खंभो सट्ठिं कुंडस्स जोअणा हुंति । नउअसयं किंचूणं परिही दसजोअणोगाहो ॥ १ ॥" इत्यूचुः, तद्वृत्तावपि श्रीमलयगिरिपादास्तथैव, करणरीत्याऽपि तथैवागच्छति, तेन प्रस्तुतसूत्रं गम्भीरार्थं बहुश्रुतैर्विचार्यं नास्मादृशां मन्दमेधसां मतिप्रवेश इति, यद्वा प्रस्तुतसूत्रं पद्मवरवेदिकासहितकुण्डपरिधिविवक्षया प्रवृत्तमिति सम्भाव्यते, तेन न दोषः, तत्त्वं तु केवलिगम्यमिति, दश योजनान्युद्वेधेन–उण्डत्वेन अच्छं–स्फटिकवद्बहिर्निर्मलप्रदेशं श्लक्ष्णं–श्लक्ष्णपुद्गलनिष्पादितबहिःप्रदेशं रजतामयं–रूप्यमयं कूलं यस्य तत्तथा समं न गर्त्तासद्भावतो विषमं तीरवर्त्तिजलापूरितं स्थानं यस्मिन् तत्तथा, वज्रमयाः पाषाणाः भित्तिबन्धनाय यस्य तत् तथा, वज्रमयं तलं यस्य तत्तथा, सुवर्णं–पीतहेम सुब्भं–रूप्यविशेषः रजतं प्रतीतं तन्मय्यो वालुका यस्मिन् तत्तथा, वैडूर्यमणिमयानि स्फटिकरत्नसम्बन्धिपटलमयानि प्रत्यवतटानि–तटसमीपवर्त्त्यभ्युन्नतप्रदेशा यस्य तत्तथा, सुखेनावतारो–जलमध्ये प्रवेशनं यस्मिन् तत्तथा सुखेनोत्तारो–जलमध्याद् बहिर्विनिर्गमनं यस्मिन् तत्तथा, ततः पूर्वपदविशेषणसमासः, तथा नानामणिभिः सुबद्धं तीर्थं यत्र तत्तथा, अत्र बहुव्रीहावपि क्तान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात् प्राकृतशैलीवशाद्वा, तथा वृत्तं–वर्त्तुलं आनुपूर्व्येण–क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण सुष्ठु–अतिशयेन यो जातो वप्रः–केदारो जलस्थानं तत्र गम्भीरं–अलब्धस्ताधं जलं यस्मिन् तत्तथा संछन्नानि–जलेनान्तरितानि पत्रबिसमृणालानि यस्मिन् तत्तथा, अत्र बिसमृणालसाहचर्यात् पत्राणि–पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि बिसानि–कन्दाः मृणालानि–पद्मनालानि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहूनामुत्पलकुमुदनलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रशतसहस्रपत्राणा प्रफुल्लानां–विकस्वराणां केसरैः–किंजल्कैरुपशोभितं–भृतं, विशेषणस्य व्यस्ततया निपातः प्राकृतत्वात्, षट्पदैः–भ्रमरैः परिभुज्यमानानि कमलानि उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि यस्मिन् तत्तथा, अच्छेन–स्वरूपतः स्फटिकवत् शुद्धेन विमलेन–आगन्तुकमलरहितेन पथ्येन–आरोग्यकरणेन सलिलेन पूर्ण, तथा पडिहत्था–अतिप्रभूताः देशीशब्दोऽयं भ्रमन्तो मत्स्यकच्छपा यत्र तत्तथा, अनेकशकुनिमिथुनकानां प्रविचरितं–इतस्ततो गमनं यत्र तत्तथा ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथा शब्दोन्नतिकं–उन्नतशब्दकं सारसादिजलचररुतापेक्षया मधुरस्वरं च हंसभ्रमरादिकूजितापेक्षया एवंविधं नादितं–विलपितं यत्र तत्तथा, अत्र च यत् कानिचिद्विशेषणानि प्रस्तुतसूत्रदृश्यमानादर्शापेक्षया व्यस्ततया लिखितानि सन्ति तज्जीवाभिगमवाप्यादिवर्णकसूत्रस्य बहुसमानगमकतया तदनुसारेणेति बोध्यं, एवमन्यत्रापि, 'पासाईए'त्ति, अनेन 'पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे' इति पदचतुष्टयं ग्राह्यं, तच्च प्राग्वत्। अथात्र पद्मवरवेदिकादिवर्णनायाह—'से णं'इत्यादि, व्यक्तं, अत्र सुखावतारोत्तारौ कथं भवत इत्याह–'तस्स ण'मित्यादि, तस्य गङ्गाप्रपातकुण्डस्य त्रिदिशि–दिक्त्रये वक्ष्यमाणलक्षणे त्रीणि सोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, एतद्व्याख्या प्राग्वत्, शेषं व्यक्तं, 'तेसि ण'मित्यादि, व्यक्तं, जगतीवर्णकतुल्यत्वात्, नवरं आलम्बनाः–अवतारोत्तारयोरालम्बनहेतुभूताः अवलम्बनबाहावयवाः, अवलम्बनबाहा नाम–द्वयोः पार्श्वयोरवलम्बनाश्रयभूता भित्तयः, 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां पुरतः प्रत्येकं २ तोर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णानि प्रज्ञप्तानि तानि तोरणानि नानामणिमयानि नानामणिमयेषु स्तम्भेषु उपनिविष्टानि–सामीप्येन स्थितानि तानि च कदाचिच्चलानि स्थानभ्रष्टानीत्यर्थः अथवा अपदपतितानि भवेयुरिति सन्निविष्टानि–सम्यग् निश्चलतया अपदपरिहारेण च निविष्टानि, ततो विशेषणसमासः, विविधा–नानाविच्छित्तिकलिता मुक्ताः–मुक्ताफलानि अन्तराशब्दोऽगृहीतवीप्सोऽपि सामर्थ्याद्वीप्सां गमयति, अन्तरान्तरा ओअविआ–आरोपितानि यत्र तानि तथा विविधैस्तारारूपैः–तारिकारूपैरुपचितानि, तोरणेषु हि शोभार्थं तारिका निबध्यन्ते इति प्रतीतं लोकेऽपि, ईहामृगाः–वृकाः ऋषभा–वृषभाः व्याला–भुजगाः रुरवो–मृगविशेषाः शरभा–अष्टपदाः चमरा–आटव्या गावः वनलता–अशोकादिलताः प्रतीताः पद्मलताः–पद्मिन्यः शेषं प्रतीतं, एतासां भक्तयो–विच्छित्तयस्ताभिश्चित्राणि, स्तम्भोद्गतया–स्तम्भोपरिवर्त्तिन्या वज्रवेदिकया परिगतानि–परिकरितानि सन्ति यानि अभिरामाणि–अभिरमणीयानि तानि तथा, विद्याधरयोः–विशिष्टशक्तिमत्पुरुषविशेषयोर्यमलं–समश्रेणीकं युगलं–द्वन्द्वं तेनैव यन्त्रेण–सञ्चरिष्णुपुरुषप्रतिमाद्वयरूपेण युक्तानि, आर्षत्वाच्चैवंविधः समासः, अथवा प्राकृतत्वेन तृतीयालोपात् विद्याधरयमलयुगलेनेवेति, शेषं पूर्ववत्, अर्चिषां–मणिरत्नप्रभाणां सहस्रैर्मालनीयानि–परिवारणीयानि रूपकसहस्रकलितानीति स्पष्टं, भृशं–अत्यर्थं मानं–प्रमाणं येषां तानि तथा, 'भिब्भिसमाण'त्ति 'भासेर्भिस' (श्रीसिद्ध० अ० ८ पा० ४ सू० २०३) इत्यनेन भिसादेशे प्रकृष्टार्थप्रत्यये च रूपसिद्धिः, अत्यर्थं देदीप्यमानानि लोकने सति चक्षुषो लेशः–श्लेषो यत्र तानि त्रिपदो बहुव्रीहिः, पदविपर्यासः प्राकृतत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषं सुबोधं, नवरं घण्टावलेर्वा वशेन चलिताया मधुरो मनोहरश्च स्वरो येषु तानि तथा, 'तेसि ण'मित्यादि, अस्य व्याख्या प्राग्वत्, 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां तोरणानामुपरि बहवः कृष्णचामरध्वजाः एवं नीलचामरध्वजादयोऽपि वाच्याः, ते च सर्वेऽपि कथंभूता इत्याह–अच्छा–आकाशस्फटिकवदतिनिर्मलाः, श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापिताः, रूप्यमयो वज्रमयस्य दण्डस्योपरि पट्टो येषां ते तथा, वज्रमयो दण्डो रूप्यपट्टमध्यवर्त्ती येषां ते तथा, जलजानामिव जलजकुसुमानां पद्मादीनामिवामलो न तु कुद्रव्यगन्धसम्मिश्रो यो गन्धः स विद्यते येषां ते जलजामलगन्धिकाः, 'अतोऽनेकस्वरा' (श्रीसिद्ध० अ० ७ पा० २ सू० ६) दितीकप्रत्ययः, अत एव सुरम्याः, पासाईआ इत्यादि प्राग्वत्, 'तेसि ण'मित्यादि, अस्य व्याख्या प्राग्वत्। अथ गङ्गाद्वीपवक्तव्यतामाह—'तस्स गङ्गप्पवाय'इत्यादि, तस्य गङ्गाप्रपातकुण्डस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेको गङ्गादेव्यावासभूतो द्वीपो गङ्गाद्वीप इति नाम्ना द्वीपः प्रज्ञप्तः, मध्यलोपी समासात् साधुः, अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भेन सातिरेकाणि पञ्चविंशतिं योजनानि परिक्षेपेण द्वौ क्रोशौ यावदुच्छ्रितो जलान्तात्–जलपर्यन्तात् सर्वतोवर्त्तिजलस्य जलानावृतस्य क्षेत्रस्य द्वीपव्यवहारात्, शेषं व्यक्तं, 'से ण'मित्यादि, स गङ्गाद्वीप एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तः, वर्णकश्च भणितव्यो जगतीपद्मवरवेदिकावदिति, अथ तत्र यद्यदस्ति तदाह–'गंगादीवस्स ण'मित्यादि, गङ्गाद्वीपस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [१२९]

तस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे गङ्गाया देव्या महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, आयामादिविभागादिकं शय्यावर्णकपर्यन्तं सूत्रं सव्याख्यानं श्रीभवनानुसारेण ज्ञेयं, अथ नामान्वर्थं पृच्छति–'से केणट्ठेण'मित्यादि, व्यक्तं, अथ गङ्गा यथा यत्र समुपसर्पतितथाऽऽह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य गङ्गाप्रपातकुण्डस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन प्रव्यूढा–निर्गता सती गङ्गामहानदी उत्तरार्द्धभरतवर्षं इयूती २–गच्छन्ती २ सप्तभिः सलिलानां–नदीनां सहस्रैरापूर्यमाणा २–भ्रियमाणा अधः खण्डप्रपातगुहाया वैताढ्यपर्वतं दारयित्वा–भित्त्वा दक्षिणार्द्धभरतं वर्षं इयूती २ दक्षिणार्द्धभरतवर्षस्य बहुमध्यदेशभागं गत्वा पूर्वाभिमुखी आवृत्ता सती चतुर्दशभिः सलिलासहस्रैः समग्रा–संपूर्णा आपूर्यमाणा इत्यर्थः अधोभागे जगतीं-जम्बूद्वीपप्राकारं दारयित्वा पूर्वेण लवणसमुद्रं समुपसर्पति—अवतरतीत्यर्थः, अथास्या एव प्रवहमुखयोः पृथुत्वोद्वेधौ दर्शयति–'गंगा ण'मित्यादि, गङ्गा महानदी प्रवहे यतः स्थानात् नदी वोढुं प्रवर्त्तते स प्रवहः पद्मद्रहात्तोरणान्निर्गम इत्यर्थः, तत्र षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन, तथा क्रोशार्द्धमुद्वेधेन, महानदीनां सर्वत्रोद्वेधस्य स्वव्यासपञ्चाशत्तमभागरूपत्वात्, अस्तीति शेषः, 'तदनन्तर'मिति पद्मद्रहतोरणीयव्यासादनन्तरं एतेन यावत् क्षेत्रं स व्यासोऽनुवृत्तस्तावत्क्षेत्रादनन्तरं गङ्गाप्रपातकुण्डनिर्गमादनन्तरमित्यर्थः, एतेन च योऽन्यत्र प्रवहशब्देन मकरमुखप्रणालनिर्गमः प्रपातकुण्डनिर्गमो वाऽभिहितः स नेति, श्रीअभयदेवसूरिपादैः समवायाङ्गवृत्तौ श्रीमलयगिरिपादैश्च बृह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्क्षेत्रसमासवृत्तौ पद्मद्रहतोरणनिर्गमपरत्वेनैव व्याख्यानात्, एवमुद्वेधेऽपि ज्ञेयं, मात्रया २–क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोर्धनुर्दशकवृद्ध्या प्रतिपार्श्वं धनुःपञ्चकवृद्ध्येत्यर्थः परिवर्द्धमाना २ मुखे–समुद्रप्रवेशे द्वाषष्टिं योजनानि अर्द्धयोजनं च विष्कम्भेन, प्रवहमानान्मुखमानस्य दशगुणत्वात्, सक्रोशं योजनमुद्वेधेन सार्द्धद्वाषष्टियोजनप्रमाणमुखव्यासस्य पञ्चाशत्तमभागे एतावत एव लाभात्, उभयोः पार्श्वयोः द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां वनखण्डाभ्यां च सम्परिक्षिप्ता गङ्गेत्यर्थः, प्रतियोजनधनुर्दशकवृद्धिस्त्वेयम्—मुखव्यासात् प्रवहव्यासेऽपनीतेऽवशिष्टे धनूरूपे कृते सरिदायामेन भक्ते लब्धं इष्टप्रदेशगतयोजनसङ्ख्यया गुण्यते यावत् स्यात्तावत्युभयपार्श्वयोर्वृद्धिर्वाच्या, तथाहि—गङ्गायाः प्रवहे व्यासः योजन ६ क्रोश १ मुखे तु योजन ६२ क्रोश २, तत्र मुखव्यासात् प्रवहव्यासेऽपनीते जातं योजन ५६ क्रोश १, योजनानां च क्रोशकरणाय चतुर्भिर्गुणने उपरितनैकक्रोशप्रक्षेपे च जातः २२५ क्रोशे च धनुषां सहस्रद्वयमिति सहस्रद्वयेन गुण्यन्ते जातानि धनूंषि ४५०००० , ततः पञ्चचत्वारिंशता सहस्रैर्भज्यन्ते लब्धानि १० धनूंषि एकेन गुण्यन्ते जातानि १०, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति न्यायात्, एतावती च समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोः प्रवहादेक-

१ यत्तु 'छज्जोयण सक्कोस'मिति क्षेत्रसमासगाथां व्याख्यानयता श्रीमलयगिरिसूरिणा 'प्रवहे–पद्महदाद्विनिर्गमे षड्योजनानि सक्रोशानि गङ्गानद्या विस्तार' इति भणितं तत् मकरमुखजिह्विकाया विनिर्गमं यावत् अविशेषेण विवक्षणात्, अन्यथा 'गङ्गासिंधू णं महाणईओ पणवीसं गाउयाइं—तथा गंगासिंधू णं महाणईओ पवहे साइरेगं चउवीसं कोसे वित्थरेण पण्णत्ताओ'त्ति समवायाङ्गेन सह विरोधः स्यात् (ही० वृत्तौ)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिन् योजने गते जलवृद्धिः, अथ मूलाद्योजनद्वयान्ते यदा वृद्धिर्ज्ञातुमिष्यते तदा दश धनूंषि द्विकेन गुण्यन्ते जातानि २० एतावती प्रवहादुभयपार्श्वयोजनद्विकान्ते वृद्धिः स्यात्, अस्याश्चार्द्धे १०, एतावत्येकपार्श्वे वृद्धिः, एवं सर्वत्र भाव्यं । अथ गङ्गायामादीन्यन्यत्रावतारयति–'एवं सिंधु'इत्यादि, एवं सिन्धवा अपि स्वरूपं नेतव्यं यावत्तस्य पद्मद्रहस्य पाश्चात्येन तोरणेन सिन्धुमहानदी निर्गता सती पश्चिमाभिमुखी पञ्चयोजनशतानि पर्वतेन गत्वा सिन्धावर्त्तनकूटे आवृत्ता सती पञ्चयोजनशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि त्रींश्चैकोनविंशतिभागान् दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा महता घटमुखप्रवृत्तिकेन यावत्प्रपातेन प्रपतति, सिन्धुमहानदी यतः प्रपतति अत्र महती जिह्विका वाच्या, सिन्धुमहानदी यत्र प्रपतति तत्र सिन्धुप्रपातकुण्डं वाच्यं, तन्मध्ये सिन्धुद्वीपो वाच्योऽर्धः स एव यथा गङ्गाद्वीपप्रभाणि गङ्गाद्वीपवर्णाभानि पद्मानि तथा सिन्धुद्वीपप्रभाणि सिन्धुद्वीपवर्णाभानि पद्मानि सिन्धुद्वीप इत्युच्यते, अत्र यावत्पर्यन्तं सूत्रं वाच्यं तथाह—यावदधस्तमिस्रागुहाया इत्यादि, अत्र यावत्करणादिदं–'तस्स णं सिन्धुप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं सिन्धुमहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धभरहवासं एज्जेमाणी २ ससिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २' इति संग्रहः, अधस्तमिस्रागुहाया वैताढ्यपर्वतं दारयित्वा 'देशदर्शनादेशस्मरण'मिति 'दाहिणद्धभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता' इति पदानि बोध्यानि, पश्चिमाभिमुखी आवृत्ता सती चतुर्दशभिः सलिलासहस्रैः समग्रा–पूर्णा जगतीमधो दारयित्वा पश्चिमायां लवणसमुद्रं समुपसर्प्पति, शेषं–उक्तातिरिक्तं प्रवहमुखमानादि तदेव–गङ्गामानसमानमेव ज्ञेयम्, अथ पद्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रहनिर्गततृतीयनदीस्वरूपमाह—'तस्स ण'मित्यादि, व्यक्तं नवरं द्वे षट्सप्तत्यधिके योजनशते षट् च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य एतावतीं भुवं उत्तराभिमुखी—हैमवतक्षेत्राभिमुखी पर्वतेन गत्वा, अत्रोपपत्तिः—हिमवद्व्यासाद्रह्व्यासेऽपनीते शेषहिमवद्व्यासेऽर्द्धीकृते एतावत एव लाभात्, ननु गङ्गायां दक्षिणाभिमुखं गिरिगमनं पञ्च योजनशतानि २३ योजनानि कलात्रिकं च समधिकमिति, अस्यास्तु षट्सप्तत्यधिके द्वे शते षट् च कलाः किमित्येतावदन्तरं?, उच्यते, गङ्गायाः गिरिमध्यवर्त्तिना पूर्वदिक्तोरणेन निर्गतायाः पञ्चशतयोजनपूर्वाभिमुखगमनानन्तरं दक्षिणादिग्गामिन्याः स्वव्यासरहितगिरिव्यासार्द्धगामित्वं, एवं सिन्ध्वा अपि पञ्चशतयोजनपश्चिमाभिमुखगमनादनु, अस्यास्तु उत्तरदिक्तोरणेन निर्गतायाः उत्तरगामिन्या द्रहव्यासशुद्धगिरिव्यासार्द्धगामित्वमिति भेदः। अथास्या जिव्हिकामाह—'रोहिअं'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं आयामे योजनंविष्कम्भमानेऽर्द्धत्रयोदशानि योजनानि—सार्द्धद्वादशयोजनानि बाहल्ये क्रोशं, गङ्गाजिव्हिकाया अस्या द्विगुणत्वात्। अथ कुण्डस्वरूपमाह—'रोहिअंसा'इत्यादि, प्रायः प्रकटार्थं, परमायामविष्कम्भयोर्विंशत्यधिकं, गङ्गाप्रपातकुण्डादस्य द्विगुणत्वात्, अथात्र द्वीपमाह—'तस्स ण'मित्यादि, प्रकटार्थं, 'से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ रोहिअंसादीवे २' इत्याद्यभिलापेन ज्ञेयः, सम्प्रत्यस्या येन तोरणेन निर्गमो यस्य च क्षेत्रस्य स्पर्शना यावांश्च नदीपरिवारो यत्र च संक्रमस्तथाऽऽह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य—रोहितांशाप्रपातकुण्डस्य औत्तराहेण तोरणेन रोहितांशा महानदी प्रव्यूढा—निर्गता सती हैमवतं वर्षं इयूती २—गच्छन्ती २ चतुर्दशभिः

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७४]

दीप अनुक्रम [१२९]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥२९५॥

सलिलासहस्रैः आपूर्यमाणा २ शब्दापातिनामानं वृत्तवैताढ्यपर्वतं अर्द्धयोजनेनासम्प्राप्ता सती पश्चिमाभिमुखी आवृत्ता सती हैमवन्तं वर्षं द्विधा विभजन्ती २ अष्टाविंशत्या सलिलासहस्रैः समग्रा–परिपूर्णा जगतीं अधो दारयित्वा पश्चिमायां लवणसमुद्रं प्रविशति, अस्या एव मूलविस्ताराद्याह—'रोहिअंसा ण'मित्यादि, रोहितांशा प्रवहे–मूलेऽर्द्धत्रयोदशानि योजनानि विष्कम्भेन, प्राच्यक्षेत्रनदीतो द्विगुणविस्तारकत्वात्, क्रोशमुद्वेधेन प्रवहव्यासपञ्चाशत्तमभागरूपत्वात्, तदनन्तरं मात्रया २–क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोर्धनुर्विंशत्या वृद्ध्या प्रतिपार्श्वं धनुर्दशकवृद्ध्येत्यर्थः परिवर्द्धमाना २ मुखमूले–समुद्रप्रवेशे पंचविंशतं योजनशतं विष्कम्भेन, प्रवहव्यासाद्दशगुणत्वात्, अर्द्धतृतीयानि योजनानि उद्वेधेन मुखव्यासपञ्चाशत्तमभागरूपत्वात्, शेषं प्राग्वत् ॥ अथ हिमवति कूटान्याह—

चुल्लहिमवन्ते णं भन्ते! वासहरपव्वए कइ कूडा पं०?, गोय० ! इक्कारस कूडा पं०, तं०–सिद्धाययणकूडे १ चुल्लहिमवन्तकूडे २ भरहकूडे ३ इलादेवीकूडे ४ गंगादेवीकूडे ५ सिरिकूडे ६ रोहिअंसकूडे ७ सिन्धुदेवीकूडे ८ सुरदेवीकूडे ९ हेमवयकूडे १० वेसमणकूडे ११ । कहि णं भन्ते! चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पं० ?, गोअमा ! पुरच्छिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं चुल्लहिमवन्तकूडस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं मूले पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं मज्झे तिण्णि अ पण्णत्तरे जोअणसए विक्खंभेणं उप्पिं अद्धाइज्जे जोअणसए विक्खंभेणं मूले एगं जोअणसहस्सं पंच य एगासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मज्झे एगं जोअणसहस्सं एगं च छलसीअं जोअणसयं

४वक्षस्कारे हिमवति कूटानि सू. ७५

॥२९५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुद्रहिमवन्त-पर्वतस्य सिद्धायतन-आदि कुटानां वर्णनं क्रियते

किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं उप्पिं सत्तइक्काणउए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते सिद्धाययणस्स कूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते पण्णासं जोअणाइं आयामेणं पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं छत्तीसं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव जिणपडिमोवण्णओ भाणिअव्वो। कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए चुल्लहिमवन्तकूडे नामं कूडे पण्णत्ते ?, गो० ! भरहकूडस्स पुरत्थिमेणं सिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए चुल्लहिमवन्तकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, एवं जो चेव सिद्धाययणकूडस्स उच्चत्तविक्खंभपरिक्खेवो जाव बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते बासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उच्चत्तेणं इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिअपहसिए विव विविहमणिरयणभत्तिचित्ते वाउद्धुअविजयवेजयंतीपडागच्छत्ताइच्छत्तकलिए तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे जालंतररयणपंजरुम्मीलिएव्व मणिरयणथूभिआए विअसिअसयवत्तपुंडरीअतिलयरयणद्धचंदचित्ते णाणामणिमयदामालंकिए अंतो बहिं च सण्हवइरतवणिज्जरुइलवालुगापत्थडे सुहफासे सस्सिरीअरूवे पासाईए जाव पडिरूवे, तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पं० जाव सीहासणं सपरिवारं, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ चुल्लहिमन्तकूडे २ ?, गो० ! चुल्लहिमवन्ते णामं देवे महिड्ढीए जाव परिवसइ, कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवन्ता णामं रायहाणी पं० ?, गो० ! चुल्लहिमवन्तकूडस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णं जम्बुद्दीवं २ दक्खिणेणं बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता इत्थ णं चुल्लहि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [१३०]

मवन्तस्स गिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवन्ता णामं रायहाणी पं०, बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एवं विजयरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा, एवं अवसेसाणवि कूडाणं वत्तव्वया णेअव्वा, आयामविक्खंभपरिक्खेवपासायदेवयाओ सीहासणपरिवारो अट्ठो अ देवाण य देवीण य रायहाणीओ णेअव्वाओ, चउसु देवा चुल्लहिमवन्त १ भरह २ हेमवय ३ वेसमणकूडेसु ४, सेसेसु देवयाओ, से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए ? २, गो० ! महाहिमवन्तवासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेहविक्खंभपरिक्खेवं पडुच्च ईसिं खुड्डतराए चेव हस्सतराए चेव णीअतराए चेव, चुल्लहिमवन्ते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ—चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए २, अदुत्तरं च णं गो० ! चुल्लहिमवन्तस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जं ण कयाइ णासि (सूत्रं ७५)

'चुल्लहिमवन्ते ण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं सिद्धायतनकूटं क्षुल्लहिमवद्गिरिकुमारदेवकूटं भरताधिपदेवकूटं, इलादेवीसुरादेवीकूटे तु षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारीदेवीवर्गमध्यगतदेवीकूटे, गङ्गादेवीकूटं श्रीदेवीकूटं रोहितांशादेवीकूटं सिन्धुदेवीकूटं हैमवतवर्षेशसुरकूटं वैश्रमणलोकपालकूटं । अथ तेषामेव स्थानादिस्वरूपमाह—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! क्षुल्लहिमद्वर्षधरपर्वते सिद्धायतनकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तं ?, 'गौतमे'त्यादि निर्वचनसूत्रं व्यक्तं, नवरं पञ्चयोजनशतान्युच्चत्वेन मूले पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेन मध्ये त्रीणि च योजनशतानि पञ्चसप्तानि–पञ्चसप्तत्यधिकानि विष्कम्भेन उपरि अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन मूले एकं योजनसहस्रं पञ्च एकाशीत्यधिकानि योजनशतानि किञ्चि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विशेषाधिकानि किंचिदधिकानीत्यर्थः, मध्ये एकं योजनसहस्रं एकं षडशीत्यधिकं योजनशतं किंचिद्विशेषोनं किंचिदूनमित्यर्थः, अयं भावः–एकं सहस्रमेकं शतं पञ्चाशीतियोंजनानि पूर्णानि शेषं च क्रोशत्रिकं धनुषामष्टशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि इति किंचित्षडशीतितमं योजनं विवक्षितमिति, तथा उपरि सप्त योजनशतानि एकनवत्यधिकानि किंचिदूनानि परिक्षेपेण, अत्राप्ययं भावः–सप्त शतानि नवतियोंजनानि पूर्णानि, शेषं क्रोशद्विकं धनुषां सप्त शतानि पंचविंशत्यधिकानीति किंचिद्विशेषोनं एकनवतितमं योजनं विवक्षितं, परिक्षेपेणेति सर्वत्र ग्राह्यं, शेषं स्पष्टं॥ अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह—'से ण'मित्यादि प्रकटं, अत्र यदस्ति तत्कथनायोपक्रमते–'सिद्धाययण'मित्यादि, निगदसिद्धं, नवरं प्रथमयावत्पदेन वैताढ्यगतसिद्धायतनकूटस्येवात्र वर्णको ग्राह्यः, द्वितीयेन तद्गतसिद्धायतनादिवर्णक इति॥ अथात्रैव क्षुद्रहिमवद्गिरिकूटवक्तव्यमाह—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! क्षुद्रहिमवति वर्षधरपर्वते क्षुद्रहिमवत्कूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्?, 'गौतमे'त्यादि उत्तरसूत्रं प्राग्वत्, नवरं 'एवं जो चेवे'त्यादि अतिदेशसूत्रे 'एव'मित्युक्तप्रकारेण य एव सिद्धायतनकूटस्योच्चत्वविष्कम्भाभ्यां युक्तः परिक्षेपः उच्चत्वविष्कम्भपरिक्षेपः, मध्यपदलोपी समासः, स एव इहापि हिमवत्कूटे बोध्य इत्यर्थः, इदं च वचनं उपलक्षणभूतं तेन पद्मवरवेदिकादिवर्णनं समभूमिभागवर्णनं च ज्ञेयं, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावद्बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, प्रासादानां–आयामाद्विगुणोच्छ्रितवास्तुविशेषाणामवतंसक इव–शेखरक इव प्रासादावतंसकः प्रधानप्रासाद इत्यर्थः, स च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥२९७॥

प्रासादो द्वाषष्टिं योजनान्यर्द्धयोजनं च उच्चत्वेन एकत्रिंशद् योजनानि क्रोशं च विष्कम्भेन समचतुरस्रत्वादस्यावगन्तव्यं सूत्रकृता न कृता, तत्र हेतुर्वैताढ्यकूटगतप्रासादाधिकारे निरूपित इति ततो ज्ञेयः, कीदृश इत्याह–अभ्युद्गता–आभि-मुख्येन सर्वतो विनिर्गता उत्सृता–प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता यद्वा अभ्रे–आकाशे उद्गता उत्सृता–प्रबलतया सर्वतस्तिर्यक् प्रसृता एवंविधा या प्रभा तया सित इव–बद्ध इव तिष्ठतीति गम्यते, अन्यथा कथमिव सोऽत्युच्चैर्नि-रालम्बस्तिष्ठतीति भावः, अत्र हि उत्प्रेक्षया इदं सूचितं भवति–ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् आयततया याः प्रासादप्रभास्ताः किल रज्जवस्ताभिर्वद्ध इति, यदिवा प्रबलश्वेतप्रभापटलतया प्रहसित इव–प्रकर्षेण हसित इवेति, विविधा–अनेकप्रकारा ये मणयो रत्नानि च, मणिरत्नयोर्भेदश्चात्र प्राग्वत्, तेषां भक्तिभिः–विच्छित्तिभिश्चित्रो–नानारूप आश्चर्यवान् वा, वातो-द्धूता–वायुकम्पिता विजयः–अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्तीनाम्न्यो याः पताकाः अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकणिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यः–पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः छत्रातिच्छत्राणि–उपर्युपरि-स्थितान्यातपत्राणि तैः कलितः तुङ्गः उच्चैस्त्वेन सार्द्धद्वाषष्टियोजनप्रमाणत्वात्, अत एव गगनतलमभिलङ्घयद्–अनुलिख-च्छिखरं यस्य स तथा, जालानि–जालकानि गृहभित्तिषु लोके यानि प्रतीतानि तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि रचना वा यस्मिन् स तथा, सूत्रे चात्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, पञ्जरादुन्मीलित इव–बहिष्कृत इव, यथा किमपि वस्तु वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद्बहिः कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायं भवति एवं सोऽपि प्रासादावतंसक इति भावः, अथवा

४वक्षस्कारे हिमवति कूटानि सू. ७५

॥२९७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जालान्तरगतरत्नपञ्जरैः–रत्नसमुदायविशेषैः उन्मीलित इव उन्मिषितलोचन इवेत्यर्थः, माणकनकमयस्तूपिकाक इति प्रतीतं, विकसितानि–विकस्वराणि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च–कमलविशेषाः द्वारादिषु तैश्चित्रो–नानारूप आश्चर्यवान् वा, नानामणिमयदामालङ्कृत इति व्यक्तं, अन्तर्बहिश्च श्लक्ष्णो–मसृणः स्निग्ध इत्यर्थः, तपनीयस्य–रक्तसुवर्णस्य रुचिरा या वालुका–कणिकास्तासां प्रस्तटः–प्रतरः प्राङ्गणेषु यस्य स तथा, शेषं पूर्ववत्, 'तस्स ण'मित्यादि, व्यक्तं, अथास्य नामान्वर्थं व्याचिख्यासुराह––'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते–क्षुद्रहिमवत्कूटं २ ?, गौतम ! क्षुद्रहिमवन्नामा देवो महार्द्धिको यावत् अत्र परिवसति तेन 'क्षुद्रहिमवन्तकूट'मिति क्षुद्रहिमवत्कूटं, अत्र च सूत्रेऽदृष्टमपि 'से तेणट्ठेणं चुल्लहिमवन्तकूडे २' इत्येतद्रूपं सूत्रं बोध्यं, अन्वर्थोपपत्तिश्चात्र दक्षिणार्द्धभरतकूटस्येव ज्ञेयेति। अथास्य राजधानीवक्तव्यमाह—'कहि ण'मित्यादि, उत्तानार्थं, क्षुल्लहिमवती क्षुद्रहिमवती वा राजधानी 'एव'मित्युक्तप्रकारेण यथौचित्येनेति, 'एव'मित्यादि, एवमिति–क्षुद्रहिमवत्कूटन्यायेनावशेषाणामपि भरतकूटादीनां वक्तव्यता नेतव्या, आयामविष्कम्भपरिक्षेपाः अत्रोपलक्षणादुच्चत्वमपि तथा प्रासादास्तथैव, देवताः अत्र देवताशब्दो देवजातिवाची तेन भरतादयो देवा इलादेवीप्रमुखा देव्यश्च ततो द्वन्द्वे ताः, तथा सिंहासनं परिवारोऽर्थश्च स्वस्वनामसम्बन्धी तथा देवानां देवीनां च राजधान्यो नेतव्या इति, चतुर्षु क्षुल्लहिमवदादिकूटेषु देवा अधिपाः शेषेषु देवता–देव्यः, तत्र इलादेवीसुरादेव्यौ षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारीगणान्तर्वर्त्तिन्यौ ज्ञेये एषां च कूटानां व्यवस्था पूर्वं २ पूर्वस्यामुत्तरमुत्तरम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [७५]

दीप अनुक्रम [१३०]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥२९८॥

परस्यामिति, अथास्य क्षुद्रहिमवत्त्वे कारणमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—क्षुल्लहिमवद्वर्षधरपर्वतः २?, गौतम! महाहिमवद्वर्षधरपर्वतं प्रणिधाय प्रतीत्याश्रित्येत्यर्थः आयामोच्चत्वोद्वेधविष्कम्भपरिक्षेपं, अत्र समाहारद्वन्द्वस्तेन सूत्रे एकवचनं, प्रतीत्य—अपेक्ष्य ईषत्क्षुद्रतरक एव—लघुतरक एव यथासम्भवं योजनाया विधेयत्वेनायामाद्यपेक्षया ह्रस्वतरक एवोद्वेधापेक्षया नीचतरक एवोच्चत्वापेक्षया, अन्यच्च क्षुद्रहिमवाश्चात्र देवो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति, शेषं प्राग्वत् ॥ अथानेन वर्षधरेण विभक्तस्य हैमवतक्षेत्रस्य वक्तव्यमाह—

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पं०?, गो०! महाहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं चुल्लहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, दोण्णि जोअणसहस्साइं एगं च पंचुत्तरं जोअणसयं पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं छज्जोअणसहस्साइं सत्त य पणवण्णे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठा सत्ततीसं जोअणसहस्साइं छच्च चउवत्तरे जोअणसए सोलस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं, तस्स धणुं दाहिणेणं अट्ठतीसं जोअणसहस्साइं सत्त य चत्तारे

४वक्षस्कारे हैमवतं वर्षं सू.७६

॥२९८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ हैमवत-क्षेत्रस्य वर्णनं क्रियते

प्रत सूत्रांक [७६]

दीप अनुक्रम [१३१]

जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, हेमवयस्स णं भन्ते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गो० ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, एवं तइअसमाणुभावो णेअव्वोत्ति (सूत्रं ७६)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे हैमवतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! महाहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य 'दक्खिणेणे'त्यादि, व्यक्तं, अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे हैमवतनाम वर्षं प्रज्ञप्तमित्यादि सर्वं प्राग्वत्, नवरं पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितं आयतचतुरस्रत्वात्, तथा द्वे योजनसहस्रे एकं च पञ्चोत्तरं योजनशतं पञ्च चैकोन्नविंशतिभागान् योजनस्य यावद्विष्कम्भेन, क्षुद्रहिमवद्गिरिविष्कम्भादस्य द्विगुणविष्कम्भ इत्यर्थः, अथास्य बाहाद्याह—'तस्स बाहा'इत्यादि, व्यक्तं, 'तस्स जीवा उत्तरेण'मित्यादि, प्राग्वत्, सप्तत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् चतुःसप्ततानि योजनशतानि षोडश कलाः किंचिदूना आयामेनेति, 'तस्स धणु'मित्यादि, तस्य धनुःपृष्ठमष्टत्रिंशद्योजनसहस्राणि सप्त च चत्वारिंशानि—चत्वारिंशदधिकानि योजनशतानि दश च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य परिक्षेपेणेति, अथ कीदृशमस्य स्वरूपमित्याह—'हेमवयस्स ण'मित्यादि, व्याख्यातप्रायं, नवरं 'एव'मिति उक्तप्रकारेण तृतीयसमा—सुषमदुष्षमारकस्तस्यानुभावः—स्वभावः स्वरूपमितियावत् नेतव्यः—स्मृतिपथं प्रापणीय इत्यर्थः ॥ अथात्र क्षेत्रविभागकारिगिरिस्वरूपं निर्दिशति—

कहि णं भन्ते ! हेमवए वासे सद्दावई णामं वट्टवेअद्धपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! रोहिआए महाणईए पच्चच्छिमेणं रोहिअंसाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ वृत्तवैताढ्यपर्वतस्य वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७७]

दीप अनुक्रम [१३२]

महाणईए पुरत्थिमेणं हेमवयवासस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं सद्दावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते, एगं जोअणसहस्सं उद्धं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं सव्वत्थसमे पल्लगसंठाणसंठिए एगं जोअणसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिण्णि जोअण-सहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, सव्वरयणामए अच्छे, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वेइआवणसंडवण्णओ भाणिअव्वो, सद्दावइस्स णं वट्टवेअड्ढपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोयणं च उद्धं उच्चत्तेणं इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं जाव सीहासणं सपरिवारं, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सद्दावई वट्टवेयड्ढपव्वए ? २, गोअमा ! सद्दावइवट्टवेअड्ढपव्वए णं खुद्दा खुद्दिआसु वावीसु जाव बिलपंतिआसु बहवे उप्पलाइं पउमाइं सद्दावइप्पभाइं सद्दावइवण्णाइं सद्दावतिवण्णाभाइं सद्दावई अ इत्थ देवे महिद्धीए जाव महाणुभावे पलिओवमठिइए परिवसइत्ति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं जाव रायहाणी मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं अण्णंमि जम्बुद्दीवे दीवे० । (सूत्रं ७७)

'कहि णं भन्ते'इत्यादि, क्व भदन्त! हैमवतवर्षे शब्दापतीनाम्ना वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः, वैताढ्यान्वर्थस्तु प्रागुक्तः, असौ च वृत्ताकारो न भरतादिक्षेत्रवर्त्तिवैताढ्यपर्वतवत् पूर्वापरायतस्तेन वृत्तवैताढ्य इत्युच्यते, अत एव एतत्कृतः क्षेत्रविभागः पूर्वतोऽपरतश्च भवति, यथा पूर्वहैमवतमपरहैमवतमिति, आह—पञ्चकलाधिकैकविंशतिशतयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनप्रमाणविस्तारस्य हैमवतस्य मध्यवर्त्ती योजनसहस्रमान एष गिरिः कथं क्षेत्रं द्विधा विभजति?, उच्यते, प्रस्तुतक्षेत्रव्यासो हि उभयोः पार्श्वयोः रोहितारोहितांशाभ्यां नदीभ्यां रुद्धः मध्यतस्त्वनेन, अथ नदीरुद्धक्षेत्रं वर्जयित्वाऽवशिष्टक्षेत्रमसौ द्विधा करोतीत्यस्मिन्नन्वर्थवती वैताढ्यशब्दप्रवृत्तिरिति, एवं शेषेष्वपि वृत्तवैताढ्येषु स्वस्वक्षेत्रस्वस्वनदीनामभिलापेन भाव्यं, दिग्विभागनियमनं सुलभमिति न व्याख्यायते, एकं योजनसहस्रमूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतान्युद्वेधेन सर्वत्र समः–तुल्योऽधोमध्योर्ध्वदेशेषु सहस्रसहस्रविस्तारकत्वात्, अत एव पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितः, पल्यङ्कश्च–ललाटदेशप्रसिद्धो वंशदलेन निर्मापितो धान्याधारकोष्ठकः, एकं योजनसहस्रमायामविष्कम्भाभ्यां त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वाषष्ट्यधिकं योजनशतं किञ्चिद्विशेषेण करणवशादागतेन सूत्रानिर्दिष्टेन राशिना अधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तं, सर्वात्मना रत्नमयः, केचन रजतमयान् वृत्तवैताढ्यानाहुः परं तेषामनेन ग्रन्थेन सह विरुद्धत्वमिति । अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह—'से ण'मित्यादि, व्यक्तं, 'सद्दावइस्स ण'मित्यादि, व्यक्तं ॥ अथ नामार्थं निरूपयन्नाह—'से केणट्ठेणं भन्ते!'इत्यादि, प्रागुक्तऋषभकूटप्रकरणवद् व्याख्येयं, नवरं ऋषभकूटप्रकरणे ऋषभकूटप्रभैः ऋषभकूटवर्णैरुत्पलादिभिर्ऋषभकूटनामनिरुक्तिर्दर्शिता अत्र तु शब्दापातिप्रभैः शब्दापातिवर्णैः उत्पलादिभिः शब्दापातिवृत्तवैताढ्यनामनिरुक्तिर्द्रष्टव्या, शब्दापाती चात्र देवो महर्द्धिको यावन्महानुभावः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, अथ शब्दापातिदेवमेव विशिनष्टि–'से णं तत्थ'इत्यादि, स–शब्दापाती देवस्तत्र–प्रस्तुतगिरौ चतुर्णां सामानिकसहस्राणां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावत्पदात् विजयदेववर्णकसूत्रं सर्वमपि ज्ञेयं व्याख्येयं च, कियत्पर्यन्तमित्याह—राजधानी मन्दरस्य दक्षिणस्यामन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे इति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादर्शेषु एतत्सूत्रदृष्टोऽपि 'पलिओवमट्ठिई परिवसती'त्ययं सूत्रादेशः पूर्वसूत्रे यद्योजितस्तद्बहुषु विजयदेवप्रकरणादिसूत्रेष्वित्थमेव दृष्टत्वात्, बहुग्रन्थसाम्मत्येन क्वचिदादर्शवैगुण्यमुद्भाव्यान्यथा योजनं बहुश्रुतसम्मतमेवास्ति इत्यलं विस्तरेण, ननु अस्य शब्दापातिवृत्तवैताढ्यस्य क्षेत्रविचारादिग्रन्थेषु अधिपः स्वातिनामा उक्तः तत्कथं न तैः सह विरोधः?, उच्यते, नामान्तरं मतान्तरं वा। अथ हैमवतवर्षस्य नामार्थं पृच्छति—

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ हेमवए वासे २ ?, गोअमा ! चुल्लहिमवन्तमहाहिमवन्तेहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे णिच्चं हेमं दलइ णिच्चं हेमं दलइत्ता णिच्चं हेमं पगासइ हेमवए अ इत्थ देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ हेमवए वासे हेमवए वासे (सूत्रं ७८)

'से केणट्ठेणं'इत्यादि, अथ केनार्थेन भगवनेवमुच्यते—हैमवतं वर्षं हैमवतं वर्षमिति ?, गौतम ! क्षुद्रहिमवन्महाहिमवद्भ्यां वर्षधरपर्वताभ्यां द्विधातो—दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः समवगाढं—संश्लिष्टं ततो हिमवतोरिदं हैमवतं, अयं भावः—क्षुद्रहिमवतो महाहिमवतश्चापान्तराले तत् क्षेत्रं, ततो द्वाभ्यामपि ताभ्यां यथाक्रममुभयोर्दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः कृतसीमाकमिति भवति तयोः सम्बन्धि यदिवा नित्यं—कालत्रयेऽपि हेम—सुवर्णं ददाति आसनप्रदानादिना प्रयच्छति, कोऽर्थः ?—तत्रत्ययुग्मिमनुष्याणामुपवेशनाद्युपभोगे हेममयाः शिलापट्टका उपयुज्यन्ते, तत उपचारेण ददातीत्युक्तं, नित्यं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेम–प्रकाशयति, ततो हेम नित्ययोगि प्रशस्यं वाऽस्यास्तीति हेमवत् हेमवदेव हैमवतम्, प्रज्ञादेराकृतिगणतया 'प्रज्ञादिभ्यः' (श्रीसिद्ध० अ० ७–पा० २ सू० १६५) इति स्वार्थेऽण् प्रत्ययः, हैमवतश्चात्र देवो महर्द्धिकः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, तेन तद्योगाद्धैमवतमिति व्यपदिश्यते, हैमवतो देवः स्वामित्वेनास्यास्तीत्यभ्रादित्वादप्रत्यये वा ॥ अथास्यैवोत्तरतः सीमाकारी यो वर्षधरगिरिस्तं विवक्षुराह—

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाहिमवन्ते णामं वासहरपव्वए पं० ?, गो० ! हरिवासस्स दाहिणेणं हेमवयस्स वासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे पलियंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए जाव पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे दो जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं पण्णासं जोअणाइं उव्वेहेणं चत्तारि जोअणसहस्साइं दोण्णि अ दसुत्तरे जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं णव जोअणसहस्साइं दोण्णि अ छावत्तरे जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठा तेवण्णं जोअणसहस्साइं नव य एगतीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसाहिए आयामेणं, तस्स धणुं दाहिणेणं सत्तावण्णं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, रुअगसंठाणसंठिए सव्वरय-

For Private & Personal Use Only

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [७९]

दीप अनुक्रम [१३४]

णामए अच्छे उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते । महाहिमवन्तस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, जाव णाणाविहपञ्चवण्णेहिं मणीहि अ तणेहि अ उवसोभिए जाव आसयंति सयंति य (सूत्रं७९)

'कहि णं भन्ते'इत्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं द्वे योजनशते उच्चत्वेन क्षुद्रहिमवद्वर्षधरतो द्विगुणोच्चत्वात् पञ्चाशद्यो-जनान्युद्वेधेन–भूप्रविष्टत्वेन, मेरुवर्जसमयक्षेत्रगिरीणां स्वोच्चत्वचतुर्थांशेनोद्वेधत्वात्, चत्वारि योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते दशोत्तरे दश च योजनैकोनविंशतिभागान् विष्कम्भेन हैमवतक्षेत्रतो द्विगुणत्वात्, अथास्य वाहादिसूत्र-माह–'तस्स'त्ति, सूत्रत्रयमपि व्यक्तं, प्रायः प्राग्व्याख्यातसूत्रसदृशगमकत्वात्, नवरं अत्रास्य सर्वरत्नमयत्वमुक्तं, बृह-त्क्षेत्रविचारादौ तु पीतस्वर्णमयत्वमिति तेन मतान्तरमवसेयम्, अनेनैव मतान्तराभिप्रायेण जम्बूद्वीपपट्टादावस्य पीत-वर्णत्वं दृश्यते, अथास्य स्वरूपाविर्भावनायाह—'महाहिमवन्तस्स ण'मित्यादि, सर्वं जगतीपद्मवरवेदिकावन-खण्डवर्णकवद् ग्राह्यं ॥ सम्प्रति अत्र ह्रदस्वरूपमाह—

महाहिमवंतस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महापउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते, दो जोअणसहस्साइं आयामेणं एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे रययामयकूले एवं आयामविक्खंभविहूणा जा चेव पउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव णेअव्वा, पउमप्पमाणं दो जोअणाइं अट्ठो जाव महापउमद्दहवण्णाभाइं हिरी अ इत्थ देवी जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ, अदुत्तरं च णं गोअमा ! महापउमद्दहस्स सासए णामधिज्जे पं० जं ण कयाइ णासी ३ तस्स णं महाप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्रह-स्वरुपं वर्ण्यते

उमद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणईं पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगदोजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ, रोहिआ णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पं०, सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं कोसं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा, रोहिआ णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे रोहिअप्पवायकुंडे णामं कुंडे पं० सवीसं जोअणसयं आयामविक्खंभेणं पण्णत्तं तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे सो चेव वण्णओ, वइरतले वट्टे समतीरे जाव तोरणा, तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, सोलस जोअणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्ववइरामए अच्छे, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, रोहिअदीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं सेसं तं चेव पमाणं च अट्ठो अ भाणिअव्वो। तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जेमाणी २ सद्दावइं वट्टवेअड्ढपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ रोहिआ णं जहा रोहिअंसा तहा पवाहे अ मुहे अ भाणिअव्वा इति जाव संपरिक्खित्ता। तस्स णं महापउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं हरिकंता महाणई पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [१३५]

य एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगदुजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ, हरिकंता महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पं० दो जोयणाइं आयामेणं पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं अद्धं जोअणं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्वरयणामई अच्छा, हरिकंता णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे हरिकंतप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते दोण्णि अ चत्ताले जोअणसए आयामविक्खंभेणं सत्तअउणट्ठे जोयणसए परिक्खेवेणं अच्छे एवं कुण्डवत्तव्वया सव्वा नेयव्वा जाव तोरणा, तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे हरिकंतदीवे णामं दीवे पं० बत्तीसं जोअणाइं आयामविक्खंभेणं एगुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्वरयणामए अच्छे, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं जाव संपरिक्खित्ते वण्णओ भाणिअव्वोत्ति, पमाणं च सयणिज्जं च अट्ठो अ भाणिअव्वो । तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं जाव पवूढा समाणी हरिवस्सं वासं एज्जेमाणी २ विअडावइं वट्टवेअद्धं जोअणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हरिवासं दुहा विभयमाणी २ छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दलइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, हरिकंता णं महाणई पवहे पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं अद्धजोअणं उव्वेहेणं तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २ मुहमूले अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणं पञ्च जोअणाइं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता (सूत्रं ८०)

'महाहि'इत्यादि प्रायः पद्मद्रहसूत्रानुसारेण व्याख्येयं । अथैतद्दक्षिणद्वारनिर्गतां नदीं निर्दिशन्नाह—'तस्स ण'मि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [१३५]

त्यादि, तस्य महापद्मद्रहस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन रोहिता महानदी प्रव्यूढा–निर्गता सती षोडश पञ्चोत्तराणि योजनशतानि पञ्च चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा महता घटमुखप्रवृत्तिकेन मुक्तावलिहारसंस्थितेन सातिरेकद्वियोजनशतिकेन, सातिरेकत्वं च रोहिताप्रपातकुण्डोद्वेधापेक्षया बोध्यं, प्रपातेन प्रपतति, षोडशेत्यादिसङ्ख्यानयनं तु चतुःसहस्रद्विशतदशयोजनतदेकोनविंशतिभागात्मक [भागदश] काद्रिरिव्यासात् सहस्रयोजनात्मके द्रहव्यासेऽपनीते सत्यर्द्धीकृताद्भवति, अन्यत् सर्वं रोहितांशागमेन वाच्यं, अथ सा यतः प्रपतति तदास्पदं दर्शयति–'रोहिआ ण'मित्यादि, प्राग्वत्, अथ यत्र प्रपतति तदाह—'रोहिआ ण'मित्यादि, प्राग्व्याख्यातप्रायं, नवरं सविंशतिकं योजनशतं गङ्गाप्रपातकुण्डतो द्विगुणायामविष्कम्भत्वात्, त्रीणि योजनशतानि अशीत्यधिकानि किञ्चिद्विशेषोनानि, ऊनत्वं करणेन यो० ३७९ क्रोशः १ कियद्धनुरधिकस्तेन किञ्चिदूनाऽशीतिरुक्ता इत्यर्थः, परिक्षेपेणेति। अधुनाऽस्य द्वीपवक्तव्यमाह—'तस्स ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं गङ्गाद्वीपतो द्विगुणायामविष्कम्भत्वात् षोडश योजनानि रोहिताद्वीपप्रमाणमित्यर्थः,'से ण'मित्यादि, सुगमं,'रोहिअदीव'इत्यादि, सुगमं, नवरं शेषं विष्कम्भादिकं प्रमाणं तदेव, कोऽर्थः ?–अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनक्रोशमुच्चत्वेनेति, चशब्दाद्रोहितादेवीशयनादिवर्णकोऽपि, अर्थश्च 'से केणट्ठेणं भन्ते ! रोहिअदीवे'इत्यादि, सूत्रावगम्यः, सम्प्रति यथेयं लवणगामिनी तथाऽऽह—'तस्से'त्यादि, तस्य–रोहिताप्रपातकुण्डस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन द्वारेणेत्यर्थः रोहिता महानदी प्रव्यूढा–निर्गता सती हैमवतं वर्षं आगच्छन्ती २ हैमवतक्षेत्राभि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुखमायान्तीत्यर्थः शब्दापातिनामानं वृत्तवैताढ्यपर्वतमर्द्धयोजनेन क्रोशद्वयेनासम्प्राप्ता–असंस्पृष्टा दूरस्थितेत्यर्थः पूर्वाभिमुखी आवृत्ता सती हैमवतं वर्षं द्विधा विभजन्ती २–द्विभागं कुर्वती २ अष्टाविंशत्या सलिलासहस्रैः समग्रा–पूर्णा, भरतनदीतो द्विगुणनदीपरिवारत्वात्, अधोभागे जगतीं–जम्बूद्वीपकोटं दारयित्वा पूर्वभागेन लवणसमुद्रं समुपसर्प्पति, प्रविशतीत्यर्थः, अथ लाघवार्थं रोहितांशातिदेशेन रोहितावक्तव्यमाह—'रोहिआ ण'न्ति, अतिदेशसूत्रत्वादेव प्राग्वत्। अथास्मादुत्तरगामिनीयं नदी कावतरतीत्याशंक्याह—'तस्स ण'मिति व्यक्तं, 'हरिकंता' इत्यादि कण्ठ्यं, अत्र 'सद्दरय-णामई'ति पाठो बह्वादर्शदृष्टोऽपि लिपिप्रमादापतित एव सम्भाव्यते, बृहत्क्षेत्रविचारादिषु सर्वासां जिह्विकानां वज्रमयत्वेनैव भणनात्, जलाशयानां प्रायो वज्रमयत्वेनैवोपपत्तेश्च, 'हरिकंता ण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं हरिकांता-प्रपातकुण्डं द्वे योजनशते चत्वारिंशदधिके आयामविष्कम्भाभ्यां सप्त योजनशतानि एकोनषष्टानि–एकोनषष्ट्यधिकानि परिधिना इति, 'तस्स ण'मित्यादि, सूत्रत्रयं प्राक् सूत्रानुसारेण बोद्धव्यं, नवरं विकटापातिनं वृत्तवैताढ्यं योजनेना-सम्प्राप्ता पश्चिमेनावृत्ता सती हरिवर्षं नाम क्षेत्रं वक्ष्यमाणस्वरूपं द्विधा विभजमाना २ षट्पञ्चाशता नदीसहस्रैः समग्रा–परिपूर्णा, हैमवतक्षेत्रनदीतो द्विगुणनदीपरिवारत्वात्, पश्चिमेन भागेन लवणोदधिमुपैति। सम्प्रत्यस्याः प्रवा-हादि कियन्मानमित्याह—'हरिकंता'इत्यादि, हरिकान्ता महानदी प्रवहे–द्रहनिर्गमे पञ्चविंशतियोजनानि विष्क-म्भेन अर्द्धयोजनमुद्वेधेन तदनन्तरं च मात्रया २–क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोः चत्वारिंशद्धनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८०]

दीप अनुक्रम [१३५]

वृद्ध्या, प्रतिपार्श्वं धनुर्विंशतिवृद्ध्येत्यर्थः, परिवर्द्धमाना २ मुखमूले–समुद्रप्रवेशेऽर्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन पञ्चयोजनान्युद्वेधेन, उभयोः पार्श्वयोर्द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां सम्परिक्षिप्ता ॥ अथैतस्य कूटवक्तव्यमाह—

महाहिमवन्ते णं भन्ते! वासहरपव्वए कइ कूडा पं० ?, गो० ! अट्ठ कूडा प०, तं०–सिद्धाययणकूडे १ महाहिमवन्तकूडे २ हेमवयकूडे ३ रोहिअकूडे ४ हिरिकूडे ५ हरिकंतकूडे ६ हरिवासकूडे ७ वेरुलिअकूडे ८, एवं चुल्लहिमवंतकूडाणं जा चेव वत्तव्वया सच्चेव णेअव्वा, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ महाहिमवंते वासहरपव्वए २ ?, गोअमा! महाहिमवंते णं वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेहविक्खम्भपरिक्खेवेणं महंततराए चेव दीहतराए चेव, महाहिमवंते अ इत्थ देवे महिद्धीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ (सूत्रं ८१)

'महाहिमवन्ते'त्ति, महाहिमवति वर्षधरपर्वते भगवन्! कति कूटानि?, गौतमेत्यादि सूत्रं सुगमं, कूटानां नामार्थस्त्वयं–सिद्धायतनकूटं महाहिमवदधिष्ठातृकूटं हैमवतपतिकूटं रोहितानदीसुरीकूटं ह्रीसुरीकूटं हरिकान्तानदीसुरीकूटं हरिवर्षपतिकूटं वैडूर्यकूटं तु तद्रत्नमयत्वात् तत्स्वामिकत्वाच्चेति, 'एव'मिति कूटानामुच्चत्वादि सिद्धायतनप्रासादानां च मानादि तत्स्वामिनां च यथारूपं महर्द्धिकत्वं यत्र च राजधान्यस्तत्सर्वं अत्रापि वाच्यं, केवलं नामविपर्यास एव देवानां तद्राजधानीनां चेति । साम्प्रतं महाहिमवतो नामार्थं निरूपयन्नाह––'से केणट्ठेण'मित्यादि, व्यक्तं नवरमुत्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३०४॥

रसूत्रे महाहिमवान् वर्षधरपर्वतः क्षुद्रहिमवन्तं वर्षधरपर्वतं प्रणिधाय–प्रतीत्य क्षुद्रहिमवदपेक्षयेत्यर्थः, योजनाया विचित्रत्वात् आयामापेक्षया दीर्घतरक एव उच्चत्वाद्यपेक्षया महत्तरक एवेति, अथवा महाहिमवन्नामाऽत्र देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, सूत्रे आयामोच्चत्वेत्यादावेकवद्भावः समाहाराद् बोध्यः ॥ अथ हरिवर्षनामकवर्षावसरः—

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पं०?, गो०! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं महाहिमवन्तवासहरपव्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते एवं जाव पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे अट्ठ जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं तेरस जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगसट्ठे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणंति, तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं जाव लवणसमुद्दं पुट्ठा तेवत्तरिं जोअणसहस्साइं णव य एगुत्तरे जोअणसए सत्तरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं, तस्स धणुं दाहिणेणं चउरासीइं जोअणसहस्साइं सोलस जोअणाइं चत्तारि एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं। हरिवासस्स णं भन्ते! वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पं०?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए एवं मणीणं तणाण य वण्णो गन्धो फासो सद्दो भाणिअव्वो, हरिवासे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे खुड्डा खुड्डिआओ एवं जो सुसमाए अणुभावो सो चेव अपरिसेसो वत्तव्वोत्ति। कहि णं भन्ते! हरि-

४वक्षस्कारे महाहिमवति कूटानि सू. ८१ हरिवर्ष सू. ८२

॥३०४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासे वासे विअडावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते?, गो० ! हरीए महाणईए पच्चत्थिमेणं हरिकंताए महाणईए पुरत्थिमेणं हरिवासस्स २ बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं विअडावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते, एवं जो चेव सद्दावइस्स विक्खंभुच्चत्तुव्वेहपरिक्खेवसंठाण वण्णावासो अ सो चेव विअडावइस्सवि भाणिअव्वो, णवरं अरुणो देवो पउमाइं जाव विअडावइवण्णाभाइं अरुणे अ इत्थ देवे महिड्ढीए एवं जाव दाहिणेणं रायहाणी णेअव्वा, से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–हरिवासे हरिवासे ?, गोअमा ! हरिवासे णं वासे मणुआ अरुणा अरुणो भासा सेआ णं संखदलसण्णिकासा हरिवासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ (सूत्रं ८२)

'कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २' इत्यादि, व्यक्तं, नवरं अष्टौ योजनसहस्राणि चत्वारि च योजनशतानि एकविंशत्यधिकानि एकं चैकोनविंशतितमं भागं योजनस्य विष्कम्भेन, महाहिमवतो द्विगुणविष्कम्भकत्वादिति। अधुनाऽस्य बाहादित्रयमाह––"तस्स बाहा'इत्यादि, 'तस्स जीवा'इत्यादि, 'तस्स धणु'मित्यादि, सूत्रत्रयमपि व्यक्तं॥ अथास्य स्वरूपं पिपृच्छिषुराह—'हरिवास'इत्यादि, हरिवर्षस्य वर्षस्य भगवन् ! कीदृश आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, अत्रातिदेशवाक्यमाह–यावन्मणिभिस्तृणैश्चोपशोभितः, एवं मणीनां तृणानां च वर्णो गन्धः स्पर्शः शब्दश्च भणितव्यः, पद्मवरवेदिकानुसारेणेत्यर्थः, अत्र जलाशयस्वरूपं निरूपयन्नाह–'हरिवासे ण'मित्यादि, क्षेत्रस्य सरसत्वेन तत्र तत्र देशप्रदेशेषु क्षुद्रिकादयो जलाशया अखाता एव सन्तीत्यर्थः, अत्रैकदे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८२]

दीप अनुक्रम [१३७]

शग्रहणेन सर्वोऽपि वाप्यादिजलाशयालापको ग्राह्यः, अत्र कालनिर्णयार्थमाह—'एवं जो सुसमाए'इत्यादि, एवं–उक्तप्रकारेण वर्ण्यमाने तस्मिन् क्षेत्रे यः सुषमायाः–अवसर्पिणीद्वितीयारकस्यानुभावः स एवापरिशेषः–सम्पूर्णो वक्तव्यः, सुषमाप्रतिभागनामकावस्थितकालस्य तत्र सम्भवात् ॥ अथास्य क्षेत्रस्य विभाजकगिरिमाह—'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे हरितो–हरिसलिलाया महानद्याः पश्चिमायां हरिकान्ताया महानद्याः पूर्वस्यां हरिवर्षस्य २ बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे विकटापातिनामा वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः, अत्र निगमयंल्लाघवार्थमतिदेशसूत्रमाह–एवं विकटापातिवृत्तवैताढ्यवर्णने क्रियमाणे य एव शब्दापातिनो विष्कम्भोच्चत्वोद्वेधपरिक्षेपसंस्थानानां वर्णव्यासो–वर्णकग्रन्थविस्तरः चकारात्तत्रत्यप्रासादतत्स्वामिराजधान्यादिसंग्रहः, विकटापातिप्रभाणि विकटापातिवर्णाभानि च तेन विकटापातीति नाम, अरुणश्चात्र देव आधिपत्यं परिपालयति तेन तद्योगादपि तथा नाम प्रसिद्धम्, आह–विसदृशनामकदेवाद्विकटापातीति नाम कथमुपपद्यते?, उच्यते, अरुणो विकटापातिपतिरिति तत्कल्पपुस्तकादिषु आख्यायते, सामानिकादीनामप्यनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध इति सामर्थ्याद्विकटापातीति, सुस्थितलवणोदाधिपतेर्गौतमाधिपतित्वाद् गौतमद्वीप इव, बृहत्क्षेत्रविचारादिषु हैरण्यवते विकटापाती हरिवर्षे गन्धापातीत्युक्तं, तत्त्वं तु केवलिगम्यं, एवं यावदक्षिणस्यां दिशि मेरो राजधानी नेतव्या, अथ हरिवर्षनामार्थं पिपृच्छिषुराह—'से केणट्ठेणं'इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे हरिवर्षे २ केचन मनुजा अरुणा–रक्तवर्णाः, अरुणं च चीनपिष्टादिकं आसन्नवस्तूनि अरुणप्रकाशं न कुरुते अभास्वरत्वाद्

Jain Education Interna For Private & Personal Use Only jainelibrary.org

इमे च न तथा इत्याह—अरुणावभासा इति, केचन श्वेताः णं पूर्ववत् शङ्खदलानि–शङ्खखण्डास्ते हि अतिश्वेताः स्युस्तेषां सन्निकाशाः–सदृशाः तेन तद्योगाद्धरिवर्षं क्षेत्रमुच्यते, कोऽर्थः?–हरिशब्देन सूर्यश्चन्द्रश्च तत्र केचन मनुष्याः सूर्य इवारुणा अरुणावभासाः, सूर्यश्चात्र रक्तवर्णप्रस्तावादुद्गच्छन् गृह्यते, केचन चन्द्र इव श्वेता इति, हरय इव हरयो मनुष्याः, साध्यवसानलक्षणयाऽभेदप्रतिपत्तिः, ततस्तद्योगात् क्षेत्रं हरय इति व्यपदिश्यते, हरयश्च तद्वर्षं च हरिवर्षं, यदा च मनुष्ययोगात् हरिशब्दः क्षेत्रे वर्त्तते तदा स्वभावाद्बहुवचनान्तः प्रयुज्यते, यदाह तत्त्वार्थमूलटीकाकृद् गन्धहस्ती—"हरयो विदेहाश्च पञ्चालादितुल्या" इति, यदिवा हरिवर्षनामा अत्र देव आधिपत्यं परिपालयति तेन तद्योगादपि हरिवर्षं ॥ अथानन्तरोक्तं क्षेत्रं निषधादक्षिणस्यामुक्तं तर्हि स निषधः क्वास्तीति पृच्छति—

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेणं हरिवासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठे, चत्तारि जोयणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं सोलस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं वीसं जोअणसहस्साइं एगं च पणट्ठं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं, तस्स जीवा उत्तरेणं जाव चउणवइं जोअणसहस्साइं एगं च छप्पण्णं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए

Jain Education Intern... For Private & Personal Use Only ...www.jainelibrary.org

अथ निषधपर्वतस्य वर्णनं क्रियते

जोअणस्स आयामेणंति, तस्स धणुं दाहिणेणं एगं जोअणसयसहस्सं चउवीसं च जोअणसहस्साइं तिण्णि अ छायाले जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणंति रुअगसंठाणसंठिए सव्वतवणिज्जमए अच्छे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं जाव संपरिक्खित्ते, णिसहस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति सयंति, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे तिगिंछिदहे णामं दहे पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे चत्तारि जोअणसहस्साइं आयामेणं दो जोअणसहस्साइं विक्खम्भेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रययामयकूले, तस्स णं तिगिच्छिदहस्स चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पं० एवं जाव आयामविक्खम्भविहूणा जा चेव महापउमदहस्स वत्तव्वया सा चेव तिगिंछिदहस्सवि वत्तव्वया तं चेव पउमदहप्पमाणं अट्ठो जाव तिगिंछिवण्णाइं, धिई अ इत्थ देवी पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ तिगिंछिदहे तिगिंछिदहे (सूत्रं ८३)

'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे महाविदेहस्य वर्षस्य दक्षिणस्यां हरिवर्षस्योत्तरस्यां पौरस्त्यलवणोदस्य पश्चिमायां पश्चिमलवणसमुद्रस्य पूर्वस्यां अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे निषधो नाम वर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः, प्राचीनप्रतीचीनेत्यादि प्राग्वत्, चत्वारि योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतशतान्युद्वेधेन–भूप्रवेशेन मेरुवर्जसमयक्षेत्रगिरीणां स्वोच्चत्वचतुर्थांशेनोद्वेधत्वात्, षोडश योजनसहस्राणि द्विचत्वारिंशानि–द्विचत्वारिंशदधिकानि अष्टौ च योजनशतानि द्वौ च एकोनविंशतिभागौ योजनस्य विष्कम्भेन, महाहिमवतो द्विगुणविष्कम्भमानत्वात्, अथ बाहादिसूत्रत्रयमाह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८३]

दीप अनुक्रम [१३८]

'तस्स बाहा'इत्यादि, 'तस्स जीवा'इत्यादि, अथ यावत्पदात् पाईणपडीणायया दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए लवणसमुद्दं जाव पुट्ठा इति ग्राह्यं, 'तस्स धणु'मित्यादि सर्वं पूर्वसूत्रानुसारेण व्याख्येयं। अथ निषधमेव विशेषणैर्विशिनष्टि—'रुअग'इत्यादि, अत्र यावत्पदात् सव्वओ समंता इति ग्राह्यं, शेषं प्राग्वत्। अथास्य देवक्रीडायोग्यत्वं वर्णयन्नाह—'णिसह'इत्यादि, अत्र यावत्पदात् आलिङ्गपुष्करादिपदकदम्बकं बोध्यं। अथ ह्रदवक्तव्यावसरः—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे महानेकः तिगिंछिः—पौष्परजस्तत्प्रधानो ह्रदस्तिगिंछिद्रहो नाम द्रहः प्रज्ञप्तः, प्राकृते पुष्परजःशब्दस्य 'तिगिंछि' इति निपातः देशीशब्दो वा, अन्यत् सर्वं प्रागनुसारेणेति, अथास्यातिदेशसूत्रेण सोपानादिवर्णनायाह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य—तिगिंछिद्रहस्य चतुर्दिक्षु चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, एवमित्थंप्रकारेण ह्रदवर्णके क्रियमाणे यावच्छब्दोऽत्र कार्त्स्न्यवाच्यव्ययं तेन यावत्परिपूर्णा यैव महापद्मद्रहस्य वक्तव्यता आयामविष्कम्भविहीना सैव तिगिंछिद्रहस्य वक्तव्यता, एतदेव व्यक्त्या आचष्टे—'तं चेव'इत्यादि, तदेव—महापद्मद्रहगतमेव पद्मानां—धृतिदेवीकमलानां प्रमाणं—एककोटिविंशतिलक्षपञ्चाशत्सहस्रैकशतविंशतिरूपं, अन्यथाऽत्र पद्मानामायामविष्कम्भरूपप्रमाणस्य महापद्मद्रहगतपद्मेभ्यो द्विगुणत्वेन विरोधापातात्, द्रहस्य च प्रमाणमुद्वेधरूपं बोध्यं, आयामविष्कम्भयोः पृथगुक्तत्वादिति, अर्थः तिगिंछिद्रहस्य वाच्यः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स चैवं 'से केणट्ठेण भन्ते! एवं वुच्चइ–तिगिंछिदहे २' इत्यादि प्राक्सूत्रानुसारेण वाच्यं यावत् तिगिंछिद्रहवर्णाभानि उत्पलादीनि धृतिश्चात्राधिपत्यं परिपालयति 'से तेणट्ठेणं' इत्यादि प्राग्वत् ॥ अथास्माद्या दक्षिणेन नदी प्रवहति तामाह—

तस्स णं तिगिंछिदहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं हरिमहाणई पवूढा समाणी सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एकवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं जाव साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ, एवं जा चेव हरिकन्ताए वत्तव्वया सा चेव हरीएवि णेअव्वा, जिब्भिआए कुंडस्स दीवस्स भवणस्स तं चेव पमाणं अट्ठोऽवि भाणिअव्वो जाव अहे जगाइं दालइत्ता छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमं लवणसमुद्दं समप्पेइ, तं चेव पवहे अ मुहमूले अ पमाणं उव्वेहो अ जो हरिकन्ताए जाव वणसंडसंपरिक्खित्ता, तस्स णं तिगिंछिदहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआ महाणई पवूढा समाणी सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स उत्तराभिमुही पवएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं जाव साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ, सीओआ णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता चत्तारि जोअणाइं आयामेणं पण्णासं जोअणाइं विक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्ठसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा, सीओआ णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे सीओअप्पवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते चत्तारि असीए जोअणसए आयामविक्खंभेणं पण्णरसअट्ठारे जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं अच्छे एवं कुंडवत्तव्वया णेअव्वा जाव तोरणा। तस्स णं सीओअप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीओअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८४]

दीप अनुक्रम [१३९]

चउसट्ठिं जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं दोण्णि य तिउत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्ववइरामए अच्छे सेसं तमेव वेइयावणसंडभूमिभागभवणसयणिज्जअट्ठो भाणिअव्वो, तस्स णं सीओअप्पवावकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओआ महाणई पवूढा समाणी देवकुरुं एज्जेमाणा २ चित्तविचित्तकूडे पव्वए निसढदेवकुरुसूरसुलसविज्जुप्पभदहे अ दुहा विभयमाणी २ चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ भद्दसालवणं एज्जेमाणी २ मंदरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता समाणी अहे विज्जुप्पभं वक्खारपव्वयं दारइत्ता मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं अवरविदेहं वासं दुहा विभयमाणी २ एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए २ सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २, पञ्चहिं सलिलासयसहस्सेहिं दुतीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जयंतस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेति, सीओआ णं महाणई पवहे पण्णासं जोअणाइं विक्खम्भेणं जोअणं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २ मुहमूले पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं उभओपासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ॥ णिसढे णं भन्ते ! वासहरपव्वए णं कति कूडा पण्णत्ता?, गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तंजहा—सिद्धायणकूडे १ णिसढकूडे २ हरिवासकूडे ३ पुव्वविदेहकूडे ४ हरिकूडे ५ धिईकूडे ६ सीओआकूडे ७ अवरविदेहकूडे ८ रुअगकूडे ९ जो चेव चुल्लहिमवंतकूडाणं उच्चत्तविक्खम्भपरिक्खेवो पुव्ववण्णिओ रायहाणी अ सच्चेव इहंपि णेअव्वा, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ णिसहे वासहरपव्वए २?, गोअमा! णिसहे णं वासहरपव्वए बहवे कूडा णिसहसंठाणसंठिआ उसभसंठाणसंठिआ, णिसहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिई परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ णिसहे वासहरपव्वए २ (सूत्रं ८४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

'तस्स ण'मित्यादि तस्य तिगिंछिद्रहस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन हरिनाम्नी हरिसलिलाऽपरपर्याया महानदी प्रव्यूढा सती सप्तयोजनसहस्राणि चत्वारि च योजनशतानि एकविंशानि–एकविंशत्यधिकानि एकं च एकोनविंशतिभागं योजनस्य दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा इत्यादि प्राग्वत्, गिरिगन्तव्योपपत्तिस्तु षोडशसहस्राष्टशतद्वाचत्वारिंशद्योजनप्रमाणान्निषधव्यासाद् द्विसहस्रयोजनप्रमाणे ह्रदव्यासेऽपनीते शेषेऽर्द्धीकृते भवतीति । निगमयन्नतिदेशसूत्रमाह—'एव'मित्यादि, 'एव'मित्युक्तप्रकारेण यैव हरिकान्ताया वक्तव्यता सैव हरितोऽपि महानद्या नेतव्या, जिव्हिकाया हरिकुण्डस्य हरिद्वीपस्य भवनस्य च तदेव प्रमाणं हरिकान्ताप्रकरणोक्तमवसेयं, अर्थोऽपि हरिद्वीपनाम्नो वाच्यः, अत्र यावत्पदवाच्यं साक्षाल्लिखितं च सर्वं हरिकान्ताप्रकरण इव ज्ञेयं ॥ अथास्माद्या उत्तरेण नदी प्रवहति तामाह—'तस्स णं तिगिंछिद्दह'इत्यादि, व्यक्तं, गिरिगन्तव्यं तु हरिन्नद्या इवावसेयं, अथास्या जिव्हिकास्वरूपमाह—'सीओआ'इत्यादि, उत्तानार्थं, नवरमायामेन चत्वारि योजनानि, हरिन्नदीजिव्हिकाद्विगुणत्वात्, पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भेन हरिन्नदीप्रवहतो द्विगुणस्य सीतोदाप्रवहस्य मातव्यत्वात्, एवं बाहल्यमपि पूर्वजिव्हिकातो द्विगुणमवसेयम्, अथ कुण्डस्वरूपमाह—'सीओआ णं महाणई जहिं'इत्यादि, 'एत्थ ण'मित्यादि, अत्र कुण्डस्य योजनसङ्ख्या हरिकुण्डतो द्वैगुण्येनोपपादनीया । अथ सीतोदाद्वीपस्वरूपमाह—'तस्स ण'मित्यादि, अत्र शीतोदाद्वीपः आयामविष्कम्भाभ्यां चतुःषष्टियोजनानि पूर्वनदीद्वीपतो द्विगुणायामविष्कम्भत्वात्, व्यधिके द्वे शते परिक्षेपेण, अत्र सूत्रेऽनुक्तमपि करणवशात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किञ्चित्साधिकत्वं ज्ञेयं, द्वौ क्रोशौ जलादुत्थितः सर्ववज्रमयः अच्छः शेषमुक्तातिरिक्तं गङ्गाद्वीपप्रकरणोक्तमवसेयं, तच्च विनेयस्मारणार्थं नामतो निर्दिशति–वेदिकावनखण्डभूमिभागभवनशयनीयानि वाच्यानि, अत्र सूत्रे विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, अर्थश्च शीतोदाद्वीपस्य गङ्गाद्वीपवत् भणितव्य इति । अथ यथेयं पयोधिमुपयाति तथाह—'तस्स णं सीओअप्पवाय'इत्यादि, तस्य शीतोदाप्रपातकुण्डस्य औत्तराहेण तोरणेन शीतोदा महानदी प्रव्यूढा सती देवकुरून् इयूती २–गच्छन्ती २, अत्र सूत्रे एकवचनं आकारान्तत्वं च प्राकृतत्वात्, चित्रविचित्रकूटौ पर्वतौ पूर्वापरकूलवर्त्तिनौ निषध १ देवकुरु २ सूर ३ सुलस ४ विद्युत्प्रभ ५ द्रहांश्च द्विधा विभजन्ती २–तन्मध्ये वहन्ती २, अत्रेयं विभागयोजना–चित्रविचित्रकूटपर्वतयोर्मध्ये वहनेन चित्रकूटं पर्वतं पूर्वतः कृत्वा विचित्रकूटं च पश्चिमतः कृत्वा देवकुरुषु वहन्ती इति, द्रहांश्च पञ्चापि समश्रेणिवर्त्तिन एकैकरूपान् द्विभागीकरणेन वहन्तीति, अत्रान्तराले देवकुरुवर्त्तिभिश्चतुरशीत्या सलिलासहस्रैरापूर्यमाणा २ भद्रशालवनं–मेरुप्रथमवनं इयूती २ मन्दरं पर्वतं द्वाभ्यां योजनाभ्यामसम्प्राप्ता, शीतोदामेर्वोरष्टौ क्रोशा अन्तरालमित्यर्थः, ततः पश्चिमाभिमुखी परावृत्ता सती विद्युत्प्रभं वक्षस्कारपर्वतं नैर्ऋतकोणगतकुरुगोपकगिरिमधो दारयित्वा मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमेनापरविदेहवर्ष–पश्चिमविदेहं द्विधा विभजन्ती २, एकैकस्माच्चक्रवर्त्तिविजयादष्टाविंशत्या २ नदीसहस्रैरापूर्यमाणा २ तथाहि—अस्या दक्षिणकूलगतविजयाष्टके द्वे द्वे महानद्यौ गङ्गासिन्धुनाम्नी चतुर्दश २ सहस्रनदीपरिवारे उत्तरकूलवर्त्तिविजयाष्टके च द्वे द्वे महानद्यौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८४]

दीप अनुक्रम [१३९]

रक्तारक्तवतीनाम्नी तावत्परिवारे स्त इति प्रतिविजयमष्टाविंशतिनदीसहस्राणि, अथ सर्वाग्रेणास्या नदीपरिवारं विशेषण-द्वारेणाह–पञ्चभिर्नदीलक्षैर्द्वात्रिंशता च नदीसहस्रैः समग्रा–परिपूर्णा, तथाहि–अस्या उभयकूलवर्त्तिविजयषोडशकेऽष्टा-विंशति२र्नदीसहस्राणीत्यष्टाविंशतिसहस्राणि षोडशभिर्गुण्यंते, जातं चतुर्लक्षाण्यष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि, अत्र राशौ कुरु-गत ८४ सहस्रनदीप्रक्षेपे जातं यथोक्तं मानमिति, अधो जयन्तस्य द्वारस्य–पश्चिमदिग्वर्त्तिजम्बूद्वीपद्वारस्य जगतीं दारयित्वा पश्चिमेन–पश्चिमभागेन लघणसमुद्रं समुपसर्पतीति ॥ अधुनाऽस्या विष्कम्भाद्याह—'सीओआ'इत्यादि, शीतोदा महानदी प्रवहे–ह्रदनिर्गमे पञ्चाशद्योजनानि विष्कम्भेन, हरिन्नदीप्रवहादस्याः प्रवहस्य द्विगुणत्वात्, योजनमुद्वेधेन–उण्डत्वेन, पञ्चाशद्योजनानां पञ्चाशता भागे एकस्यैव लाभात्, तदनन्तरं मात्रया २–क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोरशीतिधनुर्वृद्ध्या, प्रतिपार्श्वं चत्वारिंशद्धनुर्वृद्धेत्यर्थः, परिवर्द्धमाना २ मुखमूले–समुद्रप्रवेशे पञ्च योजनशतानि निष्कम्मेन प्रवहविष्कम्भापेक्षया मुखविष्कम्भस्य दशगुणत्वात्, दशयोजनान्युद्वेधेन, आद्यप्रवहोद्वेधापेक्षयाऽस्य दशगुणत्वात्, शेषं व्यक्तं ॥ अथ निषधे कूटवक्तव्यमाह—'णिसढे ण'मित्यादि,

१ यथा सीतोदाया उत्तरकूलविजयेषु रक्तारक्तवत्यौ दक्षिणकूलकाये च गङ्गासिन्धू तथा न सीतायाः किन्तु उत्तरतो गङ्गासिन्धू दक्षिणत इतरे इति (ही०वृत्तौ) २ 'गंगादिसीतोदापर्यन्तनदीनां जलप्रवेशनिमित्तं समुद्रोऽपि तत्र तत्र प्रदेशे अनादिजगत्स्थित्या यावज्जलप्रवेशोचितप्रणालयुक्तः संभाव्यते अतो न किंचिदनुप-पन्नं (ही० वृत्तौ)। तेन योजनसहस्रनिम्नत्वे कथं शीतोदायाः समुद्रे प्रवेश इति नाशङ्क्यं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धायतनकूटं निषधवर्षधराधिपवासकूटं हरिवर्षक्षेत्रपतिकूटं पूर्वविदेहपतिकूटं हरिसलिलानदीसुरीकूटं धृतिः–तिगिंछिद्रहसुरी तस्याः कूटं शीतोदामदीसुरीकूटं अपरविदेहपतिकूटं रुचकः–चक्रवालगिरिविशेषस्तदधिपतिकूटं, अत्र वक्तव्येऽतिदेशसूत्रमाह—'जो चेव'इत्यादि, य एव क्षुद्रहिमवति कूटानामुच्चत्वविष्कम्भाभ्यां सहितः परिक्षेपः उच्चत्वविष्कम्भपरिक्षेपः, चशब्दात् कूटवर्णकः पूर्ववर्णितः–अधस्तनग्रन्थोक्तः स एव इहापि ज्ञातव्यः, तथाहि—पञ्चयोजनशतान्युच्चत्वं मूलविष्कम्भश्चेत्यादि, राजधानी च सैव इहापि नेतव्या, अत्र लिङ्गविपरिणामेनार्थयोजना इति, कोऽर्थः ?–यथा क्षुद्रहिमवद्गिरिकूटस्य दक्षिणेन तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् जम्बूद्वीपे क्षुद्रहिमवती नाम्नी राजधानी तथा इहापि निषधा नाम राजधानीति, अधुनाऽस्य नामार्थं प्रश्रयन्नाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं निषधे वर्षधरपर्वते बहूनि कूटानि निषधसंस्थानसंस्थितानि, तत्र नितरां सहते स्कन्धे पृष्ठे वा समारोपितं भारमिति निषधो–वृषभः पृषोदरादित्वादिष्टरूपसिद्धिः तत्संस्थानसंस्थितानि, एतदेव पर्यायान्तरेणाह—वृषभसंस्थितानि, निषधश्चात्र देव आधिपत्यं परिपालयति, तेन निषधाकारकूटयोगान्निषधदेवयोगाद्वा निषध इति व्यवह्रियते इति ॥ अथ यन्निषधसूत्रे 'महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेण'मित्युक्तं तत् किं महाविदेहमित्याह—

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते ?, गोअमा! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे णामं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ महाविदेहक्षेत्रस्य वर्णनं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८५]

दीप अनुक्रम [१४०]

वासे पण्णत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिम जाव पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं जाव पुट्ठे तित्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च चुलसीए जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणंति, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं तेत्तीसं जोअणसहस्साइं सत्त य सत्तसट्ठे जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणंति, तस्स जीवा बहुमज्झदेसभाए पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं जाव पुट्ठा एवं पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठा, एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणंति, तस्स धणुं उभओ पासिं उत्तरदाहिणेणं एगं जोयणसयसहस्सं अट्ठावण्णं जोअणसहस्साइं एगं च तेरसुत्तरं जोअणसयं सोलस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणंति, महाविदेहे णं वासे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तंजहा—पुव्वविदेहे १ अवरविदेहे २ देवकुरा ३ उत्तरकुरा ४, महाविदेहस्स णं भन्ते! वाससस केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव किंत्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव। महाविदेहे णं भन्ते! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे छव्विहे संठाणे पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउअं पालेन्ति पालेत्ता अप्पेगइआ णिरयगामी जाव अप्पेगइआ सिज्झंति जाव अंतं करेन्ति। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ—महाविदेहे वासे २?, गोअमा! महाविदेहे णं वासे भरहेरवयहेमवयहेरण्णवयहरिवासरम्मगवासेहिंतो आयामविक्खम्भसंठाणपरिणाहेणं विच्छिण्णतराए चेव विपुलतराए चेव महंततराए चेव सुप्पमाणतराए चेव महाविदेहा य इत्थ मणूसा परिवसंति, महाविदेहे अ इत्थ देवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ–महाविदेहे वासे २, अदुत्तरं च णं गोअमा! महाविदेहस्स वासस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि ३ (सूत्रं ८५)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! इत्यादि सूत्रं स्वयं योज्यं, नवरं महाविदेहं नाम वर्षं–चतुर्थं क्षेत्रं प्रज्ञप्तं?, गौतम! नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य चतुर्थस्य क्षेत्रविभागकारिणो दक्षिणेनेत्यर्थः 'णिसहस्स'इत्यादि व्यक्तं, नवरं पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितमायतचतुरस्रत्वात्, विस्तारेण त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि षट् च योजनशतानि चतुरशीत्यधिकानि चतुरश्चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेन, निषधविष्कम्भाद् द्विगुणविष्कम्भकत्वात्, अथ बाहादिसूत्रत्रयमाह—'तस्स बाहा'इत्यादि, तस्य महाविदेहस्य वर्षस्य पूर्वापरभागेन बाहा प्रत्येकं त्रयस्त्रिंशद् योजनसहस्राणि सप्त च योजनशतानि सप्तषष्ट्याऽधिकानि सप्त च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य आयामेनेति, ननु "महया धणुपट्ठाओ डहरागं सोहिआहि धणुपट्ठं। जं तत्थ हवइ सेसं तस्सद्धे णिद्दिसे बाहं ॥ १ ॥" इति वचनात् महतो धनुःपृष्ठाद् विदेहानां दक्षिणार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य च सम्बन्धिनो लक्षमेकमष्टपञ्चाशत्सहस्राणि शतमेकं त्रयोदशाधिकं योजनानां षोडश च कलाः सार्द्धाः योजन १५८११३ कलाः १६ कलार्द्धं चेत्येवंपरिणामाल्लघु धनुःपृष्ठं निषधादिसम्बन्धि लक्षमेकं चतुर्विंशतिसहस्राणि त्रीणि शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि योजनानां नव च कला योजन १२४३४६ कला ९ इत्येवंपरिमाणं शोधय, ततश्च शेषमिदं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि सप्त शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि योजनानां सप्त च कलाः सार्द्धाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३११॥

योजनानां ३३७६७ कला ७ कलार्द्धं च, एषामर्द्धे षोडश योजनसहस्राणि अष्टौ शतानि त्र्यशीत्यधिकानि योजनानां त्रयोदश च कलाः सपादाः इत्येवंरूपा बाहा विदेहानां सम्भवति, अत्र तु त्रयस्त्रिंशत्सहस्रादिरूपा उक्ता तत्किमिति?, उच्यते, सर्वत्र वैताढ्यादिषु पूर्वबाहा अपरबाहा च यावती दक्षिणतस्तावती उत्तरतोऽपि परं व्यवहितत्वेन सा सम्मील्य नोक्ता, इयं तु सम्मिलितत्वात् संमील्यैवोक्ता सूत्रे दक्षिणबाहाप्रमाणेनोत्तरबाहेत्येनमर्थं बोधयितुमिति । अथास्य जीवामाह—'तस्स जीवा'इत्यादि, तस्य विदेहस्य जीवा बहुमध्यदेशभागे विदेहमध्ये इत्यर्थः, अन्येषां तु वर्षधर-धराणां चरमप्रदेशपङ्क्तिर्जीवा अस्य तु मध्यप्रदेशपङ्क्तिरित्यर्थः, इयमेव च जम्बूद्वीपमध्यं अत एव चायामेन लक्षयो-जनमाना, मध्यमात्परतस्तु जम्बूद्वीपस्य सर्वत्र दक्षिणत उत्तरतो वा लक्षाद्न्यूनन्यूनमानत्वात्, अथास्य धनुःपृष्ठमाह—'तस्स धणुं'इत्यादि, तस्य विदेहस्योभयोः पार्श्वयोः एतदेव विवृणोति—'उत्तरदाहिणेणं'ति उत्तरपार्श्वे दक्षिणपार्श्वे वा एकं योजनलक्षं अष्टपञ्चाशच्च योजनसहस्राणि एकं च योजनशतं त्रयोदशोत्तरं षोडश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य किंचिद्विशेषाधिकान् परिक्षेपेण, यच्चान्यत्र सार्द्धाः षोडश कला उक्तास्तदत्र किंचिद्विशेषाधिकपदेन संगृ-हीतं, उद्धरितकलांशास्तु न विवक्षिता इति, अत्राधिकार्थसूचनार्थं करणान्तरं दर्श्यते—जम्बूद्वीपपरिधिस्त्रयो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके योजनानां क्रोशत्रयमष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदशांगुलान्येकमर्द्धांगुलं योजन ३१६२२७ क्रोश ३ धनूंषि १२८ अंगुल १३ अर्द्धांगुलं ½, तत्र योजनराशिरर्द्धीक्रियते, लब्धमेकं लक्षमष्टापञ्चाशत्स-

४वक्षस्कारे महाविदेह वर्णनं सू. ८५

॥३११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्राणि शतमेकं त्रयोदशाधिकं योजन १५८११३, यस्त्वेकं योजनं शेषं तत्कलाः क्रियन्ते लब्धाः एकोनविंशतिः क्रोशत्रये च लब्धाः सपादाश्चतुर्दश कलाः उभयमीलने जाताः सपादास्त्रयस्त्रिंशत् कलाः सासार्द्धं लब्धाः सार्द्धाः षोडश कलाः, यश्च कलाया अष्टमो भागोऽधिक उद्धरति यानि च धनुषामर्द्धे लब्धानि चतुःषष्टिर्धनूंषि यानि च सार्द्धत्रयोदशांगुलानामर्द्धे पादोनानि सप्तांगुलानि तदेतत्सर्वमल्पत्वान्न विवक्षितमिति ॥ अधुना विदेहवर्षस्य भेदान्निरूपयन्नाह—'महाविदेहे ण'मित्यादि, महाविदेहं वर्षं चतुर्विधं—चतुष्प्रकारं पूर्वविदेहाद्यन्यतरस्य महाविदेहत्वेन व्यपदिश्यमानत्वात्, अत एव चतुर्षु—पूर्वापरविदेहदेवकुरूत्तरकुरुरूपेषु क्षेत्रविशेषेषु प्रत्यवतारः—समवतारो विचारणीयत्वेन यस्य तत्तथा, चतुर्विधस्य पर्यायो वाऽयं, तत्र पूर्वविदेहो यो मेरोर्जम्बूद्वीपगतः प्राग्विदेहः, एवं पश्चिमतः सोऽपरविदेहः दक्षिणतो देवकुरुनामा विदेहः उत्तरतस्तु उत्तरकुरुनामा विदेहः, ननु पूर्वापरविदेहयोः समानक्षेत्रानुभावकत्वेन महाविदेहव्यपदेश्यताऽस्तु, देवकुरूत्तरकुरूणां स्वकर्मभूमिकत्वेन कथं महाविदेहत्वेन व्यपदेशः?, उच्यते, प्रस्तुतक्षेत्रयोर्भरताद्यपेक्षया महाभोगत्वात् महाकायमनुष्ययोगित्वान्महाविदेहदेवाधिष्ठेयत्वाच्च महाविदेहवाच्यता समुचितैवेति सर्वं सुस्थं । अथास्य स्वरूपं वर्णयितुमाह—'महाविदेह'इत्यादि, प्राग्वत्, अत्र यावत्करणात् 'आलिंगपुक्खरे इ वा जाव णाणाविहपञ्चवण्णेहिं मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए'इति, सम्प्रत्यत्र मनुजस्वरूपमाह—'महाविदेहे ण'—मित्यादि, प्राग्वत्, आभ्यां सूत्राभ्यामस्य कर्मभूमित्वमभाणि अन्यथा कर्षकादिप्रवृत्तानां तृणादीनां कृत्रिमत्वं तद्वर्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

जाताना च मनुष्याणा पञ्चमगतिगामित्वं न स्यात्, अथास्य नामार्थं प्रश्नयन्नाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, प्राग्वत्, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे—गौतम! महाविदेहो वर्षं भरतैरावतहैमवतहैरण्यहरिवर्षरम्यकवर्षेभ्यः आयामविष्कम्भसंस्थान-परिणाहेन, समाहारादेकवद्भावः, तत्रायामादित्रिकं प्रतीतं, परिणाहः—परिधिः, अत्र च व्यस्ततया विशेषणनिर्देशेऽपि योजना यथासम्भवं भवतीत्यायामेन महत्तरक एव लक्षप्रमाणजीवाकत्वात्, तथा विष्कम्भेन विस्तीर्णतरक एव साधिकचतुरशीतिषट्शताधिकत्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्रप्रमाणत्वात्, तथा संस्थानेन पल्यङ्कसंस्थितत्वेऽपि पूर्वजगतीकोणानां संवृतत्वेन पूर्वापरेषयोर्वैषम्यादिति, तथा परिणाहेन सुप्रमाणतरक एव, एतद्धनुःपृष्ठस्य जम्बूद्वीपपरिध्यर्द्धमानत्वादिति, अत एव महान्—अतिशयेन विकृष्टो—गरीयान् देहः—शरीरमाभोग इतियावत् येषां ते महाविदेहाः, अथवा महान्—अतिशयेन विकृष्टो—गरीयान् देहः—शरीरं कलेवरं येषां ते तथा, ईदृशास्तत्रत्या मनुष्याः, तथाहि—तत्र विजयेषु सर्वदा पञ्चधनुःशतोच्छ्राया देवकुरूत्तर-कुरुषु त्रिगव्यूतोच्छ्रयाः ततो महाविदेहमनुष्ययोगादिदमपि क्षेत्रं महाविदेहाः, महाविदेहश्च शब्दः स्वभावाद् बहुवचनान्त एव, एतच्च प्रागेवोक्तं, ततो बहुवचनेन व्यवह्रियते, दृश्यते च क्वचिदेकवचनान्तोऽपि, तदपि प्रमाणं, पूर्वमहर्षिभिस्तथाप्रयोगकरणात्, अथवा महाविदेहनामा देवोऽत्राधिपत्यं परिपालयति, तेन तद्योगादपि महाविदेह इति, शेषं प्राग्वत् ॥ सम्प्रत्युत्तरकुरूर्वक्तुकामस्तदुपयोगित्वेन प्रथमं गन्धमादनवक्षस्कारगिरिप्रश्नमाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे गन्धमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं गंधिलावइस्स विजयस्स पुरच्छिमेणं उत्तरकुराए पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे गन्धमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे तीसं जोअणसहस्साइं दुण्णि अ णउत्तरे जोअणसए छच्च य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं णीलवंतवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं तयणंतरं च णं मायाए २ उस्सेहुव्वेहपरिवद्धीए परिवद्धमाणे २ विक्खम्भपरिहाणीए परिहायमाणे २ मंदरपव्वयंतेणं पञ्च जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं पञ्च गाउअसयाइं उव्वेहेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं विक्खम्भेणं पण्णत्ते गयदन्तसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते, गन्धमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव आसयन्ति। गन्धमायणे णं वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता?, गो० ! सत्त कूडा, तंजहा—सिद्धायणकूडे १ गन्धमायणकूडे २ गंधिलावईकूडे ३ उत्तरकूरुकुडे ४ फलिहकूडे ५ लोहियक्खकूडे ६ आणंदकूडे ७। कहि णं भन्ते! गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?, गोअमा! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं गंधमायणकूडस्स दाहिणपुरत्थिमेणं, एत्थ णं गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, जं चेव चुल्लहिमवन्ते सिद्धायणकूडस्स पमाणं तं चेव एएसिं सव्वेसिं भाणिअव्वं, एवं चेव विदिसाहिं तिण्णि कूडा भाणिअव्वा, चउत्थेत तिअस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं पञ्चमस्स दाहिणेणं, सेसा उ उत्तरदाहिणेणं, फलिहलोहिअक्खेसु भोगंकरभोगवईओ देवयाओ सेसेसु सरिसणामया देवा, दसुवि पासायवडेंसया रायहाणीओ विदिसासु, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६-८७]

दीप अनुक्रम [१४१--१४२]

गंधमायणे वक्खारपव्वए २ ?, गो० ! गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स गंधे से जहा णामए कोट्ठपुडाण वा जाव पीसिज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा जाव ओराला मणुण्णा जाव गंधा अभिणिस्सवन्ति, भवे एआरूवे ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गंधमायणस्स णं इत्तो इट्ठतराए चेव जाव गंधे पण्णत्ते, से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुश्इ गंधमायणे वक्खारपव्वए २, गंधमायणे अ इत्थ देवे महिद्धीए परिवसइ, अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे इति । (सूत्रं८६) कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे उत्तरकुरा णामं कुरा पं०, गो० ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं गन्धमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिआ इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणंति, तीसे जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तंजहा–पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा एवं पच्चत्थिमिल्लाए जाव पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोअणसहस्साइं आयामेणन्ति, तीसे णं धणुं दाहिणेणं सट्ठिं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अट्ठारसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, उत्तरकुराए णं भन्ते ! कुराए केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, एवं पुव्ववण्णिआ जच्चेव सुसमसुसमावत्तव्वया सच्चेव णेअव्वा जाव पउमगंधा १ मिअगंधा २ अममा ३ सहा ४ तेतली ५ सणिंचारी ६ (सूत्रं ८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६-८७]

दीप अनुक्रम [१४१--१४२]

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त ! महाविदेहे वर्षे गन्धमादनो नाम वक्षसि–मध्ये स्वगोप्यं क्षेत्रं द्वौ संभूय कुर्वन्तीति वक्षस्काराः, तज्जातीयोऽयमिति वक्षस्कारपर्वतो गजदन्तापरपर्यायः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! नीलवन्नाम्नो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणभागेन मन्दरस्य पर्वतस्य–मेरोरुत्तरपश्चिमेन–उत्तरस्याः पश्चिमायाश्च अन्तरालवर्त्तिना दिग्विभागेन वायव्यकोणे इत्यर्थः, गन्धिलावत्याः–शीतोदोत्तरकूलवर्त्तिनोऽष्टमविजयस्य पूर्वेण उत्तरकुरूणां–सर्वोत्कृष्टभोगभूमिक्षेत्रस्य पश्चिमेन अत्रान्तरे महाविदेहे वर्षे गन्धमादनो नाम वक्षस्कारपर्वतः प्रज्ञप्तः, उत्तरदक्षिणयोरायतः प्राचीनप्रतीचीनयोः–पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः विस्तीर्णः, त्रिंशद्योजनसहस्राणि द्वे च नवोत्तरे योजनशते षट् च एकोनविंशतिभागान् योजनस्यायामेन, अत्र यद्यपि वर्षधराद्रिसम्बद्धमूलानां वक्षस्कारगिरीणां साधिकैकादशाष्टशतद्विचत्वारिंशद्योजनप्रमाणकुरुक्षेत्रान्तर्वर्त्तिनामेतावानायामो न सम्पद्यते तथाऽप्येषां वक्रभावपरिणतत्वेन बहुतरक्षेत्रावगाहित्वात् सम्भवतीति, नीलवद्वर्षधरसमीपे चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतशतानि उद्वेधेन पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेन, तदनन्तरं मात्रया २–क्रमेण क्रमेणोत्सेधोद्वेधयोः–उच्चत्वोण्डत्वयोः परिवृद्ध्या परिवर्द्धमानः २ विष्कम्भपरिहाण्या परिहीयमाणः २ मन्दरपर्वतस्य–मेरोरन्ते–समीपे पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन पञ्चगव्यूतिशतानि उद्वेधेन अंगुलस्यासङ्ख्यभागं विष्कम्भेन प्रज्ञप्तः, गजदन्तस्य यत्संस्थानं–प्रारम्भे नीचत्वमन्ते उच्चत्वमित्येवंरूपं तेन संस्थितः, सर्वात्मना रत्नमयः, श्रीउमास्वातिवाचककृतजम्बूद्वीपसमासप्रकरणे तु कनकमय इति, शेषं प्राग्वत्, अधास्य भूमिसौ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग्यमावेदयति–'गन्धमायण'इत्यादि, गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, अत्र यावत्पदाद्वैताढ्याद्रिशिखरतलवर्णकगतं सर्वं बोध्यं । सम्प्रत्यत्र कूटवक्तव्यतामाह—'गन्धमायण'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं स्फटिककूटं स्फटिकरत्नमयत्वात् लोहिताक्षकूटं लोहितरत्नवर्णत्वात्, आनन्दनाम्नो देवस्य कूटमानन्दकूटं । ननु यथा वैताढ्यादिषु सिद्धायतनादिकूटव्यवस्था पूर्वापरायतत्वेन तद्वदत्रापि उत्त कश्चिद्विशेष इत्याह—'कहि णं भन्ते !'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं यथा वैताढ्यादिषु सिद्धायतनकूटं समुद्रासन्नं पूर्वेण ततः क्रमेण शेषाणि स्थितानि तथाऽत्र मन्दरासन्नं सिद्धायतनकूटं मन्दरादुत्तरपश्चिमायां वायव्यां दिशि गन्धमादनकूटस्य तु दक्षिणपूर्वस्यां–आग्नेय्यामस्ति, यदेव क्षुद्रहिमवति सिद्धायतनकूटस्य प्रमाणं तदेवैतेषां सर्वेषां सिद्धायतनादिकूटानां भणितव्यं, अर्थाद् वर्णनमपि तद्वदेवेति, व्यवस्था तु शेषकूटानामत्र भिन्नप्रकारेणेति मनसिकृत्याह–'एवं चेव'इत्यादि, एवं चेवेत्येवं–सिद्धायतनानुसारेण विदिक्षु–वायव्यकोणेषु त्रीणि कूटानि सिद्धायतनादीनि भणितव्यानि, उक्तवक्तव्यानां मिश्रितनिर्देशस्तु 'एवं चत्तारिवि दारा भाणिअव्वा' इति सूत्रविवरणोक्तयुक्त्या समाधेयः, अयमर्थः–मेरुत उत्तरपश्चिमायां सिद्धायतनकूटं, तस्मादुत्तरपश्चिमायां गन्धमादनकूटं तस्माच्च गन्धिलावतीकूटमुत्तरपश्चिमायामिति, अत्र तिस्रो वायव्यो दिशः समुदिता विवक्षिता इति बहुत्वेन निर्देशः, चतुर्थमुत्तरकुरुकूटं तृतीयस्य गन्धिलावतीकूटस्योत्तरपश्चिमायां पञ्चमस्य स्फटिककूटस्य दक्षिणतः, ननु यथा तृतीयाद् गन्धिलावतीकूटाच्चतुर्थं उत्तरकुरुकूटमुत्तरपश्चिमायां चतुर्थाच्च तृतीयं दक्षिणपूर्वस्यां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा पञ्चमात् स्फटिककूटात् कथं दक्षिणपूर्वस्यां चतुर्थं कूटं न सङ्गच्छते?, उच्यते, पर्वतस्य वक्रत्वेन चतुर्थकूटत एव दक्षिणपूर्वां प्रति वलनात् पञ्चमाच्चतुर्थं दक्षिणस्यामिति, शेषाणि स्फटिककूटादीनि त्रीणि उत्तरदक्षिणश्रेणिव्यवस्थया स्थितानि, कोऽर्थः?–पंचमं चतुर्थस्योत्तरतः षष्ठस्य दक्षिणतः षष्ठं पंचमस्योत्तरतः सप्तमस्य दक्षिणतः सप्तमं षष्ठस्योत्तरत इति परस्परमुत्तरदक्षिणभाव इति, अत्र पंचशतयोजनविस्ताराण्यपि कूटानि यत् क्रमहीयमानेऽपि प्रस्तुतगिरिक्षेत्रे मान्ति तत्र सहस्राङ्ककूटरीतिर्ज्ञेया, अथैषामेवाधिष्ठातृस्वरूपं निरूपयति–'फलिहलोहिअक्खे'इत्यादि, स्फटिककूटलोहिताक्षकूटयोः पंचमषष्ठयोर्भोगङ्कराभोगवत्यौ द्वे देवते–दिक्कुमार्यौ वसतः, शेषेषु कूटसदृशनामका देवाः, षट्स्वपि प्रासादावतंसकाः स्वस्वाधिपतिवासयोग्याः, एषां च राजधान्योऽसङ्ख्यातत्तमे जम्बूद्वीपे विदिक्षु उत्तरपश्चिमासु । सम्प्रति नामार्थं पिपृच्छिषुराह––'से केणट्ठेणं'इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य गन्धः स यथा नाम कोष्ठपुटानां यावत्पदात् तगरपुटादीनां संग्रहः पिष्यमाणानां वा–संचूर्ण्यमानानां उत्कीर्यमाणानां वा विकीर्यमाणानां वा परिभुज्यमानानां वा यावत्पदात् भाण्डात् भाण्डान्तरं वा संहियमाणानामिति, उदारा–मनोज्ञाः यावत्पदात् गन्धा इति कर्तृपदं, अभिनिःस्रवन्ति, एवमुक्ते शिष्यः पृच्छति–भवेदेतद्रूपो गन्धमादनस्य गन्ध इति?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थः, गन्धमादनस्य इतो–भवदुक्ताद् गन्धादिष्टतरक एव यावत्करणात् कान्ततरक एवेत्यादिपदग्रहः, निगमनवाक्ये तेनार्थेन गौतम एवमुच्यते, गन्धेन स्वयं माद्यतीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मदयति वा तन्निवासिदेवदेवीनां मनांसि इति गन्धमादनः, 'कृद्बहुल' (श्रीसिद्ध० अ० ५ पा० १ सू० २) मिति वचनात् कर्त्तर्यनट्प्रत्ययः, 'घञ्युपसर्गस्य वे' (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० ८६) त्यत्र बहुलाधिकारादतिशायितादिवत् मकाराकारस्य दीर्घत्वमिति, गन्धमादननामा चात्र देवो महर्द्धिकः परिवसति, तेन तद्योगादिति नाम, अन्यत् सर्वं प्राग्वत्॥ अथ यासामुपयोगित्वेन गन्धमादनो निरूपितस्ता उत्तरकुरूः निरूपयति—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! महाविदेहे वर्षे उत्तरकुरवो नाम्ना कुरवः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरतो नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणतो गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वतो वक्ष्यमाणस्वरूपस्य माल्यवतः पश्चिमतः अत्रान्तरे उत्तरकुरवो नाम्ना कुरवः प्रज्ञप्ताः, प्राक्पश्चिमायता उत्तरदक्षिणाविस्तीर्णाः अर्द्धचन्द्राकारा एकादशयोजनसहस्राण्यष्टौ शतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि द्वौ चैकोनविंशतिभागौ योजनस्य विष्कम्भेन, अत्रोपपत्तिर्यथा महाविदेहविष्कम्भात् ३३६८४ कला ४ इत्येवंरूपात् मेरुविष्कम्भेऽपनीते शेषस्यार्द्धे कृते उक्ताङ्कराशिः स्यात्, ननु वर्षवर्षधरादीनां क्रमव्यवस्था प्रज्ञापकापेक्षयाऽस्ति यथा प्रज्ञापकासन्नं भरतं ततो हिमवानित्यादि, ततो विदेहकथनानन्तरं क्रमप्राप्ता देवकुरूर्विमुच्य कथमुत्तरकुरूणां निरूपणं?, उच्यते, चतुर्दिग्मुखे विदेहे प्रायः सर्वं प्रादक्षिण्येन व्यवस्थाप्यमानं समये श्रूयते, तेन प्रथमत उत्तरकुरुकथनं भरतपार्श्वस्थौ विद्युत्प्रभसौमनसौ विहाय गन्धमादनमाल्यवद्वक्षस्कारप्ररूपणं भरतासन्नविजयान् विहाय कच्छमहाकच्छादिविजयकथनं चेति, अथैतासां जीवामाह—'तीसे'इत्यादि, तासामुत्तरकुरूणां, सूत्रे एकवचनं प्राकृतत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवा–उत्तरतो नीलवद्वर्षधरासन्ना कुरुचरमप्रदेशश्रेणिः पूर्वापरायता द्विधा पूर्वपश्चिमभागाभ्यां वक्षस्कारपर्वतं स्पृष्टा, एतदेव विवृणोति, तद्यथा–पौरस्त्यया कोट्या पौरस्त्यं वक्षस्कारपर्वतं माल्यवन्तं स्पृष्टा पाश्चात्यया पाश्चात्यं गन्धमादननामानं वक्षस्कारपर्वतं स्पृष्टा, त्रिपञ्चाशद्योजनसहस्राणि आयामेन, तत्कथमिति ?, उच्यते, मेरोः पूर्वस्यां दिशि भद्रशालवनमायामतो द्वाविंशतियोंजनसहस्राणि एवं पश्चिमायामपि, उभयमीलने जातं चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि मेरुविष्कम्भे दशसहस्रयोजनात्मके प्रक्षिप्ते जातं चतुष्पञ्चाशद्योजनसहस्राणि, एकैकस्य वक्षस्कारगिरेर्वर्षधरसमीपे पृथुत्वं पञ्च योजनशतानि ततो द्वयोर्वक्षस्कारगिर्योः पृथुत्वपरिमाणं योजनसहस्रं तत्पूर्वराशेरपनीयते, जातः पूर्वराशिस्त्रिपञ्चाशद्योजनसहस्राणीति । अथैतासां धनुःपृष्ठमाह––'तीसे णं धणुं दाहिणेण'मित्यादि, तासां धनुःपृष्ठं दक्षिणतो मेर्वासन्न इत्यर्थः, षष्टियोजनसहस्राणि चत्वारि च योजनशतानि अष्टादशानि–अष्टादशाधिकानि द्वादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य परिक्षेपेण, तथाहि––एकैकवक्षस्कारगिरेरायामस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि द्वे च नवोत्तरे षट् च कलाः, ततो द्वयोर्वक्षस्कारयोर्मीलने यथोक्तं मानमिति, अथैतासां स्वरूपप्ररूपणायाह––'उत्तरकुराए ण'मित्यादि, उत्तरकुरूणां भदन्त ! कीदृश आकारभावप्रत्यवतारः–स्वरूपाविर्भावः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, एवमुक्तन्यायेन पूर्वं भरतप्रकरणे वर्णिता या एव सुषमसुषमायाः आद्यारकस्य वक्तव्यता सैव निरवशेषा नेतव्या,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८६-८७]

दीप अनुक्रम [१४१--१४२]

कियत्पर्यन्तमित्याह—यावत्षट्प्रकाराः पद्मगन्धादयो मनुष्यास्तावदिति ॥ उक्तोत्तरकुरुवक्तव्यताऽथ तद्वर्त्तिनौ यमकपर्वतौ प्ररूपयति—

कहि णं भन्ते! उत्तरकुराए जमगाणामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?, गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठजोअणसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए उभओ कूले एत्थ णं जमगाणामं दुवे पव्वया पण्णत्ता, जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं मूले एगं जोअणसहस्सं आयामविक्खम्भेणं मज्झे अद्धट्ठमाणि जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं उवरिं पंच जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं मूले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं मज्झे दो जोअणसहस्साइं तिण्णि बावत्तरे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरि एगं जोअणसहस्सं पच्च य एकासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुआ जमगसंठाणसंठिआ सव्वकणगामया अच्छा सण्हा पत्तेअं २ पउमवरवेइआपरिक्खित्ता पत्तेअं २ वणसंडपरिक्खित्ता, ताओ णं पउमवरवेइआओ दो गाऊआइं उड्ढं उच्चत्तेणं पच्च धणुसयाइं विक्खम्भेणं, वेइआवणसण्डवण्णओ भाणिअव्वो, तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे पासायवडेंसगा पं०, ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयामविक्खंभेणं पासायवण्णओ भाणिअव्वो, सीहासणा सपरिवारा जाव एत्थ णं जमगाणं देवाणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, से केणट्ठेणं भन्ते !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ यमकौ पर्वतौ वर्णनं क्रियते

एवं वुच्चइ जमगा पव्वया २?, गोअमा! जमगपव्वएसु णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे खुड्डाखुड्डियासु वावीसु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पलाइं जाव जमगवण्णाभाइं जमगा य इत्थ दुवे देवा महिड्ढीया, ते णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं जाव भुञ्जमाणा विहरंति, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ–जमगपव्वया २, अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे जाव जमगपव्वया २ । कहि णं भन्ते! जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ?, गोअमा! जम्बुदीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं अण्णंमि जम्बुद्दीवे २ बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ बारस जोअणसहस्साइं आयामविक्खम्भेणं सत्तत्तीसं जोअणसहस्साइं णव य अडयाले जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, पत्तेअं २ पायारपरिक्खित्ता, ते णं पागारा सत्तत्तीसं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं मूले अद्धत्तेरस जोअणाइं विक्खम्भेणं मज्झे छ सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं उवरिं तिण्णि सअद्धकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुआ बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा सव्वरयणामया अच्छा, ते णं पागारा णाणामणिपञ्चवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोहिआ, तंजहा–किण्हेहिं जाव सुक्किलेहिं, ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं देसूणं अद्धकोसं उद्धं उच्चत्तेणं पञ्च धणुसयाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमया अच्छा, जमिगाणं रायहाणीणं एगमेगाए बाहाए पणवीसं पणवीसं दारसयं पण्णत्तं, ते णं दारा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खम्भेणं तावइअं चेव पवेसेणं, सेआ वरकणगथूमिआगा एवं रायप्पसेणइज्जविमाणवत्तव्वयाए दारवण्णओ जाव अट्ठट्ठमंगलगाइंति, जमियाणं रायहाणीणं चउद्दिसिं पञ्चपञ्च जोअणसए अबाहाए चत्तारि वणसण्डा पण्णत्ता, तंजहा—असोगवणे १ सत्तिवण्णवणे२ चंपगवणे२ चूअवणे४, ते णं वणसंडा साइरेगाइं बारसजोअण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्साइं आयामेणं पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं पत्तेअं २ पागारपरिक्खित्ता किण्हा वणसण्डवण्णओ भूमीओ पासायवडेंसगा य भाणिअव्वा, जमिगाणं रायहाणीणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते वण्णगोत्ति, तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे उवयारियालयणा पण्णत्ता, बारस जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं तिण्णि जोअणसहस्साइं सत्त य पञ्चाणउए जोअणसए परिक्खेवेणं अद्धकोसं च बाहल्लेणं सव्वजंबूणयामया अच्छा, पत्तेअं पत्तेअं पउमवरवेइआपरिक्खित्ता, पत्तेअं पत्तेअं वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो, तिसोवाणपडिरूवगा तोरणचउद्दिसिं भूमिभागा य भाणिअव्वत्ति, तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयामविक्खम्भेणं वण्णओ उल्लोआ भूमिभागा सीहासणा सपरिवारा, एवं पासायपंतीओ (एत्थ पढमापंती ते णं पासायवेडिंसगा) एक्कतीसं जोअणाइं कोसं च उद्धं उच्चत्तेणं साइरेगाइं अद्धसोलसजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं बिइअपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धसोलसजोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं तइअपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं साइरेगाइं अद्धुट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं वण्णओ सीहासणा सपरिवारा, तेसि णं मूलपासायवडिंसयाणं उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं जमगाणं देवाणं सहाओ सुहम्माओ पण्णत्ताओ, अद्धतेरस जोअणाइं आयामेणं छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं णव जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठा सभावण्णओ, तासिणं सभाणं सुहम्माणं तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता, ते णं दारा दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जोअणं विक्खम्भेणं तावइअं चेव पवेसेणं, सेआ वण्णओ जाव वणमाला, तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेअं २ तओ मुहमंडवा पण्णत्ता, ते णं मुहमंडवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

अद्धत्तेरसजोअणाइं आयामेणं छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं साइरेगाइं दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव दारा भूमिभागा यत्ति, पेच्छाघरमंडवाणं तं चेव पमाणं भूमिभागो मणिपेढिआओत्ति, ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयामविक्खम्भेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईआ सीहासणा भाणिअव्वा, तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ, तासि णं उप्पिं पत्तेअं २ तओ थूभा, ते णं थूभा दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं सेआ संखतल जाव अट्ठट्ठमंगलया, तेसि णं थूभाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयामविक्खम्भेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं, जिणपडिमाओ वत्तव्वाओ, चेइअरुक्खाणं मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं चेइअरुक्खवण्णओत्ति, तेसि णं चेइअरुक्खाणं पुरओ ताओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ, ताओ णं मणिपेढिआओ जोयणं आयामविक्खम्भेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं, तासि णं उप्पिं पत्तेअं २ महिंदज्झया पण्णत्ता, ते णं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं बाहल्लेणं वइरामयवट्ट वण्णओ वेइआवणसंडतिसोवाणतोरणा य भाणिअव्वा, तासि णं सभाणं सुहम्माणं छण्हमणोगुलिआसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा--पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ पण्णत्ताओ पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ दक्खिणेणं एगा साहस्सी उत्तरेणं एगा जाव दामा चिट्ठंतित्ति, एवं गोमाणसिआओ, णवरं धूवघडिआओत्ति, तासि णं सुहम्माणं सभाणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, मणिपेढिआ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं, तासि णं मणिपेढिआणं उप्पिं माणवए चेइअखम्भे महिंदज्झयप्पमाणे उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हेट्ठा छक्कोसे वज्जित्ता जिणसकहाओ पण्णत्ताओत्ति, माणवगस्स पुव्वेणं सीहासणा सप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१४३-१४५]

रिवारा पन्नत्थिमेणं सयणिज्जवण्णओ, सयणिज्जाणं उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए खुड्डागमहिंदज्झया मणिपेढिआविहूणा महिंदज्झयप्पमाणा, तेसिं अवरेणं चोप्फाला पहरणकोसा, तत्थ णं बहवे फलिहरयणपामुक्खा जाव चिट्ठंति, सुहम्माणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा, तासि णं उत्तरपुरत्थिमेणं सिद्धाययणा एस चेव जिणघराणवि गमोत्ति, णवरं इमं णाणत्तं—एतेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं, तासिं उप्पिं पत्तेअं २ देवच्छंदया पण्णत्ता, दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं साइरेगाइं दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं सव्वरयणामया जिणपडिमा वण्णओ जाव धूवकडुच्छुगा, एवं अवसेसाणवि सभाणं जाव उववायसभाए सयणिज्जं हरओ अ, अभिसेअसभाए बहु आभिसेक्के भंडे, अलंकारिअसभाए बहु अलंकारिअभंडे चिट्ठइ, ववसायसभासु पुत्थयरयणा, णंदा पुक्खरिणीओ, बलिपेढा दो जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं जावत्ति,–उववाओ संकप्पो अभिसेअविहूसणा य ववसाओ । अच्चणिअसुधम्मगमो जहा य परिवारणाइद्धी ॥ १ ॥ जावइयंमि पमाणंमि हुंति जमगाओ णीलवंताओ । तावइअमन्तरं खलु जमगदहाणं दहाणं च ॥ २ ॥ (सूत्रं ८८)

'कहि णं'मित्यादि, क्व भदन्त ! उत्तरकुरुषु यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ ?, गौतम ! नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तात् इत्यत्र दाक्षिणात्यं चरमान्तं आरभ्येति ज्ञेयं, क्वचिल्लोपे पञ्चमी, दाक्षिणात्याच्चरमान्तादारभ्यार्वाक् दक्षिणाभिमुखमित्यर्थः, अष्टौ योजनशतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्याबाधयाऽपान्तराले कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या उभयोः कूलयोः एकः पूर्वकूले एकः पश्चिमकूले इत्यर्थः, अबान्तरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ, एकं योजनसहस्रमूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतान्युद्वेधेन उच्छ्रयचतुर्थांशस्य भूम्यवगाहात् मूले योजनसहस्रमायामविष्कम्भाभ्यां वृत्ताकारत्वात् मध्ये–भूतलतः पञ्चयोजनशतातिक्रमेऽर्द्धाष्टमानि योजनशतानि आयामविष्कम्भाभ्यां उपरि–सहस्रयोजनातिक्रमे पञ्चयोजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां मूले त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च योजनशतं द्वाषष्ट्यधिकं किंचिद्विशेषाधिकं कियत्कलमित्यर्थः, परिक्षेपेण, एवं मध्यपरिधिरुपरितनपरिधिश्च स्वयमभ्यूह्यौ, मूले विस्तीर्णौ मध्ये संक्षिप्तावुपरि तनुकौ यमकौ–यमलजातौ भ्रातरौ तयोर्यत्संस्थानं तेन संस्थितौ, परस्परं सदृशसंस्थानावित्यर्थः, अथवा यमका नाम शकुनिविशेषास्तत्संस्थानसंस्थितौ, संस्थानं चानयोर्मूलतः प्रारभ्य संक्षिप्तसंक्षिप्तप्रमाणत्वेन गोपुच्छस्येव बोध्यं, सर्वात्मना कनकमयौ शेषं व्यक्तं, अष्टशताद्यङ्कोत्पत्तिरेवं–नीलवद्वर्षधरस्य यमकयोश्च प्रथमं यमकयोः प्रथमह्रदस्य च द्वितीयं प्रथमह्रदस्य द्वितीयह्रदस्य च तृतीयं द्वितीयह्रदस्य तृतीयह्रदस्य च चतुर्थं तृतीयह्रदस्य चतुर्थह्रदस्य च पंचमं चतुर्थह्रदस्य पंचमह्रदस्य च षष्ठं पंचमह्रदस्य वक्षस्कारगिरिपर्यन्तस्य च सप्तमं एतानि च सप्ताप्यन्तराणि समप्रमाणानि, ततश्च कुरुविष्कम्भात् योजन ११८४२ कला २ इत्येवंरूपात् योजनसहस्रायामयोर्यमकयोः योजनसहस्रमेकं तावत्प्रमाणायामानां पंचानां ह्रदानां च योजनसहस्रमे(कै)कं उभयमीलने योजनसहस्रषट्कं शोध्यते शोधिते च जातं योजन ५८४२ कला २ ततः सप्तभिर्भागे हृते ८३४ ४, यच्चावशिष्टं कुरुसत्कं कलाद्वयं तदल्पत्वान्न विवक्षितमिति । अत्रैवानन्तरोक्तवेदिकावनखण्डप्रमाणाद्याह––'ताओ

For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

ण'मित्यादि, व्यक्तं, सम्प्रत्येतयोर्यदस्ति तदाह–'तेसि ण'मित्यादि, तयोर्यमकपर्वतयोरुपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, अत्र पूर्वोक्तः सर्वो भूभागवर्णक उन्नेतव्यः, कियत्पर्यन्त इत्याह–यावत्तयोर्बहुसमरमणीयस्य भूभागस्य बहुमध्यदेशभागे द्वौ प्रासादावतंसकौ प्रज्ञप्तौ, अथ तयोरुच्चत्वाद्याह—'ते ण'मित्यादि, निरवशेषं विजयदेवप्रासादसिंहासनादिव्यवस्थितसूत्रवद्वक्तव्यं, नवरं यमकदेवाभिलापेनेति, अथानयोर्नामार्थं प्रश्नयन्नाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे यमकपर्वतयोस्तत्र तत्र देशे तत्र तत्र प्रदेशे क्षुद्रक्षुद्रिकासु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि अत्र यावत्पदात् कुमुदादीनि वाच्यानि, तथा यमकप्रभाणीति परिग्रहः, तत्र यमको–यमकपर्वतस्तत्प्रभाणि तदाकाराणीत्यर्थः, तथा यमकवर्णाभानि–यमकवर्णसदृशवर्णानीत्यर्थः, यदिवा यमकाभिधानौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ अत्र परिवसतस्तेन यमकाविति शेषं प्राग्वत्, अथानयो राजधानीप्रश्नावसरः–'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त ! यमकयोर्देवयोर्यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते ?, गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरेणान्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादशयोजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे यमकयोर्देवयोर्यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते, द्वादशयोजनसहस्राण्यायामविष्कम्भाभ्यां सप्तत्रिंशद्योजनसहस्राणि नव च योजनशतानि अष्टचत्वारिंशदधिकानि किंचिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, प्रत्येकं २ द्वे अपि प्राकारपरिक्षिप्ते, कीदृशौ तौ प्राकारावितिं तत्स्वरूपमाह—'ते णं पागारा'इत्यादि, तौ प्राकारौ सप्तत्रिंशद्योजनानि योजनार्द्धसहितानि ऊर्ध्वोच्चत्वेन मूले अर्द्धं त्रयोदशं योजनं येषु तान्यर्द्धत्रयोदशानि योजनानि विष्कम्भेन

॥३१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

मध्ये षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन, मूलविष्कम्भतो मध्यविष्कम्भस्यार्द्धमानत्वात्, उपरि त्रीणि सार्द्धक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेनास्यापि मध्यविष्कम्भतोऽर्द्धमानत्वात्, अत एव मूले विस्तीर्णावित्यादि पदत्रयं विवृतप्रायं, बहिर्वृत्तौ अनुपलक्ष्यमाणकोणत्वात् अन्तश्चतुरस्रौ उपलक्ष्यमाणकोणत्वात् शेषं प्राग्वत्, अथानयोः कपिशीर्षकवर्णकमाह—'ते णं पागारा णाणामणि'इत्यादि, तौ प्राकारौ नानामणीनां पद्मरागस्फटिकमरकताञ्जनादीनां पंचप्रकारा वर्णा येषु तानि तथा तैः कपिशीर्षकैः—प्राकाराग्रैरुपशोभितौ, एतदेव विवृणोति तद्यथा—कृष्णैर्यावच्छुक्लैरिति, अथैतेषां कपिशीर्षकाणामुच्चत्वादिमानमाह—'ते ण'मित्यादि, निगदसिद्धं, अथानयोः कियन्ति द्वाराणीत्याह—'जमिगाण'मित्यादि, यमिकयो राजधान्योरेकैकस्यां बाहायां पार्श्वे पंचविंशत्यधिकं २ द्वारशतं प्रज्ञप्तं, तानि द्वाराणि द्वाषष्टियोजनानि अर्द्धयोजनं च ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकत्रिंशद्योजनानि क्रोशं च विष्कम्भेन तावदेव प्रवेशेन श्वेतानि वरकनकस्तूपिकाकानि, लाघवार्थमतिदेशेनाह—एवं राजप्रश्नीये यद्विमानं सूर्याभनामकं तस्य वक्तव्यतायां यो द्वारवर्णकः स इहापि ग्राह्यः, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावदष्टाष्टमङ्गलकानि, अत्रातिदिष्टमपि सूत्रं न लिखितं, विजयद्वारप्रकरणे सूत्रतोऽर्थतश्च लिखितत्वात् अतिदिष्टत्वस्योभयत्रापि साम्याच्चेति, अथानयोर्बहिर्भागे वनखण्डवक्तव्यमाह—'जमियाण'मित्यादि, यमिकयो राजधान्योश्चतुर्दिशि चतसृणां दिशां समाहारश्चतुर्दिक् तस्मिंस्तथा, पूर्वादिष्वित्यर्थः, पंचपंचयोजनशतान्यबाधायां अपान्तराले कृत्वेति गम्यते चत्वारि वनखण्डानि प्रज्ञप्तानि,तद्यथा—अशोकवनं सप्तपर्णवनं चम्पकवनं आम्रवनमिति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

अथैतेषामायामाद्याह—'ते णं वणसण्डा'इत्यादि, ते च वनखण्डाः सातिरेकाणि द्वादशयोजनसहस्राणि आयामेन पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेन प्रत्येकं २ प्राकारैः परिक्षिप्ताः, कृष्णा इतिपदोपलक्षितो जम्बूद्वीपपद्मवरवेदिकाप्रकरणलिखितः पूर्णो वनखण्डवर्णको भूमयः प्रासादावतंसकाश्च भणितव्याः, भूमयश्चैवम्—'तेसि णं वडसंडाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं तणेहिं मणीहि अ उवसोभिआ'इति, प्रासादसूत्रमप्येवं 'तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ पासायवडेंसए पण्णत्ते, ते णं पासायवडेंसया बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उद्धं उच्चत्तेणं इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खम्भेणं अब्भुग्गयमूसिअपहसिआ इव, तहेव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे उल्लोओ सीहासणा सपरिवारा, तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीआ जाव पलिओवमट्ठिइआ परिवसंति तं०—असोए सत्तिवण्णे चंपए चूए' इति, अत्राशोकवनप्रासादेऽशोकनामा देवः, एवं त्रिष्वपि तत्तन्नामानो देवाः परिवसन्तीत्यर्थः, अथानयोरन्तर्भागवर्णकमाह—'जमिगाण'मित्यादि, यमिकयो राजधान्योरन्तर्मध्यभागे बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, वर्णक इतिसूत्रगतपदेन 'आलिंगपुक्खरेइ वा जाव पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए वण्णसंडविहुणो जाव बहवे देवा य देवीओ अ आसयंति जाव विहरंती'त्यन्तो ग्राह्यः, अत्र च उपकारिकालयनसूत्रमादर्शेष्वदृश्यमानमपि राजप्रश्नीयसूर्याभविमानवर्णके जीवाभिगमे विजयाराजधानीवर्णके च दृश्यमानत्वात् 'तिण्णि जोअणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोअणसए परिक्खेवेण'मित्यादिसूत्रस्यान्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

थानुपपत्तेश्च जीवाभिगमतो लिख्यते, आदर्शेष्वदृश्यमानत्वं च लेखकवैगुण्यादेवेति, तद्यथा—'तेसि ण'मित्यादि, तेषां च बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे द्वे उपकारिकालयने प्रज्ञप्ते, उपकरोति—उपष्टम्भाति प्रासादावतंसकानित्युपकारिका—राजधानीप्रभुसत्कप्रासादावतंसकादीनां पीठिका, अन्यत्र त्वियमुपकार्योपकारिकेतिप्रसिद्धा, उक्तं च—"गृहस्थानं स्मृतं राज्ञामुपकार्योपकारिके"ति सा लयनमिव—गृहमिव ते च प्रतिराजधानि भवत इति द्वे उक्ते, द्वादशयोजनशतानि आयामविष्कम्भाभ्यां त्रीणि योजनसहस्राणि सप्त च योजनशतानि पञ्चनवत्यधिकानि परिक्षेपेण, अर्द्धकोशं—धनुःसहस्रपरिमाणं बाहल्येन सर्वात्मना जाम्बूनदमये अच्छे प्रत्येकं २ प्रत्युपकारिकालयनं पद्मवरवेदिकापरिक्षिप्ते प्रत्येकं २ वनखण्डवर्णको भणितव्यः, स च जगतीगतपद्मवरवेदिकास्थवनखण्डानुसारेणेति, त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि—आरोहावरोहमार्गास्तानि चतुर्दिशि—पूर्वादिदिक्षु ज्ञेयानि तोरणानि चतुर्दिशि भूमिभागश्चोपकारिकालयनमध्यगतो भणितव्यः, तत्सूत्राणि जीवाभिगमोपाङ्गगतानि क्रमेणैवं—'से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोअणाइं चक्कवालविक्खंभेणं उवयारिआलयणसमए परिक्खेवेणं तेसि णं उवयारिआलयणाणं चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा पण्णत्ता, वण्णओ, तेसि णं उवयारियालयणाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं उवसोभिए'इति, अत्र व्याख्या सुगमा, अथ यमकदेवयोर्मूलप्रासादस्वरूपमाह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्योपकारिकालयनस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

न्तरे एकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः द्वाषष्टिं योजनान्यर्द्धयोजनं च ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकत्रिंशद्योजनानि क्रोशं चायामविष्कम्भाभ्यां वर्णको विजयप्रासादस्येव वाच्यः, उल्लोकौ–उपरिभागौ भूमिभागौ–अधोभागौ सिंहासने सपरिवारे–सामानिकादिपरिवारभद्रासनव्यवस्थासहिते, यच्चात्र उपकारिकालयनस्य प्रासादावतंसकस्य चैकवचनेन विवक्षा उल्लोकभूमिभागसिंहासनानां च द्विवचनेन विवक्षा तत्सूत्रकाराणां विचित्रप्रवृत्तिकत्वादिति, अथास्य परिवारप्रासादप्ररूपणामाह–'एवं पासायपंतीओ'इत्यादि, एवं–मूलप्रासादावतंसकानुसारेण परिवारप्रासादपङ्क्तयो ज्ञातव्या जीवाभिगमतः, पङ्क्तयश्चात्र मूलप्रासादतश्चतुर्दिक्षु पद्मानामिव परिक्षेपरूपा अवगन्तव्याः, न पुनः सूचिश्रेणिरूपाः, तत्र प्रथमप्रासादपंक्तिपाठ एवं–'से णं पासायवडेंसए अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तपमाणमित्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते' स प्रासादावतंसकोऽन्यैश्चतुर्भिः प्रासादावतंसकैस्तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रैः, अत्रोच्चत्वशब्देनोत्सेधो गृह्यते प्रमाणशब्देन च विष्कम्भायामौ, तेन मूलप्रासादापेक्षया अर्धोच्चत्वविष्कम्भायामैरित्यर्थः, सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, एषामुच्चत्वादिकं तु साक्षात् सूत्रकृदेवाह—एकत्रिंशद्योजनानि क्रोशं चोच्चत्वेन, सार्द्धद्वाषष्टियोजनानामर्द्धे एतावत एव लाभात्, सातिरेकाणि–अर्द्धक्रोशाधिकानि अर्द्धषोडशानि–सार्द्धपञ्चदशयोजनानि विष्कम्भायामाभ्यामिति, अथ द्वितीयप्रासादपंक्तिः, तत्पाठश्चैवम्–'ते णं पासायवडेंसया अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता'इति, ते प्रथमपंक्तिगताश्चत्वारः प्रासादाः प्रत्येकमन्यैश्चतुर्भिस्तदर्द्धोच्चत्वविष्कम्भायामै-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलप्रासादापेक्षया चतुर्भागप्रमाणैः प्रासादैः परिक्षिप्ताः, अत एवैते षोडश प्रासादाः सर्वसङ्ख्यया स्युः, एषामुच्चत्वादिकं तु साक्षादेव सूत्रकृदाह—ते प्रासादाः सातिरेकाणि—अर्द्धक्रोशाधिकानि सार्द्धपञ्चदशयोजनान्युच्चत्वेन सातिरेकाणि—क्रोशचतुर्थांशाधिकानि अर्द्धाष्टमयोजनान्यायामविष्कम्भाभ्यामिति, अथ तृतीया पंक्तिः, तत्सूत्रमेवम्—'ते णं पासायवडेंसया अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता' ते द्वितीयपरिधिस्थाः षोडश प्रासादाः प्रत्येकमन्यैश्चतुर्भिस्तदर्द्धोच्चत्वविष्कम्भायामैर्मूलप्रासादापेक्षयाऽष्टांशप्रमाणोच्चत्वविष्कम्भायामैः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, अत एवैते तृतीयपंक्तिगताश्चतुःषष्टिप्रासादाः, एतेषामुच्चत्वादिप्रमाणं सूत्रकृदाह—ते चतुःषष्टिरपि प्रासादाः सातिरेकाण्यर्द्धाष्टमयोजनान्युच्चत्वेन सातिरेकत्वं च प्राग्वत्, अध्युष्टानि—अर्द्धतृतीयानि सातिरेकाणि सार्द्धक्रोशाष्टांशाधिकानि विष्कम्भायामाभ्यां, एषां सर्वेषां वर्णकः सिंहासनानि च सपरिवाराणि प्राग्वत् । अत्र च पंक्तिप्रासादेषु सिंहासनं प्रत्येकमेकैकं, मूलप्रासादे तु मूलसिंहासनं सिंहासनपरिवारोपेतमित्यादि क्षेत्रसमासवृत्तौ श्रीमलयगिरिपादाः तथा प्रथमतृतीयपंक्त्योर्मूलप्रासादे परिवारे भद्रासनानि द्वितीयपंक्तौ च परिवारे पद्मासनानि इति जीवाभिगमोपाङ्गे इत्यादि विसंवादसमाधानं बहुश्रुतगम्यम्, यद्यपि जीवाभिगमे विजयदेवप्रकरणे तथा श्रीभगवत्यङ्गवृत्तौ चमरप्रकरणे प्रासादपंक्तिचतुष्कं तथाप्यत्र यमकाधिकारे पंक्तित्रयं बोध्यं, पंक्तित्रयप्रासादसंग्रह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥३२२॥

श्रैवम्— १६५ सर्वे सं. ८५ मूलप्रासादेन सह सर्वसंख्यया पञ्चाशीतिः प्रासादाः ८५, अथात्र सभापञ्चकं प्रपंचयितुकामः सुधर्मासभास्वरूपं निरूपयति–'तेसि ण'मित्यादि, तयोर्मूलप्रासादावतंसकयोरुत्तरपूर्वस्यां–ईशानकोणेऽत्रैतस्मिन् भागे यमकयोर्देवयोर्योग्ये सुधर्मे नाम सभे प्रज्ञप्ते, सुधर्माशब्दार्थस्तु सुष्ठु–शोभनो धर्मो–देवानां माणवकस्तम्भवर्त्ति-जिनसक्थ्याशातनाभीरुकत्वेन देवाङ्गनाभोगविरतिपरिणामरूपो यस्यां सा तथा, वस्तुतस्तु सुष्ठु–शोभनो धर्म्मो–राजधर्म्मः समन्तुनिर्मन्तुनिग्रहानुग्रहस्वरूपो यस्यां सा तथा, ते चार्द्धत्रयोदशयोजनान्यायामेन सक्रोशानि षट् योजनानि विष्कम्भेन नवयोजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन, अत्र लाघवार्थं सभावर्णकसूत्रमतिदिशति, अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टे इत्यादिपदसूचितः सभावर्णको जीवाभिगमोक्तो ज्ञेयः, स चैवं—'अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठाओ अब्भुग्गयसुकयवइर-वेइआतोरणवररइअसालभंजिआसुसिलिट्ठविसिट्ठसंठिअपसत्थवेरुलिअविमलखंभाओ णाणामणिकणगरयणखचिअउज्ज-लबहुसमसुविभत्तभूमिभागाओ ईहामिगउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिंनररुरुसरभचमरकुञ्जरवणलयपउमलयभत्ति-चित्ताओ खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामाओ विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्ताओविव अच्चीसहस्समालणीआओ रूवगसहस्सकलिआओ भिसमाणीओ भिब्भिसमाणीओ चक्खुल्लोअणलेसाओ सुहफासाओ सस्सिरीअरूवाओ कंचणम-णिरयणथूभिआगाओ णाणाविहपंचवण्णघंटापडागपरिमंडिअअग्गसिहराओ धवलाओ मरीइकवयविणिम्मुअंतीओ

४वक्षस्कारे यमकपर्वत वर्णनं सू. ८८

॥३२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

लाउल्लोइअमहिआओ गोसीससरससुरभिरत्तचन्दणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलाओ उवचिअचन्दणकलसाओ चन्दणघड-सुकयतोरणपडिदुवारदेसभागाओ आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिअमल्लदामकलावाओ पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोव-यारकलिआओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघेंतगन्धुद्धुआभिरामाओ सुगंधवरगंधिआओ गन्धवट्टिभू-आओ अच्छरगणसंघविकिण्णाओ दिव्वतुडिअसद्दसंपणदिआओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ'इति, अत्र व्याख्या तु सिद्धायतनतोरणादिवर्णकेषु उञ्छवृत्तिन्यायेन सुलभेति न पुनरुच्यते नवरं अप्सरोगणानां–अप्सरःपरिवा-राणां यः संघः–समुदायस्तेन सम्यक्–रमणीयतया विकीर्णा–आकीर्णा दिव्यानां त्रुटितानां–आतोद्यानां ये शब्दास्तैः सम्यक् श्रोत्रमनोहारितया प्रकर्षेण नदिता–शब्दवती, शेषं प्राग्वत्, अथास्यां कति द्वाराणीत्याह—'तासि णं सभाण'मित्यादि, तयोः सभयोः सुधर्मयोस्त्रिदिशि त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, पश्चिमायां द्वाराभावात्, तानि द्वाराणि प्रत्येकं द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेन योजनमेकं विष्कम्भेन तावदेव–योजनमेकं प्रवेशेन, श्वेता इत्यादि पदेन सूचितः परिपूर्णो द्वारवर्णको वाच्यो यावद्वनमाला, अथ मुखमण्डपादिषट्कनिरूपणायाह—'तेसि णं दाराण'मित्यादि, तेषां द्वाराणां पुरतः प्रत्येकं २ त्रयो मुखमण्डपाः प्रज्ञप्ताः, सभाद्वाराग्रवर्त्तिनो मण्डपा इत्यर्थः, ते च मण्डपा अर्द्धत्रयोदशयोजनान्यायामेन षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन सातिरेके द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेन, एतेषामपि 'अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा'इत्यादि वर्णनं सुधर्मासभा इव निरवशेषं द्रष्टव्यं, यावद् द्वाराणां भूमिभागानां च वर्णनं, यद्यप्यत्र द्वारान्तमेव सभावर्णनं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदतिदेशेन मुखमण्डपसूत्रेऽपि तावन्मात्रमेवायाति तथापि जीवाभिगमादिषु मुखमण्डपवर्णके भूमिभागवर्णकस्य दृष्टत्वात् अत्रातिदेशः, अथ प्रेक्षामण्डपवर्णकं लाघवादाह—'पेच्छाघरमण्डवाण'मित्यादि, प्रेक्षागृहमण्डपानां—रङ्गमण्डपानां तदेव—मुखमण्डपोक्तमेव प्रमाणं, भूमिभाग इतिपदेन सर्वं द्वारादिकभूमिभागपर्यन्तं वाच्यं, एषु च मणिपीठिका वाच्या, एतावदर्थसूचकमिदं सूत्रम्—'तेसि णं मुहमण्डवाणं पुरओ पत्तेअं २ पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता, ते णं पेच्छाघरमंडवा अद्धत्तेरसजोअणाइं आयामेणं जाव दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव मणिफासो, तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ वइरामया अक्खाडया पण्णत्ता, तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ'त्ति उक्तप्रायं, नवरमक्षपाटः—चतुरस्राकारो मणिपीठिकाधारविशेषः, अस्याः प्रमाणाद्यर्थमाह—'ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ सीहासणा भाणिअव्वा'इति, अत्र सिंहासनानि भणितव्यानि सपरिवाराणीत्यर्थः, शेषं व्यक्तम्, अथ स्तूपावसरः—'तेसि ण'मित्यादि, तेषा प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतो मणिपीठिकाः, अत्र बहुवचनं न प्राकृतशैलीभवं यथा द्विवचनस्थाने बहुवचनं हत्था पाया इत्यादिषु, किन्तु बहुत्वविवक्षार्थं, तेनात्र तिसृषु प्रेक्षागृहमण्डपद्वारादिक्षु एकैकसद्भावात् तिस्रो ग्राह्याः, अन्यत्र जीवाभिगमादिषु तथा दर्शनात्, अथैतासां मानमाह—'ताओ ण'मित्यादि, कण्ठ्यं, यद्यप्येतत्सूत्रादर्शेषु 'जोअणं आयामविक्खम्भेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं'इति पाठो दृश्यते तथापि जीवाभिगमपाठदृष्टत्वेन राजप्रश्नीयादिषु प्रेक्षामण्डपमणिपीठिकातः स्तूपमणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

पीठिकाया द्विगुणमानत्वेन दृष्टत्वाच्चायं सम्यक् पाठः सम्भाव्यते, आदर्शेषु लिपिप्रमादस्तु सुप्रसिद्ध एव, अथ स्तूपवर्णनायाह—'तासि णं'मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं २ स्तूपाः प्रज्ञप्ताः, जीवाभिगमादौ तु चैत्यस्तूपा इति, द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां 'व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति'रिति देशोने द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्या ग्राह्ये, अन्यथा मणिपीठिकास्तूपयोरभेद एव स्यात्, जीवाभिगमादौ तु सातिरेके द्वे योजने उच्चत्वमित्यर्थः, ते च श्वेताः, श्वेतत्वमेवोपमया द्रढयति—'संखदल'त्ति यावत्करणात् 'संखदलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययनिअरप्पगासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत्, कियद्दूरं ग्राह्यमित्याह—यावदष्टाष्टमङ्गलकानीति । अथ तच्चतुर्दिशि यदस्ति तदाह—'तासि णं थूभाण'मित्यादि, तेषां स्तूपानां प्रत्येकं चतुर्दिक्षु चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिकाः योजनमायामविष्कम्भेन अर्द्धयोजनं बाहल्येन, अत्र जिनप्रतिमा वक्तव्याः, तत्सूत्रं चेदम्—'तासि णं मणिपेढिआणं उप्पिं पत्तेअं पत्तेअं चत्तारि जिनपडिमाओ जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताओ पलिअंकसण्णिसण्णाओ थूभाभिमुहीओ सण्णिक्खित्ताओ चिट्ठंति, तंजहा—उसभा वद्धमाणा चन्दाणणा वारिसेणा'इति, एतद्वर्णनादिकं वैताढ्ये सिद्धायतनाधिकारे प्रागुक्तं, गताः स्तूपाः, 'चेइअरुक्खाण'मित्यादि, व्यक्तम्, अत्र चैत्यवृक्षवर्णको जीवाभिगमोक्तो वाच्यः, स चायम्—'तेसि ण चेइअरुक्खाणं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं०—वइरमूलरययसुपइट्ठिअविडिमा रिट्ठामयकंदवेरुलिअरुइलखंधा सुजायवरजायरूवपढमविसालसाला णाणामणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

रयणविविहसाहप्पसाहवेरुलिअपत्ततवणिज्जपत्तवेंटा जम्बूणयरत्तमउअसुकुमालपवालपल्लववरंकुरधरा विचित्तमणिरयणसुरभिकुसुमफलभरणमिअसाला सच्छाया सप्पभा सस्सिरीआ सउज्जोआ अमयरससमरसफला अहिअमणनयणिव्वुइकरा पासादीआ जाव पडिरूवा ४'इति, अत्र व्याख्या–तेषां चैत्यवृक्षाणामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–वज्ररत्नमयानि मूलानि येषां ते वज्रमूलाः तथा रजता–रजतमयी सुप्रतिष्ठिता विडिमा–बहुमध्यदेशभागे ऊर्ध्वविनिर्गता शाखा येषां ते तथा ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, रिष्टरत्नमयः कन्दो येषां ते तथा तथा वैडूर्यरत्नमयो रुचिरः स्कन्धो येषां ते तथा ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, सुजातं–मूलद्रव्यशुद्धं वरं–प्रधानं यज्जातरूपं–रूप्यं तदात्मिकाः प्रथमिका–मूलभूता विशालाः शालाः–शाखा येषां ते तथा, नानामणिरत्नात्मिका विविधाः शाखा–मूलशाखाविनिर्गतशाखाः प्रशाखाः–शाखाविनिर्गतशाखा येषा ते तथा, तथा वैडूर्याणि–वैडूर्यमयानि पत्राणि येषां ते तथा, तथा तपनीयानि–तपनीयमयानि पत्रवृन्तानि येषां ते तथा, ततः पूर्ववत् पदद्वयपदद्वयमीलनेन कर्मधारयः, जाम्बूनदा–जाम्बूनदनामकसुवर्णविशेषमया रक्तवर्णा मृदुसुकुमारा–अत्यन्तकोमलाः प्रवाला–ईषदुन्मीलितपत्रभावरूपाः पल्लवा–जातपूर्णप्रथमपत्रभावरूपा वरांकुराः–प्रथममुद्भिद्यमानास्तान् धरन्ति ये ते तथा, विचित्रमणिरत्नमयानि सुरभीणि कुसुमानि फलानि च तेषां भरेण नमिता–नामं ग्राहिताः शाखा येषां ते तथा, सती–शोभना छाया येषां ते सच्छायाः, एवं सत्प्रभाः अत एव सश्रीकाः तथा सोद्द्योताः मणिरत्नाभासुद्द्योतभावात्, अमृतरससमरसानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलानि येषां ते तथा, अधिकं नयनमनोनिर्वृतिकराः, शेषं प्राग्वत्, 'ते णं चेइअरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं तिलयलवयछत्तोवगसिरीससत्तिवण्णलोद्धवचंदणनीवकुडयकयंबपणसतालतमालपिआलपिअंगुपारावयरायरुक्खनन्दिरुक्खेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता'इति, ते चैत्यवृक्षा अन्यैर्बहुभिस्तिलकलवगच्छत्रोपगशिरीषसप्तपर्णदधिपर्णलोध्रधवचन्दननीपकुटजकदम्बपनसतालतमालप्रियालप्रियंगुपारापतराजवृक्षनन्दिवृक्षैः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, एते च वृक्षाः केचिन्नामकोशतः केचिल्लोकतश्चावगन्तव्याः, 'ते णं तिलया जाव नंदिरुक्खा मूलवन्तो कंदवन्तो जाव सुरम्मा' ते च तिलकादयो वृक्षा मूलवन्तः कन्दवन्त इत्यादि वृक्षवर्णनं प्रथमोपाङ्गतोऽवसेयं यावत्सुरम्या इति, 'ते णं तिलया जाव नन्दिरुक्खा अन्नाहिं बहूहिं पउमलयाहिं जाव सामलयाहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता' ते च तिलकादयो वृक्षाः अन्याभिर्बहूभिः पद्मलताभिर्यावच्छ्यामलताभिः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, यावच्छब्दादत्र नागलताचम्पकलताद्या ग्रहणीयाः, 'ताओ णं पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमिआओ जाव पडिरूवाओ' ताश्च पद्मलताद्या नित्यं कुसुमिता इत्यादि लतावर्णनं यावत्प्रतिरूपाः, 'तेसि णं चेइअरुक्खाणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलया बहवे झया छत्ताइच्छत्ता,' तेषां चैत्यवृक्षाणामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहवः कृष्णचामरध्वजाः छत्रातिच्छत्राणीत्यादि चैत्यस्तूपकवद्वक्तव्यं । गताश्चैत्यवृक्षाः, अथ महेन्द्रध्वजावसरः—'तेसि णं चेइअरुक्खाण'मित्यादि, तेषां चैत्यवृक्षाणां पुरतस्तिस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिकाः योजनमायामविष्कम्भाभ्यां अर्द्धयोजनं बाहल्येन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥३२५॥

'तासि णं उप्पिं पत्तेअं'इत्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं २ महेन्द्रध्वजाः प्रज्ञप्ताः, ते चार्द्धाष्टमानि–सार्द्धसप्तयोजनानि ऊर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धक्रोशं–धनुःसहस्रमुद्वेधेन–उण्डत्वेन तदेव बाहल्येन, 'वइरामयवट्ट'इतिपदोपलक्षितः परिपूर्णो जीवाभिगमाद्युक्तवर्णको ग्राह्यः, स चायम्–'वइरामयवट्टलट्ठसंठिअसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपइट्ठिआ अणेगवरपञ्चवण्णकुडभीसहस्सपरिमण्डिआभिरामा वाउद्धुअविजयवेजयन्तीपडागाछत्ताइच्छत्तकलिआ तुंगा गगणतलमभिलंघमाणसिहरा पासादीआ जाव पडिरूवा'इति, अत्र व्याख्या—वज्रमयाः तथा वृत्तं–वर्तुलं लष्टं–मनोज्ञं संस्थितं–संस्थानं येषां ते तथा तथा सुश्लिष्टा यथा भवन्ति एवं परिघृष्टा इव खरशाणया पाषाणप्रतिमेव सुश्लिष्टपरिघृष्टाः तथा मृष्टाः–सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमेव तथा सुप्रतिष्ठिताः–मनागप्यचलनात् तथा अनेकैर्वरैः–प्रधानैः पञ्चवर्णैः कुडभीनां–लघुपताकानां सहस्रैः परिमण्डिताः सन्तोऽभिरामाः शेषं प्राग्वत्, 'तेसि णं महिंदज्झयाणं उप्पिं अट्ठट्ठमङ्गलया झया छत्ताइछत्ता' इत्यादि सर्वं तोरणवर्णक इव वाच्यं जीवाभिगमत इति। उक्ता महेन्द्रध्वजाः, अथ पुष्करिण्यः ताश्च 'वेइआवणसंड' इत्यादिपर्यन्तसूत्रेण संगृह्यते, तथाहि—'तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ तिदिसिं तओ णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ अद्धतेरसजोअणाइं आयामेणं छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं दसजोअणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पुक्खरिणीवण्णओ पत्तेअं २ पउमवरवेइआपरिक्खित्ताओ पत्तेअं २ वणसण्डपरिक्खित्ताओ वण्णओ' तथा 'तासि णं णन्दापुक्खरिणीणं पत्तेअं २ तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तेसि णं तिसो-

४वक्षस्कारे यमकपर्वत वर्णनं सू. ८८

॥३२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणपडिरूवगाणं वण्णओ तोरणवण्णओ अ भाणिअवो जाव छत्ताइछत्ताइं' इति, अत्र जगतीगतपुष्करिणीवत् सर्वं वाच्यं, अथ सुधर्मसभायां यदस्ति तदाह—'तासि ण'मित्यादि, तयोः सभयोः सुधर्मयोः षट् मनोगुलिकानां—पीठिकानां सहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तथाहि—पूर्वस्यां द्वे सहस्रे पश्चिमायां द्वे सहस्रे दक्षिणस्यामेकं सहस्रं उत्तरस्यामेकं सहस्रं, 'जाव दामा' इत्यत्र यावत्पदादिदं ग्राह्यम्—'तासु णं मणोगुलिआसु बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता, तेसि णं सुवण्णरुप्पमएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदन्तगा पण्णत्ता,तेसु णं वइरामएसु नागदन्तेसु बहवे किण्हसुत्तवग्घारिअमल्लदामकलावा जाव सुक्किलसुत्तवग्घारिअमल्लदामकलावा, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा चिट्ठंति'त्ति सर्वं विजयद्वारवद्वाच्यम्, अनन्तरोक्तं गोमानसिकासूत्रेऽतिदिशति—'एवं गोमाणसिआओ'इत्यादि,एवं—मनोगुलिकान्यायेन गोमानस्यः—शय्यारूपाः स्थानविशेषा वाच्याः, नवरं दामस्थाने धूपवर्णको वाच्यः,अथास्या एव भूभागवर्णकमाह—'तासि ण'मित्यादि, तयोः सुधर्मयोः सभयोः अन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, अत्र मणिवर्णादयो वाच्याः, उल्लोकाः पद्मलतादयोऽपि च चित्ररूपाः, अत्र विशेषतो यद्वक्तव्यं तदाह—'मणिपेढिआ'इत्यादि,अत्र सुधर्मयोर्मध्यभागे प्रत्येकं मणिपीठिका वाच्या, द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनं बाहल्येन,'तासि ण'मित्यादि,तयोर्मणिपीठिकयोरुपरि प्रत्येकं माणवकनाम्नि चैत्यस्तम्भे महेन्द्रध्वजसमाने प्रमाणतोऽर्द्धाष्टमयोजनप्रमाण इत्यर्थः वर्णकतोऽपि महेन्द्रध्वजवत्, उपरि षट् क्रोशान् अवगाह्य उपरितनषट्क्रोशान् वर्जयित्वेत्यर्थः अधस्तादपि षट् क्रोशान् वर्जयित्वा मध्येऽर्धपञ्चमेषु योजनेषु इति गम्यं, जिनसक्थीनि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

व्यन्तरजातीयानां जिनदंष्ट्राग्रहणेऽनधिकृतत्वात्, सौधर्मेशानचमरबलीन्द्राणामेव तद्ग्रहणात्, प्रज्ञप्तानीति, शेषो वर्णकश्चात्र जीवाभिगमोक्तो ज्ञेयः, स चायं—'तस्स णं माणवगचेइअस्स खम्भस्स उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हिट्ठावि छक्कोसे वज्जित्ता मज्झे अद्धपञ्चमेसु जोअणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं बहवे वइरामया णागदन्तगा पण्णत्ता, तेसु णं बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता, तेसु णं बहवे वइरामया गोलयवट्टसमुग्गया पण्णत्ता, तेसु णं बहवे जिणसकाहाओ सण्णिखित्ताओ चिट्ठन्ति,जाओ णं जमगाणं देवाणं अन्नेसिं च बहूणं वाणमन्तराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइअं पज्जुवासणिज्जाओ' इति, अत्र व्याख्या—'तस्स णमित्याद्यारभ्य वज्जित्ता' इति पर्यन्तं प्रायः प्रस्तुतसूत्रे साक्षाद् दृष्टत्वादनन्तरमेव व्याख्यातं, मध्येऽर्द्धपञ्चमेषु योजनेषु अवशिष्टयोजनेष्वित्यर्थः, अत्रान्तरे बहूनि सुवर्णरूप्यमयानि फलकानि प्रज्ञप्तानि, तेषु फलकेषु बहवो वज्रमया नागदन्तकाः प्रज्ञप्ताः, तेषु नागदन्तकेषु बहूनि रजतमयानि शिक्यकानि प्रज्ञप्तानि, तेषु शिक्यकेषु बहवो वज्रमया गोलको—वृत्तोपलस्तद्वद् वृत्ताः समुद्गकाः—प्रसिद्धाः प्रज्ञप्ताः, तेषु समुद्गकेषु बहूनि जिनसक्थीनि सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, यानि यमकयोर्देवयोः अन्येषां च बहूनां यमकराजधानीवास्तव्यानां वानमन्तराणां देवानां देवीनां च अर्चनीयानि चन्दनादिना वन्दनीयानि स्तुत्यादिना पूजनीयानि पुष्पादिना सत्कारणीयानि वस्त्रादिना सन्माननीयानि बहुमानकरणतः कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यमिति पर्युपासनीयानीति, एतदा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

शातनाभीरुतयैव तत्र देवा देवयुवतिभिर्न सम्भोगादिकमाद्रियन्ते नापि मित्रदेवादिभिर्हास्यक्रीडादिपराः स्युरिति, ननु जिनगृहादिषु जिनप्रतिमानां देवानामर्चनीयत्वादिकमाशातनात्यागश्च युक्तौ, तासां सद्भावस्थापनारूपत्वेनाराध्यतासङ्कल्पप्रादुर्भावसम्भवात्, न तथा जिनदंष्ट्रादिषु, तेन कथं तौ घटेते?, पूज्यानामङ्गानि पूज्या इव पूज्यानीति सङ्कल्पस्यात्रापि प्रादुर्भावात् पूज्यत्वं महावैरोपशमकगुणवत्त्वेन च, अस्मिन्नर्थे पूज्यश्रीरत्नशेखरसूरीन्द्रोपज्ञश्राद्धविधिवृत्तिसम्मतिः, तथाहि परीक्षाप्राप्तनिर्लोभतागुणं रत्नसारकुमारं प्रति चन्द्रशेखरवचः—"हरिसेनानीर्हरिणैगमेष्यनिमिषाग्रणीः। युक्तमेव तव श्लाघां, कुरुते, सुरसाक्षिकम् ॥ १ ॥ वक्ति स्म विस्मयस्मेरः, कुमारः स सुराग्रणीः। मामश्लाघ्यं श्लाघते किं?, सोऽप्युवाच शृणु ब्रुवे ॥२॥ नव्योत्पन्नतयाऽन्यर्हि, सौधर्मेशानशक्रयोः। विवादोऽभूद्विमानार्थं, हर्म्यार्थमिव हर्मिणोः ॥ ३ ॥ विमानलक्षा द्वात्रिंशत्तथाऽष्टाविंशतिः क्रमात्। सन्त्येतयोस्तथाऽप्येतौ, विवदेते स्म धिग् भवम् ॥ ४ ॥ तयोरिवोर्वीश्वरयोर्विमानर्द्धिप्रलुब्धयोः। नियुद्धादिमहायुद्धान्यप्यभूवन्ननेकशः ॥ ५ ॥ निवार्यते हि कलहस्तिरश्चां तरसा नरैः। नराणां च नराधीशैर्नराधीशां सुरैः क्वचित् ॥ ६ ॥ सुराणां च सुराधीशैः, सुराधीशां पुनः कथम्। केन वा स निवार्येत, वज्राग्निरिव दुःशमः? ॥ ७ ॥ युग्मम्। माणवकाख्यस्तम्भस्थार्हद्दंष्ट्राशान्तिवारिणा। आधिव्याधिमहादोषमहावैरनिवारिणा ॥ ८ ॥ कियत्कालव्यतिक्रान्तौ, सिक्तौ महत्तरैः सुरैः। बभूवतुः प्रशान्तौ तौ, किं वा सिध्येन्न तज्जलात् ॥ ९ ॥ युग्मम्। ततस्तयोर्मिथस्त्यक्तवैरयोः सचिवैर्द्वयोः। प्रोचे पूर्वव्यवस्थैवं, सुधियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

समये हि गीः ॥ १० ॥ सा चैवम्--दक्षिणस्यां विमाना ये, सौधर्मेशस्य तेऽखिलाः । उत्तरस्यां तु ते सर्वेऽपीशानेन्द्रस्य सत्तया ॥ ११ ॥ पूर्वस्यामपरस्यां च, वृत्ताः सर्वे विमानकाः । त्रयोदशापीन्द्रकाश्च, स्युः सौधर्मसुरेशितुः ॥ १२ ॥ पूर्वापरदिशोरस्राश्चतुरस्राश्च ते पुनः । सौधर्माधिपतेरर्द्धा, अर्द्धा ईशानचक्रिणः ॥ १३ ॥ सनत्कुमारमाहेन्द्रेऽप्येष एव भवेत् क्रमः । वृत्ता एव हि सर्वत्र, स्युर्विमानेन्द्रकाः पुनः ॥ १४ ॥ इत्थं व्यवस्थया चेतःस्वास्थ्यमास्थाय सुस्थिरौ । विमत्सरौ प्रीतिपरौ, जज्ञाते तौ सुरेश्वरौ ॥१५॥" इति अथ प्रकृतं प्रस्तूयते--'माणवगस्स'इत्यादि, माणवकस्य चैत्यस्तम्भस्य पूर्वेण--पूर्वस्यां दिशि सुधर्मायामेव सभायां सिंहासने सपरिवारे स्तः, यमकदेवयोः प्रत्येकमेकैकसद्भावात्, तस्मादेव पश्चिमायां दिशि शयनीये वर्णकश्च तदीयः श्रीदेवीवर्णनाधिकारे उक्तः, शयनीययोरुत्तरपूर्वस्यां दिशि क्षुल्लकमहेन्द्रध्वजौ स्तः, तौ च मानतो महेन्द्रध्वजप्रमाणौ, सार्द्धसप्तयोजनप्रमाणावुच्चत्वेनार्द्धक्रोशमुद्वेधेन--बाहल्याभ्यामित्यर्थः, ननु यदीमौ प्रागुक्तमहेन्द्रध्वजतुल्यौ तदा किमिमौ क्षुल्लकेन विशेषितौ ?, उच्यते, मणिपीठिकाविहीनौ, अत एव क्षुल्लौ, कोऽर्थः ?--द्वियोजनप्रमाणमणिपीठिकोपरिस्थितत्वेन पूर्वे महान्तो महेन्द्रध्वजास्तदपेक्षया इमौ च क्षुल्लावित्यर्थादागतमिति, तयोः क्षुल्लमहेन्द्रध्वजयोरेकैकराजधानीसम्बन्धिनोरपरेण पश्चिमायां चोप्पालो नाम प्रहरणकोशः--प्रहरणभाण्डागारं, तत्र बहूनि परिघरत्नप्रमुखाणि यावत्पदात् प्रहरणरत्नानि सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, 'सुहम्माण'मित्यादि, सुधर्मयोरुपर्यष्टाष्टमङ्गलकानि इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

तावद् वक्तव्यं यावद् बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः सर्वरत्नमया इत्यादि। सुधर्मसभातः परं किमस्तीत्याह—'तासि ण'—मित्यादि, तयोः सुधर्मसभयोरुत्तरपूर्वस्यां दिशि द्वे सिद्धायतने प्रज्ञप्ते इति शेषः, प्रतिसभमेकैकसद्भावादिति, अत्र लाघवार्थमतिदेशमाह—एष एव—सुधर्मासभोक्त एव जिनगृहाणामपि गमः—पाठोऽवगन्तव्यः, स चायम्—'ते णं सिद्धायतणा अद्धतेरसजोअणाइं आयामेणं छस्सकोसाइं विक्खम्भेणं णव जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठा' इत्यादि, यथा सुधर्म्मायास्त्रीणि पूर्वदक्षिणोत्तरवर्त्तीनि द्वाराणि तेषां पुरतो मुखमण्डपाः तेषां च पुरतः प्रेक्षामण्डपाः तेषां पुरतः स्तूपाः तेषां पुरतश्चैत्यवृक्षाः तेषां पुरतो महेन्द्रध्वजाः तेषां पुरतो नन्दापुष्करिण्य उक्तास्तदनु सभायां षड् मनोगुलिकासहस्राणि षड् गोमानसीसहस्राण्युक्तानि एवमनेनैव क्रमेण सर्वं वाच्यम्, अत्र च सुधर्मातो यो विशेषस्तमाह—'णवरं इमं णाणत्तं'इत्यादि व्यक्तम्, अथ सुधर्मासभोक्तमेव सभाचतुष्केऽतिदिशन्नाह—'एवं अवसेसाणवि' इत्यादि, एवं सुधर्मान्यायेन अवशिष्टानामुपपातसभादीनां वर्णनं ज्ञेयं, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावदुपपातसभायां—उत्पित्सुदेवोत्पत्त्युपलक्षितसभायां शयनीयं वर्णनीयं तच्च प्राग्वत्, तथा ह्रदश्च वक्तव्यो नन्दापुष्करिणीमानः, स चोत्पन्नदेवस्य शुचित्वजलक्रीडादिहेतुः, ततोऽभिषेकसभायां—अभिनवोत्पन्नदेवाभिषेकमहोत्सवस्थानभूतायां बहु आभिषेक्यं—अभिषेकयोग्यं भाण्डं वाच्यं, तथा अलङ्कारसभायां—अभिषिक्तसुरभूषणपरिधानस्थानरूपायां सुबहु अलङ्कारिकभाण्डं—अलङ्कारयोग्यं भाण्डं तिष्ठति, व्यवसायसभयोः—अलंकृतसुरशुभाध्यवसायानुचिन्तनस्थानरूपयोः पुस्तकरत्ने ततो बलिपीठे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

अर्चनिकोत्तरकालं नवोत्पन्नसुरयोर्बलिविसर्जनपीठे द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनं बाहल्येन यावत्पदात् 'सव्व-रयणामया अच्छा पासाईआ ४' ततो नन्दाभिधाने पुष्करिण्यौ बलिक्षेपोत्तरकालं सुधर्मासभां जिगमिषतोरभिनवो-त्पन्नसुरयोर्हस्तपादप्रक्षालनहेतुभूते, अत एव सूत्रे प्रथमोक्ते अपि नन्दापुष्करिण्यौ प्रयोजनक्रमवशात् पश्चाद् व्याख्याते क्रमप्राधान्याद् व्याख्यानस्य, अथ यथा सुधर्मासभातः उत्तरपूर्वस्यां दिशि सिद्धायतनं तथा तस्योत्तरपूर्वस्यां दिशि उपपातसभा, एवं पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् परं परमुत्तरपूर्वस्यां वाच्यं यावद्बलिपीठादुत्तरपूर्वस्यां नन्दा पुष्करिणीति, अत्र च 'जमिगाओ रायहाणीओ' इत्यादिसूत्रेषु द्विवचनेन, 'तासिं जाव उप्पिं माणवए चेइअखम्भे' इत्यादिसूत्रेष्वेक-वचनेन निर्देशः सूत्रकाराणां प्रवृत्तिवैचित्र्यादिति ॥ वर्णिते यमिकाभिधे राजधान्यौ, अथानयोरधिपयोर्यमकदेवयो-रुत्पत्त्यादिस्वरूपाख्यानाय विस्तारुचिः सूत्रकृत् संग्रहगाथामाह—'उववाओ संकप्पो'इत्यादि, उपपातो—यमकयो-र्देवयोरुत्पत्तिर्वाच्या, ततः उत्पन्नयोः सुरयोः शुभव्यवसायचिन्तनरूपः सङ्कल्पः, ततोऽभिषेकः—इन्द्राभिषेकः, ततः विभूषणा—अलङ्कारसभायामलङ्कारपरिधानं, ततो व्यवसायः—पुस्तकरत्नोद्घाटनरूपः, ततः अर्चनिका—सिद्धायतनाद्यर्चा, ततः सुधर्मायां गमनं, यथा च परिवारणा—परिवारकरणं स्वस्वोक्तदिशि परिवारस्थापनं यथा यमकयोर्देवयोःसिंहासनयोः परितो वामभागे चतुःसहस्रसामानिकभद्रासनस्थापनं सैव ऋद्धिः—सम्पत् रूपनिष्पत्तिस्तु 'णिज् बहुलं नाम्नः कृगादिषु' (श्रीसिद्ध० अ०३ पा०४ सू०४२) इत्यनेन करणार्थे 'णिवेत्त्यासश्रथघट्टवन्देरनः' (श्रीसिद्ध० अ०५पा०३सू०१११)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८८] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४३--१४५]

इत्यनेन चानप्रत्यये स्त्रीलिङ्गीय आप्प्रत्यये साधुः तथा वाच्यं 'जीवाभिगमादिभ्यः। अथ यमकौ द्रहाश्च यावता अन्तरेण परस्परं स्थितास्तन्निर्णेतुमाह—'जावइयं'इत्यादि, यावति प्रमाणे—अन्तरमाने नीलवतो यमकौ भवतः खलु—निश्चितं तावदन्तरं योजनसप्तभागचतुर्भागाभ्यधिकचतुस्त्रिंशदधिकाष्टशतयोजनरूपं यमकद्रहयोर्द्रहाणां च बोध्यमिति शेषः, उपपत्तिस्तु प्राग्वत् ॥ अथ येषां द्रहानामन्तरमानमनन्तरमुक्तं तान् स्वरूपतो निर्दिशति—

कहि णं भन्ते ! उत्तरकूराए णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! जमगाणं दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते दाहिणउत्तरायए पाईणपडीणविच्छिण्णे जहेव पउमद्दहे तहेव वण्णओ णेअव्वो, णाणत्तं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते, णीलवन्ते णामं णागकुमारे देवे सेसं तं चेव णेअव्वं, णीलवन्तद्दहस्स पुव्वावरे पासे दस २ जोअणाइं अबाहाए एत्थ णं वीसं कंचणगपव्वया पण्णत्ता, एगं जोयणसयं उद्धं उच्चत्तेणं—मूलंमि जोअणसयं पण्णत्तरि जोअणाइं मज्झंमि। उवरितले कंचणगा पण्णासं जोअणा हुंति ॥ १ ॥ मूलंमि तिण्णि सोले सत्तत्तीसाइं दुण्णि मज्झंमि । अट्ठावण्णं च सयं उवरितले परिरओ होइ ॥ २ ॥ पढमित्थ नीलवन्तो १ बितिओ उत्तरकुरू २ मुणेअव्वो । चंदद्दहोत्थ तइओ ३ एरावय ४ मालवन्तो अ ५ ॥ ३ ॥ एवं वण्णओ अट्ठो पमाणं पलिओवमट्ठिइआ देवा (सूत्रं ८९)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! उत्तरकुरुषु २ नीलवद्द्रहो नाम द्रहः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! यमकयोर्दाक्षिण्या चर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४६--१५०]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३२९॥

मान्तादष्ट शतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि चत्वारि च सप्तभागान् योजनस्य अबाधया कृत्वा इति गम्यं, अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे नीलवद्द्रहो नाम द्रहः प्रज्ञप्तः, दक्षिणोत्तरायतः प्राचीनप्रतीचीनविस्तीर्णः, पद्मद्रहश्च प्रागपरायतः उदग्दक्षिणपृथुरिति पृथग्विशेषणं, यथैव पद्मद्रहे वर्णकस्तथैव नेतव्यः, नानात्वमिति विशेषोऽयं, द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां सम्परिक्षिप्तः, अयं भावः–पद्मद्रह एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन परिक्षिप्तः, अयं तु प्रविशन्त्या निर्यान्त्या च शीतया महानद्या द्विभागीकृतत्वेनोभयोः पार्श्वयोर्वर्त्तिनीभ्यां वेदिकाभ्यां युक्त इति सम्यक्, अर्थश्च नीलवद्वर्षधरनिभानि तत्र तत्र प्रदेशेषु शतपत्रादीनि सन्ति अथवा नीलवन्नामा नागकुमारो देवोऽत्राधिपतिरिति नीलवान् ह्रद इति, शेषं पद्मादिकं तदेव नेतव्यं, पद्मद्रह इव पद्ममानसङ्ख्यापरिक्षेपादिकं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ अथ काञ्चनगिरिव्यवस्थामाह––'णीलवन्त'इत्यादि, नीलवद्द्रहस्य पूर्वापरपार्श्वयोः प्रत्येकं दशदशयोजनान्यबाधया कृत्वेति गम्यं, अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, अत्रान्तरे दक्षिणोत्तरश्रेण्या परस्परं मूले सम्बद्धाः अन्यथा शतयोजनविस्ताराणामेषां सहस्रयोजनमाने द्रहायामेऽवकाशासम्भव इति, विंशतिः काञ्चनकपर्वताः प्रज्ञप्ताः, एकं योजनशतमूर्ध्वोच्चत्वेन, गाथाद्वयेनैतेषां विष्कम्भपरिक्षेपावाह––मूले योजनशतं मध्ये–मूलतः पञ्चाशद्योजनोर्ध्वंगमने पञ्चसप्ततियोंजनानि उपरितने–शिखरतले पञ्चाशद्योजनानि विस्तारेण भवंति काञ्चनकाभिधाः पर्वताः ॥ १ ॥ मूले त्रीणि योजनशतानि षोडशाधिकानि मध्ये द्वे योजनशते सप्तत्रिंशदधिके अष्टपञ्चाशदधिकयोजनशतं

४वक्षस्कारे नीलवदादिद्रहकाञ्चनपर्वताः सू. ८९

॥३२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [८९] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४६--१५०]

उपरितले परिरयः–परिधिरिति॥२॥इह च मूले परिधौ मध्यपरिधौ च किंचिद्विशेषाधिकत्वं गाथाबन्धानुलोम्यादनुक्तमप्यवसेयं ॥ अथ सङ्ख्याक्रमेण पञ्चानामपि ह्रदानां नामान्याह—'पढमित्थ'इत्यादि, प्रथमो नीलवान् द्वितीय उत्तरकुरुर्ज्ञातव्यः चन्द्रद्रहोऽत्र तृतीयः ऐरावतश्चतुर्थः पञ्चमो माल्यवांश्च, अथानन्तरोक्तानां काञ्चनाद्रीणां एषां च द्रहादीनां स्वरूपप्ररूपणाय लाघवार्थमेकमेव सूत्रमाह—'एवं वण्णओ'इत्यादि, एवं–उक्तन्यायेन नीलवद्द्रहन्यायेनेत्यर्थः उत्तरकुरुह्रदादीनामपि ज्ञेयः पद्मवरवेदिकावनखण्डत्रिसोपानप्रतिरूपकतोरणमूलपद्माष्टोत्तरशतपद्मपरिवारपद्मशेषपद्मपरिक्षेपत्रयवक्तव्यतापि, तथैवार्थः–उत्तरकुर्वाद्रिद्रहनामान्वर्थः उत्तरकुरुह्रदप्रभोत्तरकुरुह्रदाकारोत्पलादियोगादुत्तरकुरुदेवस्वामिकत्वाच्चोत्तरकुरुह्रद इति, चन्द्रह्रदप्रभाणि–चन्द्रह्रदाकाराणि चन्द्रह्रदवर्णानि चन्द्रश्चात्र देवः स्वामीति चन्द्रह्रदः, ऐरावतं–उत्तरपार्श्ववर्त्तिभरतक्षेत्रप्रतिरूपकक्षेत्रविशेषस्तत्प्रभाणि–तदाकाराणि, आरोपितज्यधनुराकाराणीत्यर्थः, उत्पलादीनि ऐरावतश्चात्र देवः प्रभुरित्यैरावतः, माल्यवद्वृक्षस्कारनिर्भोत्पलादियोगान्माल्यवद्देवस्वामिकत्वाच्च माल्यवद्ह्रद इति, प्रमाणं च सहस्रं योजनान्यायाममस्तदर्द्धं विष्कम्भ इत्यादिकं, पल्योपमस्थितिकाश्चात्र देवाः परिवसन्ति, तत्राद्यस्य नागेन्द्र उक्तः, शेषाणां व्यन्तरेन्द्राः, काञ्चनाद्रीणां च वर्णको यमकाद्रिवद्वाच्यः, अर्थश्च काञ्चनवर्णोत्पलादियोगात् काञ्चनाभिधदेवस्वामिकत्वाच्च काञ्चनाद्रयः, प्रमाणं योजनशतोच्चत्वं मूले योजनशतं विस्तार इत्यादिकं उत्तरकुरुह्रदादिशेषद्रहपार्श्ववर्त्तिकाञ्चनाचलापेक्षयेदं बोध्यं, अथवा प्रमाणं प्रतिह्रदं विंशतिः प्रतिपार्श्वं दश सर्वस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [८९] + गाथा: दीप अनुक्रम [१४६--१५०]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥३३०॥

ङ्ख्यया शतमित्यादिकं पल्योपमस्थितिकाश्चात्र देवा इति राजधान्यश्चैतेषामत्रानुक्ता अपि यमकदेवराजधानीवद्वाच्याः परं तत्तदभिलापेनेति ॥ अथ यन्नाम्ना इदं जम्बूद्वीपं ख्यातं तां सुदर्शनानाम्नीं जम्बूं विवक्षुस्तदधिष्ठानमाह—

कहि णं भन्ते! उत्तरकुराए २ जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं मन्दरस्स उत्तरेणं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीआए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते, पञ्च जोअणसयाइं आयामविक्खम्भेणं पण्णरस एक्कासीयाइं जोअणसयाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं, बहुमज्झदेसभाए बारस जोअणाइं बाहल्लेणं तयणन्तरं च णं मायाए २ पदेसपरिहाणीए २ सव्वेसु णं चरिमपेरंतेसु दो दो गाऊआइं बाहल्लेणं सव्वजम्बूणयामए अच्छे, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते दुण्हंपि वण्णओ, तस्स णं जम्बूपेढस्स चउद्दिसिं एए चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता वण्णओ जाव तोरणाइं, तस्स णं जम्बूपेढस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिआ पण्णत्ता अट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं जम्बूसुदंसणा पण्णत्ता, अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धजोअणं उव्वेहेणं, तीसे णं खंधो दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं, तीसे णं साला छ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठ जोअणाइं सव्वग्गेणं, तीसे णं अयमेआरूवे वण्णावासे पं०—वइरामया मूला रययसुपइट्ठिअविडिमा जाव अहिअमणणिव्वुइकरी पासाईआ दरिसणिज्जा०, जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पं०, तेसि णं सालाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं

४वक्षस्कारे जम्बूवृक्षवर्णनं सू. ९० ॥३३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ जम्बू/सुदर्शन वृक्षस्य वर्णनं आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

सिद्धाययणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खम्भेणं देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे जाव दारा पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव वणमालाओ मणिपेढिआ पञ्चधणुसयाइं आयामविक्खम्भेणं अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं, तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं देवच्छन्दए पंचधणुसयाइं आयामविक्खम्भेणं साइरेगाइं पञ्चधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, जिणपडिमावण्णओ णेअव्वोत्ति । तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं एवमेव णवरमित्थ सयणिज्जं सेसेसु पासायवडेंसया सीहासणा य सपरिवारा इति । जम्बू णं बारसहिं पउमवरवेइआहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता, वेइआणं वण्णओ, जम्बू णं अण्णेणं अट्ठसएणं जम्बूणं तदद्धच्चत्ताणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता, तासि णं वण्णओ, ताओ णं जम्बू छहिं पउमवरवेइआहिं संपरिक्खित्ता, जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं एत्थ णं अणाढिअस्स देवस्स चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं चत्तारि जम्बूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तीसे णं पुरत्थिमेणं चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जम्बूओ पण्णत्ताओ,–दक्खिणपुरत्थिमे दक्खिणेणं तह अवरदक्खिणेणं च । अट्ठ दस बारसेव य भवन्ति जम्बूसहस्साइं ॥ १ ॥ अणिआहिवाण पच्चत्थिमेण सत्तेव होंति जम्बूओ । सोलस साहस्सीओ चउद्दिसिं आयरक्खाणं ॥ २ ॥ जम्बूए णं तिहिं सइएहिं वणसंडेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता, जम्बूए णं पुरत्थिमेणं पण्णासं जोअणाइं पढमं वणसंडं ओगाहित्ता एत्थ णं भवणे पण्णत्ते कोसं आयामेणं सो चेव वण्णओ सयणिज्जं च, एवं सेसासुवि दिसासु भवणा, जम्बूए णं उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसण्डं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–पउमा १ पउमप्पभा २ कुमुदा ३ कुमुदप्पभा ४, ताओ णं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खम्भेणं पञ्चधणुसयाइं उव्वेहेणं वण्णओ तासि णं मज्झे पासायवडेंसगा कोसं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

आयामेणं अद्धकोसं विक्खम्भेणं देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं वण्णओ सीहासणा सपरिवारा, एवं सेसासु विदिसासु, गाहा–पउमा पउमप्पभा चेव, कुमुदा कुमुदप्पहा । उप्पलगुम्मा णलिणा, उप्पला उप्पलुज्जला ॥ १ ॥ भिंगा भिंगप्पभा चेव, अंजणा कज्जलप्पभा । सिरिकंता सिरिमहिआ, सिरिचंदा चेव सिरिनिलया ॥ २ ॥ जम्बूए णं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं एत्थ णं कूडे पण्णत्ते अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं दो जोअणाइं उव्वेहेणं मूले अट्ठ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं बहुमज्झदेसभाए छ जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं उवरिं चत्तारि जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं–पणवीसट्ठारस बारसेव मूले अ मज्झि उवरिं च । सविसेसाइं परिरओ कूडस्स इमस्स बोद्धव्वो ॥ १ ॥ मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उवरिं तणुए सव्वकणगामए अच्छे वेइआवणसंडवण्णओ, एवं सेसावि कूडा इति । जम्बूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पं०, तं०–सुदंसणा १ अमोहा २ य, सुप्पबुद्धा ३ जसोहरा ४ । विदेहजम्बू ५ सोमणसा ६, णिअया ७ णिच्चमंडिआ ८ ॥ १ ॥ सुभद्दा य ९ विसाला य १०, सुजाया ११ सुमणा १२ विआ । सुदंसणाए जम्बूए, णामधेज्जा दुवालस ॥ २ ॥ जम्बूए णं अट्ठट्ठमंगलगा०,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ–जम्बू सुदंसणा २?, गोअमा! जम्बूए णं सुदंसणाए अणाढिए णामं जम्बुद्दीवाहिवई परिवसइ महिड्ढीए, से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं, जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स जम्बूए सुदंसणाए अणाढिआए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य जाव विहरइ, से तेणट्ठेणं गो०! एवं वुच्चइ, अदुरुत्तरा णं च णं गोअमा! जम्बूसुदंसणा जाव भुविं च ३ धुवा णिअआ सासया अक्खया जाव अवट्ठिआ । कहि णं भन्ते! अणाढिअस्स देवस्स अणाढिआ णामं रायहाणी पण्णत्ता?, गोअमा! जम्बुद्दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं जं चेव पुव्ववण्णिअं जमिगापमाणं तं चेव णेअव्वं, जाव उववाओ अभिसेओ अ निरवसेसोत्ति (सूत्रं ९०)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! उत्तरकुरुषु जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तं?, निर्वचनसूत्रे गौतमेत्यामन्त्रणं गम्यं, नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणेन मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरेण माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य गजदन्तापरपर्यायस्य पश्चिमेनपश्चिमायां शीताया महानद्याः पूर्वकूले–शीताद्विभागीकृतोत्तरकुरुपूर्वार्द्धे तत्रापि मध्यभागे अत्रान्तरे उत्तरकुरुषु कुरुषु जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तं, पञ्चयोजनशतान्यायामविष्कम्भेन योजनानां पञ्चदशशतान्येकाशीत्यधिकानि किंचिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण बहुमध्यदेशभागे विवक्षितदिक्प्रान्तादर्धतृतीयशतयोजनातिक्रमे इत्यर्थः, बाहल्येन द्वादश योजनानि, तदनन्तरं मात्रया २–क्रमेण २ प्रदेशपरिहाण्या परिहीयमाणः २ 'सव्वेसु'त्ति प्राकृतत्वात् पञ्चम्यर्थे सप्तमी तेन सर्वेभ्यश्चरमप्रान्तेषु मध्यतोऽर्द्धतृतीययोजनशतातिक्रमे इत्यर्थः, द्वौ क्रोशौ बाहल्येन, सर्वात्मना जाम्बूनद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३३२॥

मयं, 'अच्छ'मित्यादि, 'से णं एगाए पउम'इत्यादि, तदिति अनन्तरोक्तं जम्बूपीठं एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तमिति शेषः, द्वयोरपि पद्मवरवेदिकावनखण्डयोर्वर्णकः स्मर्त्तव्यः प्राक्तनः । तच्च जघन्यतोऽपि चरमान्ते द्विक्रोशोच्चं कथं सुखारोहावरोहमित्याशङ्क्याह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य जम्बूपीठस्य चतुर्दिशि एतानि दिग्नामोपलक्षितानि चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, एतानि च त्रीणि मिलितानि द्विक्रोशोच्चानि भवन्ति क्रोशविस्तीर्णानि अत एव प्रान्ते द्विक्रोशबाहल्यात् पीठात् उत्तरतामवतरतां च सुखावहद्वारभूतानि वर्णकश्च तावद्वक्तव्यो यावत् तोरणानि, 'तस्स ण'मित्यादि, व्यक्तं, 'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र जम्बूः सुदर्शनानाम्नी प्रज्ञप्ता, अष्ट योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धयोजनमुद्वेधेन–भूप्रवेशेन, अथास्या एवोच्चत्वस्याष्ट योजनानि विभागतो द्वाभ्यां सूत्राभ्यां दर्शयति—'तीसे ण'मित्यादि, तस्या जम्ब्वाः स्कन्धः–कन्दादुपरितनः शाखाप्रभवपर्यन्तोऽवयवो द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेनार्द्धयोजनं बाहल्येन–पिण्डेन तस्याः शाला विडिमापरपर्याया दिक्प्रसृता शाखा–मध्यभागप्रभवा ऊर्ध्वगता शाखा षड् योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन, तथा बहुमध्यदेशभागे प्रकरणाज्जम्बूरिति गम्यम्, अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां तान्येवास्याः स्कन्धोपरितनभागाच्चतसृष्वपि दिक्षु प्रत्येकमेकैका शाखा निर्गता ताश्च क्रोशोनानि चत्वारि योजनानि, तेन पूर्वापरशाखादैर्घ्यस्कन्धबाहल्यसम्बन्ध्यर्द्धयोजनमीलनेनोक्तसङ्ख्यानयनं, बहुमध्यदेशभागश्चात्र व्यावहारिको ग्राह्यः, वृक्षादीनां शाखाप्रभवस्थाने मध्यदेशस्य लोकैर्व्यवह्रियमाण-

४वक्षस्कारे जम्बूवृक्ष-वर्णनं सू. ९०

॥३३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वात्, पुरुषस्य कटिभाग इव, अन्यथा विडिमाया द्वियोजनातिक्रमे निश्चयप्राप्तस्य मध्यभागस्य ग्रहणे पूर्वापरशाखाद्वयविस्तारस्य ग्रहणसम्भवः विषमश्रेणिकत्वात्, अथवा बहुमध्यदेशभागः शाखानामिति गम्यते, कोऽर्थः ?–यतश्चतुर्दिक्शाखामध्यभागस्तस्मिन्नित्यर्थः, अष्टयोजनानयनं तु तथैव, उच्चत्वेन तु सर्वाग्रेण–सर्वसङ्ख्यया कन्दस्कन्धविडिमापरिमाणमीलने सातिरेकाण्यष्टौ योजनानीति, अथास्या वर्णकमाह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्या जम्ब्वा अयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, वज्रमयानि मूलानि यस्याः सा वज्रमयमूला तथा रजता–रजतमयी सुप्रतिष्ठिता विडिमा–बहुमध्यदेशभागे ऊर्ध्वविनिर्गता शाखा यस्याः सा रजतसुप्रतिष्ठितविडिमा, ततः पदद्वयकर्मधारयः, यावत्पदात् चैत्यवृक्षवर्णकः सर्वोऽप्यत्र वाच्यः, कियत्पर्यन्तमित्याह—अधिकमनोनिर्वृतिकरी प्रासादीया दर्शनीया इत्यादि। अथास्याः शाखाव्यक्तिमाह—'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाः चतुर्दिशि चतस्रः शालाः–शाखाः प्रज्ञप्ताः, तासां शालानां बहुमध्यदेशभागे उपरितनविडिमाशालायामित्यध्याहार्यं जीवाभिगमे तथा दर्शनात्, शेषं सुलभं वैताढ्यसिद्धकूटगतसिद्धायतनप्रकरणतो ज्ञेयमित्यर्थः, अत्र पूर्वशालादौ यत्र यदस्ति तत्र तद्वक्तुमाह—'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र–तासु चतसृषु शालासु या सा पौरस्त्या शाला सूत्रे प्राकृतत्वात् पुंस्त्वनिर्देशः अत्र भवनं प्रज्ञप्तं क्रोशमायामेन 'एवमेवे'ति सिद्धायतनवदिति, अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशमुच्चत्वेनेति प्रमाणं द्वारादिवर्णकश्च वाच्यः, नवरमत्र शयनीयं वाच्यं, शेषासु दाक्षिणात्यादिशालासु प्रत्येकमेकैकभावेन त्रयः प्रासादावतंसकाः सिंहासनानि सपरिवाराणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

च बोद्धव्यानि तेषां प्रमाणं च भवनवत्, तत्र खेदापनोदाय भवनेषु शयनीयानि प्रासादेषु त्वास्थानसभा इति, ननु भवनानि विषमायामविष्कम्भानि पद्मद्रहादिमूलपद्मभवनादिषु तथा दर्शनात् प्रासादास्तु समायामविष्कम्भाः दीर्घवैताढ्यकूटगतेषु वृत्तवैताढ्यगतेषु विजयादिराजधानीगतेषु अन्येष्वपि विमानादिगतेषु च प्रासादेषु समचतुरस्रत्वेन समायामविष्कम्भत्वस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात् तत्कथमत्र प्रासादानां भवनतुल्यप्रमाणता घटते?, उच्यते, 'ते पासाया कोसं समूसिआ अद्धकोसविच्छिण्णा' इत्यस्य पूज्यश्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणोपज्ञक्षेत्रविचारगाथार्द्धस्य वृत्तौ–ते प्रासादाः क्रोशमेकं देशोनमिति शेषः समुच्छ्रिता–उच्चाः क्रोशार्द्धं–अर्द्धक्रोशं विस्तीर्णाः परिपूर्णमेकं क्रोशं दीर्घा इति श्रीमलयगिरिपादाः तथा जम्बूद्वीपसमासप्रकरणे "प्राच्ये शाले भवनं इतरेषु प्रासादाः मध्ये सिद्धायतनं सर्वाणि विजयार्द्धमानानी"ति श्रीउमास्वातिवाचकपादाः तथा तपागच्छाधिराजपूज्यश्रीसोमतिलकसूरिकृतनव्यबृहत्क्षेत्रविचारसत्कायाः "पासाया सेसदिसासालासु बेअद्धगिरिगयव्व तओ" इत्यस्या गाथाया अवचूर्णौ–"शेषासु तिसृषु शाखासु प्रत्येकमेकैकभावेन तत्र त्रयः प्रासादाः–आस्थानोचितानि मन्दिराणि देशोनं क्रोशमुच्चाः क्रोशार्द्धं विस्तीर्णाः पूर्णं क्रोशं दीर्घाः" इति श्रीगुणरत्नसूरिपादाः यदाहुः तदाशयेन प्रस्तुतोपाङ्गस्योत्तरत्र जम्बूपरिक्षेपकवनवापीपरिगतप्रासादप्रमाणसूत्रानुसारेण च इत्येवं निश्चिनुमो जम्बूप्रकरणप्रासादा विषमायामविष्कम्भा इति, यत्तु श्रीजीवाभिगमसूत्रवृत्तौ 'क्रोशमेकमूर्ध्वमुच्चैस्त्वेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेने'त्युक्तं तद्गम्भीराशयं न विद्मः। अथास्याः पद्मवरवेदिकादिस्वरू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पमाह—'जंबू ण'मित्यादि, जम्बूर्द्वादशभिः पद्मवरवेदिकाभिः–प्राकारविशेषरूपाभिः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ता, वेदिकाना वर्णकः प्राग्वत्, इमाश्च मूलजम्बूं परिवृत्त्य स्थिता ज्ञातव्याः, या तु पीठपरिवेष्टिका सा तु प्रागेवोक्ता। अथास्याः प्रथमपरिक्षेपमाह—'जंबू ण'मित्यादि, जम्बूः णमिति वाक्यालङ्कारे अन्येनाष्टशतेन–अष्टोत्तरशतेन जम्बूवृक्षाणां 'तदर्द्धोच्चत्वानां' तस्या मूलजम्ब्वाः अर्द्धप्रमाणमुच्चत्वं यासां तास्तथा तासां सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ता उपलक्षणं चैतत् तेनोद्वेधायामविस्तारा अपि अर्द्धप्रमाणा ज्ञेयाः, तथाहि—ता अष्टाधिकशतसङ्ख्या जम्ब्वः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्युच्चैस्त्वेन क्रोशमेकमवगाहेन एकं योजनमुच्चः स्कन्धः त्रीणि योजनानि विडिमा सर्वाग्रेणोच्चैस्त्वेन सातिरेकाणि चत्वारि योजनानि तत्रैकैका शाखा अर्द्धक्रोशहीने द्वे योजने दीर्घा क्रोशपृथुत्वः स्कन्ध इति भवन्ति सर्वसंख्यया आयामविष्कम्भतश्चत्वारि योजनानि, आसु चानादृतदेवस्याभरणादि तिष्ठति, एतासां वर्णकज्ञापनायाह—'तासि णं वण्णओ'त्ति तासां च वर्णको मूलजम्बूसदृश एवेति, अथासां यावत्यः पद्मवरवेदिकास्ता आह—'ताओ ण'मित्यादि, उक्तानार्थं, नवरं प्रतिजम्बूवृक्षं षट् षट् पद्मवरवेदिका इत्यर्थः, एतासु च १०८ जम्बूषु अत्र सूत्रे जीवाभिगमे बृहत्क्षेत्रविचारादौ सूत्रकृद्भिः वृत्तिकृद्भिश्च जिनभवनभवनप्रासादचिन्ता कापि न चक्रे बहवोऽपि च बहुश्रुताः श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णिकारादयो मूलजम्बूवृक्षगततत्प्रथमवनखण्डगतकूटाष्टकजिनभवनैः सह सप्तदशोत्तरं शतं जिनभवनानां मन्यमानाः इहाप्येकैकं सिद्धायतनं पूर्वोक्तमानं मेनिरे ततोऽत्र तत्त्वं केवलिनो विदुरिति । सम्प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

शेषान् परिक्षेपान् वक्तुं सूत्रचतुष्टयमाह—'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाः उत्तरपूर्वस्या—ईशानकोणे उत्तरस्यामुत्तरपश्चिमायां—वायव्यकोणे अत्रान्तरे दिक्त्रयेऽपीत्यर्थः अनादृतनाम्नो—जम्बूद्वीपाधिपतेर्देवस्य चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चत्वारि जम्बूसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, 'तीसे ण'मित्यादि, कण्ठ्यं, गाथाबन्धेन पार्षद्यदेवजम्बूराह—'दक्खिण'इत्यादि, दक्षिणपौरस्त्ये—आग्नेयकोणे दक्षिणस्यां अपरदक्षिणस्यां—नैर्ऋतकोणे चः समुच्चये एतासु तिसृषु दिक्षु यथासंख्यं । अष्ट दश द्वादश जम्बूनां सहस्राणि भवन्ति, एवोऽवधारणे तेन नाधिकानि न न्यूनानीत्यर्थः, चः प्राग्वत्, अनीकाधिपजम्बूस्तृतीयपरिक्षेपजम्बूश्च गाथाबन्धेनाह—'अणिआहिवाण'इत्यादि, अनीकाधिपानां—गजादि-कटकाधीशानां सप्तानां सप्तैव जम्बूः पश्चिमायां भवन्ति, द्वितीयः परिक्षेपः पूर्णः ॥ अथ तृतीयमाह—आत्मरक्षका-णामनादृतदेवसामानिकचतुर्गुणानां षोडशसहस्राणां जम्ब्वः एकैकदिक्षु चतुःसहस्र२सद्भावात् षोडश सहस्राणि भवन्ति, यद्यपि चानयोः परिक्षेपयोर्जम्बूनामुच्चत्वादिप्रमाणं न पूर्वाचार्यैश्चिन्तितं तथापि पद्मह्रदपद्मपरिक्षेपन्यायेन पूर्वपूर्वपरिक्षेपजम्ब्वपेक्षयोत्तरोत्तरपरिक्षेपजम्ब्वोऽर्द्धमाना ज्ञातव्याः, अत्राप्येकैकस्मिन् परिक्षेपे एकैकस्यां पङ्क्तौ क्रियमाणायां क्षेत्रसाङ्कीर्ण्येनानवकाशदोषस्तथैवोद्भावनीयस्तेन परिक्षेपजातयस्तिस्रस्तथैव वाच्याः, सम्प्रत्यस्या एव वनत्रय-परिक्षेपान् वक्तुमाह—'जंबूए ण'मित्यादि, सा चैवंपरिवारेति गम्यं, त्रिभिः शतिकैः—योजनशतप्रमाणैर्वनखण्डैः सर्वतः सम्परिक्षिप्ताः, तद्यथा—अभ्यन्तरेण मध्यमेन बाह्येनेति, अथात्र यदस्ति तदाह—'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

रिवारायाः पूर्वेण पञ्चाशद्योजनानि प्रथमवनखण्डमवगाह्यात्रान्तरे भवनं प्रज्ञप्तं, क्रोशमायामेन, उच्चत्वादिकथनायातिदेशमाह—स एव मूलजम्बूपूर्वशाखागतभवनसम्बन्धी वर्णको ज्ञेयः, शयनीयं चानादृतयोग्यं, एवं शेषास्वपि दक्षिणादिदिक्षु स्वस्वदिशि पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्याद्ये वने भवनानि वाच्यानि, अथात्र वने वापीस्वरूपमाह—'जंबूए णं उत्तरे'त्यादि, जम्ब्वाः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे प्रथमं वनखण्डं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्यात्रान्तरे चतस्रः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः, एताश्च न सूचीश्रेण्या व्यवस्थिताः किन्तु स्वविदिग्गतप्रासादं परिक्षिप्य स्थिताः, तेन प्रादक्षिण्येन तन्नामान्येवं—पद्मा पूर्वस्यां पद्मप्रभा दक्षिणस्यां कुमुदा पश्चिमायां कुमुदप्रभा उत्तरस्यां, एवं दक्षिणपूर्वादिविदिग्गतवापीष्वपि वाच्यं, ताश्च क्रोशमायामेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन पञ्चधनुःशतान्युद्वेधेनेति । अथात्र वापीमध्यगतप्रासादस्वरूपमाह—'तासि ण'मित्यादि, तासां वापीनां चतसृणां मध्ये प्रासादावतंसकाः प्रज्ञप्ताः, बहुवचनं च उक्तवक्ष्यमाणानां वापीनां प्रासादापेक्षया द्रष्टव्यं, तेन प्रतिवापीचतुष्कमेकैकप्रासादभावेन चत्वारः प्रासादाः, एवं निर्देशो लाघवार्थं, क्रोशमायामेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशमुच्चत्वेन, वर्णको मूलजम्बूदक्षिणशाखागतप्रासादवद् ज्ञेयः, एषु चानादृतदेवस्य क्रीडार्थं सिंहासनानि सपरिवाराणि वाच्यानि, जीवाभिगमे त्वपरिवाराणि, एवं शेषासु दक्षिणपूर्वादिषु विदिक्षु वाप्यः प्रासादाश्च वक्तव्याः, एतासां नामदर्शनाय गाथाद्वयं, पद्मादयः प्रागुक्ताः पुनः पद्मबन्धबद्धत्वेन संगृहीता इति न पुनरुक्तिः, एताश्च सर्वा अपि सत्रिसोपानचतुर्द्वाराः पद्मवरवेदिकावनखण्डयुक्ताश्च बोध्याः, अथ दक्षिणपू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३३५॥

वर्त्स्यां उत्पलगुल्मा पूर्वस्यां नलिना दक्षिणस्यां उत्पलोज्ज्वला पश्चिमायां उत्पला उत्तरस्यां तथा अपरदक्षिणस्यां भृङ्गा भृङ्गप्रभा अञ्जना कज्जलप्रभा तथा अपरोत्तरस्यां श्रीकान्ता श्रीमहिता श्रीचन्द्रा श्रीनिलया, चैवशब्दः प्राग्वत्, अथास्य वनस्य मध्यवर्त्तीनि कूटानि स्वरूपतो लक्षयति–'जंबूए णं'इत्यादि, जम्ब्वा अस्मिन्नेव प्रथमे वनखण्डे पौरस्त्यस्य भवनस्य उत्तरस्यां उत्तरपौरस्त्यस्य–ईशानकोणसत्कस्य प्रासादावतंसकस्य दक्षिणस्यां अत्रान्तरे कूटं प्रज्ञप्तं अष्टौ योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन द्वे योजने उद्वेधेन, वृत्तत्वेन य एव आयामः स एव विष्कम्भ इति, मूलेऽष्ट योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां बहुमध्यदेशभागे, भूमितश्चतुर्षु योजनेषु गतेष्वित्यर्थः, षड् योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, उपरि–शिखरभागे चत्वारि योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, अथामीषां परिधिकथनाय पद्यमाह—'पणवीसे'त्यादिकं, सर्वं प्रथमपाठगतऋषभकूटाभिलापानुसारेण वाच्यं, नवरं पञ्चविंशतिं योजनानि सविशेषाणि किञ्चिदधिकानि मूले परिरय इत्यादि यथासंख्यं योज्यम्, जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणैस्तु 'अट्ठसहकूडसरिसा सव्वे जम्बूणयामया भणिआ' । इत्यस्यां गाथायामृषभकूटसमत्वेन भणितत्वात् द्वादश योजनानि अष्टौ मध्ये चैत्यूचे, तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यं, एषु च प्रत्येकं जिनगृहमेकैकं विडिमागतजिनगृहतुल्यमिति, अथ शेषकूटवक्तव्यतामतिदेशेनाह—'एवं सेसावि कूडा'इति, एवमुक्तरीत्या वर्णप्रमाणपरिध्याद्यपेक्षया शेषाण्यपि सप्त कूटानि बोध्यानि, स्थानविभागस्त्वयं तेषां, तथाहि–पूर्वदिग्भाविनो भवनस्य दक्षिणतो दक्षिणपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्योत्तरतो द्वितीयं कूटं तथा दक्षिणदिग्भाविनो भवनस्य

४वक्षस्कारे जम्बूवृक्ष-वर्णनं सू. ९०

॥३३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वतो दक्षिणपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य पश्चिमायां तृतीयं तथा दक्षिणदिग्भाविनो भवनस्य पश्चिमायां दक्षिणापरदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य पूर्वतश्चतुर्थं तथा पश्चिमदिग्भाविनो भवनस्य दक्षिणतो दक्षिणापरदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्योत्तरतः पञ्चमं तथा पश्चिमदिग्भाविनो भवनस्योत्तरतः उत्तरपश्चिमदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य दक्षिणतः षष्ठं तथा उत्तरदिग्भाविनो भवनस्य पश्चिमायां उत्तरपश्चिमदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य पूर्वतः सप्तमं तथा उत्तरदिग्भाविनो भवनस्य पूर्वतः उत्तरपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य अपरतोऽष्टममिति, अत्रैषां स्थापना यथा यन्त्रे तथा विलोकनीया, अथ जम्ब्वा नामोत्कीर्त्तनमाह–'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाः द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सुष्ठु–शोभनं नयनमनसोरानन्दकत्वेन दर्शनं यस्याः सा तथा, अमोघा–सफला, इयं हि स्वस्वामिभावेन प्रतिपन्ना सती जम्बूद्वीपाधिपत्यं जनयति, तदन्तरेण तद्विषयस्य स्वामिभावस्यैवायोगात्, सुष्ठु–अतिशयेन प्रबुद्धा–उत्फुल्ला उत्फुल्लफुल्लयोगादियमप्युत्फुल्ला, सकलभुवनव्यापकं यशो धरतीति यशोधरा, 'लिहादित्वादच्,' जम्बूद्वीपो ह्यनया जम्ब्वा भुवनत्रयेऽपि विदितमहिमा ततः सम्पन्नं यथोक्तयशोधारित्वमस्याः, विदेहेषु जम्बूः विदेहजम्बूर्विदेहान्तर्गतोत्तरकुरुकृतनिवासत्वात्, सौमनस्यहेतुत्वात् सौमनस्या, न हि तां पश्यतः कस्यापि मनो दुष्टं भवति, नियता सर्वकालमवस्थिता शाश्वतत्वात् नित्यमण्डिता सदा भूषणभूषितत्वात्, सुभद्रा–शोभनकल्याणभाजिनी, न ह्यस्याः कदाचिदुपद्रवसम्भवो महर्द्धिकेनाश्रितत्वात्, चः समुच्चये, विशाला–विस्तीर्णा, चः पूर्ववत्, आयामविष्कम्भाभ्यामु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

त्वेन चाष्टयोजनप्रमाणत्वात्, शोभनं जातं–जन्म यस्याः सा सुजाता, विशुद्धमणिकनकरत्नमूलद्रव्यजनिततया जन्मदोषरहितेति भावः, शोभनं मनो यस्याः सकाशाद्भवति सा सुमनाः, अपि चेति समुच्चये, अत्र जीवाभिगमादिषु विदेहजम्ब्वादीनां सुदर्शनादीनां च नाम्नां व्यत्यासेन पाठो दृश्यते तत्रापि न कश्चिद्विरोध इति, 'जंबूए णं अट्ठट्ठमंगलगा' इति व्यक्तं, उपलक्षणाद् ध्वजच्छत्रादिसूत्राणि वाच्यानीति, सम्प्रति सुदर्शनाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं पिपृच्छिषुरिदमाह–'से केणट्ठेण'मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे गौतम ! जम्ब्वां सुदर्शनायामनादृतो नाम जम्बूद्वीपाधिपतिर्न आदृता–आदरविषयीकृताः शेषजम्बूद्वीपगता देवा येनात्मनोऽनन्यसदृशं महर्द्धिकत्वमीक्षमाणेन सोऽनादृत इति यथार्थनामा परिवसति, महर्द्धिक इत्यादि प्राग्वत्, स च चतुर्णां सामानिकसहस्राणां यावदात्मरक्षकसहस्राणां जम्बूद्वीपस्य जम्ब्वाः सुदर्शनायाः अनादृतनाम्न्या राजधान्या अन्येषां च बहूनां देवानां देवीनां चानादृताराजधानीवास्तव्यानामाधिपत्यं पालयन् यावद्विहरति, तदेतेनार्थेन एवमुच्यते—जंबूसुदंसणेति, कोऽर्थः?–अनादृतदेवस्य सदृशमात्मनि महर्द्धिकत्वदर्शनमत्रकृतावासस्येति, सुष्ठु–शोभनमतिशयेन वा दर्शनं–विचारणमनन्तरोक्तस्वरूपं चिन्तनमितियावत् अनादृतदेवस्य यस्याः सकाशात् सा सुदर्शना इति, यद्यप्यनादृता राजधानीप्रश्नोत्तरसूत्रे सुदर्शनाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तप्रश्नोत्तरसूत्रनिगमनसूत्रान्तर्गते बहुष्वादर्शेषु दृष्टे तथापि 'से तेणट्ठेण'मित्यादि निगमनसूत्रमुत्तरसूत्रानन्तरमेव वाचयितृणामव्यामोहाय सूत्रपाठेऽस्माभिर्लिखितं व्याख्यातं च, उत्तरसूत्रानन्तरं निगमनसूत्रस्यैव यौक्ति-

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९०] + गाथा: दीप अनुक्रम [१५१--१६२]

कत्वादिति, अथापरं गौतम! यावच्छब्दाज्जम्बूवाः सुदर्शनाया एतच्छाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तं, यन्न कदाचिन्नासीदित्यादिकं ग्राह्यं, नाम्नः शाश्वतत्वं दर्शितम्, अथ प्रस्तुतवस्तुनः शाश्वतत्वमस्ति नवेत्याशङ्कां परिहरन्नाह—'जंबुसुदंसणा' इत्यादि, व्याख्याऽस्य प्राग्वत्, अथ प्रस्तावादस्य राजधानीं विवक्षुराह—'कहि णं भन्ते! अणाढियस्स'इत्यादि, मतार्थं, नवरं यदेव प्राग्वर्णितं यमिकाराजधानीप्रमाणं तदेव नेतव्यं यावदनादृतदेवस्योपपातोऽभिषेकश्च निरवशेषो वक्तव्य इति शेषः ॥ अथोत्तरकुरुनामार्थं पिपृच्छिषुरिदमाह—

से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ उत्तरकुरा २?, गोअमा! उत्तरकुराए उत्तरकुरूणामं देवे परिवसइ महिद्धीए जाव पलिओवमट्ठिइए, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ उत्तरकुरा २, अदुत्तरं च णंति जाव सासए। कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?, गो०! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं उत्तरकुराए पुरत्थिमेणं वच्छस्स चक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे जं चेव गंधमायणस्स पमाणं विक्खम्भो अ णवरमिमं णाणत्तं सव्ववेरुलिआमए अवसिट्ठं तं चेव जाव गोअमा! नव कूडा पण्णत्ता, तंजहा—सिद्धाययणकूडे० सिद्धे य मालवन्ते उत्तरकुरु कच्छसागरे रयए। सीओय पुण्णभद्दे हरिस्सहे चेव बोद्धव्वे ॥ १ ॥ कहि णं भन्ते! मालवन्ते वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?, गोअमा! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं मालवंतस्स कूडस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धाययणे कूडे पण्णत्ते पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं अवसिट्ठं तं चेव जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९१] + गाथा: दीप अनुक्रम [१६३--१६५]

रायहाणी, एवं मालवन्तस्स कूडस्स उत्तरकुरुकूडस्स कच्छकूडस्स, एए चत्तारि कूडा दिसाहिं पमाणेहिं णेअव्वा, कूडसरिसणामया देवा, कहि णं भन्ते! मालवन्ते सागरकूडे नामं कूडे पण्णत्ते?, गोअमा! कच्छकूडस्स उत्तरपुरत्थिमेणं रययकूडस्स दक्खिणेणं एत्थ णं सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, पंच जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं अवसिट्ठं तं चेव सुभोगा देवी रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं रययकूडे भोगमालिणी देवी रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं, अवसिट्ठा कूडा उत्तरदाहिणेणं णेअव्वा एक्केणं पमाणेणं (सूत्रं ९१)

'से केणट्ठेण'मित्यादि, प्रतीतं, नवरं उत्तरकुरुनामाऽत्र देवः परिवसति, तेनेमा उत्तरकुरव इत्यर्थः, अथ यस्मादुत्तरकुरवः पश्चिमायामुक्तास्तं माल्यवन्तं नाम द्वितीयं गजदन्ताकारगिरिं प्ररूपयति–'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, उत्तरसूत्रे–गौतम! मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरपौरस्त्ये–ईशानकोणे नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणस्यामुत्तरकुरूणां पूर्वस्यां कच्छनाम्नश्चक्रवर्त्तिविजयस्य पश्चिमायामत्रान्तरे महाविदेहेषु माल्यवन्नाम्ना वक्षस्कारपर्वतः प्रज्ञप्त इति शेषः, पूर्वदक्षिणयोरायतः पूर्वपश्चिमयोर्विस्तीर्णः, किं बहुना विस्तरेण?, यदेव गन्धमादनस्य पूर्वोक्तवक्षस्कारगिरेः प्रमाणं विष्कम्भश्च तदेव ज्ञातव्यमिति शेषः, नवरमिदं नानात्वं–अयं विशेषः, सर्वात्मना वैडूर्यरत्नमयः, अवशिष्टं तदेव, कियत्पर्यन्तमित्याह—'जाव'त्ति, सुलभं, नवरं उत्तरसूत्रे उक्तमपि सिद्धायतनकूटं यत्पुनरुच्यते 'सिद्धे य मालवन्ते' इति तद् गाथाबन्धेन सर्वसंग्रहायेति, सिद्धायतनकूटं चः पादपूरणे माल्यवत्कूटं प्रस्तुतवक्षस्काराधिपतिवासकूटं उत्तरकुरुकूटं—उत्तरकुरुदेवकूटं कच्छकूटं–कच्छविजयाधिपकूटं सागरकूटं रजतकूटं, इदं चान्यत्र रुचकमिति प्रसिद्धं, शीताकूटं–शी-

॥३३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासरित्सुरीकूटं, पदैकदेशे पदसमुदायोपचार इति सिद्धिः, चः समुच्चये, पूर्णभद्रनाम्नो व्यन्तरेशस्य कूटं पूर्णभद्रकूटम्, हरिस्सहनाम्न उत्तरश्रेणिपतिविद्युत्कुमारेन्द्रस्य कूटं हरिस्सहकूटं, चैवशब्दः पूर्ववत्, सम्प्रत्यमीषां स्थानप्ररूपणायाह—'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरपूर्वस्यां—ईशानकोणे प्रत्यासन्नमाल्यवत्कूटस्य दक्षिणपश्चिमायां नैर्ऋतकोणे, अत्र सिद्धायतनकूटं प्रज्ञप्तमिति गम्यं, पञ्च योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अवशिष्टं मूलविष्कम्भादिकं वक्तव्यं तदेव गन्धमादनसिद्धायतनकूटवदेव वाच्यं, यावद्राजधानी भणितव्या स्यात्, अयमर्थः—सिद्धायतनकूटवर्णके सामान्यतः कूटवर्णकसूत्रं विशेषतः सिद्धायतनादिवर्णकसूत्रं च द्वयमपि वाच्यं, तत्र सिद्धायतनकूटे राजधानीसूत्रं न सङ्गच्छते इति राजधानीसूत्रं विहाय तदधस्तनसूत्रं वाच्यमिति, अत्र यावच्छब्दो न संग्राहकः किन्त्ववधिमात्रसूचकः, यथा 'आसमुद्रक्षितीशाना'मित्यत्र समुद्रं विहाय क्षितीशत्वं वर्णितमिति, लाघवार्थमत्रातिदेशमाह—'एवं मालवन्तस्स' इत्यादि, एवं सिद्धायतनकूटरीत्या माल्यवत्कूटस्य उत्तरकुरुकूटस्य कच्छकूटस्य वक्तव्यं, ज्ञेयमिति गम्यं, अथैतानि किं परस्परं स्थानादिना तुल्यानि उतातुल्यानीत्याह—एतानि सिद्धायतनकूटसहितानि चत्वारि परस्परं दिग्भिरीशानविदिग्रूपाभिः प्रमाणैश्च नेतव्यानि, तुल्यानीति शेषः, अयमर्थः—प्रथमं सिद्धायतनकूटं मेरोरुत्तरपूर्वस्यां दिशि ततस्तस्य दिशि द्वितीयं माल्यवत्कूटं ततस्तस्यामेव दिशि तृतीयमुत्तरकुरुकूटं ततोऽप्यस्यां दिशि कच्छकूटं, एतानि चत्वार्यपि कूटानि विदिग्भावीनि मानतो हिमवत्कूटप्रमाणानीति, कूटसदृग्नामकाश्चात्र देवाः, अत्र 'यावत्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९१] + गाथा: दीप अनुक्रम [१६३--१६५]

म्भवं विधिप्राप्ति'रिति न्यायात् सिद्धकूटवर्जेषु त्रिषु कूटेषु कूटनामका देवा इति बोध्यं, सिद्धायतनकूटे तु सिद्धायतनं, अन्यथा–"छसयरि कूडेसु तहा चूलाचउ वणतरूसु जिणभवणा। भणिआ जम्बुदीवे सदेवया सेस ठाणेसु॥१॥" इति स्वोपज्ञक्षेत्रविचारे रत्नशेखरसूरिवचो विरोधमापद्येतेति, अथावशिष्टकूटस्वरूपमाह—'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम्, उत्तरसूत्रे कच्छकूटस्य चतुर्थस्योत्तरपूर्वस्यां रजतकूटस्य दक्षिणस्यामत्रान्तरे सागरकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तं, पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अवशिष्टं मूलविष्कम्भादिकं तदेव, अत्र सुभोगानाम्नी दिक्कुमारी देवी अस्या राजधानी मेरोरुत्तरपूर्वस्यां, रजतकूटं षष्ठं पूर्वस्मादुत्तरस्यां अत्र भोगमालिनी दिक्कुमारी सुरी राजधानी उत्तरपूर्वस्यां, अवशिष्टानि शीताकूटादीनि उत्तरदक्षिणस्यां नेतव्यानि, कोऽर्थः?–पूर्वस्मात् २ उत्तरोत्तरमुत्तरस्यां २ उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वे २ दक्षिणस्यां २ इत्यर्थः, एकेन तुल्येन प्रमाणेन सर्वेषामपि हिमवत्कूटप्रमाणत्वात्। अथ नवमं सहस्राङ्कमिति पृथग्निर्देष्टुमाह—

कहि णं भन्ते! मालवन्ते हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?, गोअमा! पुण्णभद्दस्स उत्तरेणं णीलवन्तस्स दक्खिणेणं एत्थ णं हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते, एगं जोअणसहस्सं उद्धं उच्चत्तेणं जमगपमाणेणं णेअव्वं, रायहाणी उत्तरेणं असंखेज्जे दीवे अण्णंमि जम्बुदीवे दीवे उत्तरेणं बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं हरिस्सहस्स देवस्स हरिस्सहाणामं रायहाणी पण्णत्ता, चउरासीहं जोअणसहस्साइं आयामविक्खम्भेणं बे जोअणसयसहस्साइं पण्णट्ठिं च सहस्साइं छच्च छत्तीसे जोअणसए परिक्खेवेणं सेसं जहा चमरचञ्चाए रायहाणीए तहा पमाणं भाणिअव्वं, महिद्धीए महज्जुईए, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ मालवन्ते वक्खार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पव्वए २१, गोअमा! मालवन्ते णं वक्खारपव्वए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे सरिआगुम्मा णोमालिआगुम्मा जाव मगदन्तिआगुम्मा, ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति, जे णं तं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसालामुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेन्ति, मालवंते अ इत्थ देवे महिद्धीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ, अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे (सूत्रं ९२)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! माल्यवति वक्षस्कारगिरौ हरिस्सहकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! पूर्णभद्रस्योत्तरस्यां नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणस्यां अत्रान्तरे हरिस्सहकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तं, एकं योजनसहस्रमूर्ध्वोच्चत्वेन अवशिष्टं यमकगिरिप्रमाणेन नेतव्यं, तच्चेदम्—'अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं मूले एगं जोअणसहस्सं आयामविक्खम्भेण'मित्यादि, आह परः–५०० योजनपृथुगजदन्ते १००० योजनपृथु इदं कथमिति, उच्यते, अनेन गजदन्तस्य ५०० योजनानि रुद्धानि ५०० योजनानि पुनर्गजदन्ताद्बहिराकाशे ततो न कश्चिद्दोष इति, अस्य चाधिपस्याप्परराजधानीतो दिक्प्रमाणाद्यैर्विशेष इति तां विवक्षुराह—'रायहाणी'इत्यादि, राजधानी उत्तरस्यामिति, एतदेव विवृणोति–'असंखेज्जदीवे'त्तिपदं स्मारकं तेन 'मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तिरिअमसंखेज्जाइं दीवसमुद्दाइं वीईवइत्ता' इति ग्राह्यम्, अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरस्यां द्वादशयोजनसहस्राण्यवगाह्य अत्रान्तरे हरिस्सहदेवस्य हरिस्सहनाम्नी राजधानी प्रज्ञप्ता चतुरशीतियोजनसहस्राण्यायामविष्कम्भाभ्यां द्वे योजनलक्षे पञ्चषष्टिं च योजनसहस्राणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९२]

दीप अनुक्रम [१६६]

षट् च द्वात्रिंशदधिकानि योजनशतानि परिक्षेपेण, शेषं यथा चमरचञ्चायाः–चमरेन्द्रराजधान्याः प्रमाणं भणितं भगवत्यङ्गे तथा प्रमाणं प्रासादादीनां भणितव्यमिति, 'महिड्ढीए महज्जुईए' इति सूत्रेणास्य नामनिमित्तविषयके प्रश्ननिर्वचने सूचिते, ते चैवं–'से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ हरिस्सहकूडे २?, गोअमा! हरिस्सहकूडे बहवे उप्पलाइं पउमाइं हरिस्सहकूडसमवण्णाइं जाव हरिस्सहे णामं देवे अ इत्थ महिड्ढीए जाव परिवसइ, से तेणट्ठेणं जाव अदुत्तरं च णं गोअमा! जाव सासए णामधेज्जे' इति, अथास्य वक्षस्कारस्य नामार्थं प्रश्नयति—'से केणट्ठेण'मित्यादि, प्रश्नार्थः प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे गौतम! माल्यवति वक्षस्कारपर्वते तत्र तत्र देशे–स्थाने तस्मिन् तस्मिन् प्रदेशे–देशैकदेशे इत्यर्थः बहवः सरिकागुल्माः नवमालिकागुल्माः यावन्मगदन्तिकागुल्माः सन्तीति शेषः, ते गुल्माः क्षेत्रानुभावतः सदैव पञ्चवर्णं कुसुमं कुसुमयन्ति–जनयन्ति इत्यर्थः, ते गुल्मास्तं माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वातविधुताग्रशालामुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितं कुर्वन्ति, एतदर्थः प्राग्वत्, ततो माल्यं–पुष्पं नित्यमस्यास्तीति माल्यवान् माल्यवान्नाम्ना देवश्चात्र महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः तेन तद्योगादयमपि माल्यवान्, 'अथापरं चे'त्यादि, प्राग्वत् ॥

इह द्विविधा विदेहाः, तद्यथा—पूर्वविदेहा अपरविदेहाश्च, तत्र ये मेरोः प्राक् ते पूर्वविदेहाः ते च शीतया महानद्या दक्षिणोत्तरभागाभ्यां द्विधा विभक्ताः, एवं ये मेरोः पश्चिमायां ते अपरविदेहास्तेऽपि तथैव शीतोदया द्विधा विभक्ताः, एवं विदेहानां चत्वारो भागाः दर्शिताः, सम्प्रत्यमीषु विजयवक्षस्कारादिव्यवस्थालाघवार्थं पिण्डार्थगत्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

सूत्रकृद्दर्शयिष्यमाणरीत्या बोधनीयानां दुर्बोधा इति विस्तरतो निरूप्यते, तत्रैकैकस्मिन् भागे यथायोगं माल्यवदा-देर्गजदन्ताकारवक्षस्कारगिरेः समीपे एको विजयः तथा चत्वारः सरलवक्षस्कारास्तिस्रश्चान्तर्नद्यः, एषां सप्तानां वस्तू-नामन्तराणि षट्, सर्वत्राप्यन्तराणि रूपोनानि भवन्ति तथाऽत्र, प्रतीतमेतच्चतसृणामङ्गुलीनामप्यन्तरालानि त्रीणी-ति, ततोऽन्तरे २ एकैकसद्भावात् षड् विजयाः, एते चत्वारो वक्षस्कारादय एकैकान्तरनद्याऽन्तरितास्ततश्चतुर्णामद्वी-णामन्तरे सम्भवत्यन्तरनदीत्रयमिति व्यवस्था स्वयमवसातव्या, तथा वनमुखमवधीकृत्यैको विजय इति प्रतिविभागं सिद्धा अष्टौ विजयाः चत्वारो वक्षस्कारास्तिस्रोऽन्तरनद्यो वनमुखं चैकमिति, इयमत्र भावना–पूर्वविदेहेषु माल्यवतो गजदन्तपर्वतस्य पूर्वतः शीताया उत्तरत एको विजयः, ततः पूर्वस्यां प्रथमो वक्षस्कारः ततोऽपि पूर्वस्यां द्वितीयो विजयः ततोऽपि पूर्वस्यां प्रथमान्तरनदी, अनेन क्रमेण तृतीयो विजयः द्वितीयो वक्षस्कारः चतुर्थो विजयः द्वितीयान्तरनदी पञ्चमो विजयः तृतीयो वक्षस्कारः षष्ठो विजयः तृतीयान्तरनदी सप्तमो विजयः चतुर्थो वक्षस्कारः अष्टमो विजयः ततश्चैकं वनमुखं जगत्यासन्नं, एवं शीताया दक्षिणतोऽपि सौमनसगजदन्तपर्वतस्य पूर्वतोऽयमेव विजयादिक्रमो वाच्यः, तथा पश्चिमविदेहेषु शीतोदाया दक्षिणतो विद्युत्प्रभस्य पश्चिमतोऽप्ययमेव क्रमः, तथा शीतोदाया उत्तरतोऽपि गन्ध-मादनस्य पश्चिमत इति । अथ प्रादक्षिण्येन निरूपणेऽयमेव हि आद्य इति, प्रथमविभागमुखे कच्छविजयं विवक्षुराह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छेणामं विजए पण्णत्ते?, गोअमा! सीआए महाणईए उत्तरेणं णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए गंगासिंधूहिं महाणईहिं वेयद्धेण य पव्वएणं छब्भागपविभत्ते सोलस जोअणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचिविसेसूणे विक्खम्भेणंति। कच्छस्स णं विजयस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं कच्छं विजयं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तंजहा—दाहिणड्ढकच्छं च उत्तरड्ढकच्छं चेति, कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए पं०?, गोअमा! वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं सीआए महाणईए उत्तरेणं चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए प० उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे अट्ठ जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगसत्तरे जोअणसए एक्कं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स आयामेणं दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणस्सए किंचिविसेसूणे विक्खम्भेणं पलिअंकसंठाणसंठिए, दाहिणड्ढकच्छस्स णं भन्ते! विजयस्स केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते?, गोअमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तंजहा—जाव कत्तिमेहिं चेव अकत्तिमेहिं चेव, दाहिणड्ढकच्छे णं भन्ते! विजए मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते?, गोअमा! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे विजए वेअड्ढे णामं पव्वए?, गोअमा! दाहिणड्ढ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कच्छविजयस्स उत्तरेणं उत्तरद्धकच्छस्स दाहिणेणं चित्तकूडस्स पच्चत्थिमेणं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं कच्छे विजए वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, तंजहा—पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दुहावक्खारपव्वए पुट्ठे—पुरत्थिमिल्लाए कोडीए जाव दोहिवि पुट्ठे भरहवेअड्ढसरिसए णवरं दो बाहाओ जीवा धणुपट्ठं च ण कायव्वं, विजयविक्खम्भसरिसे आयामेणं, विक्खम्भो उच्चत्तं उव्वेहो तहेव च विज्जाहरआभिओगसेढीओ तहेव, णवरं पणपण्णं २ विज्जाहरणगरावासा पं०, आभिओगसेढीए उत्तरिल्लाओ सेढीओ सीआए ईसाणस्स सेसाओ सक्कस्सत्ति, कूडा–'सिद्धे १ कच्छे २ खंडग ३ माणी ४ वेअड्ढ ५ पुण्ण ६ तिमिसगुहा ७। कच्छे ८ वेसमणे वा ९ वेअड्ढे होति कूडाइं ॥ १ ॥ कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छे णाम विजए पण्णत्ते?, गोअमा! वेयड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे जाव सिज्झन्ति, तहेव णेअव्वं सव्वं कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छे विजए सिंधुकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते?, गोअमा! मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं उसभकूडस्स पच्चत्थिमेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छविजए सिंधुकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते, सट्ठिं जोअणाणि आयामविक्खम्भेणं जाव भवणं अट्ठो रायहाणी अ णेअव्वा, भरहसिंधुकुंडसरिसं सव्वं णेअव्वं, जाव तस्स णं सिंधुकुण्डस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं सिंधुमहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धकच्छविजयं एज्जेमाणी २ सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ अहे तिमिसगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालयित्ता दाहिणकच्छविजयं एज्जेमाणी २ चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीयं महाणइं समप्पेइ, सिंधुमहाणई पवहे अ मूले अ भरहसिंधुसरिसा पमाणेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता । कहि णं भन्ते! उत्तरद्धकच्छविजए उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! सिंधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं उत्तरद्धकच्छविजए उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते, अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं तं चेव पमाणं जाव रायहाणी से णवरं उत्तरेणं भाणिअव्वा । कहि णं भन्ते! उत्तरद्धकच्छे विजए गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते?, गोअमा! चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं उसहकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं उत्तरद्धकच्छे गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते सट्ठिं जोअणाइं आयामविक्खम्भेणं तहेव जहा सिंधू जाव वणसंडेण य संपरिक्खित्ता । से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ कच्छे विजए कच्छे विजए?, गोअमा! कच्छे विजए वेअद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं सीआए महाणईए उत्तरेणं गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं दाहिणद्धकच्छविजयस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं खेमाणामं रायहाणी पं० विणीआरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा, तत्थ णं खेमाए रायहाणीए कच्छे णामं राया समुप्पज्जइ, महया हिमवन्त जाव सव्वं भरहोअवणं भाणिअव्वं निक्खमणवज्जं सेसं सव्वं भाणिअव्वं जाव भुंजए माणुस्सए सुहे, कच्छणामधेज्जे अ कच्छे इत्थ देवे महद्धीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ कच्छे विजए कच्छे विजए जाव णिच्चे (सूत्रं ९३)

'कहि णं भन्ते'त्ति क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे कच्छो नाम विजयः प्रज्ञप्तः?, गौतम! शीतायाः महानद्याः उत्तरस्यां नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणस्यां चित्रकूटसरलवक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां माल्यवतो गजदन्ताकारवक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वस्यां अत्रान्तरे महाविदेहे वर्षे कच्छो नाम चक्रवर्त्तिविजेतव्यभूविभागरूपो विजयः

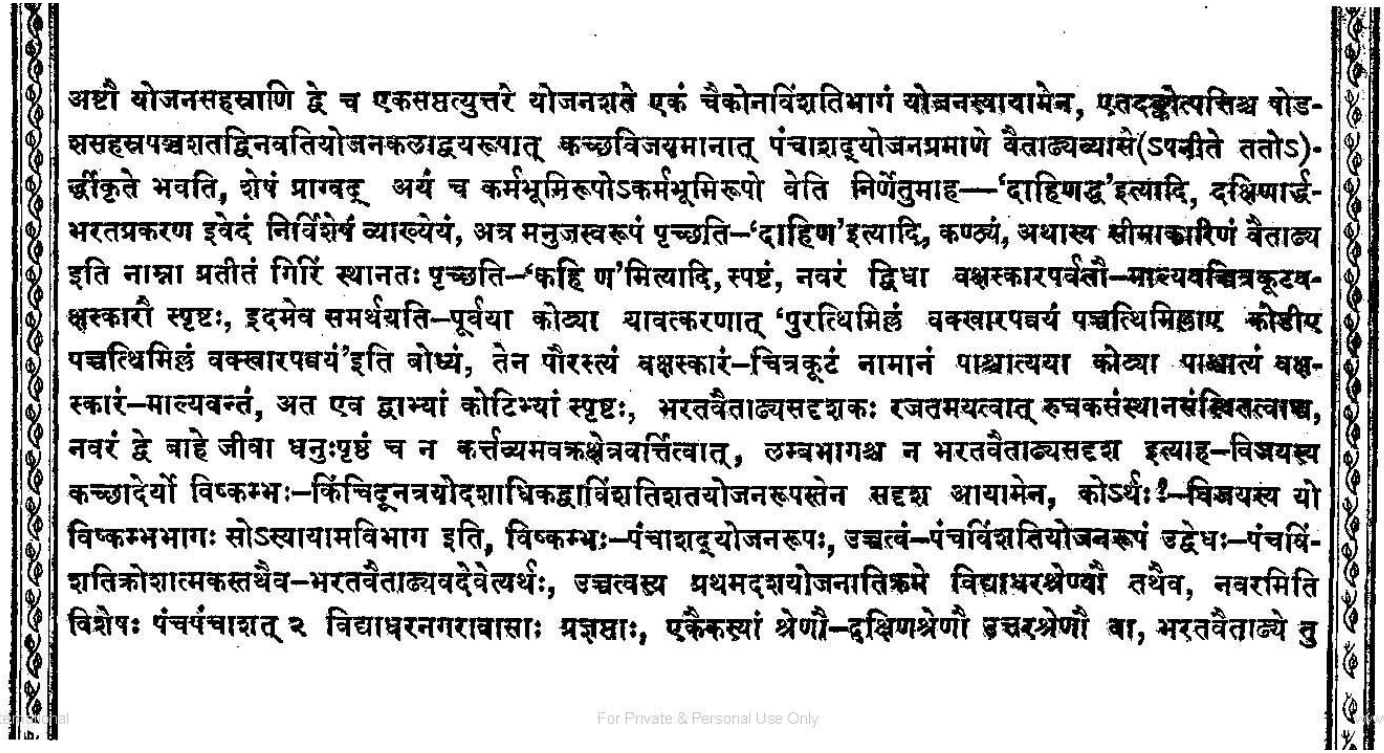
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञप्तः, सर्वात्मना विजेतव्यश्चक्रवर्त्तिनामिति विजयः अनादिप्रवाहनिपतितेयं संज्ञा तेनेदमन्वर्थमात्रदर्शनं न तु साक्षात्प्रवृत्तिनिमित्तोपदर्शनमिति, उत्तरदक्षिणाभ्यामायतः पूर्वापरविस्तीर्णः पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितः आयतचतुरस्रत्वात्, गङ्गासिन्धुभ्यां महानदीभ्यां वैताढ्येन च पर्वतेन षड्भागप्रविभक्तः षट्खण्डीकृत इत्यर्थः, एवमन्येऽपि विजया भाव्याः, परं शीताया उदीच्याः कच्छादयः शीतोदाया याम्याः पक्ष्मादयो गङ्गासिन्धुभ्यां षोढा कृताः, शीताया याम्या वच्छादयः शीतोदाया उदीच्या वप्रादयो रक्तारक्तवतीभ्यामिति, उत्तरदक्षिणायतेति विवृणोति–षोडश योजनसहस्राणि पञ्चयोजनशतानि द्विनवत्यधिकानि द्वौ चैकोनविंशतिभागौ योजनस्यायामेन, अत्रोपपत्तिर्यथा–विदेहविस्तारात् योजन ३३६८४ कला ८ रूपात् शीतायाः शीतोदाया वा विष्कम्भो योजन ५०० रूपः शोध्यते, शेषस्यार्द्धे लभ्यते यथोक्तं मानं, इह यद्यपि शीतायाः शीतोदाया वा समुद्रप्रवेशे एव पञ्चशतयोजनप्रमाणो विष्कम्भोऽन्यत्र तु हीनो हीनतरस्तथापि कच्छादिविजयसमीपे उभयकूलवर्त्तिनो रमणप्रदेशावधिकृत्य पञ्चयोजनशतप्रमाणो विष्कम्भः प्राप्यत इति, प्राचीनप्रतीचीनेति विवृणोति–द्वे योजनसहस्रे द्वे च योजनशते त्रयोदशोत्तरे किञ्चिदूने, अत्राप्युपपत्तिर्यथा–इह महाविदेहेषु देवकुरूत्तरकुरुमेरुभद्रशालवनवक्षस्कारपर्वतान्तरनदीवनमुखव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्र विजयाः, ते च पूर्वापरविस्तृतास्तुल्यविस्ताराः, तत्रैकस्मिन् दक्षिणभागे उत्तरभागे वाऽष्टौ वक्षस्कारगिरयः, एकैकस्य पृथुत्वं पंचयोजनशतानि, सर्ववक्षस्कारपृथुत्वमीलने चत्वारि योजनसहस्राणि, अन्तरनद्यश्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट् एकैकस्याश्चान्तरनद्या विष्कम्भः पंचविंशं योजनशतं ततः सर्वान्तरनदीपृथुत्वमीलने जातानि सप्त शतानि पंचाशदधिकानि ७५०, द्वे च वनमुखे एकैकस्य वनमुखस्य पृथुत्वमेकोनत्रिंशच्छतानि द्वाविंशत्यधिकानि २९२२, उभयपृथुत्वमीलने जातानि अष्टापञ्चाशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ५८४४, मेरुपृथुत्वं दशसहस्राणि १००००, पूर्वापरभद्रशालवनयोरायामश्चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि ४४०००, सर्वमीलने जातानि चतुःषष्टिसहस्राणि पंचशतानि चतुर्नवत्यधिकानि ६४५९४, एतज्जम्बूद्वीपविस्तारात् शोध्यते, शोधिते च सति जातं शेषं पंचत्रिंशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि षडुत्तराणि ३५४०६, एकैकस्मिंश्च दक्षिणे उत्तरे वा भागे विजयाः षोडश, ततः षोडशभिर्भागे हृते लब्धानि द्वाविंशतिशतानि किंचिदूनत्रयोदशाधिकानि २२१३, त्रयोदशस्य योजनस्य षोडशचतुर्दशभागात्मकत्वात्, एतावानेवैकैकस्य विजयस्य विष्कम्भः। अयं च भरतवद्वैताढ्येन द्विधाकृत इति तत्र तं विवक्षुराह—'कच्छस्स ण'मित्यादि, कच्छस्य विजयस्य बहुमध्यदेशभागे वैताढ्यः पर्वतः प्रज्ञप्तः, यः कच्छं विजयं द्विधा विभजंश्चस्तिष्ठति, तद्यथा—दक्षिणार्द्धकच्छं चोत्तरार्द्धकच्छं च, चशब्दौ उभयोस्तुल्यकक्षताद्योतनार्थौ। दक्षिणार्द्धकच्छं स्थानतः पृच्छन्नाह—'कहि ण—' मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहनाम्नि वर्षे दक्षिणार्द्धकच्छो नाम विजयः प्रज्ञप्तः?, गौतम! वैताढ्यपर्वतस्य दक्षिणस्यां शीताया महानद्या उत्तरस्यां चित्रकूटस्य वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वस्यां अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे यावद् दक्षिणार्द्धकच्छो नाम विजयः प्रज्ञप्तः, उत्तरेत्यादिविशेषणद्वयं प्राग्वद् वाच्यं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org



अष्टौ योजनसहस्राणि द्वे च एकसप्तत्युत्तरे योजनशते एकं चैकोनविंशतिभागं योजनस्यायामेन, एतद्धनुःपरिश्च षोडशसहस्रपञ्चशतद्विनवतियोजनकलाद्वयरूपात् कच्छविजयमानात् पंचाशद्योजनप्रमाणे वैताढ्यव्यासे(ऽपनीते ततोऽर्द्धीकृते भवति, शेषं प्राग्वद् अयं च कर्मभूमिरूपोऽकर्मभूमिरूपो वेति निर्णेतुमाह—'दाहिणद्ध'इत्यादि, दक्षिणार्द्धभरतप्रकरण इवेदं निर्विशेषं व्याख्येयं, अत्र मनुजस्वरूपं पृच्छति–'दाहिण'इत्यादि, कण्ठ्यं, अथास्य सीमाकारिणं वैताढ्य इति नाम्ना प्रतीतं गिरिं स्थानतः पृच्छति–'कहि ण'मित्यादि, स्पष्टं, नवरं द्विधा वक्षस्कारपर्वतौ–माल्यवच्चित्रकूटवक्षस्कारौ स्पृष्टः, इदमेव समर्थयति–पूर्वया कोट्या यावत्करणात् 'पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं'इति बोध्यं, तेन पौरस्त्यं वक्षस्कारं–चित्रकूटं नामानं पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्यं वक्षस्कारं–माल्यवन्तं, अत एव द्वाभ्यां कोटिभ्यां स्पृष्टः, भरतवैताढ्यसदृशकः रजतमयत्वात् रुचकसंस्थानसंस्थितत्वाच्च, नवरं द्वे बाहे जीवा धनुःपृष्ठं च न कर्त्तव्यमवक्रक्षेत्रवर्त्तित्वात्, लम्बभागश्च न भरतवैताढ्यसदृश इत्याह–विजयस्य कच्छादेर्यो विष्कम्भः–किंचिदूनत्रयोदशाधिकद्वाविंशतिशतयोजनरूपस्तेन सदृश आयामेन, कोऽर्थः?–विजयस्य यो विष्कम्भभागः सोऽस्यायामविभाग इति, विष्कम्भः–पंचाशद्योजनरूपः, उच्चत्वं–पंचविंशतियोजनरूपं उद्वेधः–पंचविंशतिक्रोशात्मकस्तथैव–भरतवैताढ्यवदेवेत्यर्थः, उच्चत्वस्य प्रथमदशयोजनातिक्रमे विद्याधरश्रेण्यौ तथैव, नवरमिति विशेषः पंचपंचाशत् २ विद्याधरनगरावासाः प्रज्ञप्ताः, एकैकस्यां श्रेणौ–दक्षिणश्रेणौ उत्तरश्रेणौ वा, भरतवैताढ्ये तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९३] + गाथा

दीप अनुक्रम [१६७--१६९]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥३४३॥

दक्षिणतः पञ्चाशदुत्तरतस्तु षष्टिर्नगराणीति भेदः, आभियोग्यश्रेणौ तथेवेति गम्यं, कोऽर्थः?–विद्याधरश्रेणिभ्यामूर्द्धं दशयोजनातिक्रमे दक्षिणोत्तरभेदेन द्वे भवतः, अत्राधिकारात् सर्ववैताढ्याभियोग्यश्रेणिविशेषमाह—उत्तरदिक्स्थाः आभियोग्यश्रेणयः शीताया महानद्या ईशानस्य–द्वितीयकल्पेन्द्रस्य शेषाः–शीतादक्षिणस्थाः शक्रस्य–आद्यकल्पेन्द्रस्य, किमुक्तं भवति?–शीताया उत्तरदिशि ये विजयवैताढ्यास्तेषु या आभियोग्यश्रेणयो दक्षिणगा वा उत्तरगा वा ताः सर्वाः सौधर्मेन्द्रस्येति, बहुवचनं चात्र विजयवर्त्तिसर्ववैताढ्यश्रेण्यपेक्षया द्रष्टव्यं, अथ कूटानि वक्तव्यानीति तदुद्देशमाह–'कूडा'इति, व्यक्तम्, अथ तन्नामान्याह–'सिद्धे'इत्यादि, पूर्वस्यां प्रथमं सिद्धायतनकूटं, ततः पश्चिमदिशमवलम्ब्येमान्यष्टावपि कूटानि वाच्यानि, तद्यथा–द्वितीयं दक्षिणकच्छार्द्धकूटं, तृतीयं खण्डप्रपातगुहाकूटं चतुर्थं माणीति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् माणिभद्रकूटं शेषं व्यक्तं, परं विजयवैताढ्येषु सर्वेष्वपि द्वितीयाष्टमकूटे स्वस्वदक्षिणोत्तरार्द्धविजयसमनामके यथा द्वितीयं दक्षिणकच्छार्द्धकूटं अष्टममुत्तरकच्छार्द्धकूटं इतराणि भरतवैताढ्यकूटसमनामकानीति । अथोत्तरार्द्धकच्छं प्रश्नयति–'कहि ण'मित्यादि, व्यक्तं, तथैव दक्षिणार्द्धकच्छवद् ज्ञेयं यावत्सिद्ध्यन्तीति, अथैतदन्तर्वर्त्तिसिन्धुकुण्डं वक्तव्यमित्याह—'कहि ण'मित्यादि, व्यक्तं, परं नितम्बः–कटकः, लाघवार्थमतिदेशमाह—'भरतसिन्धुकुण्डसरिसं सव्वं णेअव्वं' इत्यादि, सर्वं गतार्थं, गङ्गागमेन व्याख्यातत्वात्, तत्रैव ऋषभकूटवक्तव्यमाह—'कहि ण'मित्यादि, प्राग्वत्, अथ गङ्गाकुण्डप्रस्तावनार्थमाह–'कहि ण'मित्यादि, सिन्धुकुण्डगमो निर्वि-

४वक्षस्कारे कच्छविजयः सू. ९३

॥३४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९३] + गाथा

दीप अनुक्रम [१६७--१६९]

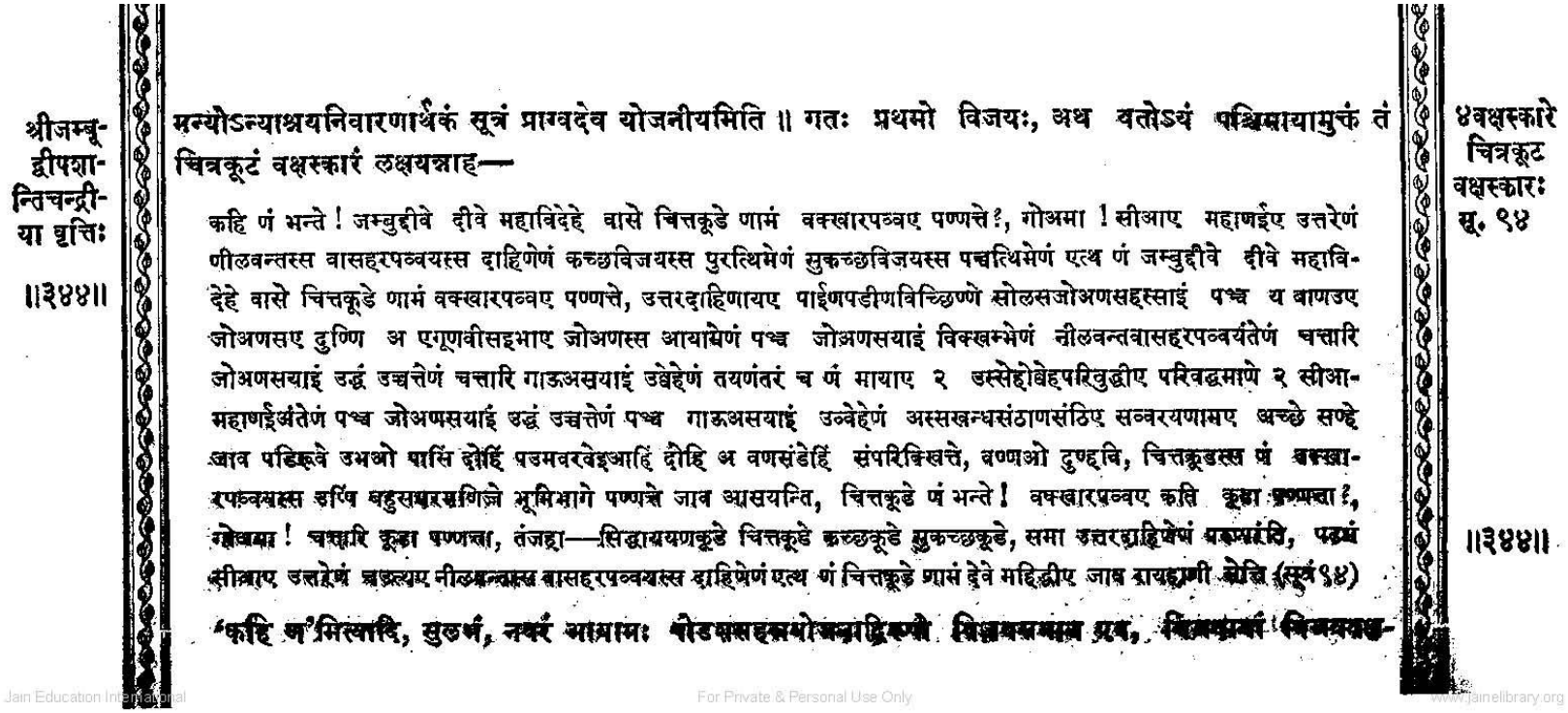
शेषः सर्वोऽपि वाच्यः, परं ततो गङ्गानदी खण्डप्रपातगुहाया अधो वैताढ्यं विभिद्य दक्षिणे भागे शीतां समुपसर्प्पतीति, ननु भरते नदीमुख्यत्वेन गङ्गामुपवर्ण्य सिन्धुरुपवर्णिता इह तु सिन्धुरुपवर्ण्य सा वर्ण्यते इति कथं व्यत्ययः?, उच्यते, इह माल्यवद्वक्षस्कारतो विजयप्ररूपणायाः प्रक्रान्तत्वेन तदासन्नत्वात् सिन्धुकुण्डस्य प्रथमं सिन्धुप्ररूपणा ततो गङ्गाया इति। अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते कच्छो विजयः कच्छो विजयः?, गौतम! कच्छे विजये वैताढ्यस्य दक्षिणस्यां शीताया महानद्या उत्तरस्यां गङ्गायाः महानद्याः पश्चिमायां सिन्धोर्महानद्याः पूर्वस्यां दक्षिणार्द्धकच्छविजयस्य बहुमध्यदेशभागे–मध्यखण्डेऽत्रान्तरे क्षेमानाम्ना राजधानी प्रज्ञप्ता, विनीताराजधानीसदृशी भणितव्या, विनीतावर्णकः सर्वोऽप्यत्र वाच्य इत्यर्थः, तत्र क्षेमायां राजधान्यां कच्छो नाम–राजा चक्रवर्त्ती समुत्पद्यते, कोऽर्थः?–यस्तत्र षट्खण्डभोक्ता समुत्पद्यते स तत्र लोकैः 'कच्छ' इति व्यवह्रियते, अत्र वर्त्तमाननिर्देशेन सर्वदापि यथासम्भवं चक्रवर्त्युत्पत्तिः सूचिता, न तु भरत इव चक्रवर्त्युत्पत्तौ कालनियम इति, 'महयाहिमवन्ते'त्यादिकः सर्वो ग्रन्थो वाच्यः यावत्सर्वं भरतस्य क्षेत्रस्य ओअवणमिति–साधनं स्वायत्तीकरणं भरतस्य चक्रिण इति शेषः, निष्क्रमणं–प्रव्रज्याप्राप्तिस्तद्वर्जं भणितव्यं, भरतचक्रिणा सर्वविरतिर्गृहीता कच्छचक्रिणस्तु तद्ग्रहणेऽनियम इति, कियत्पर्यन्तमित्याह— यावद् भुङ्क्ते मानुष्यकानि सुखानि, अथवा कच्छनामधेयश्चात्र कच्छे विजये देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–कच्छराजस्वामिकत्वात् कच्छदेवाधिष्ठितत्वाच्च कच्छविजयः २ इति, यावन्नित्य इत्यन्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९३]

दीप अनुक्रम [१७०]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३४४॥

मन्योऽन्याश्रयनिवारणार्थकं सूत्रं प्राग्वदेव योजनीयमिति ॥ गतः प्रथमो विजयः, अथ ततोऽयं पश्चिमायामुक्तं तं चित्रकूटं वक्षस्कारं लक्षयन्नाह—

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं कच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं सुकच्छविजयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सोलसजोअणसहस्साइं पञ्च य बाणउए जोअणसए दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं नीलवन्तवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि गाऊअसयाइं उव्वेहेणं तयणंतरं च णं मायाए २ उस्सेहोवेहपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे २ सीआमहाणईअंतेणं पञ्च जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं पञ्च गाऊअसयाइं उव्वेहेणं अस्सखन्धसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे जाव पडिरूवे उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते, वण्णओ दुण्हवि, चित्तकूडस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयन्ति, चित्तकूडे णं भन्ते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता?, गोअमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तंजहा—सिद्धायणकूडे चित्तकूडे कच्छकूडे सुकच्छकूडे, समा उत्तरदाहिणेणं चत्तारि, पढमं सीआए उत्तरेणं बीअल्लए नीलवन्तवासहरपव्वयस्स दाहिणेणं एत्थ णं चित्तकूडे णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ (सूत्रं ९४)

'कहि ण'मित्यादि, सुगमं, नवरं आयामः षोडशसहस्रयोजनाद्विरूपो विष्कम्भस्तथैव, विष्कम्भार्धं विष्कम्भ-

४वक्षस्कारे चित्रकूट वक्षस्कारः सू. ९४

॥३४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चित्रकुट-वक्षस्कारस्य वर्णनं क्रियते

स्कारणां च तुल्यायामत्वात्, तेन तत्करणं प्राग्वदेव, विष्कम्भे तु पञ्च योजनशतानीति विशेषस्तेन, ननु तानि कथमिति, उच्यते, जम्बूद्वीपपरिमाणविष्कम्भात् षण्णवतिसहस्रेषु शोधितेषु अवशिष्टानि चत्वारि सहस्राणि एकस्मिन् दक्षिणभागे उत्तरे वाऽष्टौ वक्षस्कारगिरयस्ततोऽष्टभिर्विभज्यन्ते, ततः सम्पद्यते वक्षस्काराणां प्रत्येकं पूर्वोक्तो विष्कम्भः, इह हि विदेहेषु विजयान्तरनदीमुखवनमेर्वादिव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्र वक्षस्कारगिरयस्ते पूर्वापरविस्तृताः सर्वत्र तुल्यविस्तारास्ततोऽस्य करणस्यावकाशः, तत्र विजयषोडशकपृथुत्वं पंचात्रिंशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि षडुत्तराणि ३५४०६, अन्तरनदीषट्कपृथुत्वं सप्त शतानि पंचाशदधिकानि ७५० मेरुविष्कम्भपूर्वापरभद्रशालवनायामपरिमाणं चतुःपंचाशत्सहस्राणि ५४००० मुखवनद्वयपृथुत्वमष्टापञ्चाशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ५८४४, सर्वमीलने जातानि षण्णवतिसहस्राणि ९६००० इति, तथा नीलवद्वर्षधरपर्वतसमीपे चत्वारि योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि क्रोशशतानि उद्वेधेन तदनन्तरं च मात्रया २-क्रमेण २ उत्सेधोद्वेधपरिवृद्ध्या परिवर्द्धमानः २, यत्र यावदुच्चत्वं तत्र तच्चतुर्थभाग उद्वेध इति द्वाभ्यां प्रकाराभ्यामधिकतरेऽवस्थित्यर्थः, सीतामहानद्यन्ते पंचयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन पंचक्रोशशतान्युद्वेधेन, अत एवाश्वस्कन्धसंस्थानसंस्थितः प्रथमतोऽतुङ्गत्वात् क्रमेणान्ते तुङ्गत्वात्, सर्वरत्नमयः, शेषं प्राग्वत्। अथास्य विस्तरसौभाग्यमावेदयति—'चित्तकूडस्स ण'मित्यादि, व्यक्तं, अथात्र कूटसङ्ख्यार्थं पृच्छति—'चित्तकूडे'इत्यादि, पदयोजना सुलभा, भावार्थस्त्वयम्—परस्परमेतानि चत्वार्यपि कूटानि उत्तरदक्षिणभावेन समानि—तुल्यानीत्यर्थः, तथाहि—प्रथमं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

सिद्धायतनकूटं द्वितीयस्य चित्रकूटस्य दक्षिणस्यां चित्रकूटं च सिद्धायतनकूटस्योत्तरस्यां, एवं प्राक्तनं प्राक्तनं अग्रेतनाद् अग्रेतनादक्षिणस्या अग्रेतनमग्रेतनं प्राक्तनात् २ उत्तरस्यां ज्ञेयं, तर्हि शीतानीलवतोः कस्यां दिशि इमानीत्याह–प्रथमकं शीताया उत्तरतः चतुर्थकं नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणत इति, सूत्रपाठोक्तक्रमबलात् द्वितीयं चित्रनामकं प्रथमादनन्तरं ज्ञेयं, तृतीयं कच्छनामकं चतुर्थादर्वाक् ज्ञेयमिति, चित्रकूटादिषु वक्षस्कारेष्वेवं कूटनामनिवेशे पूर्वेषां सम्प्रदायः–सर्वत्राद्यं सिद्धायतनकूटं महानदीसमीपतो गण्यमानत्वाद् द्वितीयं स्वस्ववक्षस्कारनामकं तृतीयं पाश्चात्यविजयनामकं चतुर्थं प्राच्यविजयनामकमिति, अथास्य नामार्थं प्ररूपयति–'एत्थ ण'मित्यादि, अत्र चित्रकूटनामा देवः परिवसति तद्योगाच्चित्रकूट इति नाम, अस्य राजधानी मेरोरुत्तरतः शीताया उत्तरदिग्भाविवक्षस्काराधिपतित्वात्, एवमग्रेतनेष्वपि वक्षस्कारेषु यथासम्भवं वाच्यमिति ॥ गतः प्रथमो वक्षस्कारः, अधुना द्वितीयविजयप्रश्नावसरः–

कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते?, गोअमा! सीआए महाणईए उत्तरेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं गाहावईए महाणईए पच्चत्थिमेणं चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुदीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए जहेव कच्छे विजए तहेव सुकच्छे विजए, णवरं खेमपुरा रायहाणी सुकच्छे राया समुप्पज्जइ तहेव सव्वं। कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे २ महाविदेहे वासे गाहावइकुंडे पण्णत्ते?, गो० सुकच्छविजयस्स पुरत्थिमेणं महाकच्छस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितम्बे एत्थ णं जम्बु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ महाविदेहक्षेत्रस्य द्वितिय-विजयस्य वर्णनं क्रियते

दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुंडे णामं कुण्डे पण्णत्ते, जहेव रोहिअंसाकुण्डे तहेव जाव गाहावइदीवे भवणे, तस्स णं गाहावइस्स कुण्डस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं गाहावई महाणई पवूढा समाणी सुकच्छमहाकच्छविजए दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ, गाहावई णं महाणई पवहे अ मुहे अ सव्वत्थ समा पणवीसं जोअणसयं विक्खम्भेणं अद्धाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं उभओ पासिं दोहि अ पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसण्डेहिं जाव दुण्हवि वण्णओ इति । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजये पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं सीआए महाणईए उत्तरेणं पम्हकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गाहावईए महाणईए पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते, सेसं जहा कच्छविजयस्स जाव महाकच्छे इत्थ देवे महिद्धीए अट्ठो अ भाणिअव्वो । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं सीआए महाणईए उत्तरेणं महाकच्छस्स पुरत्थिमेणं कच्छावईए पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सेसं जहा चित्तकूडस्स जाव आसयन्ति, पम्हकूडे चत्तारि कूडा पं० तं०—सिद्धाययणकूडे पम्हकूडे महाकच्छकूडे कच्छावइकूडे एवं जाव अट्ठो, पम्हकूडे इत्थ देवे महिद्धिए पलिओवमठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पं० ?, गो०! णीलवन्तस्स दाहिणेणं सीआए महाणईए उत्तरेणं दहावतीए महाणईए पच्चत्थिमेणं पम्हकूडस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पं० उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स जाव कच्छगावई अ इत्थ देवे, कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

दहावई कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते?, गोअमा! आवत्तस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं कच्छगावईए विजयस्स पुरत्थिमेणं णीलवन्तस्स दाहिणिल्ले णितंबे एत्थ णं महाविदेहे वासे दहावईकुण्डे णामं कुण्डे पं० सेसं जहा गाहावईकुण्डस्स जाव अट्ठो, तस्स णं दहावईकुण्डस्स दाहिणेणं तोरणेणं दहावई महाणई पवूढा समाणी कच्छावईआवत्ते विजए दुहा विभयमाणी २ दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ, सेसं जहा गाहावईए । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं सीआए महाणईए उत्तरेणं णलिणकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं दहावतीए महाणईए पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते, सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स इति । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?, गो०! णीलवन्तस्स दाहिणेणं सीआए उत्तरेणं मंगलावइस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं आवत्तस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सेसं जहा चित्तकूडस्स जाव आसयन्ति, णलिणकूडे णं भन्ते! कति कूडा पं०?, गोअमा! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तंजहा–सिद्धायययणकूडे णलिणकूडे आवत्तकूडे मंगलावत्तकूडे, एए कूडा सच्चेव रायहाणीओ उत्तरेणं । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं सीआए उत्तरेणं णलिणकूडस्स पुरत्थिमेणं पंकावईए पच्चत्थिमेणं एत्थ णं मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते, जहा कच्छस्स विजए तहा एसो वाणियव्वो जाव मंगलावत्ते य इत्थ देवे परिवसइ, से एएणट्ठेणं० । कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं कुण्डे पण्णत्ते?, गोअमा! मंगलावत्तस्स पुरत्थिमेणं पुक्खलविजयस्स पच्चत्थिमेणं णीलवन्तस्स दाहिणे णितंबे, एत्थ णं पुक्खला-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

वई आव कुण्डे पण्णत्ते तं चेव गाहावइकुण्डप्पमाणं जाव मंगलावत्तपुक्खलावत्तविजये दुहा विभयमाणी २ अवसेसं तं चेव जं चेव गाहावईए। कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते?, गोअमा! णीलवन्तस्स दाहिणेणं सीआए उत्तरेणं पंकावईए पुरत्थिमेणं एक्कसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते जहा कच्छविजए तहा भाणिअव्वं जाव पुक्खले अ इत्थ देवे महिड्ढिए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से एएणट्ठेणं० कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे एगसेले णामं वक्खारपव्वए पं०?, गो०! पुक्खलावत्तचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं पोक्खलावतीचक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं णीलवन्तस्स दक्खिणेणं सीआए उत्तरेणं, एत्थ णं एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते चित्तकूडगमेणं णेअव्वो जाव देवा आसयन्ति, चत्तारि कूडा, तं०—सिद्धायणकूडे एगसेलकूडे पुक्खलावत्तकूडे पुक्खलावई कूडे, कूडाणं तं चेव पञ्चसइअं परिमाणं जाव एगसेले अ देवे महिड्ढीए। कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं चक्कवट्टिविजए पण्णत्ते?, गोअमा!, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं सीआए उत्तरेणं उत्तरिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं एगसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते, उत्तरदाहिणायए एवं जहा कच्छविजयस्स जाव पुक्खलावई अ इत्थ देवे परिवसइ, एएणट्ठेणं०। कहि णं भन्ते! महाविदेहे वासे सीआए महाणईए उत्तरिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे प०?, गोअमा! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं सीआए उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पुक्खलावइचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे सोलसजोअणसहस्साइं पञ्च य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं सीआए महाणईए अन्तेणं दो जोअणसहस्साइं नव य बावीसे जोअणसए विक्खम्भेणं तयणंतरं च णं मायाए २ परिहायमाणे २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

णीलवन्तवासहरपव्वयंतेणं एगं एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणंति, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसण्डेणं संपरिक्खित्तं वण्णओ सीआमुहवणस्स जाव देवा आसयन्ति, एवं उत्तरिल्लं पासं समत्तं । विजया भणिआ । रायहाणीओ इमाओ—खेमा १ खेमपुरा २ चेव, रिट्ठा ३ रिट्ठपुरा ४ तहा । खग्गी ५ मंजूसा ६ अविअ, ओसही ७ पुंडरीगिणी ८ ॥ १ ॥ सोलस विजाहरसेढीओ तावइआओ अभिओगसेढीओ सव्वाओ इमाओ ईसाणस्स, सव्वेसु विजएसु कच्छवत्तव्वया जाव अट्ठो रायाणो सरिसणामगा विजएसु सोलसण्हं वक्खारपव्वयाणं चित्तकूडवत्तव्वया जाव कूडा चत्तारि २ बारसण्हं णईणं गाहावइ-वत्तव्वया जाव उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं वणसण्डेहि अ वण्णओ (सूत्रं ९५)

'कहि ण'मित्यादि, सर्वं सुगमं कच्छतुल्यवक्तव्यत्वात्, नवरं खेमपुरा राजधानी सुकच्छस्तत्र राजा चक्रवर्त्ती समुत्पद्यते, विजयसाधनादिकं तथैव सर्वं वक्तव्यमिति शेषः । उक्तः सुकच्छः, अथ प्रथमान्तरनद्यवसरः—'कहि णं भन्ते !'इत्यादि, क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे ग्राहावत्या अन्तरनद्याः कुण्डं—प्रभवस्थानं ग्राहावती-कुण्डनाम कुण्डं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! सुकच्छस्य विजयस्य पूर्वस्यां महाकच्छस्य विजयस्य पश्चिमायां नीलवतो वर्षधर-पर्वतस्य दाक्षिणात्ये नितम्बे, अत्र—सामीपिकेऽधिकरणे सप्तमी तेन नितम्बसमीपे इत्यर्थः, अत्र जम्बूद्वीपे द्वीपे महा-विदेहे वर्षे ग्राहावतीकुण्डं प्रज्ञप्तं, यथैव रोहितांशाकुण्डं तथेदमपि विंशत्यधिकशतयोजनायामविष्कम्भमित्यादि-रीत्या ज्ञेयं, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावद् ग्राहावती द्वीपं भवनं चेति, उपलक्षणं चैतत्, तेनार्थेन सूत्रमपि भावनीयम्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथाहि—'से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ गाहावई दीवे गाहावई दीवे?, गोअमा! गाहावई दीवे णं बहूइं उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं गाहावईदीवसमप्पभाइं समवण्णाइं' इत्यादि, अथास्माद्या नदी प्रवहति तामाह–'तस्स ण'मित्यादि व्यक्तं, नवरं ग्राहाः–तन्तुनामानो जलचरा महाकायाः सन्त्यस्यामिति ग्राहावती, मतुब्प्रत्यये मस्य वत्वे ङीप्रत्यये रूपसिद्धिः दीर्घत्वं चात्राकृतिगणत्वात् 'अनजिरादिबहुस्वरशरादीनां मता' (श्रीसिद्ध०अ०३पा०२ सू०७८) वित्यनेन, महानदी प्रव्यूढा सती सुकच्छमहाकच्छौ विजयौ द्विधा विभजन्ती २ अष्टाविंशत्या नदीसहस्रैः समग्रा–सहिता दक्षिणेन भागेन–मेरोर्दक्षिणदिशि शीता महानदीं समुपसर्पति, अथास्य विष्कम्भादिकमाह–'गाहावई ण'मित्यादि, ग्राहावती महानदी प्रवहे–ग्राहावतीकुण्डनिर्गमे मुखे–शीताप्रवेशे च सर्वत्र मुखप्रवहयोरन्यत्रापि स्थाने समा–समविस्तरोद्वेधा, एतदेव दर्शयति–पंचविंशत्यधिकं योजनशतं विष्कम्भेन, अर्द्धतृतीयानि योजनान्युद्वेधेन, सपादशतयोजनानां पंचाशत्तमभागे एतावत एव लाभात्, पृथुत्वं च प्राग्वत्, तथाहि–महाविदेहेषु कुरुमेरुभद्रशालविजयवक्षस्कारमुखवनव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रान्तरनद्यः, ताश्च पूर्वापरविस्तृतास्तुल्यविस्तारप्रमाणास्तत एव तत्करणावकाशः, तत्र मेरुविष्कम्भपूर्वापरभद्रशालवनायामप्रमाणं चतुःपंचाशत्सहस्राणि विजय१६पृथुत्वं पंचत्रिंशत्सहस्राणि चतुःशतानि षडुत्तराणि वक्षस्कार ८ पृथुत्वं चत्वारि सहस्राणि मुखवनद्वय २ पृथुत्वं ५८४४, सर्वमीलनेन नवनवतिसहस्राणि द्वे शते पंचाशदधिके, एतज्जम्बूद्वीपविष्कम्भलक्षाच्छोध्यते शोधिते च जातं सप्तशतानि पंचाशदग्राणि, एतच्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

दक्षिणे उत्तरे वा भागेऽन्तरनद्यः षट् सन्तीति षड्भिर्विभज्यते लब्धः प्रत्येकमन्तरनदीनामुक्तो विष्कम्भ इति, आयामस्तु विजयायामप्रमाणविजयवक्षस्कारान्तरनदीमुखवनानां समायामकत्वात्, ननु 'जावइया सलिलाओ माणुसलोगंमि सव्वंमि ॥ २९ ॥ पणयालीस सहस्सा आयामो होइ सव्वसरिआणं' इति वचनात् कथमिदं सङ्गच्छते?, उच्यते, इदं वचनं भरतगङ्गादिसाधारणं, तेन यथा तत्र नदीक्षेत्रस्याल्पत्वेनानुपपत्तावुपपत्त्यर्थं कोट्टाककरणमाश्रयणीयं तथाऽत्रापि, अत्र श्रीमलयगिरिपादाः क्षेत्रसमासवृत्तौ जंबूद्वीपाधिकारे एताश्च ग्राहावतीप्रमुखा नद्यः सर्वा अपि सर्वत्र कुण्डाद्विनिर्गमे शीताशोतोदायाः प्रवेशे च तुल्यप्रमाणविष्कम्भोद्वेधा इत्युक्त्वा यत्पुनर्धातकीखण्डपुष्करार्द्धाधिकारयोर्नदीनां द्वीपे द्वीपे द्विगुणविस्तारं व्याख्यानयन्तः प्रोचुः यथा जम्बूद्वीपे रोहितांशारोहितासुवर्णकूलारूप्यकूलानां ग्राहावत्यादीनां च द्वादशानामन्तरनदीनां सर्वाग्रेण षोडशानां नदीनां प्रवाहविष्कम्भा द्वादशयोजनानि सार्द्धानि उद्वेधः क्रोशमेकं समुद्रप्रवेशे ग्राहावत्यादीनां च महानदीप्रवेशे विष्कम्भो योजन १२५ उद्वेधो योजन २ क्रोश २ इति तन्न पूर्वापरविरोधि, यतस्तत्रैव तैः "अत्र लघुवृत्त्यभिप्रायेण प्रवहप्रवेशयोर्विशेषोऽभिहित" इति कथनेन समाहितम्, एवमन्योऽपि लघुवृत्तिगतस्तत्राभिप्रायो दर्शितो वर्त्तते, उभयत्रापि तत्त्वं तु सर्वविदो विदन्ति, किंच—आसां सर्वत्र समविष्कम्भत्वे आगमयुक्तिरप्यनुकूला, तथाहि—आसां विष्कम्भवैषम्य उभयपार्श्ववर्त्तिनोर्विजययोरपि विष्कम्भवैषम्यं स्यादिष्यते च समविष्कम्भकत्वमिति, शेषं व्यक्तमिति, अथ तृतीयं विजयं प्रश्नयन्नाह—'कहि ण'मित्यादि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

स्पष्टं, नवरं यावत्पदात् 'तत्थ णं अरिट्ठाए रायहाणीए महाकच्छे णामं राया समुप्पज्जइ, महया हिमवन्त जाव सव्वं भरहोअवणं भाणिअव्वं, णिक्खमणवज्जं सेसं भाणिअव्वं, जाव भुंजइ माणुस्सए सुहे, महाकच्छणामधेज्जे' इति ग्राह्यं, ईदृशेनाभिलापेनार्थो महाकच्छशब्दस्य भणितव्यः। सम्प्रति ब्रह्मकूटप्रश्नः—'कहि णं'मित्यादि, सर्वं व्यक्तं, ब्रह्मकूटनामा द्वितीयो वक्षस्कारः चित्रकूटातिदेशेन यावत्पदादायामसूत्रादिकं भूमिरमणीयसूत्रान्तं च सर्वं वाच्यम्। अथात्र कूटवक्तव्यतामाह—'ब्रह्मकूडे चत्तारि कूडा'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं एवं चित्रकूटवक्षस्कारकूटन्यायेन वाच्यं, यावत्करणात् समा उत्तरदाहिणेणं परुप्परंतीत्यादि ग्राह्यं, अर्थो—ब्रह्मकूटशब्दार्थः, 'से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ—ब्रह्मकूडे २' इत्यालापकेन उल्लेख्यः, ब्रह्मकूटनामा देवश्चात्र पल्योपमस्थितिकः परिवसति, तदेतेनार्थेनेति सुगमं। अथ चतुर्थविजयः—'कहि णं'मित्यादि, व्यक्तं, परं द्रहावत्याः अन्तरनद्याः पश्चिमायां कच्छगावतीविजयः कच्छा एव कच्छकाः—मालुकाकच्छादयः सन्त्यस्यामतिशायिन इति 'अनजिरे'ति सूत्रे (श्रीसि० अ०२पा०२सू०७८) शरादीनामाकृतिगणत्वेन सिद्धिः, शेषं प्राग्वत्, अथायमनन्तरोक्तो विजयो यस्याः पश्चिमायां तामन्तरनदीं लक्षयितुमाह—'कहि णं'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे आवर्त्तनाम्नः पूर्वदिग्वर्त्तिनो विजयस्य पश्चिमायां कच्छावत्या विजयस्य पूर्वस्यां यावद् द्रहावतीकुण्डं नाम कुण्डं प्रज्ञप्तं शेषं यथा ग्राहावतीकुण्डस्य स्वरूपाख्यानं ग्राहावतीद्वीपपरिमाणभवनवर्णकनामार्थकथनप्रमुखं तथा ज्ञेयं, नवरं द्रहावतीद्वीपो द्रहावतीदेवीभवनं द्रहावतीप्रभपद्मादियोगाद् द्रहावतीति नामार्थः समधिगम्यः, द्रहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगाधजलाशयाः सन्त्यस्यामिति द्रहावती साधनिका प्राग्वत्, अथ यथेयं महानदीं समुपैति तथाऽऽह—'तस्स ण'मित्यादि, उक्तप्रायम्, अथ पञ्चमो विजयः—'कहि ण'मित्यादि, व्यक्तम्, अथ तृतीयो वक्षस्कारः—'कहि ण'मित्यादि, सूत्रद्वयमपि व्यक्तं, नवरं द्वितीयसूत्रे कूटानि पञ्चशतिकानि—पंचशतप्रमाणानीति, अथ षष्ठो विजयः—'कहि ण'मित्यादि, स्पष्टं, पङ्कावत्यास्तृतीयान्तरनद्या इति, अथ तृतीयान्तरनद्यवसरः—'कहि ण'मित्यादि, प्रायः प्राग्वत्, नवरं पङ्कोऽतिशयेनास्त्यस्यामिति पङ्कावती प्राग्वद्रूपसिद्धिः, अथ सप्तमविजयावसरः—'कहि ण'मित्यादि व्यक्तं, अथ चतुर्थवक्षस्कारः—'कहि ण'मित्यादि, सर्वं स्पष्टं, नवरं पुष्कलावर्त्तः सप्तमो विजयः स एव चक्रवर्त्तिविजेतव्यत्वेन चक्रवर्त्तिविजय इत्युच्यते, एवं पुष्कलावतीचक्रवर्तिविजयोऽपि बोध्यः, सम्प्रत्यष्टमो विजयः—'कहि णं भन्ते ! महाविदेहे'इत्यादि, प्रकटार्थं, नवरं औत्तराहस्य शीतामहानद्या मुखवनस्य—अनन्तरसूत्रे वक्ष्यमाणस्वरूपस्य शीतामहानदीनीलवद्वर्षधरमध्यवर्त्तिमुखवनस्य पश्चिमायामित्यर्थः, दाक्षिणात्याच्छीतामुखवनादयं वाचव्यां स्यादिति औत्तराहग्रहणमिति, अथानन्तरमेवोक्तं शीतामुखवनं लक्षयन्नाह—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! महाविदेहे वर्षे शीताया महानद्या उत्तरदिग्वर्त्तिशीतायाः मुखे—समुद्रप्रवेशे वनं शीतामुखवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम् ?, अत्र शीतामुखेत्यनेन शीतोदावनमुखद्वयं उत्तरेत्यनेन च दाक्षिणात्यं शीतामुखवनं निरस्तं, तथाहि—चत्वारि मुखवनानि—एकं शीतानीलवतोर्मध्ये १ द्वितीयं शीतानिषधयोः २ तृतीयं शीतोदानिषधयोः ३ चतुर्थं शीतोदानीलवतोः ४ एषां मध्ये आद्यस्यैव शीतात उत्तरेण दर्शनात्, गौतम!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीलवतो दक्षिणस्यां शीताया उत्तरस्यां पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य पश्चिमायां पुष्कलावतीचक्रवर्त्तिविजयस्य पूर्वस्यां अत्रान्तरे शीता मुखवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्,उत्तरदक्षिणायतेत्यादिविशेषणानि विजयवद्वाच्यानि,इह विजयवक्षस्कारगिर्यन्तरनद्यः सर्वत्र तुल्यविस्ताराः वनमुखानि तु निषधसमीपे नीलवत्समीपे चाल्पविष्कम्भानि शीताशीतोदोभयकूलपार्श्वे तु पृथुविष्कम्भानि जगत्यनुरोधात्,तथाहि–पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि निषधान्नीलवतो वाऽऽरभ्य जगती वक्रगत्या शीतां शीतोदां वा प्राप्ता,जगतीसंस्पर्शवर्त्तीनि च मुखवनानि, ततस्तदनुरोधाद् दर्शयति–शीतामहानद्यन्ते द्वे योजनसहस्रे नव च द्वाविंशत्यधिकानि योजनशतानि विष्कम्भेन, अत्रोपपत्तिः प्राग्वत्, विजयवक्षस्काराद्यन्तरनदीमेरुपृथुत्वपूर्वापरभद्रशालवनायाममीलने जातानि ९४१५६,अस्य राशेर्जम्बूद्वीपपरिमाणात् शोधने शेषं ५८४४,अस्य शीताशीतोदयोरेकस्मिन् दक्षिणे उत्तरे वा भागे द्वे मुखवने इति द्वाभ्यां भागे हृते आगतानि द्वाविंशत्यधिकान्येकोनत्रिंशद्योजनशतानि २९२२, अत्र च तेवीसे इति पाठोऽशुद्धः, एतच्च पृथुत्वपरिमाणं न सर्वत्र शीताशीतोदयोर्मुखप्रत्यासत्तावेतत्करणावकाशादत्रैव महाविदेहवर्षस्य सर्वोत्कृष्टविस्तारलाभादित्याह–तदनन्तरं च मात्रया २–अंशेनांशेन परिहीयमानं २–हानिमुपगच्छद् नीलवद्वर्षधरपर्वतान्ते एकमेकोनविंशतिभागं योजनस्य विष्कम्भेन,एकां कलां यावत्पृथुत्वेनेत्यर्थः, 'कालाध्वनोर्व्याप्ता'–(श्रीसिद्ध० अ० २ पा० २ सू० ४२) वित्यनेन द्वितीया, अत्र करणं–मुखवनानां सर्वलघुर्विष्कम्भो वर्षधरपार्श्वे ततो वर्षधरजीवात इदं करणं समुत्तिष्ठति, तथाहि–प्रस्तुते नीलवज्जीवा चतुर्नवतिसहस्राणि शतमेकं षट्पञ्चाशदधिकं योज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३५०॥

नानां द्वे चैकोनविंशतिभागरूपे कले योजनस्य ९४१५६ कला २, अथ पूर्वोक्तानि विजय १६ वक्षस्कारः ८ अन्तर-नदी ६ गन्धमादन १ माल्यवत् १ गजदन्तपृथुत्वोत्तरकुरुजीवापरिमाणान्येकत्र मील्यन्ते, जातानि चतुर्नवतिसहस्राणि शतमेकं षट्पञ्चाशदधिकं ९४१५६, एतस्मिन् प्रागुक्ताज्जीवापरिमाणाच्छोधिते शेषं द्वे कले तत् एकस्मिन् दक्षिणे उत्तरे वा भागे शीताशीतोदासत्के द्वे वने इति द्वाभ्यां भज्यते आगतैका कला इति, ननु विजयवक्षस्कारादीनां सर्वत्र तुल्यविस्तारकत्वेन वनमुखानां च वर्षधरसमीपे एककलामात्रविष्कम्भकत्वेन सप्तदशकलाधिकैकोनत्रिंशद्योजनशतप्र-माणः शेषजम्बूद्वीपक्षेत्रविभागः कुत्रान्तर्भावनीयः?, उच्यते, अत्र जगत्या वृत्तत्वेन सङ्कीर्णभूतत्वात् समाधेयं, अय-मर्थः–पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि निषधान्नीलवतो वा आरभ्य जगती वक्रगत्या शीताशीतोदे प्राप्ता, जगतीसंस्पर्श-वर्त्तीनि च वनमुखानि ततस्तदनुरोधात् वर्षधरसमीपे तेषां स्तोको विष्कम्भः शीताशीतोदासमीपे तु भूयानिति, एषा-मिष्टस्थाने विष्कम्भपरिज्ञानाय सूत्रेऽनुक्तमपि प्रसङ्गत्या करणमुच्यते–अतिक्रान्तं योजनादिकं गुरुपृथुत्वेन २९३२ इत्येवंरूपेण गुण्यते, गुणितश्च योजनराशिः कलीकरणार्थमेकोनविंशत्या गुण्यते, तन्मध्ये च गुरुपृथुत्वगणितः कला-राशिः प्रक्षिप्यते, ततः कलीकृतेन वनायामपरिमाणराशिना ह्रियते, ततो लभ्यते इष्टस्थाने वनमुखविष्कम्भः, यथा यथा निषधान्नीलवतो वा षोडशसहस्राणि पंच शतानि द्विनवत्यधिकानि योजनानां द्वे च कले इत्येतावद् गत्वा वि-ष्कम्भो ज्ञातुमिष्टः तेनैष राशिर्हियते १६५९२ कला २, धृत्वा च एकोनत्रिंशच्छतैर्द्वाविंशत्यधिकैर्गुण्यते, जातो योज-

४वक्षस्कारे शेषविज-यादि सू. ९५

॥३५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

नराशिः ४८४८१८२४, कलाद्वयमपि २९२२ अनेनैव गुण्यते जातः कलाराशिः ५८४४, ततो योजनराशौ ४८४८-१८२४ सवर्णिते जातं ९२११५४६५६ ततः कलाराशिः ५८४४ क्षेपे जातं ९२११६०५०० ततोऽस्य मुखवनाया-मेन १६५९२ सवर्णितेन कलाद्वययुक्तेन ३१५२५० भागे हृते लब्ध इष्टस्थाने २९२२ योजनरूपो विष्कम्भः, एव-मन्यत्रापि भावनीयम् । अथास्य पद्मवरवेदिकादिवर्णनायाह—'से णं एगाए पउ०'इत्यादि, तन्मुखवनमेकया पद्म-वरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सम्परिक्षिप्तम् । अथ शीतामुखवनस्य वर्णको वाच्यः—'किण्हे किण्होभासे'इत्यादि, कः कियत्पर्यन्तमित्याह—यावद्देवता आसते शेरते इत्यादि, अत्र विजयदिशि पद्मवरवेदिका गोपिका लवणदिशि तु जगत्येव गोपिका इत्येका, इयं च पद्मवरवेदिका जगतीवन्मुखवनव्यास एवान्तर्लीना, यत्र तु वनव्यासः कलाप्रमा-णस्तत्र विजयव्यासं रुणद्धीति तात्पर्यं, अन्यथा विजयादिभिर्जम्बूद्वीपस्य परिपूर्णलक्षपूर्तावुभयतो जगत्यादेः क्वावकाशः स्यात्, अत एवाह—"अविवक्खिऊण जगइं सवेइवणमुहचउक्कपिहुलत्तं । गुणतीससयदुवीसं णइंति गिरिअंति एगकला ॥ १ ॥" [विवक्षित्वा जगतीं सवेदिकावनमुखचतुष्कपृथुत्वं । एकोनत्रिंशच्छतानि द्वाविंशत्यधिकानि नदी-पार्श्वे गिरिपार्श्वे एका कला ॥ १ ॥] इति, अथोपसंहारमाह—'एवं उत्तरिल्लं'इत्यादि, एवं—विजयादिकथनेन उत्तरदि-ग्वर्त्ति पार्श्वं समाप्तम्, प्राच्यमिति शेषः, प्राक् चतुर्विभागतयोद्दिष्टस्य विदेहक्षेत्रस्य प्राच्योत्तरपार्श्वं विजयादिकथना-पेक्षया पूर्णं निर्दिष्टमित्यर्थः । अथ प्रतिविजयमेकैकां राजधानीं निर्दिशन्नाह—'विजया'इत्यादि, विजया भणिताः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]

अत्र च भणितानामपि विजयानां यत्पुनर्भणनमुक्तं तद्राजधानीनिरूपणार्थं, राजधान्यश्चेमाः पद्यबन्धेन संगृह्णाति, कच्छविजयतः क्रमेण नामतो ज्ञेयाः, क्षेमा १ क्षेमपुरा २ अरिष्टा ३ अरिष्टपुरा ४ तथा खड्गी ५ मंजूषा ६ अपि चेति समुच्चये औषधी ७ पुंडरीकिणी ८ इति, एताः शीताया औदीच्यानां विजयानां दक्षिणार्द्धमध्यमखण्डेषु वेदितव्याः, अथैषु श्रेणिस्वरूपमाह—'सोलस विज्जाहरसेढीओ'इत्यादि, उक्तेष्वष्टसु विजयेषु षोडश विद्याधरश्रेणयो वाच्याः, प्रतिवैताढ्यं श्रेणिद्वयद्वयसम्भवात्, आसु च विद्याधरश्रेणिषु प्रत्येकं दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः पञ्चपञ्चाशन्नगराणि वाच्यानि, उभयत्रापि वैताढ्यस्य समभूमिकत्वात्, तावत्यः आभियोग्यश्रेण्यो वाच्याः षोडश इत्यर्थः, सर्वाश्चेमा अभियोग्यश्रेणय ईशानेन्द्रस्य मेरुतः उत्तरदिग्वर्त्तित्वात्, अत्र च विद्याधरश्रेणिसूत्रं आदर्शान्तरेष्वदृष्टमपि प्रस्तावादाभियोग्यश्रेणिसङ्गत्यनुपपत्तेश्च प्राकृतशैल्या संस्कृत्य मया लिखितमस्तीति बहुश्रुतैर्मयि सूत्राशातना न चिन्तनीयेति, उत्तरत्रापि सूत्रकारेण संग्रहगाथायामाभियोग्यश्रेणिसंग्रहो विद्याधरश्रेणिसंग्रहपूर्वकमेव वक्ष्यते। अथ शेषविजयवक्षस्कारादीनां स्वरूपप्ररूपणाय लाघवाशयेनातिदेशसूत्रमाह—'सव्वेसु'इत्यादि, सर्वेषु विजयेषु कच्छवक्तव्यता ज्ञेया, यावदर्थो—विजयानां नाम निरुक्तं, तथा विजयेषु विजयसदृशनामका राजानो ज्ञेयाः, तथा षोडशवक्षस्कारपर्वतानां चित्रकूटवक्तव्यता ज्ञेया यावच्चत्वारि २ कूटानि व्यावर्णितानि भवन्ति, तथा द्वादशानां नदीनां—अन्तरनदीनामित्यर्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९५] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७१--१७३]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

ग्राहावतीवक्तव्यता ज्ञेया यावदुभयोः पार्श्वयोर्द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां वनखण्डाभ्या च सम्परिक्षिप्ता वर्णकश्चेति । अथ द्वितीयं विदेहविभागं निर्देष्टुमाह--

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीयामुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ?, एवं जह चेव उत्तरिल्लं सीआमुहवणं तह चेव दाहिणंपि भाणिअव्वं, णवरं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं सीआए महाणईए दाहिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं वच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पं० उत्तरदाहिणायए तहेव सव्वं णवरं णिसहवासहरपव्वयंतेणं एगमेगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं किण्हे किण्होभासे जाव महया गन्धद्धाणिं मुअंते जाव आसयन्ति उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं वणंव्वण्णओ इति । कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं सीआए महाणईए दाहिणेणं दाहिणिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं तिउडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सुसीमा रायहाणी १, तिउडे वक्खारपव्वए सुवच्छे विजए कुण्डला रायहाणी २, तत्तजला णई महावच्छे विजए अपराजिआ रायहाणी ३, वेसमणकूडे वक्खारपव्वए वच्छावई विजए पभंकरा रायहाणी ४, मत्तजला णई रम्मे विजए अंकावई रायहाणी ५, अंजणे वक्खारपव्वए रम्मगे विजए पम्हावई, रायहाणी ६, उम्मत्तजला महाणई रमणिज्जे विजए सुभा रायहाणी ७, मायंजणे वक्खारपव्वए मंगलावई विजए रय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ महाविदेहस्य वर्णने द्वितियम् विदेह-विभाग वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७४--१७७]

णसंचया रायहाणीति ८, एवं जह चेव सीआए महाणईए उत्तरं पासं तह चेव दक्खिणिल्लं भाणिअव्वं, दाहिणिल्लसीआमुहव-णाइ, इमे वक्खारकूडा तं०–तिउडे १ वेसमणकूडे २ अंजणे ३ मायंजणे ४, [णईउ तत्तजला १ मत्तजला २ उम्मत्तजला ३,] विजया तं०–वच्छे सुवच्छे महावच्छे चउत्थे वच्छगावई । रम्मे रम्मए चेव, रमणिज्जे मंगलावई ॥ १ ॥ रायहाणीओ, तंजहा–सुसीमा कुण्डला चेव, अवराइअ पहंकरा । अंकावई पम्हावई सुभा रयणसंचया ॥ २ ॥ वच्छस्स विजयस्स णिसहे दाहिणेणं सीआ उत्तरेणं दाहिणिल्लसीदामुहवणे पुरत्थिमेणं तिउडे पच्चत्थिमेणं सुसीमा रायहाणी पमाणं तं चेवेति, वच्छाणंतरं तिउडे तओ सुवच्छे विजए एएणं कमेणं तत्तजला णई महावच्छे विजए वेसमणकूडे वक्खारपव्वए वच्छावई विजए मत्तजला णई रम्मे विजए अंजणे वक्खारपव्वए रम्मए विजए उम्मत्तजला णई रमणिज्जे विजए मायंजणे वक्खारपव्वए मंगलावई विजए (सूत्रं९६)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे शीतामहानद्या दाक्षिणात्यं शीतामुखवनं शीतानि-षधमध्यवर्त्तीत्यर्थः अतिदेशसूत्रत्वेनोत्तरसूत्रं स्वयं भाव्यं, परं वच्छस्य विजयस्य–विदेहद्वितीयभागाद्यविजयस्य पूर्वत इति । अथ द्वितीये महाविदेहविभागे विजयादिव्यवस्थामाह—'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः सुलभः, उत्तरसूत्रे निषधस्य वर्षधरपर्वतस्योत्तरस्यां शीताया महानद्या दक्षिणस्यां दाक्षिणात्यस्य शीतामुखवनस्य पश्चिमतः त्रिकूटस्य वक्षस्कारपर्व-तस्य पूर्वस्यां अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे महाविदेहे वर्षे वत्सो विजयः प्रज्ञप्तः, सुसीमा राजधानी विजयविभाजकश्च त्रिकू-टनामा वक्षस्कारपर्वतः १ सुवच्छो विजयः कुण्डला राजधानी तप्तजलाऽन्तरनदी २ महावत्सो विजयः अपराजिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजधानी वैश्रमणकूटो नाम वक्षस्काराद्रिः ३, वत्सावती विजयः प्रभङ्करा राजधानी मत्तजला नदी ४, रम्यो विजयः अङ्कावती राजधानी अञ्जनो वक्षस्कारः५,रम्यको विजयः पक्ष्मावती राजपूः उन्मत्तजला महानदी ६ रमणीयो विजयः शुभा राजपूःमातञ्जनो वक्षस्काराद्रिः ७, मङ्गलावती विजयः रत्नसञ्चया नगरी ८, सुलभसूत्रे शब्दसंस्कार एव विवरणमिति, इमाश्च राजधान्यः शीतादक्षिणदिग्भाविराजधानीत्वेन विजयानामुत्तरार्द्धमध्यमखण्डेषु ज्ञेयाः, अथ विजयादीनां व्यासादिसाम्ये दर्शितेऽपि केनचित्प्रकारेण न पार्श्वयोः परस्परं भेदो भविष्यतीत्याशङ्कानिवृत्त्यर्थमाह—'एवं जह' इत्यादि, एवं—प्रागुक्तप्रकारेण यथैव शीताया महानद्या उत्तरं पार्श्वं प्राच्यमिति शेषः तथैव दाक्षिणात्यं पार्श्वमिति शेषः भणितव्यं, अत्र विशेषणद्वारेण संग्रहमाह, किंविशिष्टमिदं पार्श्वम्?—दाक्षिणात्यशीतामुखवनमादौ यत्र तद् दाक्षिणात्यशीतामुखवनादि, अनेन यथा प्रथमविभागस्य कच्छविजय आदिरुक्तस्तथा द्वितीयविभागस्य दाक्षिणात्यशीतामुखवनमादिरुक्तमिति, तथा इमे वक्ष्यमाणा वक्षस्कारकूटाः, कूटशब्देनात्र कूटान्येषां सन्तीत्यभ्रादित्वादप्रत्यये कूटाः—पर्वताः, तद्यथा—त्रिकूटेत्यादि, विजयानां राजधानीनां च संग्रहाय पद्यमेकैकं, इमानि च संग्रहसूत्राणि सुखप्रतिपत्तिहेतुभूतानीति न पुनरुक्तिर्विभाव्या, अथ पूर्वसूत्रालब्धेऽपि वत्सविजयदिग्नियमे विचित्रत्वात् सूत्रप्रवृत्ते रीत्यन्तरमाह—'वच्छस्स' इत्यादि, वत्सस्य विजयस्य निषधो दक्षिणेन तथा तस्यैव शीता उत्तरेणेत्यादि स्पष्टं, न चैवं निषधादयो लक्ष्याः लक्षणं वत्सविजय इति वाच्यं, लक्ष्यलक्षणभावस्य कामचारात्, प्रस्तुते च प्रकरणबलात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९६] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७४--१७७]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३५२॥

वत्स एव लक्ष्यत इति, सुसीमा राजधानी प्रमाणं तदेव–अयोध्यासम्बन्ध्येव, प्रमाणाभिधानाय राजधान्याः पुनरुप-न्यासेन न पुनरुक्तिदोषः, अथैषां विजयादीनां स्थानक्रमदर्शनायाह—'वच्छाण'मित्यादि, सुगमं, नवरं वत्सानन्तरं त्रिकूटः पश्चिमत इति बोध्यं, अन्यथा पूर्वतो दाक्षिणात्यशीतामुखवनस्य प्रतिपत्तिः स्यादित्युक्तो द्वितीयो विदेहवि-भागः । अथ क्रमायातं गजदन्तगिरिं सौमनसाख्यं लक्षयितुमाह—

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते?, गो० णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपुरत्थिमेणं मंगलावईविजयस्स पच्चत्थिमेणं देवकुराए पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणविच्छिण्णे जहा मालवन्ते वक्खारपव्वए तहा णवरं सव्वर-यामए अच्छे जाव पडिरूवे, णिसहवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि गाऊअसयाइं उव्वेहेणं सेसं तहेव सव्वं णवरं अट्ठो से गोअमा! सोमणसे णं वक्खारपव्वए बहवे देवा य देवीओ अ सोमा सुमणा सोमणसे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव परिवसइ से एएणट्ठेणं गोअमा! जाव णिच्चे । सोमणसे वक्खारपव्वए कइ कूडा पं०?, गो० ! सत्त कूडा पं०, तं०–सिद्धे १ सोमणसे २ विअ बोद्धव्वे मंगलावईकूडे ३ । देवकुरु ४ विमल ५ कंचण ६ वसिट्ठकूडे ७ अ बोद्धव्वे ॥ १ ॥ एवं सव्वे पच्चसइआ कूडा, एएसिं पुच्छा दिसिविदिसाए भाणिअव्वा जहा गन्धमायणस्स, विमलकञ्चणकूडेसु णवरिं देवयाओ सुवच्छा वच्छमित्ता य अवसिट्ठेसु कूडेसु सरिसणामया देवा रायहाणीओ दक्खिणेणंति । कहि णं भन्ते! महाविदेहे

४वक्षस्कारे सौमनसदे वक्षुरवः चित्रविचि त्रकूटौ नि-षधादिद्र-हाः सू.९७ ९८-९९

॥३५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७-९९] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७८--१८२]

वासे देवकुराणामं कुरा पण्णत्ता?, गोअमा! मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं विज्जुप्पहस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं सोमणसवक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं महाविदेहे वासे देवकुराणामं कुरा पण्णत्ता पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिण्णा इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं जहा उत्तरकुराए वत्तव्वया जाव अणुसज्जमाणा पम्हगन्धा मिअगन्धा अमम सहा तेतली सणिचारीति ६।(सूत्रं९७) कहि णं भन्ते! देवकुराए चित्तविचित्तकूडाणामं दुवे पव्वया प०?, गो०!, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठचोत्तीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं उभओकूले एत्थ णं चित्तविचित्तकूडा णामं दुवे पव्वया पं०, एवं जच्चेव जमगपव्वयाणं सच्चेव, एएसिं रायहाणीओ दक्खिणेणंति (सूत्रं९८)। कहि णं भन्ते! देवकुराए २ णिसढद्दहे णामं दहे पण्णत्ते?, गो०! तेसिं चित्तविचित्तकूडाणं पव्वयाणं उत्तरिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठचोतीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं णिसहद्दहे णामं दहे पण्णत्ते, एवं जच्चेव नीलवंतउत्तरकुरुचन्देरावयमालवंताणं वत्तया सच्चेव णिसहदेवकुरुसूरसुलसविज्जुप्पभाणं णेअव्वा, रायहाणीओ दक्खिणेणंति। (सूत्रं ९९)

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्तेत्यादिप्रश्नः सुलभः, उत्तरसूत्रे निषधस्य वर्षधरपर्वतस्य उत्तरस्यां मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वदक्षिणस्यां–आग्नेयकोणे मङ्गलावतीविजयस्य पश्चिमायां देवकुरूणां पूर्वस्यां यावत् सौमनसो वक्षस्कारपर्वतः प्रज्ञप्तः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७-९९] + गाथा: दीप अनुक्रम [१७८--१८२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥३५४॥

इत्यादि सर्वं माल्यवद्गजदन्तानुसारेण भाव्यं, यत्तु सप्रपञ्चं प्रथमं व्याख्याते गन्धमादनेऽतिदेशयितव्ये माल्यवतोऽतिदेशनं तदस्यासन्नवर्त्तित्वेन सूत्रकारशैलीवैचित्र्यज्ञापनार्थं, नवरं सर्वात्मना रजतमयोऽयं माल्यवांस्तु नीलमणिमयः, अयं च निषधवर्षधरपर्वतान्ते चत्वारि योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतिशतान्युद्वेधेन माल्यवांस्तु नीलवत्समीपे इति विशेषः, अर्थे च विशेषमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, प्राग्वत्, भगवानाह—गौतम ! सौमनसवक्षस्कारपर्वते बहवो देवा देव्यश्च सौम्याः कायकुचेष्टाया अभावात् सुमनसो—मनःकालुष्याभावात् परिवसन्ति, ततः सुमनसामयमावास इति सौमनसः, सौमनसनामा चात्र देवो महर्द्धिकः परिवसति तेन तद्योगात् सौमनस इति, 'से एएणट्ठेण'मित्यादि, प्राग्वत्, 'सौमनसे' इति प्रायः सूत्रं व्यक्तं, नवरमेषां कूटानां पृच्छेति—प्रश्नसूत्ररूपा दिशि विदिशि च भणितव्या, 'कहि णं भन्ते ! सोमणसे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते'इत्यादिरूपा, यथा गन्धमादनस्य—प्रथमवक्षस्कारगिरेः सप्तानां कूटानां दिग्विदिग्वक्तव्यता तथाऽत्रापि, अत्र चासन्नत्वेन प्रागतिदेशितोऽपि माल्यवान्नवकूटाश्रयत्वेन कूटाधिकारे उपेक्षित इति, कूटानां दिग्विदिग्वक्तव्यता यथा—मेरोः प्रत्यासन्नं दक्षिणपूर्वस्यां दिशि सिद्धायतनकूटं तस्य दक्षिणपूर्वस्यां दिशि द्वितीयं सौमनसकूटं, तस्यापि दक्षिणपूर्वस्यां दिशि तृतीयं मङ्गलावतीकूटं, इमानि त्रीणि कूटानि विदिग्भावीनि मङ्गलावतीकूटस्य दक्षिणपूर्वस्या पञ्चमविमलकूटस्योत्तरस्यां चतुर्थं देवकुरुकूटं, तस्य दक्षिणतः पञ्चमं विमलकूटं, तस्यापि दक्षिणतः षष्ठं काञ्चनकूटं, अस्यापि च

४वक्षस्कारे सौमनसदेवकुरवः चित्रविचित्रकूटौ निषधादिद्रहाः सू.९७ ९८-९९

॥३५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९७-९९] + गाथाः

दीप अनुक्रम [१७८--१८२]

दक्षिणतो निषधस्योत्तरेण सप्तमं वासिष्ठकूटं, सर्वाणि रत्नमयानि परिमाणतो हिमवत्कूटतुल्यानि प्रासादादिकं सर्वं तद्वत्, विमलकूटे सुवत्सा देवी काञ्चनकूटे वत्समित्रा अवशिष्टेषु कूटेषु कूटसदृशनामानो देवाः, तेषां राजधान्यो मेरोर्दक्षिणत इति । इदानीं देवकुरवः—'कहि णं भन्ते !' इत्यादि, क्व भदन्त ! महाविदेहे वर्षे देवकुरवो नाम कुरवः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! मन्दरगिरेर्दक्षिणतो निषधाद्रेरुत्तरतो विद्युत्प्रभवक्षस्काराद्रेर्नैर्ऋतकोणस्थगजदन्ताकारगिरेः पूर्वतः सौमनसवक्षस्काराद्रेः पश्चिमायां अत्रान्तरे देवकुरवो नाम कुरवः प्रज्ञप्ताः, शेषं प्राग्वत्, इमाश्चोत्तरकुरूणां यमलजातका इवेति तदतिदेशमाह—यथोत्तरकुरूणां वक्तव्यता, कियद्दूरमित्याह—यावदनुसज्जन्तः—सन्तानेनानुवर्त्तमानाः सन्ति, वर्त्तमाननिर्देशः कालत्रयेऽप्येतेषां सत्ताप्रतिपादनार्थं, आह—के ते इत्याह—पद्मगन्धाः १ मृगगन्धा २ अममाः ३ सहाः ४ तेजस्तलिनः ५ शनैश्चारिणः ६, एते मनुष्यजातिभेदाः, एतद्व्याख्यानं प्राक् सुषमसुषमावर्णनतो ज्ञेयं । अथैतासूत्तरकुरुतुल्यवक्तव्यत्वेन यमकाविव चित्रविचित्रकूटौ पर्वतौ स्थानतः पृच्छति—'कहि णं भन्ते ! देवकुराए चित्तविचित्तकूडा' इत्यादि, व्यक्तं, नवरं एवं—उक्तन्यायेन यैव यमकपर्वतयोर्वक्तव्यता इति शेषः सैवैतयोश्चित्रविचित्रकूटयोः एतदधिपतिचित्रविचित्रदेवयो राजधान्यौ दक्षिणेनेति, अथ ह्रदपञ्चकस्वरूपमाह—'कहि ण'मित्यादि, एवमुक्तालापकानुसारेण यैव नीलवदुत्तरकुरुचन्द्रैरावतमाल्यवतां पञ्चानां ह्रदानां उत्तरकुरुषु वक्तव्यता सैव निषध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००--१०१] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८३--१८६]

देवकुरुसूरसुलसविद्युत्प्रभनामकानां नेतव्या, एतदीयाधिपसुराणां राजधान्यो मेरुतो दक्षिणेनेति शेषः । अथैतासु जम्बूपीठतुल्यं वृक्षपीठं कास्तीति पृच्छन्नाह—

कहि णं भन्ते! देवकुराए २ कूडसामलिपेढे णामं पेढे पण्णत्ते?, गोअमा! मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं विज्जुप्पभस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीओआए महाणईए पच्चत्थिमेणं देवकुरुपच्चत्थिमद्धस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं देवकुराए कुराए कूडसामली पेढे णामं पेढे पं०, एवं जच्चेव जम्बूए सुदंसणाए वत्तव्वया सच्चेव सामलीएवि भाणिअव्वा णामविहूणा गरुलदेवे रायहाणी दक्खिणेणं अवसिट्ठं तं चेव जाव देवकुरू अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गो०! एवं वुच्चइ देवकुरा २, अदुत्तरं च णं देवकुराए० (सूत्रं १००) कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे २ महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे णामं वक्खारपव्वए पन्नत्ते?, गो०! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं देवकुराए पच्चत्थिमेणं पम्हस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुदीवे २ महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए पं०, उत्तरदाहिणायए एवं जहा मालवन्ते णवरि सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव देवा आसयन्ति । विज्जुप्पभे णं भन्ते! वक्खारपव्वए कइ कूडा पं०?, गो०! नव कूडा पं०, तं०—सिद्धाययणकूडे विज्जुप्पभकूडे देवकुरुकूडे पम्हकूडे कणगकूडे सोवत्थिअकूडे सीओआकूडे सयज्जलकूडे हरिकूडे । सिद्धे अ विज्जुणामे देवकुरू पम्हकणगसोवत्थी । सीओआ य सयज्जलहरिकूडे चेव बोद्धव्वे ॥ १ ॥ एए हरिकूडवज्जा पञ्चसइआ णेअव्वा, एएसिं कूडाणं पुच्छा दिसिविदिसाओ णेअव्वाओ जहा मालवन्तस्स हरिस्सहकूडे तह चेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिकूडे रायहाणी जह चेव दाहिणेणं चमरचंचा रायहाणी तह णेअव्वा, कणगसोवत्थिअकूडेसु वारिसेणबलाहयाओ दो देवयाओ अवसिट्ठेसु कूडेसु कूडसरिसणामया देवा रायहाणीओ दाहिणेणं, से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ–विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए २?, गोअमा! विज्जुप्पभे णं वक्खारपव्वए विज्जुमिव सव्वओ समन्ता ओभासेइ उज्जोवेइ पभासइ विज्जुप्पभे य इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए जाव परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ विज्जुप्पभे २, अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे (सूत्रं १०१)

'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, नवरं कूटाकारा–शिखराकारा शाल्मली तस्याः पीठं, उत्तरसूत्रे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणपश्चिमायां–नैर्ऋतकोणे निषधस्योत्तरस्यां विद्युत्प्रभवक्षस्कारस्य पूर्वतः शीतोदाया महानद्याः पश्चिमायां देवकुरूणां शीतयोत्तरकुरूणामिव शीतोदया द्विधाकृतानां पश्चिमार्द्धस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र–प्रज्ञापकनिर्दिष्टदेशे देवकुरुषु कूटशाल्मल्याः कूटशाल्मलीपीठं प्रज्ञप्तम्, एवमुक्तसूत्रानुसारेण यैव जम्ब्वाः सुदर्शनाया वक्तव्यता सैव शाल्मल्या अपि भणितव्या, अत्र विशेषमाह–नामभिः प्राग्व्यावर्णितैर्द्वादशभिर्जम्बूनामभिर्विहीना, इह शाल्मलीनामानि न सन्तीत्यर्थः, तथा अनाद्दतस्थाने गरुडदेवोऽत्र, गरुडो–गरुडजातीयो वेणुदेवनामा मतान्तरेण गरुडवेगनामा वा देवः, राजधान्यस्य मेरुतो दक्षिणस्यां, तथा सूत्रेऽनुक्तमपीदं बोध्यं–अस्य पीठं कूटानि च प्रासादभवनान्तरालवर्त्तीनि रजतमयानि जम्बूवृक्षस्य तु स्वर्णमयानि, अपि चायं शाल्मलीवृक्षो यदा तदा वा सुपर्णकुमाराधिपवेणुदेववेणुदालिक्रीडास्थानं, तथा चाह सूत्रकृताङ्गचूर्णिकृत् शाल्मलीवृक्षवक्तव्यतावसरे—"तत्थ वेणुदेवे वेणुदाली अ वसइ"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

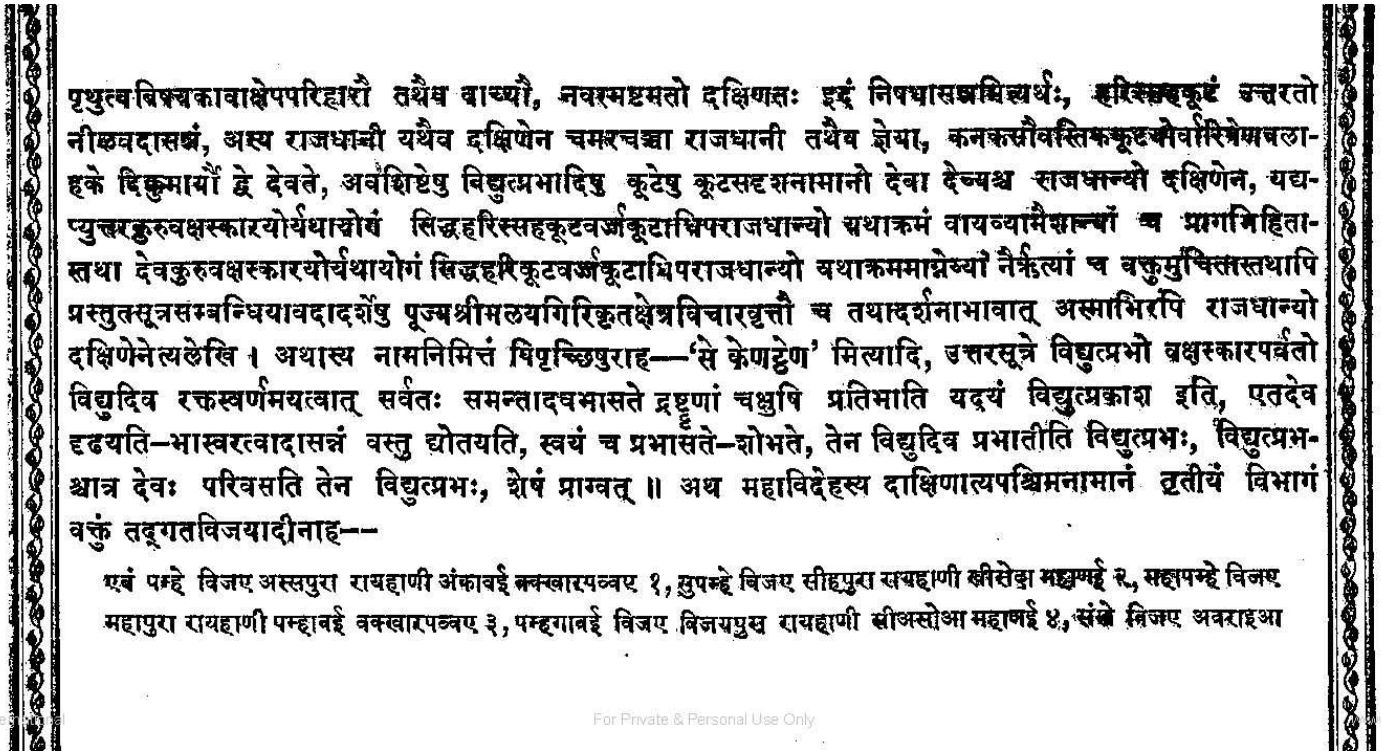
प्रत सूत्रांक [१००--१०१] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८३--१८६]

तयोर्हि बत्र क्रीडास्थान"मिति, अवशिष्टं तदेव–जम्बूप्रकरणोक्तमेव यो विशेषः स दर्शित इत्यर्थः, कियत्पर्यन्तमित्याह—यावद्देवकुरुनाम्ना देवोऽत्र परिवसति, तेनार्थेन देवकुरवो देवकुरवः, अथापरमित्यादि भाव्यवत् ॥ अथ चतुर्थवक्षस्कारावसरः—'कहि णं'इत्यादि, सर्वं स्पष्टं, माल्यवदतिदेशेन वाच्यत्वात् नवरमयं सर्वात्मना रुचकसुवर्णमयः, अथात्र कूटवक्तव्यतामाह—'विज्जुप्पभे'इत्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे सिद्धायतनकूटं विद्युत्प्रभवक्षस्कारनाम्ना कूटं देवकुरुनाम्ना कूटं पक्ष्मविजयकूटं कनककूटं सौवस्तिककूटं शीतोदाकूटं शतज्वलकूटं हरिनाम्नो दक्षिणतोऽग्निशिखिपविद्युत्कुमारेन्द्रस्य कूटं हरिकूटं, उक्तमेव संग्रहगाथयाऽऽह—'सिद्धे अ विज्जुनामे'इत्यादि, एतानि हरिकूटा(दी)नि पञ्चशतिकानि ज्ञातव्यानि, एतेषां कूटानां 'कहि णं भन्ते! विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?' इत्येवंरूपायां पृच्छायां दिशो विदिशश्च ज्ञेयाः, यथायोगमवस्थित्याधारतया वाच्या इत्यर्थः, तथाहि—मेरोर्दक्षिणपश्चिमायां दिशि मेरोरासन्नमाद्यं सिद्धायतनकूटं तस्य दक्षिणपश्चिमायां दिशि विद्युत्प्रभकूटं ततोऽपि तस्यां दिशि तृतीयं देवकुरुकूटं तस्यापि तस्यामेव दिशि चतुर्थं पक्ष्मकूटं एतानि चत्वारि कूटानि विदिग्भावीनि, चतुर्थस्य दक्षिणपश्चिमायां षष्ठस्य कूटस्योत्तरतः पञ्चमं कनककूटं तस्य दक्षिणतः षष्ठं सौवस्तिककूटं तस्यापि दक्षिणतः सप्तमं शीतोदाकूटं तस्यापि दक्षिणतोऽष्टमं शतज्वलकूटं, नवमस्य सविशेषत्वेन हरिस्सहातिदेशमाह–यथा माल्यवद्वक्षस्कारस्य हरिस्सहकूटं तथैव हरिकूटं बोद्धव्यं सहस्रयोजनोच्चं अर्द्धतृतीयशतान्यवगाढं मूले सहस्रयोजनानि शुषु इत्यादि, तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१००--१०१] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८३--१८६]



पृथुत्वविष्कम्भकावाक्षेपपरिहारौ तथैव वाच्यौ, नवरमष्टमतो दक्षिणतः इदं निषधासन्नमित्यर्थः, हरिसहकूटं उत्तरतो नीलवदासन्नं, अस्य राजधानी यथैव दक्षिणेन चमरचञ्चा राजधानी तथैव ज्ञेया, कनकसौवस्तिककूटयोर्वारिषेणबलाहके दिक्कुमार्यौ द्वे देवते, अवशिष्टेषु विद्युत्प्रभादिषु कूटेषु कूटसदृशनामानो देवा देव्यश्च राजधान्यो दक्षिणेन, यद्यप्युत्तरकुरुवक्षस्कारयोर्यथान्योगं सिद्धहरिस्सहकूटवर्जकूटाभिपराजधान्यो यथाक्रमं वायव्यामैशान्यां च प्रागभिहितास्तथा देवकुरुवक्षस्कारयोर्यथायोगं सिद्धहरिकूटवर्जकूटाभिपराजधान्यो यथाक्रममाग्नेय्यां नैर्ऋत्यां च वक्तुमुचितास्तथापि प्रस्तुतसूत्रसम्बन्धियावदादर्शेषु पूज्यश्रीमलयगिरिकृतक्षेत्रविचारवृत्तौ च तथादर्शनाभावात् अस्माभिरपि राजधान्यो दक्षिणेनेत्यलेखि । अथास्य नामनिमित्तं पिपृच्छिषुराह—'से केणट्ठेण' मित्यादि, उत्तरसूत्रे विद्युत्प्रभो वक्षस्कारपर्वतो विद्युदिव रक्तस्वर्णमयत्वात् सर्वतः समन्तादवभासते द्रष्टृणां चक्षुषि प्रतिभाति यदयं विद्युत्प्रकाश इति, एतदेव दृढयति—भास्वरत्वादासन्नं वस्तु द्योतयति, स्वयं च प्रभासते—शोभते, तेन विद्युदिव प्रभातीति विद्युत्प्रभः, विद्युत्प्रभश्चात्र देवः परिवसति तेन विद्युत्प्रभः, शेषं प्राग्वत् ॥ अथ महाविदेहस्य दाक्षिणात्यपश्चिमनामानं तृतीयं विभागं वक्तुं तद्गतविजयादीनाह—

एवं पम्हे विजए अस्सपुरा रायहाणी अंकावई वक्खारपव्वए १, सुपम्हे विजए सीहपुरा रायहाणी खीसेढा महापुरा २, महापम्हे विजए महापुरा रायहाणी पम्हावई वक्खारपव्वए ३, पम्हगावई विजए विजयपुरा रायहाणी सीअसोआ महाणई ४, संखे विजए अवराइआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अथ महाविदेहस्य वर्णने तृतियम् विदेह-विभाग वर्ण्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८७--१९३]

रायहाणी आसीविसे वक्खारपव्वए ५, कुमुदे विजए अरजा रायहाणी अंतोवाहिणी महाणई ६, णलिणे विजए असोगा रायहाणी सुहावहे वक्खारपव्वए ७, णलिणावई विजए वीयसोगा रायहाणी ८ दाहिणिल्ले सीओआमुहवणसंडे, उत्तरिल्लेवि एमेव भाणिअव्वे जहा सीआए, वप्पे विजए विजया रायहाणी चन्दे वक्खारपव्वए १, सुवप्पे विजए जयन्ती रायहाणी ओम्मिमालिणी णई २, महावप्पे विजए जयन्ती रायहाणी सूरे वक्खारपव्वए ३, वप्पावई विजए अपराइआ रायहाणी फेणमालिणी णई ४, वग्गू विजए चक्कपुरा रायहाणी णागे वक्खारपव्वए ५, सुवग्गू विजए खग्गपुरा रायहाणी गंभीरमालिणी अंतरणई ६, गन्धिले विजए अवज्झा रायहाणी देवे वक्खारपव्वए ७, गंधिलावई विजए अओज्झा रायहाणी ८, एवं मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लं पासं भाणिअव्वं तत्थ तावं सीओआए णईए दक्खिणिल्ले णं कूले इमे विजया, तं०–पम्हे सुपम्हे महापम्हे, चउत्थे पम्हगावई। संखे कुमुए णलिणे, अट्ठमे णलिणावई ॥ १ ॥ इमाओ रायहाणीओ, तं०–आसपुरा सीहपुरा महापुरा चेव हवइ विजयपुरा। अवराइआ य अरया असोग तह वीअसोगा य ॥ २ ॥ इमे वक्खारा, तंजहा–अंके पम्हे आसीविसे सुहावहे एवं इत्थ परिवाडीए दो दो विजया कूडसरिसणामया भाणिअव्वा दिसा विदिसाओ अ भाणिअव्वाओ, सीओआमुहवणं च भाणिअव्वं सीओआए दाहिणिल्लं उत्तरिल्लं च, सीओआए उत्तरिल्ले पासे इमे विजया, तंजहा–वप्पे सुवप्पे महावप्पे चउत्थे वप्पयावई। वग्गू अ सुवग्गू अ, गंधिले गंधिलावई ॥ १ ॥ रायहाणीओ इमाओ तंजहा–विजया वेजयन्ती जयन्ती अपराजिआ । चक्कपुरा खग्गपुरा हवइ अवज्झा अउज्झा य ॥ २ ॥ इमे वक्खारा तंजहा–चन्दपव्वए १ सूरपव्वए २ नागपव्वए ३ देवपव्वए ४, इमाओ णईओ सीओआए महाणईए दाहिणिल्ले कूले–खीरोआ सीहसोआ अंतरवाहिणीओ णईओ ३, ओम्मिमालिणी १ फेणमालिणी २ गंभीरमालिणी ३ उत्तरिल्लविजयाणन्तरा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्ति, इत्थ परिवाडीए दो दो कूडा विजयसरिसणामया भाणिअव्वा, इमे दो दो कूडा अवट्ठिआ तंजहा–सिद्धायणकूडे पव्वयसरिसणामकूडे (सूत्रं १०२)

'एवं पम्हे विजए' इत्यादि, स्पष्टेऽप्यत्र लिपिप्रमादाद् भ्रम इति तन्निरासाय शब्दसंस्कारमात्रेण लिख्यते—पक्ष्मो विजयः अश्वपुरी राजधानी, सूत्रे चाकारः आर्षत्वात्, एवमग्रेऽपि, अङ्कावती वक्षस्कारपर्वतः सुपक्ष्मो विजयः सिंहपुरा राजधानी क्षीरोदा अन्तरनदी २, महापक्ष्मो विजयः महापुरी राजपूः पक्ष्मावती वक्षस्कारः ३, पक्ष्मावती विजयः विजयपुरी राजधानी शीतस्रोता महानदी ४, शंखो विजयः अपराजिता नगरी आशीविषो वक्षस्कारः ५, कुमुदो विजयः अरजपूः अन्तर्वाहिनी नदी ६ नलिनो विजयः अशोका पूः सुखावहो वक्षस्कारः, नलिनावती विजयः सलिलावतीति पर्यायः, वीतशोका राजधानी ८ दाक्षिणात्यं शीतोदामुखवनखण्डमिति । अथ चतुर्थविभागावसरः–'उत्तरिल्ले' इत्यादि, एवमेवोक्तन्यायेनैव दाक्षिणात्यशीतामुखवनानुसारेणोत्तरदिग्भाविशीतोदामुखवनखण्डे भणितव्यं, यथा शीतायाः औत्तराहमुखवनं व्याख्यातं तथा व्याख्येयमित्यर्थः, चतुर्थविभागविजयादयस्त्विमे–वप्रो विजयो विजया राजधानी चन्द्रो वक्षस्कारपर्वतः १, सुवप्रो विजयो वैजयन्ती राजधानी ऊर्मिमालिनी नदी २, महावप्रो विजयो जयन्ती राजधानी सूरो वक्षस्कारपर्वतः ३, वप्रावती विजयोऽपराजिता राजधानी फेनमालिनी नदी ४, वल्गुर्विजयश्चक्रपुरा राजधानी नागो वक्षस्कारः ५, सुवल्गुर्विजयः खड्गपुरी राजधानी गम्भीरमालिनी अन्तर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८७--१९३]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

नदी, गम्भीरं जलं मलते–धारयतीति गम्भीरमालिनी, एवं और्मिमालिनी फेनमालिनीति ६, गन्धिलो विजयोऽवध्या राजधानी देवो वक्षस्कारः ७, गन्धिलावती विजयोऽयोध्या राजधानी ८, एवं–उक्ताभिलापेन शीतोदाकूतविभाग-द्वयगतविजयादिनिरूपणेनेत्यर्थः मन्दरस्य पाश्चात्यं पार्श्वं भणितव्यमिति, अथात्र संग्रहमाह—'तत्थ खलु सीओआ' इत्यादि, विवृतप्रायं, नवरं तत्र संग्रहे विवक्षितव्ये तावदिति भाषाक्रमे अङ्केति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् अङ्का-वती, 'एवं पम्हेति' पक्ष्मावतीति, अथ द्वात्रिंशतोऽपि विजयानां नामावयनोपायमाह—'एवं इत्थ परिवाडी' इत्यादि, एवम्–उक्तरीत्या अत्र–परिपाट्यां विभागचतुष्टयगतविजयानुपूर्व्या द्वौ विजयौ कूटसदृशनामकौ भणितव्यौ, स्वस्वविजयविभेदकवक्षस्कारगिरितृतीयचतुर्थकूटसदृशनामकावित्यर्थः, तथाहि—चित्रकूटवक्षस्कारे कूटचतुष्टयमध्ये आद्यं सिद्धायतनकूटं ततः स्ववक्षस्कारनामकं ततस्तृतीयं कच्छनामकं चतुर्थं सुकच्छनामकं तेन कच्छसुकच्छविजया-वित्यर्थः, एवं सर्वत्र भावनीयमिति, दिशः–प्राच्याद्याः विपरीतदिशो विदिशश्च भणितव्याः, यथा प्राच्याः प्रतीची उदीच्याश्चापाची, एवं दिग्विदिग्नियमः कार्यः, तथाहि—कच्छो विजयः शीताया महानद्याः उत्तरस्यां नीलवतो वर्ष-धरस्य दक्षिणस्यां चित्रकूटस्यरलवक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां माल्यवतो गजदन्ताकारवक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वस्यामिति, एवं सुकच्छादिषु विजयेष्वपि स्वस्वदिश्यवस्त्वनुसारेण तत्तद्दिग्नियमः कार्यः, एवं शीतोदामुखवनं च भणितव्यं, तद्विभागतो दर्शयति–शीतोदायाः दाक्षिणात्यं चौत्तराहं चेति, अथ चतुर्थविभागगतविजयाभिधित्सयाह—'सीओआए'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८७--१९३]

इत्यादि, सम्प्रत्ययुक्तपूर्वं पाश्चात्यविभागद्वयगतान्तरनदीसंग्रहमाह—'सीओआ' इत्यादि, मान्यत्, नवरं 'उत्तरिल्लविजयाण' इति औत्तराहविजयानां, 'अंतराउ'त्ति अन्तरनद्यः 'ते लुग्वा' (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० १०८) इत्यनेन उत्तरपदलोपः, यत्तु पूर्वविभागे विजयादिसंग्रहः प्राच्यविभागद्वयेऽन्तरनदीसंग्रहश्च नोक्तस्तत्र सूत्रकाराणां प्रवृत्तिविचित्र्यं हेतुर्व्यवच्छिन्नसूत्रता वेति । अत्र सरलवक्षस्कारकूटेषु नामन्यवस्थोपायमाह—'इत्थ परिवाडीए' इत्यादि, अत्र परिपाट्या अर्थाद्वक्षस्कारानुपूर्व्यां द्वौ द्वौ कूटौ विजयसदृशनामकौ भणितव्यौ, अयं भावः—प्रतिवक्षस्कारं चत्वारि २ कूटानि, तत्राद्यद्वयं नियतं, तच्च सूत्रकार एव व्यक्तीकरिष्यतीति, अपरं च द्वयमनियतं तत्र यो यो वक्षस्कारगिरिर्यौ यौ विजयौ विभजति तन्मध्ये यो यः पाश्चात्यो विजयस्तन्नामकं तस्मिन् वक्षस्कारे तृतीयं कूटं, यो यश्चाग्रिमो विजयस्तन्नामकं चतुर्थं कूटं, द्वौ द्वौ चावस्थितौ कूटौ, तद्यथा—एकं सिद्धायतनकूटं द्वितीयं पर्वतसदृशनामकं कूटं, वक्षस्कारसदृशनामकमित्यर्थः, कस्मिन्नपि वक्षस्कारे इमे नाम्नी न व्यभिचरत इत्यवस्थितौ, ननु सिद्धायतनकूटमवस्थितमिति युक्तं, पर्वतसदृग्नामकं तु भिन्नवक्षस्कारनामानुयायित्वेन कथमवस्थितमिति?, उच्यते, पर्वतसदृग्नामकत्वेन धर्मेणास्यावस्थितत्वं, एतादृशधर्मस्य सर्वेष्वपि वक्षस्कारद्वितीयकूटेषु अव्यभिचारात्, न च तर्हि अपरकूटद्वयस्य विजयसमनामकत्वेन धर्मेणावस्थितत्वं भवतु, उक्तधर्मस्य सर्वत्राव्यभिचारात् इति वाच्यम्, विजयसमनामकस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१८७--१९३]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३५९॥

धर्मस्य द्वयोः कूटयोः साधारण्येनान्यतरानिश्चयेन झटिति नामव्यवहारानुपपत्तेरिति । सम्प्रति महाविदेहवर्षस्य पूर्वापरविभागकारिणं मेरुं पृच्छन्नाह--

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे मन्दरे णामं पव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! उत्तरकुराए दक्खिणेणं देवकुराए उत्तरेणं पुव्वविदेहस्स वासस्स पच्चत्थिमेणं अवरविदेहस्स वासस्स पुरत्थिमेणं जम्बुद्दीवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरेणामं पव्वए पण्णत्ते, णवणउतिजोअणसहस्साइं उद्धं उच्चत्तेणं एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं मूले दसजोअणसहस्साइं णवइं च जोअणाइं दस य एगारसभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं, धरणिअले दस जोअणसहस्साइं विक्खम्भेणं तयणन्तरं च णं मायाए २ परिहायमाणे परिहायमाणे उवरितले एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं मूले एक्कत्तीसं जोअणसहस्साइं णव य दसुत्तरे जोअणसए तिण्णि अ एगारसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं धरणिअले एक्कत्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोअणसए परिक्खेवेणं उवरितले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णे मज्झे संखित्ते उवरिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हेत्ति । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओत्ति, मन्दरे णं भन्ते! पव्वए कइ वणा पं०?, गो०! चत्तारि वणा पं०, तं०--भद्दसालवणे १ णन्दणवणे २ सोमणसवणे ३ पंडगवणे ४, कहि णं भन्ते! मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पं०?, गोअमा! धरणिअले एत्थ णं मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे सोमणसविज्जुप्पहगंधमायणमालवंतेहिं वक्खारपव्वएहिं सीआसीओआहिं अ महाणईहिं अट्ठभागपविभत्ते मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं बावीसं बावीसं जोअणसहस्साइं आयामेणं उत्तरदाहिणेणं

४वक्षस्कारे मेरुपर्वतः सू. १०२

॥३५९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ मेरुपर्वत-वर्णनं आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

अद्धाइज्जाइं अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणंति, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते दुण्हवि वण्णओ भाणिअव्वो किण्हे किण्होभासे जाव देवा आसयन्ति सयन्ति, मन्दरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे पण्णत्ते पण्णासं जोअणाइं आयामेणं पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं छत्तीसं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे वण्णओ, तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिसिं तओ दारा पं०, ते णं दारा अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि जोअणाइं विक्खम्भेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेआ वरकणगथूभिआगा जाव वणमालाओ भूमिभागो अ भाणिअव्वो, तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिया पण्णत्ता अट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं सव्वरयणामई अच्छा, तीसे णं मणिपेढिआए उवरिं देवच्छन्दए अट्ठजोअणाइं आयामविक्खम्भेणं साइरेगाइं अट्ठजोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं जाव जिणपडिमावण्णओ देवच्छन्दगस्स जाव धूवकडुच्छुआणं इति । मन्दरस्स णं पव्वयस्स दाहिणेणं भद्दसालवणं पण्णासं एवं चउहिसिंपि मन्दरस्स भद्दसालवणे चत्तारि सिद्धाययणा भाणिअव्वा, मन्दरस्स णं पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णन्दापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं०–पउमा १ पउमप्पभा २ चेव, कुमुदा ३ कुमुदप्पभा ४, ताओ णं पुक्खरिणीओ पण्णासं जोअणाइं आयामेणं पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं दसजोअणाइं उव्वेहेणं वण्णओ वेइआवणसंडाणं भाणिअव्वो, चउद्दिसिं तोरणा जाव तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो पासायवडिंसए पण्णत्ते पञ्चजोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं,अब्भुग्गयमूसिय एवं सपरिवारो पासायवडिंसओ भाणिअव्वो, मंदरस्स णं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ उप्पल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

गुम्माणलिणा उप्पला उप्पलुज्जला तं चेव पमाणं मज्झे पासायवडिंसओ सक्कस्स सपरिवारो तेणं चेव पमाणेणं दाहिणपच्चत्थिमेणवि पुक्खरिणीओ सिग्गा सिंगनिभा चेव, अंजणा अंजणप्पभा । पासायवडिंसओ सक्कस्स सीहासणं सपरिवारं, उत्तरपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ–सिरिकंता १ सिरिचन्दा २ सिरिमहिआ ३ चेव सिरिणिलया ४ । पासायवडिंसओ ईसाणस्स सीहासणं सपरिवारंति । मन्दरे णं भन्ते! पव्वए भद्दसालवणे कइ दिसाहत्थिकूडा पं०?, गो० ! अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, तंजहा–पउमुत्तरे १ णीलवन्ते २ सुहत्थी ३ अंजणागिरी ४ । कुमुदे अ ६ पलासे अ ६, वडिंसे ७ रोअणागिरी ८ ॥ १ ॥ कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पं०?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए उत्तरेणं एत्थ णं पउमुत्तरेणामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते पञ्चजोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं पञ्चगाउअसयाइं उव्वेहेणं एवं विक्खम्भपरिक्खेवो भाणिअव्वो चुल्लहिमवन्तसरिसो, पासायाण य तं चेव पउमुत्तरो देवो रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं १ । एवं णीलवन्तदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए दक्खिणेणं एअस्सवि णीलवन्तो देवो रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं २, एवं सुहत्थिदिसाहत्थिकूडे मंदरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं दक्खिणिल्लाए सीओआए पुरत्थिमेणं एअस्सवि सुहत्थी देवो रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं ३, एवं चेव अंजणागिरिदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं दक्खिणिल्लाए सीओआए पच्चत्थिमेणं, एअस्सवि अंजणागिरी देवो रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं ४, एवं कुमुदे विदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए दक्खिणेणं एअस्सवि कुमुदो देवो रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं ५, एवं पलासे विदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए उत्तरेणं एअस्सवि पलासो देवो रायहाणी उत्तरपच्चत्थिमेणं ६, एवं वडिंसे विदिसाहत्थिकूडे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

मन्दरस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं उत्तरिल्लाए सीआए महाणईए पच्चत्थिमेणं एअस्सवि वडेंसो देवो रायहाणी उत्तरपच्चत्थिमेणं, एवं रोअणागिरी दिसाहत्थिकूडे मंदरस्स उत्तरपुरत्थिमेणं उत्तरिल्लाए सीआए पुरत्थिमेणं एयस्सवि रोअणागिरी देवो रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं (सूत्रं १०३)

'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे गौतम! उत्तरकुरूणां दक्षिणस्यां देवकुरूणां उत्तरस्यां पूर्वविदेहस्य वर्षस्य पश्चिमायां पश्चिममहाविदेहस्य वर्षस्य पूर्वस्यां जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, नवनवतियोजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन सर्वाग्रेण पूर्णं लक्षमित्यर्थः, वक्ष्यमाणचूलासत्कानि चत्वारिंशद्योजनानि त्वधिकानि, उच्छ्रयचतुर्थांशो भूम्यवगाहस्तु मेरुवर्जपर्वतेषु ज्ञेय इति, मूले–कन्दे दशयोजनसहस्राणि नवतिं च योजनानि दश चैकादशभागान् योजनस्य विष्कम्भेन १००९० अंशाः १०, एकादशरूपेण छेदेन क्रमादपचीयमानविष्कम्भोऽसौ धरणीतले समे भागे दशयोजनसहस्राणि विष्कम्भेन, मूलतो योजनसहस्रमूर्द्ध्वगमने मूलगतानि नवतियोजनानि दश च एकादशभागा योजनस्य तुत्रुटुरित्यर्थः, तदनन्तरं मात्रया २ ऊर्ध्वगमने–उच्चत्वस्य योजनैकादशांशवृद्ध्या विष्कम्भस्य योजनैकादशांशहानिस्तथोच्चत्वैकादशयोजनवृद्ध्या विष्कम्भैकयोजनहानिः एवमेकादशयोजनशतवृद्ध्या योजनशतहानिः तथा एकादशयोजनसहस्रवृद्ध्या योजनसहस्रहानिरित्येवंरूपेण परिमाणेन परिहीयमाणः २ उपरितले–शिरोभागे यत्र चूलिकाया उद्भवस्तत्र एकं योजनसहस्रं विष्कम्भेन, समभू-

श्रीजम्बू. ६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३६१॥

तलतो नवनवतियोजनसहस्राण्यूर्ध्वगमने पृथुत्वगतनवयोजनसहस्राणि तुत्रुटुरित्यर्थः, अथास्य परिधिः—मूले एक-त्रिंशद्योजनसहस्राणि नव च शतानि दशोत्तराणि त्रींश्चैकादशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण, धरणीतले एकत्रिं-शद्योजनसहस्राणि षट् च त्रयोविंशत्यधिकानि योजनशतानि परिक्षेपेण उपरितले त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वाषष्ट्यधिकं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण, अथाद्यपरिधिगणितं मूले विष्कम्भस्य सच्छेदत्वाद्विष-मामिति दर्श्यते—मूले च विष्कम्भो दशयोजनसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्य १००९० $\frac{१०}{११}$ तत्र योजनराशावेकादशभागकरणार्थमेकादशभिर्गुणिते उपरितनदशभागक्षेपे च जाता एकादशभागा लक्षमेकादश च सहस्राणि १११००० ततोऽस्य राशेर्वर्गकरणे जातं एकको द्विकस्त्रिको द्विकः एककः षट् च शून्यानि १२३२१०००००० ततोऽस्य दशभिर्गुणने जातानि सप्त शून्यानि १२३२१००००००० अथास्य वर्गमूलानयने लब्धस्त्रिकः पञ्चक एककः शून्यमेकको द्विकः ३५१०१२ अथास्य योजनकरणार्थं ११ भागः लब्धं योजन ३१९१० अंश २, शेषं ५७५८५६।७०२०२४, अर्द्धाभ्यधिकत्वाद्रूपे दत्ते अंशाः ३, समभूतलगतपरिधावपि ३१६२२ योजनानि अवशिष्टांशानामर्द्धाभ्यधिकत्वाद्रूपे दत्ते त्रयोविंशतिर्योजनानि, शिखरपरिधौ चार्द्धतो न्यूनत्वादंशानां सूत्रे किंचिदधिकत्वं न्यवेदि, अत एव मूले विस्तीर्णो मध्ये संक्षिप्तः उपरि तनुकः ऊर्ध्वं मेखलाद्वयाविवक्षया उदस्तगोपुच्छा-कारेण संस्थितः सर्वात्मना रत्नमयः, इदं च प्रायोवचनं, अन्यथा काण्डत्रयविवेचने आद्यकाण्डस्य पृथ्व्युपलशर्करा-

४वक्षस्कारे मेरुपर्वतः सू. १०३

॥३६१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

वज्रमयत्वं तृतीयकाण्डे जाम्बूनदमयत्वं च भणिष्यमाणं विरुणद्धि, शेषं प्राग्वत् । अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह—'से णं एगाए' इत्यादि, व्यक्तं, अत्र चारोहेऽवरोहे च इष्टस्थाने विस्तारादिकरणानि सूत्रेऽनुक्तान्यपि उत्तरग्रन्थे बहूपयोगानीति दर्श्यन्ते—तत्र कन्दादारोहे करणमिदं—ऊर्ध्वगतस्य यत्र योजनादौ विस्तारजिज्ञासा तस्मिन् योजनादिके एकादशभिर्भक्ते यल्लब्धं तस्मिन् कन्दविस्तारादपनीते यदवशिष्टं स तत्र प्रदेशे मेरुव्यासः, तथाहि—कन्दाद्योजनलक्षमूर्ध्वं गतस्ततो योजनलक्षं ध्रियते तस्मिन्नेकादशभिर्भक्ते लब्धानि नवतिशतानि नवत्यधिकानि योजनानां दश चैकादशभागा योजनस्य अस्मिन् कन्दव्यासात् दशयोजनसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्येत्येवंपरिमाणादपनीयते शेषं योजनसहस्रं, एतावानत्र प्रदेशे मेरूपरितले व्यासः, अथवा योजनसहस्रमारूढस्ततो योजनसहस्रे एकादशभिर्भक्ते लब्धानि नवतियोजनानि दश चैकादशभागा योजनस्य अस्मिन् पूर्वोक्तात् कन्दव्यासाच्छोधिते शेषं दशयोजनसहस्राणि एवमन्यत्रापि भाव्यं । अथ शिखरादवरोहे करणं, यथा मेरुशिखरादवपत्य यत्र योजनादौ विष्कम्भजिज्ञासा तस्मिन् योजनादिके एकादशभिर्भक्ते यल्लब्धं तत्सहितं तत्र प्रदेशे मेरुव्यासमानं, यथा शिखराद्योजनलक्षमवतीर्णस्ततो लक्षे एकादशभिर्भक्ते लब्धानि नवतिशतानि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागाः अस्मिन् योजनसहस्रप्रक्षेपे जातानि १००९० $\frac{10}{11}$ इयान् कन्दे व्यासः, अथवा शिखराल्लवनवतियोजनसहस्राण्यवतीर्णस्ततस्तेषामेकादशभिर्भागे हृते लब्धानि नवसहस्राणि तानि सहस्रसहितानि जातानि दशसहस्राणि एतावान् धरणीतले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः

॥३६२॥

विस्तारः, एवमन्यत्रापि, अथ मेरौ मूलादारोहे मौलितोऽवरोहे च विष्कम्भविषयकहानिवृद्धिज्ञानार्थं करणमिदं–उपरितनाधस्तनयोर्विस्तारयोर्विश्लेषे कृते तयोर्मध्यवर्त्तिना पर्वतोच्छ्रयेण भक्ते यल्लब्धं सा हानिर्वृद्धिश्च, तथाहि–उपरितने विस्तारे योजनसहस्रं अधस्तनाद्योजन १००९० $\frac{१०}{११}$ इत्येवंरूपाच्छोधिते शेषं ९०९० $\frac{१०}{११}$ सवर्णनार्थं योजनराशिमेकादशगुणीकृत्य अधस्तना दश भागाः प्रक्षेप्याः जातं $\frac{१००००००}{११}$ अस्य च भजनार्थं मध्यवर्त्तिनि पर्वतोच्छ्राये १००००० इत्येवंरूपे एकादशगुणे कृते जातं $\frac{१}{११}$ $\frac{\text{शून्य ५}}{\text{शून्य ५}}$ अत्र छेदराशेरेकादशगुणत्वाद्भागाप्राप्तौ उभयोर्लक्षेणापवर्त्ते कृते जातं $\frac{१}{११}$ इयती प्रतियोजनं हानिर्वृद्धिश्च, तथा इदमेव लब्धमर्द्धीकार्यं एककस्यार्द्धासम्भवात् छेद एव द्विगुणीक्रियते जातं $\frac{१}{२२}$ इयं मेरोरेकस्मिन् पार्श्वे वृद्धिर्हानिश्चेति । अथोच्चत्वपरिज्ञानाय करणमिदं–मेरोर्यत्र भूतलादौ प्रदेशे यो यावान् विस्तारः तस्मिन् मूलविस्ताराच्छोधिते यच्छेषं तदेकादशभिर्गुणितं सत् यावद् भवति तावत्प्रमाण उत्सेधः, तथाहि—शिखरव्यासो योजनसहस्रं तस्मिन् कन्दव्यासात् पूर्वोक्ताच्छोधिते शेषं नवतिसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्येत्येतदात्मकं योजनराशिरेकादशभिर्गुण्यते जातं ९९९९० ये च दशैकादशभागास्तेऽपि एकादशभिर्गुण्यन्ते जातं ११० तस्यैकादशभिर्भागे हृते लब्धानि दश योजनानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातं योजनानां लक्षं, एतावदधोविस्तारोपरितनविस्तारयोरन्तरे उच्चत्वं, एवं मध्यभागादावप्युच्चत्वपरिमाणं भावनीयमिति। नन्विह कस्मा-

४वक्षस्कारे मेरुपर्वतः सू. १०३

॥३६२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

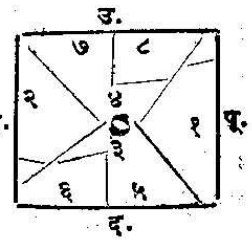
देकादशलक्षणः छेदः कस्माद्वा तेन शेषं गुण्यते?, उच्यते, एकादशानां योजनानामन्ते एकं योजनं एकादशानां योजनशतानामन्ते एकं योजनशतं एकादशानां योजनसहस्राणामन्ते एकं योजनसहस्रं त्रुट्यति तत एकादशलक्षणः छेदः, तेनोच्चत्वपरिज्ञानाय विस्तारशेषं गुण्यते, अन्यथा योजनानां दशसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्येत्येवंविस्तारात् कन्दादारोहणे धरणीतले नवतिर्योजनानि दश चैकादशभागाः कथं त्रुट्येयुरिति, ननु मेखलाद्वये प्रत्येकं परितः पञ्चयोजनशतविस्तारयोर्नन्दनसौमनसवनयोः सद्भावात् प्रत्येकं योजनसहस्रस्य युगपत् त्रुटिः ततः किमित्येकादशभागपरिहाणिः?, उच्यते, कर्णगत्या समाधेयमिति, का च कर्णगतिरिति चेत्, उच्यते, कन्दादारभ्य शिखरं यावदेकान्तऋजुरूपायां दवरिकायां दत्तायां यदपान्तराले क्वापि कियदाकाशं तत्सर्वं कर्णगत्या मेरोराभाव्यमिति मेरुतया परिकल्प्य गणितज्ञाः सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिं परिवर्णयन्ति, अयं चार्थः श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यैरपि विशेषणवत्यां लवणोदधिघनगणितनिरूपणावसरे दृष्टान्तद्वारेण ज्ञापित एवेति ॥ सम्प्रत्येतद्गतवनखण्डवक्तव्यतामाह—'मन्दरे ण'मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तं, उत्तरसूत्रे चत्वारि वनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भद्राः—सद्भूमिजातत्वेत सरलाः शालाः साला वा—तरुशाखा यस्मिन् तत् भद्रशालं भद्रसालं वा, अथवा भद्राः शाला—वृक्षा यत्र तद् भद्रशालं नन्दयति—आनन्दयति देवादीनिति नन्दनं सुमनसां—देवानामिदं सौमनसं देवोपभोग्यभूमिकासनादिमत्त्वात् पण्डते—गच्छति जिनजन्माभिषेकस्थानत्वेन सर्ववनेभ्यतिशायितामिति णकप्रत्यये पण्डकं, इमानि चत्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

र्यपि स्वस्थाने मेरुं परिक्षिप्य स्थितानि, आद्यवनं स्थानतः पृच्छति–'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्राग्वत्, निर्वचनसूत्रे गौतम! धरणीतलेऽत्र मेरौ भद्रशालवनं प्रज्ञप्तं, प्राचीनेत्यादि प्राग्वत्, सौमनसविद्युत्प्रभगन्धमादनमाल्यवद्भिर्वक्षस्कारपर्वतैः शीताशीतोदाभ्यां च महानदीभ्यामष्टभागप्रविभक्तं–अष्टधाकृतं, तद्यथा–एको भागो मेरोः पूर्वतः १ द्वितीयोऽपरतः २ तृतीयो विद्युत्प्रभसौमनसमध्ये दक्षिणतः ३ चतुर्थो गन्धमादनमाल्यवन्मध्ये उत्तरतः ४ तथा शीतोदया उत्तरतो गच्छन्त्या दक्षिणखण्डं पूर्वपश्चिमविभागेन द्विधा कृतं ततो लब्धः पञ्चमो भागः ५ तथा पश्चिमतो गच्छन्त्या पश्चिमखण्डं दक्षिणोत्तरविभागेन द्विधा कृतं ततो लब्धः षष्ठो भागः६ तथा शीतया महानद्या दक्षिणाभिमुखं गच्छन्त्या उत्तरखण्डं पूर्वपश्चिमभागेन द्विधा कृतं ततो लब्धः सप्तमो भागः ७ तथा पूर्वतो गच्छन्त्या पूर्वखण्डं दक्षिणोत्तरविभागेन द्विधा कृतं ततो लब्धोऽष्टमो भागः ८, स्थापना यथा— ।



मन्दरस्य पूर्वतः पश्चिमतश्च द्वाविंशतिं २ योजनसहस्राण्यायामेन, कथमिति चेत्, उच्यते, कुरुजीवा त्रिपञ्चाशद्योजनसहस्राणि ५३०००, एकैकस्यां च वक्षस्कारगिरेर्मूले पृथुत्वं पञ्चयोजनशतानि ततो द्वयोः शैलयोर्मूले पृथुत्वपरिमाणं योजनसहस्रं तस्मिन् पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि चतुःपञ्चाशद् योजनसहस्राणि ५४०००, तस्मान्मेरुव्यासे शोधिते शेषं चतुश्चत्वारिंशद्योजन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्राणि ४४००० तेषामर्द्धे द्वाविंशतियोजनसहस्राणि २२००० पूर्वतः पश्चिमतश्च भवन्ति, अथवेदमुपपत्त्यन्तरं–शीतावनमुखं २९२२ योजनानि अन्तरनदीषट्कं ७५० योजनानि वक्षस्काराष्टकं ४००० योजनानि विजयषोडशकपृथुत्वं ३५४०६ योजनानि शीतोदावनमुखं २९२२ योजनानि एतेषां विस्तारसर्वाग्रमीलने षट्चत्वारिंशद् योजनसहस्राणि एतच्च लक्षप्रमाणमहाविदेहजीवायाः शोध्यते शेषं चतुःपञ्चाशद्योजनसहस्राणि एतावद्भद्रशालवनक्षेत्रं तच्च मेरुसहितमिति धरणीतलसत्कदशयोजनसहस्रशोधने शेषं चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि तस्यार्द्धे एकैकपार्श्वे द्वाविंशतियोजनसहस्राणीति, उत्तरतो दक्षिणतश्चार्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन, दक्षिणत उत्तरतश्च तद्भद्रशालवनमर्द्धतृतीययोजनशतानि यावद् देवकुरूत्तरकुरुषु प्रविष्टमित्यर्थः, अत एव देवकुरुमेरूत्तरकुरुव्यासरुद्धे विदेहव्यासे क्व भद्रशालवनाकाश इति प्रश्नो दूरापास्त इति । अथैतद्वर्णनातिदेशायाह—'से णं एगाए'इत्यादि, प्राग्वत्, अथात्र सिद्धायतनादिवक्तव्यमाह—'मन्दरस्स'इत्यादि, मेरोः पूर्वतः पञ्चाशद्योजनानि भद्रशालवनमवगाह्य–अतिक्रम्यात्रान्तरे महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तं, पञ्चाशद्योजनान्यायामेन पञ्चविंशतियोजनानि विष्कम्भेन षट्त्रिंशद्योजनानि ऊर्ध्वोच्चत्वेन अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टेत्यादिकः सूत्रतोऽर्थतश्च वर्णकः प्रागुक्तो ग्राह्यः । अथात्र द्वारादिवर्णकसूत्राण्याह—'तस्स ण'मित्यादि, प्राग्वत्, 'तस्स'त्ति, 'तीसे ण'मित्यादि, सूत्रद्वयं व्यक्तं। अथोक्तरीतिमवशिष्टसिद्धायतनेषु दर्शयति–'मन्दरस्स'इत्यादि, मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणतो भद्रशालवनं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्येत्याद्यालापको ग्राह्यः, एवं चतुर्दिक्ष्वपि मन्दरस्य भद्रशालवने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

॥३६४॥

चत्वारि सिद्धायतनानि भणितव्यानि, यच्च त्रिष्वतिदेष्टव्येषु चत्वार्यतिदिष्टानि तत्र जम्बूद्वीपद्वारवर्णके 'एवं चत्तारिवि दारा भाणिअवा' इत्येतत्सूत्रव्याख्यानमनुस्मरणीयम् । अथैतद्गतपुष्करिण्यो वक्तव्याः—'मन्दरस्स'इत्यादि, सुगमं, अथासां प्रमाणाद्याह—'ताओ ण'मित्यादि, मेरोरीशान्यां दिशि भद्रशालवनं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्यात्रान्तरे चतस्रो नन्दा—नन्दाभिधानाः शाश्वताः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः, आसां च प्रादक्षिण्येन नामानि पद्मा पद्मप्रभा कुमुदा कुमुदप्रभा चैवः समुच्चये ताश्च पुष्करिण्यः पञ्चाशद्योजनान्यायामेन पंचविंशतिं योजनानि विष्कम्भेन दशयोजनान्युद्वेधेन—उण्डत्वेन वर्णको वेदिकावनखण्डानां भणितव्यः प्राग्वत्, यावच्चतुर्दिशि तोरणानि । अथैतासां मध्ये यदस्ति तदाह—'तासि ण'मित्यादि, तासां पुष्करिणीनां बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे महानेकः ईशानदेवेन्द्रस्य देवराज्ञः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, कोऽर्थः?—तं प्रासादं चतस्रः पुष्करिण्यः परिक्षिप्य स्थिता इति, पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन समचतुरस्रत्वादायामेनापि, 'अब्भुग्गयमूसिअ'इत्यादि प्रासादानां वर्णनं प्राग्वत्, एवमुक्ताभिलापानुसारेण सपरिवारः—ईशानेन्द्रयोग्यशयनीयसिंहासनादिपरिवारयुक्तः प्रासादावतंसको भणितव्यः, अथ प्रादक्षिण्येन शेषविदिग्गतपुष्करिण्यादिप्ररूपणायाह—'मन्दरस्स'इत्यादि, मेरोः एवमितिपदमुक्तातिदेशार्थं तेन 'भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता' इत्यादि ग्राह्यं, नवरं दक्षिणपूर्वस्यामिति—आग्नेय्यां दिशीत्यर्थः, ताश्चोत्पलगुल्मादयः पूर्वक्रमेण तदेव प्रमाणं—ईशानविदिग्गतप्रासादप्रमाणेनेत्यर्थः, दक्षिणपश्चिमायामपि—नैर्ऋत्यां

॥३६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदिशि पुष्करिण्यो भृङ्गाद्याः प्रादक्षिण्येन ज्ञेयाः, प्रासादावतंसकः शक्रस्य सिंहासनं सपरिवारं, उत्तरपश्चिमायां-वायव्यां विदिशि पुष्करिण्यः श्रीकान्ताद्याः प्रासादावतंसकः ईशानस्य सिंहासनं सपरिवारं, अत्र उत्तरदिक्सम्बद्धत्वेन ऐशानवायव्यप्रासादौ ईशानेन्द्रसत्कौ दक्षिणदिक्सम्बद्धत्वेन आग्नेयनैर्ऋतप्रासादौ शक्रेन्द्रसत्काविति । सम्प्रति दिग्गजकूटवक्तव्यतामाह—'मन्दरे णं भन्ते ! पव्वए'इत्यादि, प्रश्नसूत्रे दिक्षु—ऐशान्यादिविदिक्प्रभृतिषु हस्त्याकाराणि कूटानि दिग्हस्तिकूटानि, कूटशब्दवाच्यानामप्येषां पर्वतत्वव्यवहारः ऋषभकूटप्रकरण इव ज्ञेयः, स्थानाङ्गेऽष्टमस्थाने तु पूर्वादिषु दिक्षु हस्त्याकाराणि कूटानीति, उत्तरसूत्रे पद्मोत्तरेति श्लोकः, पद्मोत्तरः नीलवान् सुहस्ती अञ्जनागिरिः 'अञ्जनादीनां गिरा' (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू०) वित्यादिना दीर्घः, कुमुदः पलाशः अवतंसः रोचनागिरिः, अन्यत्र रोहणागिरिः, अत्रापि दीर्घत्वं प्राग्वत्, अथैषां दिग्व्यवस्थां पृच्छन्नाह—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त ! मेरौ भद्रशालवने पद्मोत्तरो नाम दिग्हस्तिकूटः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! मन्दरस्यैशान्यां पौरस्त्यायाः—मेरुतः पूर्वदिग्वर्त्तिन्याः शीताया उत्तरस्यां, अनेनोत्तरदिग्वर्त्तिन्याः शीताया व्यवच्छेदः कृतः, अत्रान्तरे पद्मोत्तरो नाम दिग्हस्तिकूटः प्रज्ञप्तः, ऐशानवापीचतुष्कमध्यस्थप्रासादप्राच्यजिनभवनयोरन्तरालवर्त्तीत्यर्थः, अत एव दिग्हस्तिकूटा अपि मेरुतः पञ्चाशद्योजनातिक्रम एव भवन्ति, प्रासादजिनभवनसमश्रेणिस्थितत्वात्, पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन पञ्चगव्यूतशतान्युद्वेधेन एवमुच्चत्वन्यायेन विष्कम्भः, अत्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, परिक्षेपश्च भणितव्यः, तथाहि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३६५॥

मूले पञ्चयोजनशतानि मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि उपरि अर्द्धतृतीयानि योजनशतानीत्येवंरूपो विष्कम्भः, तथा मूले पञ्चदशयोजनशतानि एकाशीत्यधिकानि मध्ये एकादशयोजनशतानि षडशीत्यधिकानि किञ्चिदूनानि उपरि सप्तयोजनशतान्येकनवत्यधिकानि किञ्चिदूनानीति परिक्षेपः प्रासादानां च एतद्वर्त्तिदेवसत्कानां तदेव प्रमाणमिति गम्यं यत् क्षुद्रहिमवत्कूटपतिप्रासादस्येति, अत्र बहुवचननिर्देशो वक्ष्यमाणदिग्हस्तिकूटवर्त्तिप्रासादेष्वपि समानप्रमाणसूचनार्थं, पद्मोत्तरोऽत्र देवः, तस्य राजधानी उत्तरपूर्वस्यां उक्तविदिग्वर्त्तिकूटाधिपत्वादस्येति, अथ शेषेषु उक्तन्यायं प्रदक्षिणाक्रमेण दर्शयन्नाह—'एवं नीलवन्त'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं एवमिति—पद्मोत्तरन्यायेन नीलवन्नाम्ना दिग्हस्तिकूटः २ मन्दरस्य दक्षिणपूर्वस्यां पौरस्त्यायाः शीतायाः दक्षिणस्यां, ततोऽयं प्राच्यजिनभवनाग्नेयप्रासादयोर्मध्ये ज्ञेयः, एतस्यापि नीलवान् देवः प्रभुस्तस्य राजधानी दक्षिणपूर्वस्यामिति, 'एवं सुहत्थि'इत्यादि, नवरं दाक्षिणात्याया—मेरुतो दक्षिणदिग्वर्त्तिन्याः शीतोदायाः पूर्वतः, अनेन मेरुतः पश्चिमदिग्वर्त्तिन्याः शीतोदायाः व्यवच्छेदः कृतः, अत्रान्तरे सुहत्थिदिग्हस्तिकूटः ३, आग्नेयप्रासाददाक्षिणात्यजिनभवनमध्यवर्त्तीत्यर्थः, एतस्यापि सुहस्ती देवः राजधानी तस्य दक्षिणपूर्वस्यां, नीलवत्सुहस्तिनोरेकस्यामेव दिशि राजधानीत्यर्थः, एवं समविदिग्वर्त्तिनो दिग्हस्तिकूटाधिपयोरेकस्यां विदिशि राजधानीद्वयं २ अग्रेऽपि भाव्यं, 'एवं चेव'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं दाक्षिणात्यजिनगृहनैर्ऋतप्रासादयोर्मध्ये इत्यर्थः ४, 'एव'मित्यादि, व्यक्तं, नवरं पाश्चात्यायाः—पश्चिमाभिमुखं वहन्त्याः शीतोदाया दक्षिणस्या-

४वक्षस्कारे मेरुपर्वतः सू. १०३

॥३६५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

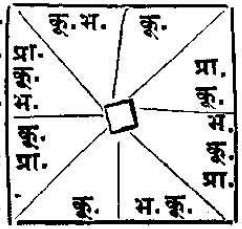
प्रत सूत्रांक [१०३] + गाथाः

दीप अनुक्रम [१९४--१९६]

मिति, नैर्ऋतप्रासादपार्श्वात्यजिनभवनयोर्मध्यवर्त्तीत्यर्थः, 'एव'मिति, व्यक्तं, पार्श्वात्यजिनभवनवायव्यप्रासादयोरन्तरे इत्यर्थः, 'एवं वडेंसे विदिसाहत्थिकूडे'इत्यादि, गतार्थं, नवरं औत्तराह्याः—मेरुतः उत्तरदिग्वर्त्तिन्याः शीतायाः पश्चिमतः, अनेन पूर्वदिग्वर्त्तिन्याः शीतायाः व्यवच्छेदः कृतः, वायव्यप्रासादौत्तराहभवनयोर्मध्यवर्त्तीत्यर्थः 'एवं रोअणागिरी दिसाहत्थिकूडे'इत्यादि व्यक्तं, नवरं औत्तराह्याः—शीतायाः पूर्वतः औत्तराह्यजिनभवनैशानप्रासादयोरन्तराले इत्यर्थः, एषु च बहुभिः पूर्वाचार्यैः शाश्वतजिनभवनसूत्रेषु जिनभवनान्युच्यन्ते इह तु सूत्रकृता नोक्तानि तेन तत्त्वं केवलिनो विदन्ति, अत एवोक्तं रत्नशेखरसूरिभिः स्वोपज्ञक्षेत्रविचारे—"करिकूडकुण्डनइदहकुरुकंचणजमलसमविअट्टेसुं। जिणभवणविसंवाओ जो तं जाणंति गीअत्था ॥ १ ॥" इति, [हस्तिकूटकुण्डनदीद्रहकुरुकाञ्चनयमकवृत्तवैताढ्येषु। यो जिनभवनविसंवादस्तं गीतार्था जानन्ति ॥ १ ॥]" अथैषां वापीचतुष्कप्रासादानां जिनभवनानां करिकूटानां च स्थाननियमनेऽयं वृद्धानां सम्प्रदायः, तथाहि—भद्रशालवने हि मेरोश्चतस्रोऽपि दिशो नदीद्वयप्रवाहैः रुद्धाः, अतो दिक्ष्वेव भवनानि न भवन्ति, किन्तु नदीतटनिकटस्थानि भवनानि गजदन्तनिकटस्थाः प्रासादा भवनप्रासादान्तरालेष्वष्टसु करिकूटाः, अत एव विशेषतो दर्श्यते—मेरोरुत्तरपूर्वस्यामुत्तरकुरूणां बहिः शीताया उत्तरदिग्भागे पञ्चाशद्योजनेभ्यः परः प्रासादः तत्परिक्षेपिण्यश्चतस्रो वाप्यः, एवं शेषेष्वपि प्रासादेषु ज्ञेयं, मेरोः पूर्वस्यां शीतायाः दक्षिणतः ५० योजनेभ्यः परं सिद्धायतनं, मेरोर्दक्षिणपूर्वस्यां ५० योजनातिक्रमे देवकुरूणां बहिः शीताया दक्षिणत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एव प्रासादः मेरोर्दक्षिणतः ५० योजनातिक्रमे देवकुरूणां मध्ये शीतोदायाः पूर्वतः सिद्धायतनं, मेरोरपरदक्षिणतः ५० योजनान्यवगाह्य देवकुरूणां बहिः शीतोदाया दक्षिणतः प्रासादः मेरोः पश्चिमायां ५० योजनातिक्रमे शीतोदाया उत्तरतः सिद्धायतनं मेरोरपरोत्तरस्यां ५०योजनान्यवगाह्योत्तरकुरूणां बहिः शीतोदाया उत्तरत एव प्रासादः, मेरोरुत्तरतः पञ्चाशद्योजनेभ्यः उत्तरकुरूणां मध्ये शीतायाः पश्चिमतः सिद्धायतनमिति,एतेषां चाष्टस्वन्तरेष्वष्टौ कूटा इति, अत्र सुखावबोधाय स्थापना यथा—



कहि ण भन्ते! मन्दरे पव्वए णंदणवणे णामं वणे पण्णत्ते?, गो०! भद्दसालवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पञ्चजोअणसयाइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए णन्दणवणे णामं वणे पण्णत्ते पञ्चजोअणसयाइं चक्कवालविक्खम्भेणं वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए जे णं मन्दरं पव्वयं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइत्ति णवजोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खम्भो एगत्तीसं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अउणासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए बाहिं गिरिपरिरएणं अट्ठ जोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिविक्खम्भो अट्ठावीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि य सोलसुत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरएणं, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ जाव देवा आसयन्ति, मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं महं एगे सिद्धाययणे प० एवं चउद्दिसिं चत्तारि सिद्धाययणा विदिसासु पुक्खरिणीओ तं चेव पमाणं सिद्धाययणाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुक्खरिणीणं च पासायवडिंसगा तह चेव सक्कोसाणाणं तेणं चेव पमाणेणं, णंदणवणे णं भन्ते! कइ कूडा पं०?, गोअमा! णव कूडा पण्णत्ता, तंजहा–णन्दणवणकूडे १ मन्दरकूडे २ णिसहकूडे ३ हिमवयकूडे ४ रययकूडे ५ रुअगकूडे ६ सागरचित्तकूडे ७ वइरकूडे ८ बलकूडे ९। कहि णं भन्ते! णन्दणवणे णंदणवणकूडे णामं कूडे पं०?, गोअमा! मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसिद्धाययणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसयस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं णन्दणवणे णंदणवणे णामं कूडे पण्णत्ते पञ्चसइआ कूडा पुव्ववण्णिआ भाणिअव्वा, देवी मेहंकरा रायहाणी विदिसाएत्ति १, एआहिं चेव पुव्वाभिलावेणं णेअव्वा इमे कूडा इमाहिं दिसाहिं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं मन्दरे कूडे मेहवई रायहाणी पुव्वेणं २ दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं णिसहे कूडे सुमेहा देवी रायहाणी दक्खिणेणं ३ दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं दक्खिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं हेमवए कूडे हेममालिनी देवी रायहाणी दक्खिणेणं ४ पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दक्खिणेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं रयए कूडे सुवच्छा देवी रायहाणी पच्चत्थिमेणं ५ पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं रुअगे कूडे वच्छमित्ता देवी रायहाणी पच्चत्थिमेणं ६ उत्तरिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं सागरचित्ते कूडे वइरसेणा देवी रायहाणी उत्तरेणं ७ उत्तरिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं वइरकूडे बलाहया देवी रायहाणी उत्तरेणंति ८, कहि णं भन्ते! णन्दणवणे बलकूडे णामं कूडे पण्णत्ते?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०४]

दीप अनुक्रम [१९७]

गोअमा! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं नन्दणवणे बलकूडे णामं कूडे प०, एवं णं सेसं हरिस्सहकूडस्स पमाणं रायहाणी अ तं चेव बलकूडस्सवि, णवरं बलो देवो रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणंति (सूत्रं १०४)

अथ द्वितीयवनं पृच्छन्नाह—'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे गौतम! भद्रशालवनस्य बहुसमरमणीयाद्भूमिभागात् पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वमुत्पत्त्य—गत्वाऽत्रतो वर्द्धिष्णाविति गम्यं मन्दरे पर्वते एतस्मिन् प्रदेशे नन्दनवनं नाम वनं प्रज्ञप्तं, पञ्चयोजनशतानि 'चक्रवालविष्कम्भेन' चक्रवालं—विशेषस्य सामान्येऽनुप्रवेशात् समचक्रवालं तस्य यो विष्कम्भः—स्वपरिक्षेपस्य सर्वतः समप्रमाणतया विष्कम्भस्तेन, अनेन विषमचक्रवालादिविष्कम्भनिरासः, अत एव वृत्तं, तच्च मोदकादिवत् घनमपि स्यादत आह—वलयाकारं—मध्येशुषिरं यत् संस्थानं तेन संस्थितं, इदमेव द्योतयति—यन्मन्दरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य—वेष्टयित्वा तिष्ठति। अथ मेरोर्बहिर्विष्कम्भादिमानमाह—'णवजोअण'इत्यादि, मेखलाविभागे हि गिरीणां बाह्याभ्यन्तररूपं विष्कम्भद्वयं भवति, तत्र मेरौ बाह्यविष्कम्भोऽयं—नवयोजनसहस्राणि नव शतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि षट् चैकादशभागा योजनस्य, तथाहि—मेरोरुर्ध्वमेकस्मिन् योजने गते विष्कम्भसम्बन्धी एक एकादशभागो योजनस्य गतो लभ्यते इति प्रागुक्तं ततोऽत्र त्रैराशिकं—यद्येकयोजनारोहे मेरोरुपरि व्यासस्यापचयः सर्वत्रैकादशो भागो योजनस्यैको लभ्यते ततः पञ्चशतयोजनारोहे कोऽपचयो लभ्यते?, लब्धानि ४५ योजनानि $\frac{५}{११}$ एतत् समभूतलगतव्यासात् दशयोजनसहस्ररूपात् त्यज्यते जातं यथोक्तं मानं, एतच्च नन्दनव-

॥३६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नस्य बहिः पूर्वापरयोरुत्तरदक्षिणयोर्वा अन्तयोः सम्भवति, अतो नन्दनवनाद्बहिर्वर्त्तित्वेन बाह्यो गिरिविष्कम्भः, तथा एकत्रिंशद्योजनसहस्राणि चत्वारि शतानि एकोनाशीत्यधिकानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि इत्ययं बाह्यो गिरिपरिरयो मेरु-परिधिरित्यर्थः, यमिति वाक्यालङ्कारे अन्तर्गिरिविष्कम्भो नन्दनवनादर्वाक् यो गिरिविस्तारः सोऽष्टयोजनसहस्राणि नव च योजनशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि षट् च एकादशभागा योजनस्येत्येतावत्प्रमाणः, अयं च बाह्यगिरिवि-ष्कम्भे सहस्रोने यथोक्तः स्यात्, तथा अष्टाविंशतियोजनसहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि षोडशाधिकानि अष्ट चैकादशभागा योजनस्यैतावत्प्रमाणोऽन्तर्गिरिपरिरय इति, यमिति प्राग्वत् । अथात्र पद्मवरवेदिकामाह—'से णं एगाए पउम'इत्यादि, व्यक्तं, अथात्र सिद्धायतनादिवक्तव्यमारभ्यते—'मन्दरस्स ण'मित्यादि, मन्दरस्य पूर्वस्यां अत्र—नन्दने पञ्चाशद्योजनातिक्रमे महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तम्, एवमिति—भद्रशालवनानुसारेण चतसृषु दिक्षु चत्वारि सिद्धायतनानि विदिक्षु पुष्करिण्यः, तदेव प्रमाणं सिद्धायतनानां पुष्करिणीनां च यद्भद्रशाले उक्तं प्रासादावतंसका-स्तथैव शक्रेशानयोर्वाच्याः यथा भद्रशाले दक्षिणदिक्सम्बद्धविदिग्वर्त्तिनः प्रासादाः शक्रस्य तथोत्तरदिक्सम्बद्धविदि-ग्वर्त्तिनस्तु ईशानेन्द्रस्य तेनैव प्रमाणेन—पञ्चयोजनशतोच्चत्वादिनेति, अत्र च पुष्करिणीनां नामानि सूत्रकारालिखित-त्वाल्लिपिप्रमादाद्वा आदर्शेषु न दृश्यन्ते इति तत्रैशान्यादिप्रासादक्रमादिमानि वामानि द्रष्टव्यानि पूज्यप्रणीतक्षेत्र-विचारतः—नन्दोत्तरा १ नन्दा २ सुनन्दा ३ नन्दिवर्द्धना ४ तथा नन्दिषेणा १ अमोघा २ गोस्तूपा ३ सुदर्शना ४ तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

भद्रा १ विशाला २ कुमुदा ३ पुण्डरीकिणी ४ तथा विजया १ वैजयन्ती २ अपराजिता ३ जयन्ती ४ इति, कूटान्यपि मेरुतस्तावत्येवान्तरे सिद्धायतनप्रासादावतंसकमध्यवर्त्तीनि ज्ञातव्यानि, तत्र यो विशेषस्तमाह—'णन्दणवणे ण'मित्यादि, व्यक्तं, भद्रशालेऽष्टौ कूटानि इह तु नव ततः सङ्ख्यया नामभिश्च विशेषः, तेष्वाद्यं स्थानतः पृच्छति—'कहि ण'-मित्यादि, क्व भदन्त! नन्दनवने नन्दनवनकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! मन्दरस्य पर्वतस्य सम्बन्धिनः पौरस्त्य-सिद्धायतनस्योत्तरतः उत्तरपौरस्त्ये–ईशानदिग्वर्त्तिनः प्रासादावतंसकस्य दक्षिणेन एतस्मिन् प्रदेशे नन्दनवनकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तं, अत्रापि मेरुतः पञ्चाशद्योजनातिक्रम एव क्षेत्रनियमो बोध्यः, अन्यथाऽस्य प्रासादभवनयोरन्तरालवर्त्तित्वं न स्यात्, अथ लाघवार्थमुक्तस्य वक्ष्यमाणानां च कूटानां साधारणमतिदिशति–पञ्चशतिकानि कूटानि पूर्वं विदिग्हस्तिकू-टप्रकरणे वर्णितानि उच्चत्वव्यासपरिधिवर्णसंस्थानराजधानीदिगादिभिः तान्यत्र भणितव्यानीति शेषः, सदृशगमत्वात्, अत्र देवी मेघङ्करा नाम्नी अस्य राजधानी विदिशि अस्य पद्मोत्तरकूटस्थानीयत्वेन राजधानीविदिगुत्तरपूर्वा ग्राह्या, अथ शेषकूटानां तद्देवीनां तद्राजधानीनां च का व्यवस्था इत्याह—'एआहिं'इत्यादि, एताभिर्देवीभिश्चशब्दाद् राज-धानीभिरनन्तरसूत्रे वक्ष्यमाणाभिः सह पूर्वाभिलापेन नन्दनवनकूटसत्कसूत्रगमेन नेतव्यानि इमानि वक्ष्यमाणानि कूटानि इमाभिर्वक्ष्यमाणाभिर्दिग्भिः, एतदेव दर्शयति–'पुरत्थिमिल्लस्स'इत्यादि, इदं च सर्वं भद्रशालवनगमसदृशं तेन तदनुसारेण व्याख्येयं, विशेषश्चात्रायं–पञ्चशतिके नन्दनवने मेरुतः पञ्चाशद्योजनान्तरे स्थितानि पञ्चशतिकानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूटानि किञ्चिन्मेखलातो बहिराकाशे स्थितानि बोध्यानि बलकूटवत्, एतत्कूटवासिन्यश्च देव्योऽष्टौ दिक्कुमार्यः, अत्र नवमं कूटं सहस्राङ्कमिति पृथक् पृच्छति—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! नन्दनवने बलकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! मेरोरीशानविदिशि नन्दनवनं अत्रान्तरे बलकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तं, अयमर्थः—मेरुतः पञ्चाशद्योजनातिक्रमे ईशानकूणे ऐशानप्रासादस्ततोऽपीशानकोणे बलकूटं, महत्तमवस्तुनो विदिशोऽपि महत्तमत्वात्, एवमनेनाभिलापेन यदेव हरिस्सहकूटस्य—माल्यवद्वक्षस्कारगिरेर्नवमकूटस्य प्रमाणं सहस्रयोजनरूपं, यथा चाल्पेऽपि स्वाधारक्षेत्रे महतोऽप्यस्यावकाशः या च राजधानी चतुरशीतियोजनसहस्रप्रमाणा तदेव सर्वं बलकूटस्यापि नवरमत्र बलो देवस्तत्र तु हरिस्सहनामा । अथ तृतीयवनोपक्रमः—

कहि णं भन्ते! मन्दरए पव्वए सोमणसवणे णामं वणे प०?, गोअमा! णन्दणवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अद्धतेवट्ठिं जोअणसहस्साइं उद्धं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए सोमणसवणे णामं वणे पण्णत्ते पञ्चजोयणसयाइं चक्कवालविक्खम्भेणं वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए जे णं मन्दरं पव्वयं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ, चत्तारि जोअणसहस्साइं दुण्णि य बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खम्भेणं तेरस जोअणसहस्साइं पञ्च य एक्कारे जोअणसए छच्च इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिपरिरएणं तिण्णि जोअणसहस्साइं दुण्णि अ बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोयणस्स अंतो गिरिविक्खम्भेणं दस जोअणसहस्साइं तिण्णि अ अउणापण्णे जोअणसए तिण्णि अ इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सोमनसवनस्य वर्णनं क्रियते

परिरएणंति । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते वण्णओ किण्हे किण्होभासे जाव महा-यन्ति एवं कूडवज्जा सच्चेव णन्दणवणवत्तव्वया भाणियव्वा, तं चेव ओगाहिऊण जाव पासायवडेंसगा सक्कीसाणाणंति (सूत्रं १०५)

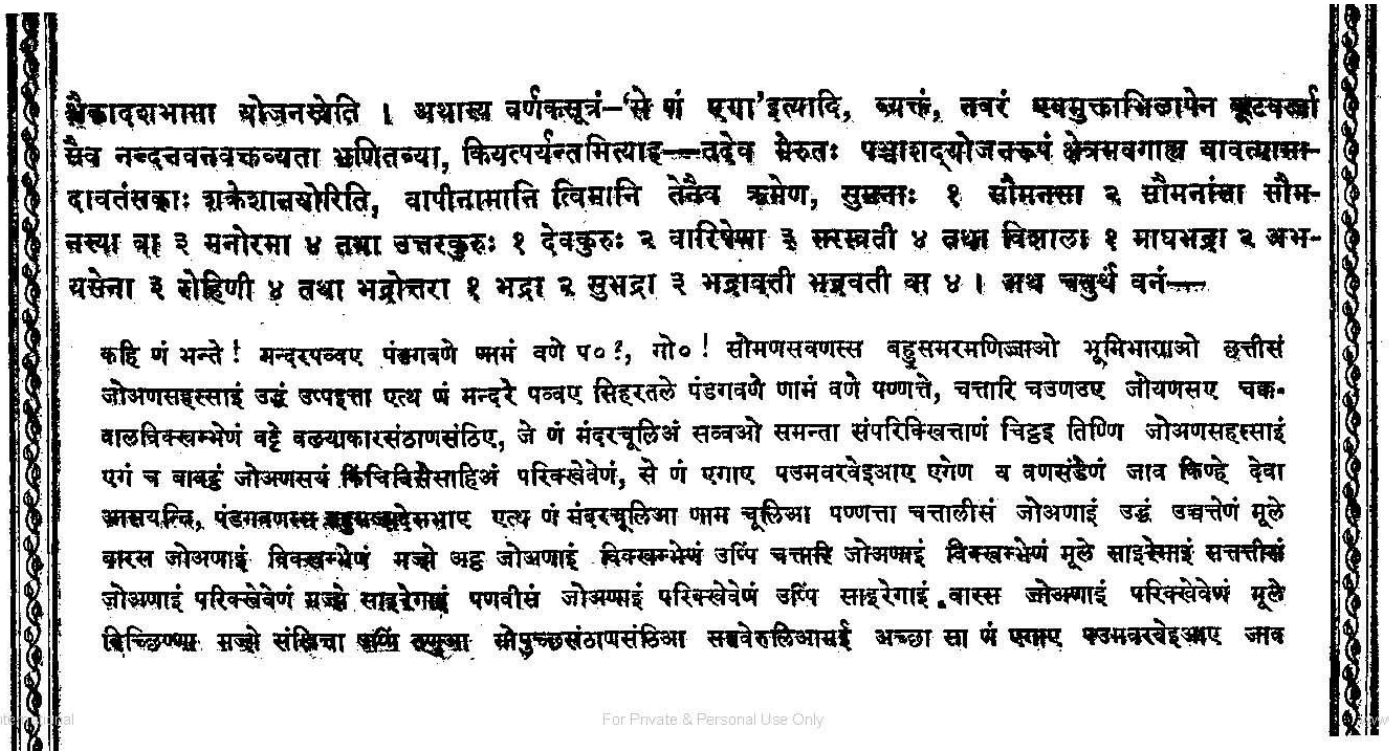
'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! मेरौ सौमनसवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! नन्दनवनस्य बहुसमरमणीयाद् भूमिभागादर्द्धत्रिषष्टिं सार्द्धद्वाषष्टिरित्यर्थः योजनसहस्राण्यूर्द्ध्वमुत्पत्त्यात्रान्तरे मन्दरपर्वते सौमनसवनं नाम वनं प्रज्ञप्तं, पञ्चयोजनशतानि चक्रवालविष्कम्भेनेत्यादिपदानि प्राग्वत्, यन्मन्दरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य तिष्ठति, एतच्च कियता विष्कम्भेन कियता च परिक्षेपेणेत्याह—'चत्तारी'त्यादि, प्रथममेखलायामिव द्वितीयमेखला-यामपि विष्कम्भद्वयं वाच्यं, तत्र बहिर्गिरिविष्कम्भेन चत्वारि योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्विसप्तत्यधिके अष्टौ चैकादशभागा योजनस्य, एतदुपपत्तिरेवं—धरणीतलात् सौमनसं यावद् गमने मेरूच्छ्रयस्य ६३ सहस्रयोजनान्यति-क्रान्तानि एषां चैकादशभिर्भागे लब्धं ५७२७$\frac{3}{11}$ अस्मिंश्च राशौ धरणीतलगतमेरुव्यासादशसहस्रयोजनप्रमाणाच्छोधिते जातं यथोक्तं मानमिति, बहिर्गिरिपरिरयेण त्रयोदश योजनसहस्राणि पञ्चयोजनशतानि एकादशानि—एकादशाधि-कानि षट् च एकादशभागा योजनस्य, तथाऽन्तर्गिरिविष्कम्भेन त्रीणि योजनसहस्राणि द्वे द्वासप्तत्यधिके योजनशते अष्टौ चैकादशभागा योजनस्य, उपपत्तिस्तु बहिर्गिरिविष्कम्भात् उभयतो मेखलाद्वयन्यासे पञ्चशत२योजनरूपेऽ-पनीते यथोक्तमानं, अन्तर्गिरिपरिरयेण तु दश सहस्रयोजनानि त्रीणि च योजनशतानि एकोनपञ्चाशदधिकानि त्रय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०५]

दीप अनुक्रम [१९८]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः



शैकादशभाषा योजनस्येति । अथास्य वर्णकसूत्रं–'से णं एगाए'इत्यादि, व्यक्तं, नवरं एवमुक्ताभिलापेन सूत्रवर्त्मा सैव नन्दनवनवक्तव्यता क्षणितव्या, कियत्पर्यन्तमित्याह—तदेव मेरुतः पञ्चाशद्योजनरूपं क्षेत्रमवगाह्य यावत्यावादावतंसकाः शक्रेशानयोरिति, वापीनामानि त्विमानि तेनैव क्रमेण, सुनन्दाः १ सौमनसा २ सौमनांसा सौमनस्या वा ३ मनोरमा ४ तथा उत्तरकुरुः १ देवकुरुः २ वारिषेणा ३ सरस्वती ४ तथा विशालः १ माघभद्रा २ अभयसेना ३ सोहिणी ४ तथा भद्रोत्तरा १ भद्रा २ सुभद्रा ३ भद्रावती भद्रवती वा ४ । अथ चतुर्थं वनं—

कहि णं भन्ते ! मन्दरपव्वए पंडगवणे णामं वणे प०?, गो० ! सोमणसवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ छत्तीसं जोअणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए सिहरतले पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते, चत्तारि चउणउए जोयणसए चक्कवालविक्खम्भेणं वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए, जे णं मंदरचूलिअं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं जाव किण्हे देवा आसयन्ति, पंडगवणस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे एत्थ णं मंदरचूलिआ णाम चूलिआ पण्णत्ता चत्तालीसं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले बारस जोअणाइं विक्खम्भेणं मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खम्भेणं उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खम्भेणं मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं उप्पिं साइरेगाइं बारस जोअणाइं परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुआ गोपुच्छसंठाणसंठिआ सव्ववेरुलिआमई अच्छा सा णं एगाए पउमवरवेइआए जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पण्डकवनस्य वर्णनं क्रियते

संपरिक्खित्ता इति उक्तं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव सिद्धाययणं बहुमज्झदेसभाए कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खम्भेणं देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखंभसय जाव धूवकडुच्छुगा, मन्दरचूलिआए णं पुरत्थिमेणं पंडगवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं महं एगे भवणे प० एवं जच्चेव सोमणसे पुव्ववण्णिओ गमो भवणाणं पुक्खरिणीणं पासायवडेंसगाण य सो चेव णेअव्वो जाव सक्कीसाणवडेंसगा तेणं चेव परिमाणेणं (सूत्रं १०६)

'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे सौमनसवनस्य बहुसमरमणीयाद् भूमिभागादूर्ध्वं षट्त्रिंशद्योजनसहस्राणि उत्पत्य तत्र देशे मन्दरे पर्वते शिखरतले–मौलिभागे पण्डकवनं नाम वनं प्रज्ञप्तं, चत्वारि योजनशतानि चतुर्नवत्यधिकानि चक्रवालविष्कम्भेन, एतदुपपत्तिस्तु सहस्रयोजनप्रमाणाच्छिखरव्यासान्मध्यस्थितचूलिकामूलव्यासे द्वादशयोजनप्रमाणे शोधितेऽवशिष्टेऽर्धीकृते यथोक्तमानं, यत्पण्डकवनं मन्दरचूलिकां सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य तिष्ठति, यथा नन्दनवनं मेरुं सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य स्थितं तथेदं मेरुचूलिकामिति, त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वाषष्टं–द्वाषष्ट्यधिकं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेणेति, अथास्य वर्णकमाह—'से णं'इत्यादि, व्यक्तं, या च पण्डकवनमभिव्याप्य स्थिता सा क्व चूलिकेत्याह—'पंडगवणे'त्ति पण्डकवनस्य मध्ये द्वयोश्चक्रवालविष्कम्भयोर्विचाले अत्रान्तरे मन्दरस्य–मेरोश्चूलिका–शिखा इव मन्दरचूलिका नाम चूलिका प्रज्ञप्ता, चत्वारिंशतं योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन मूले द्वादश योजनानीत्यादिसूत्रं प्राग्वत्, केवलं सर्वात्मना वैडूर्यमयी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीलवर्णत्वात् । साम्प्रतं सूत्रेऽनुक्तोऽपि वाचयितृणामपूर्वार्थजिज्ञापयिषया चूलिकाया इष्टस्थाने विष्कम्भपरिज्ञानाय प्रसङ्गगत्योपायो लिख्यते, यथा तत्राधोमुखगमने करणमिदं–चूलिकायास्सर्वोपरितनभागादवपत्य यत्र योजनादावतिक्रान्ते विष्कम्भजिज्ञासा तस्मिन्नतिक्रान्तयोजनादिके पञ्चभिर्भक्ते लब्धराशिश्चतुर्भिर्युतस्तत्र व्यासः स्यात्, तत्र उपरितलाद्विंशतियोजनान्यवतीर्णस्ततो विंशतिर्ध्रियते तस्याः पञ्चभिर्भागे लब्धाश्चत्वारः ते चतुर्भिः सहिताः अष्टौ एतावानुपरितलाद्विंशतियोजनातिक्रमे विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि भावनीयं, यदा तूर्ध्वमुखगत्या विष्कम्भजिज्ञासा तदाऽयमुपायः–चूलिकाया मूलादुत्पत्य यत्र योजनादौ विष्कम्भजिज्ञासा तस्मिन्नतिक्रान्तयोजनादिके पंचभिर्भक्ते यल्लब्धं तावत्प्रमाणे मूलविष्कम्भादपनीते अवशिष्टं तत्र विष्कम्भः, तथाहि–मूलात्किल विंशतिर्योजनान्यूर्ध्वं गतस्ततो विंशतिर्ध्रियते तस्याः पंचभिर्भागे लब्धानि चत्वारि योजनानि तानि मूलविष्कम्भाद् द्वादशयोजनप्रमाणादपनीयते शेषाण्यष्टौ एतावान् मूलादूर्ध्वं विंशतियोजनातिक्रमे विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि भावनीयं, यथा मेरौ एकादशभिरंशैरेकोऽंशः एकादशभिर्योजनैरेकं योजनं व्यासस्य चीयते अपचीयते तथाऽस्यां पञ्चभिरंशैरेकोऽंशः पञ्चभिर्योजनैरेकं योजनं व्यासस्येति तात्पर्यार्थः, अत्र बीजं–द्वादशयोजनप्रमाणाच्चूलाव्यासादारोहे चत्वारिंशद्योजनेषु गतेषु अष्टौ योजनानि त्रुट्यन्ति अवरोहे च तान्येव वर्द्धन्ते ततस्त्रैराशिकस्थापना । ४०।८।१ । मध्यराशावन्त्यराशिना गुणिते एकेन गुणितं तदेव भवतीति जाता अष्टौ अस्य राशेश्चत्वारिंशता भजने भागाप्राप्तौ द्वयो राश्योरष्टभिरपवर्त्ते जातं $\frac{1}{5}$ । अथास्य वर्णक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०६]

दीप अनुक्रम [१९९]

सूत्रम्—'सा णं एगाए पउमवर जाव'इत्यादि, प्राग्वत्, अथास्यां बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनं सिद्धायतनवर्णनं चातिदेशेनाह—'उप्पिं बहुसम'इत्यादि, अस्याश्चूलिकाया उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, स च वाक्यपद-करणात् 'से जहा णामए आलिंगपुक्खरे इ वा' इत्यादिको ग्राह्यः, तथा तस्य बहुमध्यदेशभागे सिद्धायतनं वाच्यं, क्रोशमायामेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशमुच्चत्वेन अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टमित्यादिकः सिद्धायतनवर्णको वाच्यो यावद्धूवकडुच्छुकानामष्टोत्तरं शतमिति, अथ प्रस्तुतवने भवनप्रासादादिवक्तव्यगोचरं सूत्रं—'मन्दरचूलिआ'इत्यादि, मन्दरचूलिकायाः पूर्वतः पण्डकवनं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्य अत्रान्तरे महदेकं भवनं—सिद्धायतनं प्रज्ञप्तं, एवमुक्ताभि-लापेन य एव सौमनसवने पूर्ववर्णितो—नन्दनवनप्रस्तावोक्तो गमः कूटवर्जः सिद्धायतनादिव्यवस्थाधायकः सदृशा-लापकः पाठः स एवात्रापि भवनानां पुष्करिणीनां प्रासादावतंसकानां च ज्ञातव्यः, यावच्चक्रेशानप्रासादावतंसकास्ते-नैव प्रमाणेनेति, अत्र वापीनामपि प्रागुक्तयुक्त्या सूत्रेऽदृष्टान्यपि ग्रन्थान्तरतो लिख्यन्ते, तद्यथा—ऐशानप्रासादे पूर्वा-दिक्रमेण पुण्ड्रा १ पुण्ड्रप्रभा २ सुरक्ता ३ रक्तावती ४ आग्नेयप्रासादे क्षीररसा १ इक्षुरसा २ अमृतरसा ३ वारुणी ४ नैर्ऋतप्रासादे शंखोत्तरा १ शङ्खा २ शङ्खावर्त्ता ३ बलाहका ४ वायव्यप्रासादे पुष्पोत्तरा १ पुष्पवती २ सुपुष्पा ३ पुष्पमालिनी ४ चेति । अथात्राभिषेकशिलावक्तव्यतामाह—

पण्डकवणे णं भन्ते! वणे कइ अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ?, गोअमा! चत्तारि अभिसेअसिलाओ प०, तं०—पंडुसिला १

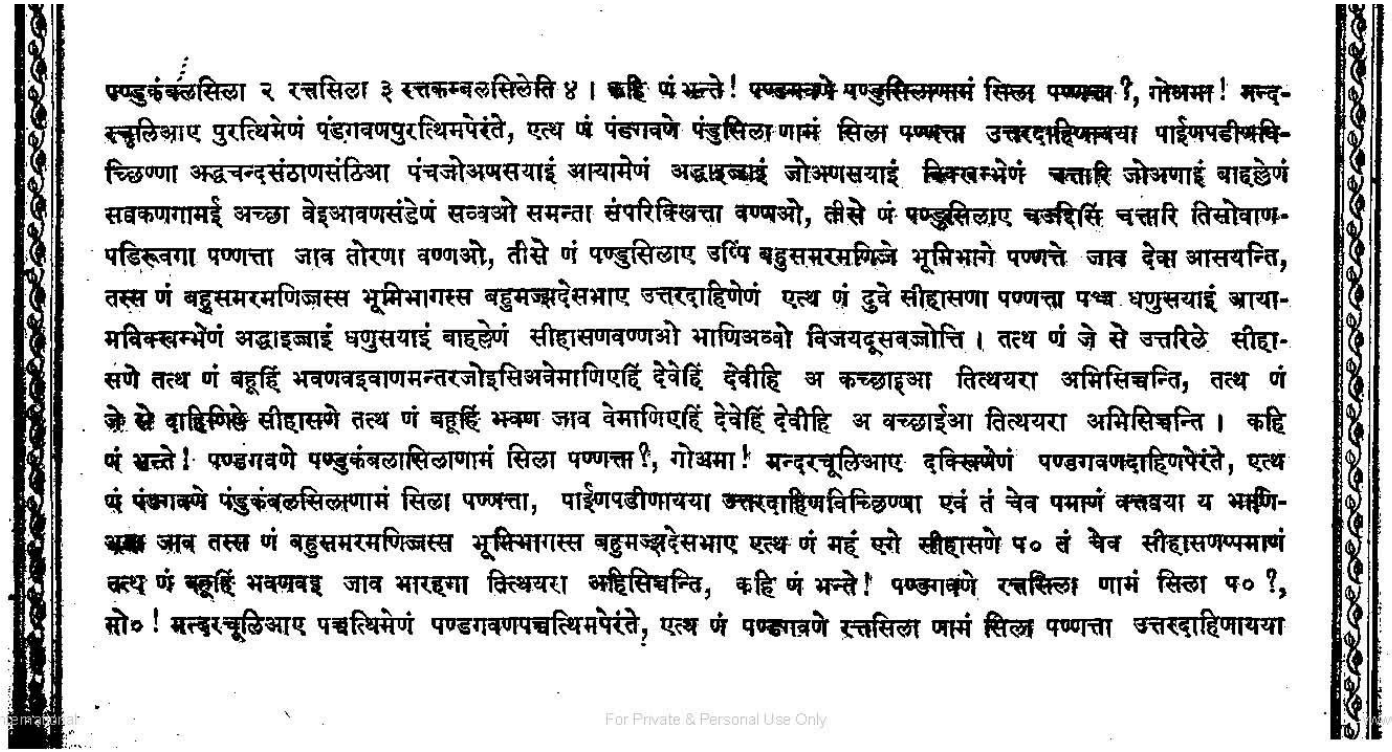
॥३७१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०७]

दीप अनुक्रम [२००]



पण्डुकंबलसिला २ रत्तसिला ३ रत्तकम्बलसिलेति ४। कहि णं भन्ते! पण्डगवणे पण्डुसिलानामं सिला पण्णत्ता?, गोयमा! मन्दरचूलिआए पुरत्थिमेणं पंडगवणपुरत्थिमपेरंते, एत्थ णं पंडगवणे पंडुसिला णामं सिला पण्णत्ता उत्तरदाहिणायया पाईणपडीणविच्छिण्णा अद्धचन्दसंठाणसंठिआ पंचजोअणसयाइं आयामेणं अद्धाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं सव्वकणगामई अच्छा वेइआवणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता वण्णओ, तीसे णं पण्डुसिलाए चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता जाव तोरणा वण्णओ, तीसे णं पण्डुसिलाए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव देवा आसयन्ति, तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए उत्तरदाहिणेणं एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता पञ्च धणुसयाइं आयामविक्खम्भेणं अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं सीहासणवण्णओ भाणिअव्वो विजयदूसवज्जोत्ति। तत्थ णं जे से उत्तरिले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइवाणमन्तरजोइसिअवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ कच्छाइआ तित्थयरा अभिसिच्चन्ति, तत्थ णं जे से दाहिणिले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण जाव वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ वच्छाईआ तित्थयरा अभिसिच्चन्ति। कहि णं भन्ते! पण्डगवणे पण्डुकंबलासिलाणामं सिला पण्णत्ता?, गोयमा! मन्दरचूलिआए दक्खिणेणं पण्डगवणदाहिणपेरंते, एत्थ णं पंडगवणे पंडुकंबलसिलाणामं सिला पण्णत्ता, पाईणपडीणायया उत्तरदाहिणविच्छिण्णा एवं तं चेव पमाणं वत्तव्वया य भाणिअव्वा जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीहासणे प० तं चेव सीहासणप्पमाणं तत्थ णं बहूहिं भवणवइ जाव भारहगा तित्थयरा अभिसिच्चन्ति, कहि णं भन्ते! पण्डगवणे रत्तसिला णामं सिला प०?, गो०! मन्दरचूलिआए पच्चत्थिमेणं पण्डगवणपच्चत्थिमपेरंते, एत्थ णं पण्डगवणे रत्तसिला णामं सिला पण्णत्ता उत्तरदाहिणायया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१०७]

दीप अनुक्रम [२००]

पाईणपडीणविच्छिण्णा जाव तं चेव पमाणं सव्वतवणिज्जमई अच्छा उत्तरदाहिणेणं एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता, तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण० पम्हाइआ तित्थयरा अहिसिंचन्ति, तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण जाव वप्पाइआ तित्थयरा अहिसिंचंति, कहि णं भन्ते ! पण्डगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता?, गोअमा! मंदरचूलिआए उत्तरेणं पंडगवणउत्तरचरिमंते एत्थ णं पंडगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता, पाईणपडीणायया उदीण-दाहिणविच्छिण्णा सव्वतवणिज्जमई अच्छा जाव मज्झदेसभाए सीहासणं, तत्थ णं बहूहिं भवणवइ जाव देवेहिं देवीहि अ ए-रावयगा तित्थयरा अहिसिंचन्ति (सूत्रं १०७)

पण्डकवने भदन्त! कति अभिषेकाय–जिनजन्मस्नात्राय शिलाः अभिषेकशिलाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! चतस्रोऽभिषेक-शिलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–पाण्डुशिला १ पाण्डुकम्बलशिला २ रक्तशिला ३ रक्तकम्बलशिला ४ अन्यत्र तु पाण्डुकम्बला १ अतिपाण्डुकम्बला २ रक्तकम्बला ३ अतिरक्तकम्बलेति ४ नामान्तराणीति। सम्प्रति प्रथमायाः स्थानं पृच्छति— 'कहि ण' मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे मन्दरचूलिकायाः पूर्वतः पण्डकवनपूर्वपर्यन्ते पाण्डुशिला नाम शिला प्रज्ञप्ता, उत्तरतो दक्षिणतश्चायता पूर्वतोऽपरतश्च विस्तृता अर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिता पञ्चयोजनशतान्यायामेन–मुखविभागेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन–मध्यभागेन, अर्द्धचन्द्राकारक्षेत्राणामेवमेव परमव्याससम्भवात्, अत एवास्याः परमव्यासः शरत्वेन लम्बो जीवात्वेन परिक्षेपो धनुःपृष्ठत्वेन तत्करणरीत्या आनेतव्या, तथा चत्वारि योजनानि बाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पण्डकवने जिनजन्माभिषेकशिलायाः वर्णनं क्रियते

ल्येन–पिण्डेन सर्वात्मना कनकमयी प्रस्तावादर्जुनसुवर्णमयी अच्छा वेदिकावनखण्डेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ता, वक्रता च चूलिकासन्ना सरलता तु स्वस्वदिक्क्षेत्राभिमुखा, वर्णकश्च वेदिकावनखण्डयोर्वक्तव्यः, चतुर्योजनोच्छ्रिता च शिला दुरारोहा आरोहकाणामित्याह—'तीसे ण'मित्यादि, तस्यां शिलायां चतुर्दिशि चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, तेषां च वर्णको वाच्यो यावत्तोरणानि। अथास्या भूमिसौभाग्यमावेदयन्नाह–'तीसे ण'मित्यादि, तस्याः–पाण्डुशिलायाः उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः यावदेवा आसते शेरते इत्यादि, अथात्राभिषेकासनवर्णनायाह—'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे उत्तरतो दक्षिणतश्च अत्रान्तरे द्वे अभिषेकसिंहासने–जिनजन्माभिषेकाय पीठे प्रज्ञप्ते पंचधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि बाहल्येन उच्चत्वेनेत्यर्थः, अत्र च सिंहासनवर्णको भणितव्यः, स च विजयदुष्यवर्जः–उपरिभागे विजयनामकचन्द्रोदयवर्णनारहित इत्यर्थः, शिलासिंहासनानामनाच्छादितदेशे स्थितत्वात्, अत्र च सिंहासनानामायामविष्कम्भयोस्तुल्यत्वेन समचतुरस्रतोक्ता, नन्वत्रैकेनैव सिंहासनेनाभिषेके सिद्धे किमर्थं सिंहासनद्वयमित्याह—'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र–तयोः सिंहासनयोर्मध्ये 'से' इति भाषालङ्कारे यदौत्तराहं सिंहासनं तत्र बहुभिर्भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकैर्देवैर्देवीभिश्च कच्छादिविजयाष्टकजातास्तीर्थकराः अभिषिच्यन्ते–जन्मोत्सवार्थं स्नाप्यन्ते, यत्तु दाक्षिणात्यं सिंहासनं तत्र वच्छादिका इति, अत्रायमर्थः–एषा हि शिला पूर्वदिग्मुखा एतद्दिगभिमुखं च क्षेत्रं पूर्वमहाविदेहाख्यं

तत्र च युगपज्जगद्गुरुयुगं जन्मभाग् भवति तत्र शीतोत्तरदिग्वर्त्तिविजयजातो जगद्गुरुरुत्तरदिग्वर्त्तिनि सिंहासनेऽभिषिच्यते, तस्या एव दक्षिणदिग्वर्त्तिविजयजातो जगद्गुरुर्दक्षिणदिग्वर्त्तिनीति । इदानीं द्वितीयशिलाप्रश्नावतारः-'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, उत्तरसूत्रे मेरुचूलिकाया दक्षिणतः पण्डकवनदाक्षिणात्यपर्यन्ते पाण्डुकम्बला नाम्नी शिला प्रज्ञप्ता, प्राक्पश्चिमायता उत्तरदक्षिणविस्तीर्णा, आद्या तु प्राक्पश्चिमविस्तीर्णा उत्तरदक्षिणायतेत्येतद्विशेषणद्वयं विहायान्यत् प्रागुक्तमतिदिशति–एवमेवोक्ताभिलापेन तदेव प्रमाणं शिलायाः पञ्चयोजनशतायामादिकं वक्तव्यता चार्जुनस्वर्णवर्णादिका भणितव्या यावत्तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे महदेकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं तदेव पञ्चधनुःशतादिकं सिंहासनप्रमाणमुच्चत्वादौ ज्ञेयं, तत्र बहुभिर्भवनपत्यादिभिर्देवैर्भारतका–भरतक्षेत्रोत्पन्नास्तीर्थकृतोऽभिषिच्यन्ते, ननु पूर्वशिलायां सिंहासनद्वयं अत्र तु एकं सिंहासनं किमिति ?, उच्यते, एषा हि शिला दक्षिणदिगभिमुखा तद्दिगभिमुखं च क्षेत्रं भारताख्यं तत्र चैककालमेक एव तीर्थकृदुत्पद्यते इति तदभिषेकानुरोधेनैकत्वं सिंहासनस्येति । अथ तृतीयशिला—'कहि ण'मित्यादि, इदं च सूत्रं पूर्वशिलागमेन बोध्यं, केवलं वर्णतः सर्वात्मना तपनीयमयी रक्तवर्णत्वात्, सिंहासनद्वित्वभावना त्वेवं–एषा पश्चिमाभिमुखा तद्दिगभिमुखं च क्षेत्रं पश्चिममहाविदेहाख्यं शीतोदादक्षिणोत्तररूपभागद्वयात्मकं, तत्र च प्रतिविभागमेकैकजिनजन्मसम्भवाद्युगपज्जिनद्वयमुत्पद्यते, तत्र दाक्षिणात्ये सिंहासने दक्षिणभागगतपक्ष्मादिविजयाष्टकजाता जिनाः स्नप्यन्ते औत्तराहे च उत्तरभागगतवप्रादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयाष्टकजाता इति, सम्प्रति चतुर्थीं शिलां—'कहि ण'मित्यादि, प्रश्नः प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे सर्वं द्वितीयशिलानुसारेण वाच्यं, वर्णतश्च सर्वतपनीयमयी, श्रीपूज्यैस्तु सर्वा अर्जुनस्वर्णवर्णा उक्ता इति, 'ऐरावतका' इति ऐरावतक्षेत्रभवाः, सिंहासनस्यैकत्वं भरतक्षेत्रोक्तयुक्त्या वाच्यम् ॥ अथ मेरौ काण्डसङ्ख्यां जिज्ञासुर्गौतमः पृच्छति—

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स कइ कण्डा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ कंडा पण्णत्ता, तंजहा—हिट्ठिले कंडे मज्झिले कण्डे उवरिले कण्डे, मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स हिट्ठिले कण्डे कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—पुढवी १ उवले २ वइरे ३ सक्करा ४, मज्झिमिले णं भन्ते ! कण्डे कतिविहे पं० ?, गोअमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—अंके १ फलिहे २ जायरूवे ३ रयए ४, उवरिले कण्डे कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! एगागारे पण्णत्ते सव्वजम्बूणयामए, मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स हेट्ठिले कण्डे केवइअं बाहल्लेणं पं० ?, गोयमा ! एगं जोअणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते, मज्झिमिले कण्डे पुच्छा, गोअमा ! तेवट्ठिं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पं०, उवरिले पुच्छा, गोयमा ! छत्तीसं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पं०, एवामेव सपुव्वावरेणं मन्दरे पव्वए एगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते । (सूत्रं १०८)

'मन्दरस्स ण'मित्यादि, मेरोर्भदन्त ! पर्वतस्य कति काण्डानि प्रज्ञप्तानि ?, काण्डं नाम विशिष्टपरिणामानुगतो विच्छेदः पर्वतक्षेत्रविभाग इतियावत्, गौतम ! त्रीणि काण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अधस्तनं काण्डं मध्यमं काण्डं उपरितनं काण्डं, अथ प्रथमं काण्डं कतिप्रकारमिति पृच्छति—'मन्दरस्स'इत्यादि, प्रश्नः प्रतीतः, निर्वचनसूत्रे पृथ्वी—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृत्तिका उपला:–पाषाणाः वज्राणि–हीरकाः शर्कराः–कर्करिकाः एतन्मयः कन्दो मन्दरस्य, एतदेव हि प्रथमं काण्डं सहस्रयोजनप्रमाणं, ननु प्रथमकाण्डस्य चतुष्प्रकारत्वात् तदीययोजनसहस्रस्य चतुर्विभजने एकैकप्रकारस्य योजनसहस्रचतुर्थांशप्रमाणक्षेत्रता स्यात् तथा च सति विशिष्टपरिणामानुगतविच्छेदरूपत्वात् त एव काण्डसङ्ख्यां कथं न वर्द्धयन्तीति?, उच्यते, क्वचित्पृथ्वीबहुलं क्वचिदुपलबहुलं क्वचिद् वज्रबहुलं क्वचिच्छर्कराबहुलं, इदमुक्तं भवति–उक्तचतुष्टयमन्तरेणान्यत् किमप्यङ्करत्नादिकं न तदारम्भकमिति अतो नैयत्येन पृथिव्यादिरूपविभागाभावान्न काण्डसङ्ख्यावर्द्धनावकाश इति, मध्यकाण्डगतवस्तुपृच्छार्थमाह—'मज्झिमिल्ले'इत्यादि, अङ्करत्नानि–स्फटिकरत्नानि जातरूपं–सुवर्णं रजतं–रूप्यम्, अत्रापीयं भावना–क्वचिदङ्कबहुलमित्यादि, अथ तृतीयं काण्डं–'उवरिल्ले'इत्यादि, प्रश्नो व्यक्तः, उत्तरसूत्रे एकाकारं–भेदरहितं सर्वात्मना जाम्बूनदं–रक्तसुवर्णं तन्मयमिति। काण्डपरिमाणद्वारा मेरुपरिमाणमाह—'मन्दरस्स ण'मित्यादि, भगवन्! मन्दरस्याधस्तनं काण्डं कियद्बाहल्येन–उच्चत्वेन प्रज्ञप्तम्?, गौतम! एकं योजनसहस्रं बाहल्येन प्रज्ञप्तं, मध्यमकाण्डे पृच्छा–प्रश्नपद्धतिर्वाच्या, सा च 'मन्दरस्स णं भन्ते! पढमस्स मज्झिमिल्ले काण्डे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?'इत्यादिरूपा स्वयमभ्यूह्या, गौतम! त्रिषष्टिं योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्, अनेन भद्रशालवनं नन्दनवनं सौमनसवनं द्वे अन्तरे चैतत् सर्वं मध्यमकाण्डे अन्तर्भूतमिति, यत्तु समवायाङ्गे अष्टत्रिंशत्तमे समवाये 'द्वितीयकाण्डविभागोऽष्टत्रिंशत्सहस्रयोजनान्युच्चत्वेन भवती'त्युक्तं तन्मतान्तरेणेति, एवमुप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रितने काण्डे पृच्छा ज्ञेया, षट्त्रिंशद्योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्, एवमुक्तरीत्या 'सपुव्वावरेण' पूर्वापरमीलनेन मन्दरपर्वतः एकं योजनशतसहस्रं सर्वाग्रेण–सर्वसंख्यया प्रज्ञप्तः, ननु चत्वारिंशद्योजनप्रमाणा शिरःस्था चूलिका मेरुप्रमाणमध्ये कथं न कथिता?, उच्यते, क्षेत्रचूलात्वेन तस्याः अगणनात्, पुरुषोच्छ्रयगणने शिरोगतकेशपाशस्येवेति, इयं च सूत्रत्रयी एकार्थप्रतिबद्धत्वेन समुदितैवालेखि । अथ मेरोः समयप्रसिद्धानि षोडश नामानि प्रश्नयितुमाह—

मन्दरस्स णं भन्ते! पव्वयस्स कति णामधेज्जा पण्णत्ता?, गोअमा! सोलस णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा–मन्दर १ मेरु २ मणोरम ३ सुदंसण ४ सयंपभे अ ५ गिरिराया ६ । रयणोच्चय ७ सिलोच्चय ८ मज्झे लोगस्स ९ णाभी य १० ॥ १ ॥ अच्छे अ ११ सूरिआवत्ते १२, सूरिआवरणे १३ तिआ । उत्तमे १४ अ दिसादीअ १५, वडेंसेति १६ अ सोलसे ॥ २ ॥ से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ मन्दरे पव्वए २?, गोअमा! मन्दरे पव्वए मन्दरे णामं देवे परिवसइ महिद्धीए जाव पलिओवमट्ठिइए, से तेणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइ मन्दरे पव्वए २ अदुत्तरं तं चेवत्ति । (सूत्रं १०९)

'मन्दरस्स ण'मित्यादि,मन्दरस्य पर्वतस्य भगवन्! कति नामधेयानि–नामानि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! षोडश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—'मन्दरे'त्यादि गाथाद्वयं, मन्दरदेवयोगात् मन्दरः?, एवं मेरुदेवयोगात् मेरुरिति, नन्वेवं मेरोः स्वामिद्वयमापद्येतेति चेत्, उच्यते, एकस्यापि देवस्य नामद्वयं सम्भवतीति न काप्याशङ्का, निर्णीतिस्तु बहुश्रुतगम्येति २, तथा मनांसि देवानामप्यतिसुरूपतया रमयतीति मनोरमः ३, तथा सुष्ठु–शोभनं जाम्बूनदमयतया रत्न-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०२--२०५]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३७५॥

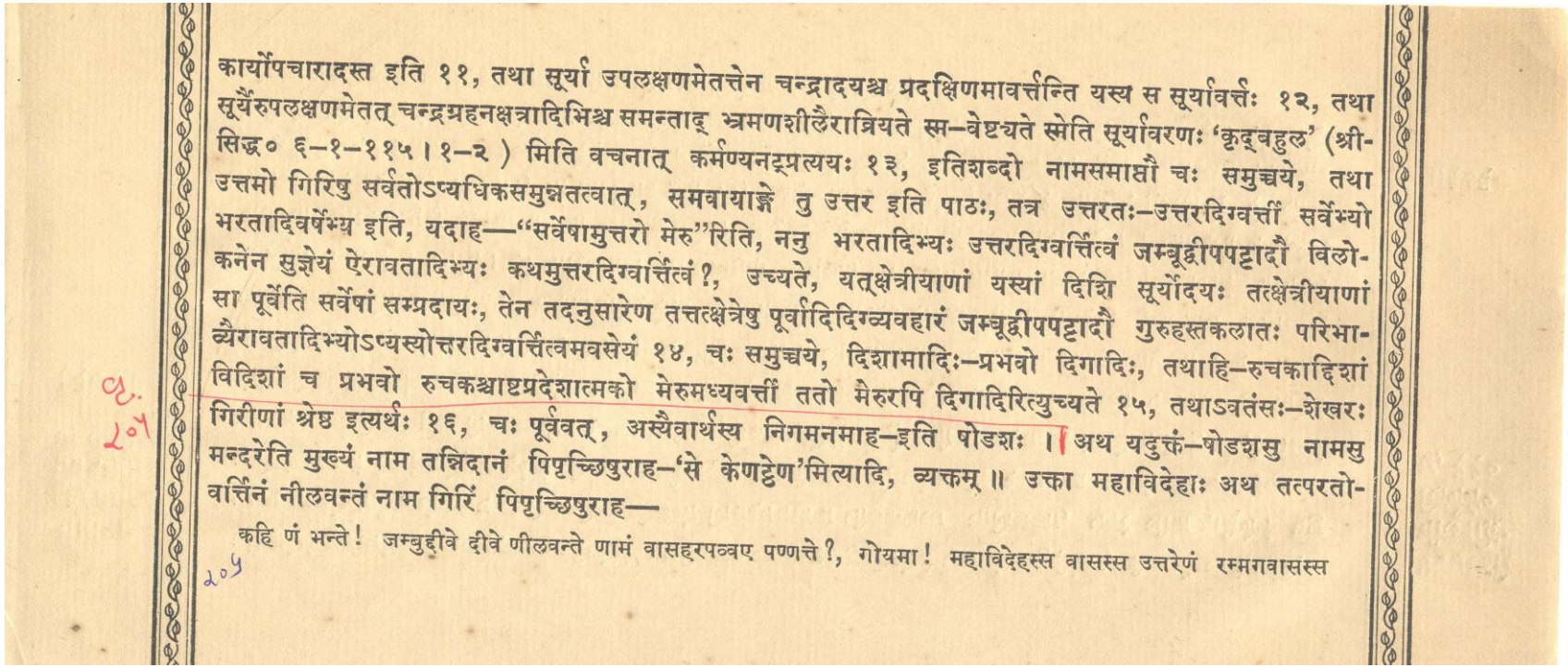
बहुलतया च मनोनिर्वृतिकरं दर्शनं यस्यासौ सुदर्शनः ४, तथा रत्नबहुलतया स्वयमादित्यादिनिरपेक्षा प्रभा–प्रकाशो यस्यासौ स्वयम्प्रभः ५, चः समुच्चये, तथा सर्वेषामपि गिरीणामुच्चत्वेन तीर्थकरजन्माभिषेकाश्रयतया च राजा गिरि-राजः ६, तथा रत्नानां नानाविधानामुत्–प्राबल्येन चयः–उपचयो यत्र स रत्नोच्चयः ७, तथा शिलाना–पाण्डुशिला-दीनामूर्ध्व–शिरस उपरि चयः–सम्भवो यत्र स शिलोच्चयः ८, तथा लोकस्य मध्यं, अस्य सकललोकमध्यवर्त्तित्वात्, नन्वत्र लोकशब्देन चतुर्दशरज्वात्मकलोके व्याख्यातव्ये 'घम्माइ लोगमज्झं जोअणअस्संखकोडीहिं' इति वचनात् समभूतलाद्रत्नप्रभाया असंख्याताभिर्योजनकोटीभिरतिक्रान्ताभिर्लोकमध्यं तत्र च मेरोरसम्भवेन बाधितं व्याख्यानं, अथ लोकशब्देन तिर्यग्लोकस्तस्याप्यष्टादशशतयोजनप्रमाणोच्चस्यास्मिन्नेवान्तर्लीनत्वात् कुतस्तरामस्य लोकमध्यवर्त्ति-त्वमिति चेत्, उच्यते, तिर्यग्लोके तिर्यग्भागस्य स्थालाकारैकरज्जुप्रमाणायामविष्कम्भस्यात्र लोकशब्देन विवक्षणात् तस्य मध्यं, मेरुः तन्मध्यवर्त्तीत्यर्थः, अस्मात् सर्वतोऽप्यलोकस्य पञ्चसहस्रोनार्द्धरज्जुप्रमाणेन दूरव्यवहितत्वात्, अत एवोपलक्षणादलोकस्याप्यसौ मध्यं अस्मात् सर्वतोऽप्यलोकस्यानन्तयोजनप्रमाणत्वात् ९, एवं 'नाभी य'त्ति अत्र च देहलीप्रदीपन्यायेन लोकशब्दस्य संयोजनात् लोकनाभिः, अत्र भावना तु उक्तन्यायेनैव १०, चः समु-च्चये, अथ श्लोकबन्धेन 'अच्छे'इत्यादि, अच्छः–सुनिर्मलः जाम्बूनदरत्नबहुलत्वात्, चतुर्थाङ्गे षोडशसमवाये तु अत्थे इति पाठः, तत्र अनेन ह्यन्तरितः सूर्यादिरस्त इत्यभिधीयते, इदं च पूर्वापरमहाविदेहापेक्षया ज्ञेयं, अतोऽयमपि कारणे

४वक्षस्कारे मेरुनामा-नि सू.१०८

॥३७५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०९] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०२--२०५]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

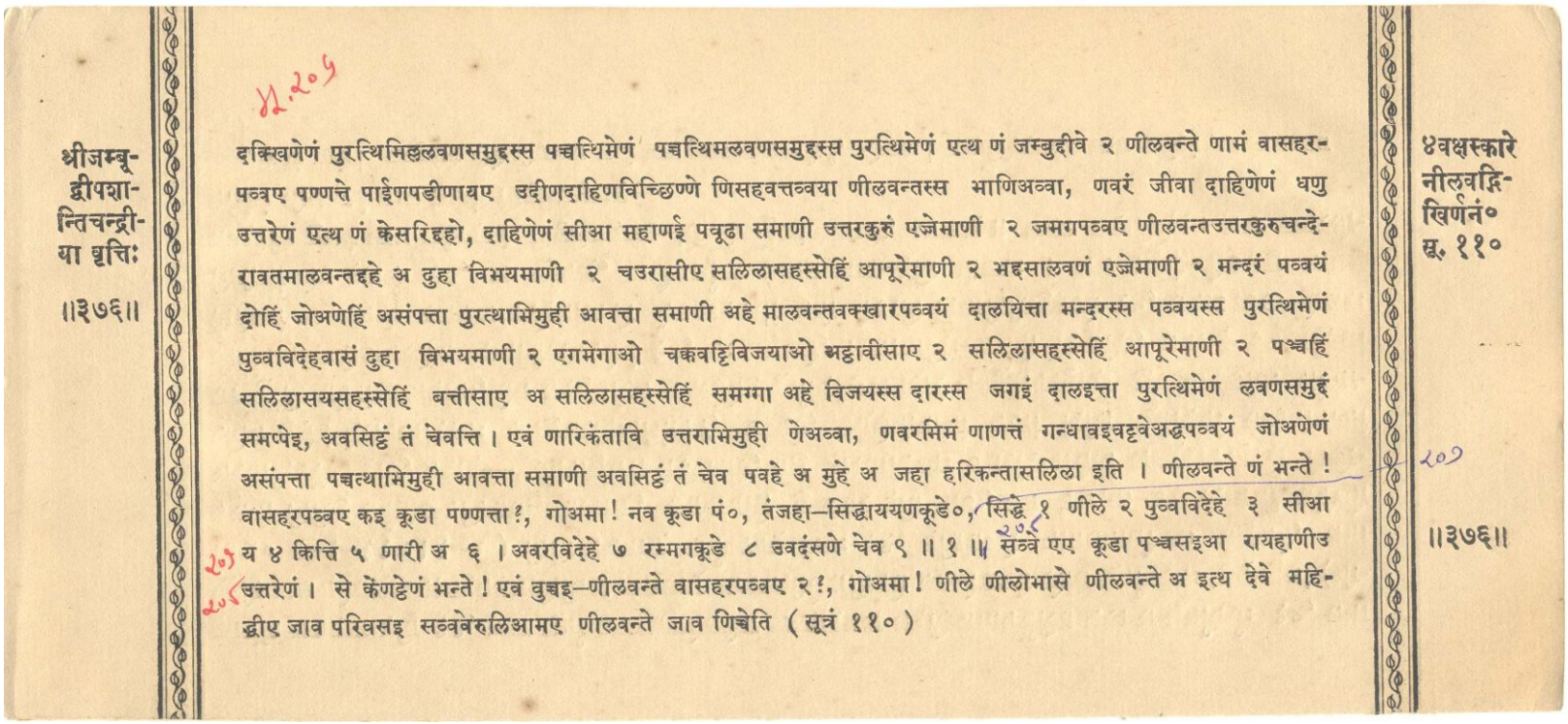


कार्योपचारादस्त इति ११, तथा सूर्या उपलक्षणमेतत्तेन चन्द्रादयश्च प्रदक्षिणमावर्त्तन्ति यस्य स सूर्यावर्त्तः १२, तथा सूर्यैरुपलक्षणमेतत् चन्द्रग्रहनक्षत्रादिभिश्च समन्ताद् भ्रमणशीलैराव्रियते स्म–वेष्टयते स्मेति सूर्यावरणः 'कृद्बहुल' (श्री-सिद्ध० ६–१–११५।१–२) मिति वचनात् कर्मण्यनट्प्रत्ययः १३, इतिशब्दो नामसमाप्तौ चः समुच्चये, तथा उत्तमो गिरिषु सर्वतोऽप्यधिकसमुन्नतत्वात्, समवायाङ्गे तु उत्तर इति पाठः, तत्र उत्तरतः–उत्तरदिग्वर्त्ती सर्वेभ्यो भरतादिवर्षेभ्य इति, यदाह—“सर्वेषामुत्तरो मेरु”रिति, ननु भरतादिभ्यः उत्तरदिग्वर्त्तित्वं जम्बूद्वीपपट्टादौ विलो-कनेन सुज्ञेयं ऐरावतादिभ्यः कथमुत्तरदिग्वर्त्तित्वं?, उच्यते, यत्क्षेत्रीयाणां यस्यां दिशि सूर्योदयः तत्क्षेत्रीयाणां सा पूर्वेति सर्वेषां सम्प्रदायः, तेन तदनुसारेण तत्तत्क्षेत्रेषु पूर्वादिदिग्व्यवहारं जम्बूद्वीपपट्टादौ गुरुहस्तकलातः परिभा-व्यैरावतादिभ्योऽप्यस्योत्तरदिग्वर्त्तित्वमवसेयं १४, चः समुच्चये, दिशामादिः–प्रभवो दिगादिः, तथाहि–रुचकादिशां विदिशां च प्रभवो रुचकश्चाष्टप्रदेशात्मको मेरुमध्यवर्त्ती ततो मेरुरपि दिगादिरित्युच्यते १५, तथाऽवतंसः–शेखरः गिरीणां श्रेष्ठ इत्यर्थः १६, चः पूर्ववत्, अस्यैवार्थस्य निगमनमाह–इति षोडशः ।। अथ यदुक्तं–षोडशसु नामसु मन्दरेति मुख्यं नाम तन्निदानं पिपृच्छिषुराह–'से केणट्ठेण'मित्यादि, व्यक्तम् ॥ उक्ता महाविदेहाः अथ तत्परतो-वर्त्तिनं नीलवन्तं नाम गिरिं पिपृच्छिषुराह—

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे णीलवन्ते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते?, गोयमा! महाविदेहस्स वासस्स उत्तरेणं रम्मगवासस्स

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] “जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति” मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११०] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०६--२०८]



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः

॥३७६॥

दक्खिणेणं पुरत्थिमिल्लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ णीलवन्ते णामं वासहर-पव्वए पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे णिसहवत्तव्वया णीलवन्तस्स भाणिअव्वा, णवरं जीवा दाहिणेणं धणु उत्तरेणं एत्थ णं केसरिद्दहो, दाहिणेणं सीआ महाणई पवूढा समाणी उत्तरकुरुं एज्जेमाणी २ जमगपव्वए णीलवन्तउत्तरकुरुचन्दे-रावतमालवन्तद्दहे अ दुहा विभयमाणी २ चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ भद्दसालवणं एज्जेमाणी २ मन्दरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी अद्धे मालवन्तवक्खारपव्वयं दालयित्ता मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पुव्वविदेहवासं दुहा विभयमाणी २ एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए २ सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २ पञ्चहिं सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा अद्धे विजयस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, अवसिट्ठं तं चेवत्ति । एवं णारिकंतावि उत्तराभिमुही णेअव्वा, णवरमिमं णाणत्तं गन्धावइवट्टवेअड्ढपव्वयं जोअणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी अवसिट्ठं तं चेव पवहे अ मुहे अ जहा हरिकन्तासलिला इति । णीलवन्ते णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता?, गोअमा! नव कूडा पं०, तंजहा–सिद्धायणकूडे०, सिद्धे १ णीले २ पुव्वविदेहे ३ सीआ य ४ कित्ति ५ णारी अ ६ । अवरविदेहे ७ रम्मगकूडे ८ उवदंसणे चेव ९ ॥ १ ॥ सव्वे एए कूडा पञ्चसइआ रायहाणीउ उत्तरेणं । से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–णीलवन्ते वासहरपव्वए २?, गोअमा! णीले णीलोभासे णीलवन्ते अ इत्थ देवे महि-द्धीए जाव परिवसइ सव्ववेरुलिआमए णीलवन्ते जाव णिच्चेति (सूत्रं ११०)

४वक्षस्कारे नीलवद्गि-रिवर्णनं० सू. ११०

॥३७६॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११०] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०६--२०८]

'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे नीलवान्नाम्ना वर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः?, उत्तरसूत्रं व्यक्तं, नवरं रम्यक्षेत्रं महाविदेहेभ्यः परं युग्मिमनुजाश्रयभूतमस्ति तस्य दक्षिणतः, अयं च निषधबन्धुरिति तत्साम्येन लाघवं दर्शयति—'णिसह'इत्यादि, निषधवक्तव्यता नीलवतोऽपि भणितव्या, नवरमस्य जीवा—परम आयामो दक्षिणतः, उत्तरतः क्रमेण जगत्या वक्रत्वेन न्यूनतरत्वात्, धनुःपृष्ठमुत्तरतः, अत्र केसरिद्रहो नाम द्रहः, अस्माच्च शीता महानदी प्रव्यूढा सती उत्तरकुरून् इयूती २—परिगच्छन्ती २ यमकपर्वतौ नीलवदुत्तरकुरुचन्द्रैरावतमाल्यवन्नामकान् पञ्चापि द्रहांश्च द्विधा विभजन्ती २ चतुरशीत्या सलिलासहस्रैरापूर्यमाणा २ भद्रशालवनमियूती २—आगच्छन्ती २ मन्दरं पर्वतं द्वाभ्यां योजनाभ्यामसम्प्राप्ता पूर्वाभिमुखी परावृत्ता सती माल्यवद्वक्षस्कारपर्वतमधो विदार्य्य मेरोः पूर्वस्यां पूर्वमहाविदेहं द्विधा विभजन्ती २ एकैकस्माच्चक्रवर्त्तिविजयादष्टाविंशत्या २ सलिलासहस्रैरापूर्यमाणा २ आत्मना सह पञ्चभिर्नदीलक्षैर्द्वात्रिंशता च सहस्रैः समग्रा अधो विजयस्य द्वारस्य जगतीं विदार्य पूर्वस्यां लवणसमुद्रमुपैति, अवशिष्टं प्रवहव्यासोण्डत्वादिकं तदेवेति—निषधनिर्गतशीतोदाप्रकरणोक्तमेव, अथास्मादेवोत्तरतः प्रवृत्तां नारीकान्तामतिदिशति—'एवं नारीकंता'इत्यादि, एवमुक्तन्यायेन नारीकान्ताऽपि उत्तराभिमुखी नेतव्या, कोऽर्थः?—यथा नीलवति केसरिद्रहाद् दक्षिणाभिमुखी शीता निर्गता तथा नारीकान्ताऽप्युत्तराभिमुखी निर्गता, तर्हि अस्याः समुद्रप्रवेशोऽपि तद्वदेवेत्याशङ्कमानमाह—नवरमिदं नानात्वं गन्धापातिनं वृत्तवैताढ्यपर्वतं योजनेनासम्प्राप्ता पश्चिमाभिमुखी आवृत्ता सती इत्यादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११०] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०६--२०८]

॥३७७॥

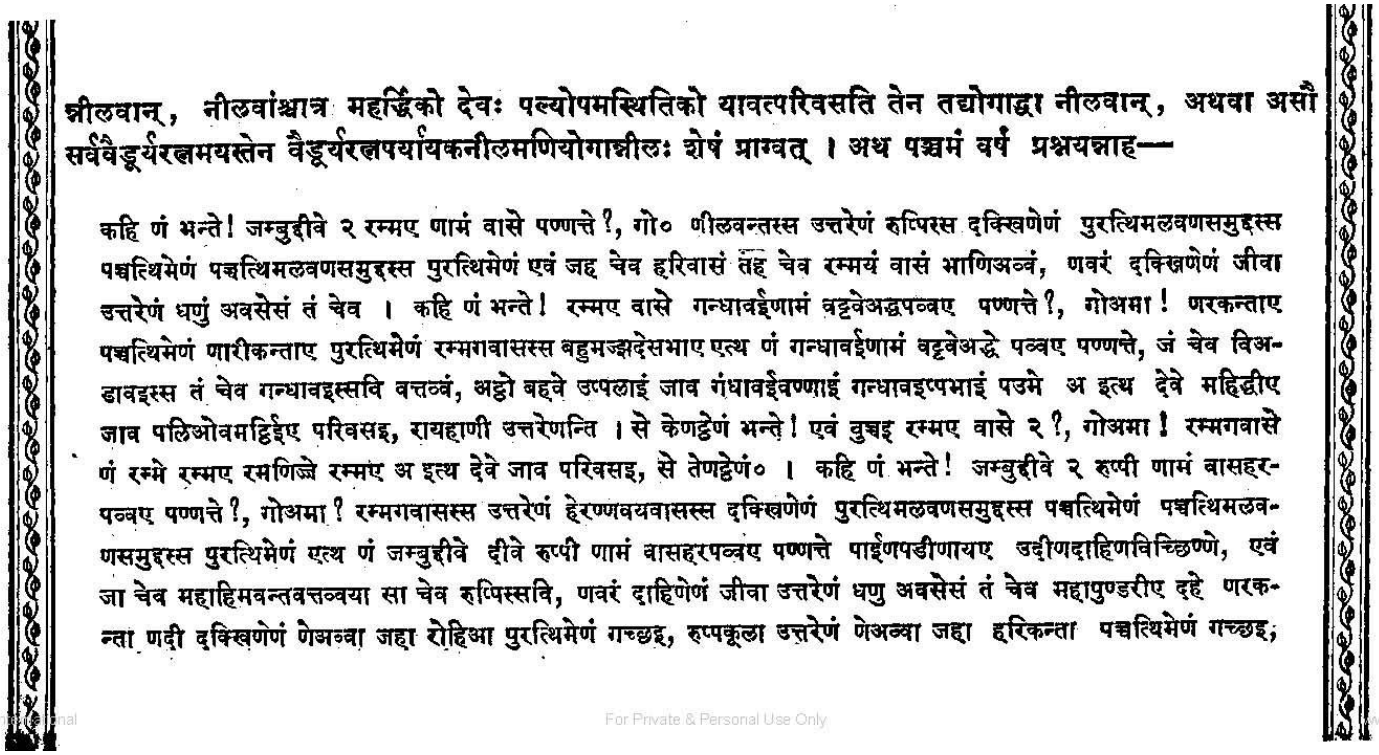
कमवशिष्टं सर्वं तदेव हरिकान्तासलिलावद् भाव्यं, तद्यथा—'रम्मगवासं दुहा विभयमाणी २ छप्पण्णाए सलिला-सहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइ २ त्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ'त्ति, अत्र चावशिष्टपदसंग्रहे प्रवहमुख-व्यासादिकं न चिन्तितं, समुद्रप्रवेशावधिकस्यैवालापकस्य दर्शनात्, तेन तत् पृथगाह—प्रवहे च मुखे च यथा हरिकान्ता सलिला, तथाहि—प्रवहे २५ योजनानि विष्कम्भेन अर्द्धयोजनमुद्वेधेन मुखे २५० योजनानि विष्कम्भेन ५ योजना-न्युद्वेधेनेति, यच्चात्र हरिसलिलां विहाय प्रवहमुखयोर्हरिकान्तातिदेश उक्तस्तत्हरिसलिलाप्रकरणेऽपि हरिकान्तातिदेशस्योक्तत्वात्, अथात्र कूटानि प्रष्टव्यानि—'णीलवन्ते ण'मित्यादि, नीलवति भदन्त! वर्षधरपर्वते कति कूटानि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सिद्धायतनकूटं, अत्र नवानामप्येकत्र संग्रहायेयं गाथा—'सिद्धे'त्ति सिद्धकूटं—सिद्धायतनकूटं, तच्च पूर्वदिशि समुद्रासन्नं, ततो नीलवत्कूटं—नीलवद्वक्षस्काराधिपकूटं, पूर्वविदेहाधिपकूटं शीताकूटं—शीतासुरीकूटं, चः समुच्चये, कीर्त्तिकूटं—केसरिद्रहसुरीकूटं नारीकूटं—नारीकान्तानदीसुरीकूटं, चः पूर्ववत्, अपरविदेहकूटं—अपरविदेहाधिपकूटं रम्यककूटं—रम्यकक्षेत्राधिपकूटं उपदर्शनकूटं—उपदर्शननामकं कूटं, एतानि च कूटानि हिमवत्कूटवत् पञ्चशतिकानि—पञ्चशतयोजनप्रमाणानि वाच्यानि वक्तव्यताऽपि तद्वत्, कूटाधिपानां राजधा-न्यो मेरोरुत्तरस्याम्। अथास्य नामनिबन्धनं पृच्छन्नाह—'से केणट्ठेणं'इत्यादि, प्रश्नः प्राग्वत्, उत्तरसूत्रे चतुर्थो वर्ष-धरगिरिर्नीलो—नीलवर्णवान् नीलावभासो—नीलप्रकाशः आसन्नं वस्त्वन्यदपि नीलवर्णमयं करोति तेन नीलवर्णयोगा-

॥३७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११०] + गाथा: दीप अनुक्रम [२०६--२०८]



नीलवान्, नीलवांश्चात्र महर्द्धिको देवः पल्योपमस्थितिको यावत्परिवसति तेन तद्योगाद्वा नीलवान्, अथवा असौ सर्ववैडूर्यरत्नमयस्तेन वैडूर्यरत्नपर्यायकनीलमणियोगान्नीलः शेषं प्राग्वत् । अथ पञ्चमं वर्षं प्रश्नयन्नाह—

कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे २ रम्मए णामं वासे पण्णत्ते?, गो० णीलवन्तस्स उत्तरेणं रुप्पिस्स दक्खिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एवं जह चेव हरिवासं तह चेव रम्मयं वासं भाणिअव्वं, णवरं दक्खिणेणं जीवा उत्तरेणं धणुं अवसेसं तं चेव । कहि णं भन्ते! रम्मए वासे गन्धावईणामं वट्टवेअद्धपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! णरकन्ताए पच्चत्थिमेणं णारीकन्ताए पुरत्थिमेणं रम्मगवासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं गन्धावईणामं वट्टवेअद्धे पव्वए पण्णत्ते, जं चेव विअडावइस्स तं चेव गन्धावइस्सवि वत्तव्वं, अट्ठो बहवे उप्पलाइं जाव गंधावईवण्णाइं गन्धावइप्पभाइं पउमे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, रायहाणी उत्तरेणन्ति । से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुचइ रम्मए वासे २?, गोअमा! रम्मगवासे णं रम्मे रम्मए रमणिज्जे रम्मए अ इत्थ देवे जाव परिवसइ, से तेणट्ठेणं० । कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे २ रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा? रम्मगवासस्स उत्तरेणं हेरण्णवयवासस्स दक्खिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुदीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे, एवं जा चेव महाहिमवन्तवत्तव्वया सा चेव रुप्पिस्सवि, णवरं दाहिणेणं जीवा उत्तरेणं धणु अवसेसं तं चेव महापुण्डरीए दहे णरकन्ता णदी दक्खिणेणं णेअव्वा जहा रोहिआ पुरत्थिमेणं गच्छइ, रुप्पकूला उत्तरेणं णेअव्वा जहा हरिकन्ता पच्चत्थिमेणं गच्छइ;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ रम्यकवर्षक्षेत्रस्य वर्णनं क्रियते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८]उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]

अवसेसं तं चेवत्ति। रुप्पिमि णं भन्ते! वासहरपव्वए कइ कूडा पं०?, गो० अट्ठ कूडा पं० तं०–सिद्धे १ रुप्पी २ रम्मग ३ णारकन्ता ४ बुद्धि ५ रुप्पकूला य ६। हेरण्णवय ७ मणिकंचण ८ अट्ठ य रुप्पिमि कूडाइं॥ १॥ सव्वेवि एए पंचसइआ रायहाणीओ उत्तरेणं। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ रुप्पी वासहरपव्वए २?, गोअमा! रुप्पीणामवासहरपव्वए रुप्पी रुप्पपट्टे रुप्पोभासे सव्वरुप्पामए रुप्पी अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा! एवं वुच्चइत्ति। कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे २ हेरण्णवए णामं वासे पण्णत्ते?, गो०! रुप्पिस्स उत्तरेणं सिहरिस्स दक्खिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुदीवे दीवे हिरण्णवए वासे पण्णत्ते, एवं जह चेव हेमवयं तह चेव हेरण्णवयंपि भाणिअव्वं, णवरं जीवा दाहिणेणं उत्तरेणं धणुं अवसिट्ठं तं चेवत्ति। कहि णं भन्ते! हेरण्णवए वासे मालवन्तपरिआए णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पं०?, गो०! सुवण्णकूलाए पच्चत्थिमेणं रुप्पकूलाए पुरत्थिमेणं एत्थ णं हेरण्णवयस्स वासस्स बहुमज्झदेसभाए मालवन्तपरिआए णामं वट्टवेअड्ढे पं० जह चेव सद्दावइ तह चेव मालवंतपरिआएवि, अट्ठो उप्पलाइं पउमाइं मालवन्तप्पभाइं मालवन्तवण्णाइं मालवन्तवण्णाभाइं पभासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं०, रायहाणी उत्तरेणंति। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ–हेरण्णवए वासे २?, गोअमा! हेरण्णवए णं वासे रुप्पीसिहरीहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे णिच्चं हिरण्णं दलइ णिच्चं हिरण्णं मुंचइ णिच्चं हिरण्णं पगासइ हेरण्णवए अ इत्थ देवे परिवसइ से एएणट्ठेणंति। कहि णं भन्ते! जम्बुदीवे दीवे सिहरी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते?, गोअमा! हेरण्णवयस्स उत्तरेणं एरावयस्स दाहिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एवं जह चेव चुल्लहिमवन्ते तह चेव सिहरीवि णवरं जीवा दाहिणेणं धणुं उत्तरेणं अवसिट्ठं तं चेव पुण्डरीए दहे

॥३७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]

सुवण्णकूला महाणई दाहिणेणं णेअव्वा जहा रोहिअंसा पुरत्थिमेणं गच्छइ, एवं जह चेव गंगासिन्धूओ तह चेव रत्तारत्तवईओ णेअव्वाओ पुरत्थिमेणं रत्ता पच्चत्थिमेण रत्तवई अवसिट्ठं तं चेव, [अवसेसं भाणिअव्वंति]। सिहरिम्मि णं भन्ते! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता?, गो०! इक्कारस कूडा पं० तं०—सिद्धायणकूडे १ सिहरिकूडे २ हेरण्णवयकूडे ३ सुवण्णकूलाकूडे ४ सुरादेवीकूडे ५ रत्ताकूडे ६ लच्छीकूडे ७ रत्तवईकूडे ८ इलादेवीकूडे ९ एरवयकूडे १० तिगिच्छिकूडे ११, एवं सव्वेवि कूडा पंचसइआ रायहाणीओ उत्तरेणं। से केणट्ठेणं भन्ते! एवमुच्चइ सिहरिवासहरपव्वए २?, गोअमा! सिहरिम्मि वासहरपव्वए बहवे कूडा सिहरिसंठाणसंठिआ सव्वरयणामया सिहरी अ इत्थ देवे जाव परिवसइ, से तेणट्ठेणं०। कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते?, गोअमा! सिहरिस्स उत्तरेणं उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते, खाणुबहुले कंटकबहुले एवं जच्चेव भरहस्स वत्तव्वया सच्चेव सव्वा निरवसेसा णेअव्वा सओअवणा सणिक्खमणा सपरिनिव्वाणा णवरं एरावओ चक्कवट्टी एरावओ देवो, से तेणट्ठेणं एरावए वासे २। (सूत्रं १११)

प्रश्नः अतीतः, उत्तरसूत्रे नीलवतः उत्तरस्यां रुक्मिणो—वक्ष्यमाणस्य पञ्चमवर्षधराद्रेर्दक्षिणस्यां एवं यथैव हरिवर्षं तथैव रम्यकं वर्षं यश्च विशेषः स नवरमित्यादिना सूत्रेण साक्षादाह—'दक्खिणेणं जीवे'त्यादि, व्यक्तम्, अथ यदुक्तं नारीकान्ता नदी रम्यकवर्षं गच्छन्ती गन्धापातिनं वृत्तवैताढ्यं योजनेनासम्प्राप्तेति, तदेष गन्धापाती कास्तीति पृच्छति—'कहि ण'मित्यादि, क भदन्त! रम्यके वर्षे गन्धापाती नाम वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः?, गौतम! नरका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]

श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३७९॥

न्ताया महानद्याः पाश्चमायां नारीकान्तायाः पूर्वस्यां रम्यकवर्षस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे गन्धापाती नाम वृत्त-वैताढ्यः प्रज्ञप्तः, यदेव विकटापातिनो हरिवर्षक्षेत्रस्थितवृत्तवैताढ्यस्योच्चत्वादिकं तदेव गन्धापातिनोऽपि वक्तव्यं, यच्च सविस्तरं निरूपितस्य शब्दापातिनोऽतिदेशं विहाय विकटापातिनोऽतिदेशः कृतस्तत्र तुल्यक्षेत्रस्थितिकत्वं हेतुः, अत्र यो विशेषस्तमाह—अर्थस्त्वयं—वक्ष्यमाणो बहून्युत्पलानि यावद् गन्धापातिवर्णानि—तृतीयवृत्तवैताढ्यवर्णानि गन्धापा-तिवर्णसदृशानीत्यर्थः रक्तवर्णत्वात् गन्धापातिप्रभाणि—गन्धापातिवृत्तवैताढ्याकाराणि सर्वत्र समत्वात् तेन तद्वर्ण-त्वात् तदाकारत्वाच्च गन्धापातीनीत्युच्यन्ते, पद्मश्चात्र देवो महर्द्धिकः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, तेन तद्योगा-त्तत्स्वामिकत्वाच्च गन्धापातीति, यथा च विसदृशनामकस्वामिकत्वेन नामान्वर्थोपपत्तिस्तथा प्रागभिहितं, अस्याधिपस्य राजधान्युत्तरस्यां। अथ रम्यकक्षेत्रनामनिबन्धनमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—रम्यकं वर्ष २?, गौतम! रम्यकं वर्षं रम्यते—क्रीड्यते नानाकल्पद्रुमैः स्वर्णमणिखचितैश्च तैस्तैः प्रदेशैरतिरमणीयतया रतिविषयतां नीयते इति रम्यं रम्यमेव रम्यकं रमणीयं च त्रीण्येकार्थिकानि रम्यतातिशयप्रतिपादकानि, रम्यकश्चात्र देवो यावत् परिवसति तेन तद् रम्यकमिति व्यवह्रियते । अथ पञ्चमो वर्षधरः—'कहि णं भन्ते!' क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे रुक्मी नाम वर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः?, गौतम! रम्यकवर्षस्य उत्तरस्यां वक्ष्यमाणहैरण्यवतक्षेत्रस्य दक्षि-णस्यां पूर्वलवणसमुद्रस्य पश्चिमायां पश्चिमलवणसमुद्रस्य पूर्वस्यां अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे रुक्मीनाम्ना पञ्चमो वर्षधरः

४वक्षस्कारे रम्यकादी-नि सू.१११

॥३७९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]

प्रज्ञप्तः प्राचीनप्रतीचीनायतः उत्तरदक्षिणयोर्विस्तीर्णः, एवमुक्तानुसारेण यैव महाहिमवद्वर्षधरवक्तव्यता सैव रुक्मिणोऽपि परं दक्षिणतो जीवा उत्तरस्यां धनुःपृष्टं अवशेषं–व्यासादिकं तदेव–द्वितीयवर्षधरप्रकरणोक्तमेव, द्वयोः परस्परं समानत्वात्, महापुण्डरीकोऽत्र द्रहो महापद्मद्रहतुल्यः, अस्माच्च निर्गता दक्षिणतोरणेन नरकान्ता महानदी नेतव्या, अत्र च का नदी निदर्शनीयेत्याह—'जहा रोहिय'त्ति यथा रोहिता 'पुरत्थिमेणं गच्छइ'त्ति पूर्वेण गच्छति समुद्रमिति शेषः, यथा रोहिता महाहिमवतो महापद्मद्रहतो दक्षिणेन प्रव्यूढा सती पूर्वसमुद्रं गच्छति तथैषाऽपि प्रस्तुतवर्षधरादक्षिणेन निर्गता पूर्वेणाब्धिमुपसर्प्पतीति भावः, रूप्यकूला उत्तरेण–उत्तरतोरणेन निर्गता नेतव्या, यथा हरिकान्ता हरिवर्षक्षेत्रवाहिनी महानदी 'पच्छत्थिमेणं गच्छइ'त्ति पश्चिमाब्धिं गच्छति, अथ नरकान्तायाः समानक्षेत्रवर्त्तित्वेन हरिकान्तायाः रूप्यकूलायास्तु रोहिताया अतिदेशो वक्तुमुचित इत्याह–अवशेषं–गिरिगन्तव्यमुखमूलव्याससरित्सम्पदादिकं वक्तव्यं तदेवेति–समानक्षेत्रवर्त्तिसरित्प्रकरणोक्तमेव, तच्च नरकान्ताया हरिकान्ताप्रकरणोक्तं रूप्यकूलायास्तु रोहिताप्रकरणोक्तं, यत्तु नरकान्ताया अतुल्यक्षेत्रवर्त्तिन्या रोहितया सह रूप्यकूलायास्तु हरिकान्तया सहातिदेशकथनं तत्र समानदिग्निर्गतत्वं समानदिग्गामित्वं च हेतुः । अथात्र कूटवक्तव्यमाह—'रुप्पिंमि ण'मित्यादि, रुक्मिणि पर्वते भगवन्! कति कूटानि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–प्रथमं समुद्रदिशि सिद्धायतनकूटं ततो रुक्मिकूटं–पञ्चमवर्षधरपतिकूटं रम्यकूटं–रम्यकक्षेत्राधिपदेवकूटं नरकान्तानदीदेवीकूटं बुद्धिकूटं–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]

श्रीजम्बूद्वीपशान्तिचन्द्रीया वृत्तिः ॥३८०॥

महापुण्डरीकद्रहसुरीकूटं रूप्यकूलानदीसुरीकूटं हैरण्यवतकूटं–हैरण्यवतक्षेत्राधिपदेवकूटमणिकाञ्चनकूटं, एतानि प्राग्वदायतश्रेण्या व्यवस्थितानि पञ्चशतिकानि सर्वाण्यपि, राजधान्यः कूटाधिपदेवानामुत्तरस्यां । सम्प्रत्यस्य नामनिदानं पर्यनुयुङ्क्ते—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–रुक्मी वर्षधरपर्वतः २ इति?, गौतम! रुक्मी वर्षधरपर्वतो रुक्मं–रूप्यं शब्दानामनेकार्थत्वात् तदस्यातीति रुक्मी एष सर्वदा रूप्यमयः शाश्वतिक इति नित्ययोगे इन् प्रत्ययः, 'रूप्यावभासो' रूप्यमिव सर्वतोऽवभासः–प्रकाशो भास्वरत्वेन यस्यासौ तथा, एतदेव व्याचष्टे–सर्वात्मना रूप्यमय इति, रुक्मी चात्र देवस्ततस्तन्मयत्वात् तत्स्वामिकत्वाच्च रुक्मीति व्यपदिश्यते । अथ षष्ठं वर्षं विभावयितुमाह—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे हैरण्यवतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! रुक्मिणो वर्षधरस्योत्तरस्यां शिखरिणो वक्ष्यमाणवर्षधरस्य दक्षिणस्यां 'पुरत्थिमे'त्यादि प्राग्वत् अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे हैरण्यवतनाम वर्षं प्रज्ञप्तम्, एवमुक्ताभिलापेन यथैव हैमवतं तथैव हैरण्यवतमपि भणितव्यं, 'नवर'मित्यादि पाठसिद्धं, अवशिष्टं–व्यासादिकं तदेव–हैरण्यवतवर्षप्रकरणोक्तमेवेति । अथ माल्यवत्पर्यायो वृत्तवैताढ्यः क्वास्तीति पृच्छति—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! हैरण्यवतवर्षे माल्यवत्पर्यायो नाम वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः?, गौतम! सुवर्णकूलाथा अत्रैव क्षेत्रे पूर्वगामिमहानद्याः पश्चिमतो रूप्यकूलायाः अत्रैव पश्चिमगामिमहानद्याः पूर्वतः हैरण्यवतस्य वर्षस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे माल्यवत्पर्यायो नाम वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः, यथैव शब्दापाती तथैव माल्यवत्पर्यायः, विशेष-

४वक्षस्कारे रम्यकादीनि सू.१११

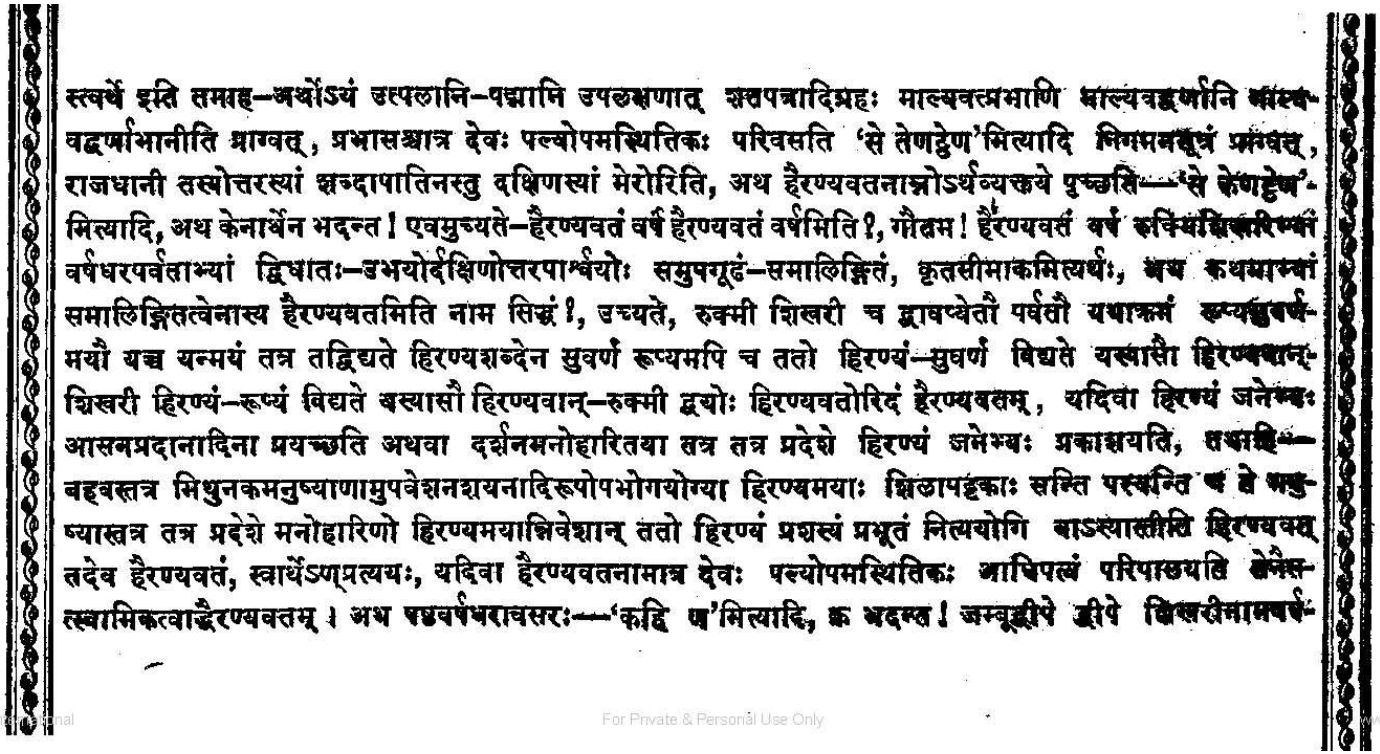
॥३८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]



स्वर्थे इति समाह–अर्थोऽयं उत्पलानि–पद्मानि उपलक्षणात् शतपत्रादिग्रहः माल्यवत्प्रभाणि माल्यवद्वर्णानि माल्यवद्वर्णाभानीति श्राग्वत्, प्रभासश्चात्र देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति 'से तेणट्ठेण'मित्यादि निगमनसूत्रं प्राग्वत्, राजधानी तस्योत्तरस्यां शब्दापातिनस्तु दक्षिणस्यां मेरोरिति, अथ हैरण्यवतनाम्नोऽर्थव्यक्तये पृच्छति—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–हैरण्यवतं वर्षं हैरण्यवतं वर्षमिति?, गौतम! हैरण्यवतं वर्षं रुक्मिशिखरिभ्यां वर्षधरपर्वताभ्यां द्विधातः–उभयोर्दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः समुपगूढं–समालिङ्गितं, कृतसीमाकमित्यर्थः, अथ कथमाभ्यां समालिङ्गितत्वेनास्य हैरण्यवतमिति नाम सिद्धं?, उच्यते, रुक्मी शिखरी च द्वावप्येतौ पर्वतौ यथाक्रमं रूप्यसुवर्णमयौ यच्च यन्मयं तत्र तद्विद्यते हिरण्यशब्देन सुवर्णं रूप्यमपि च ततो हिरण्यं–सुवर्णं विद्यते यस्यासौ हिरण्यवान्-शिखरी हिरण्यं–रूप्यं विद्यते यस्यासौ हिरण्यवान्–रुक्मी द्वयोः हिरण्यवतोरिदं हैरण्यवतम्, यदिवा हिरण्यं जनेभ्यः आसनप्रदानादिना प्रयच्छति अथवा दर्शनमनोहारितया तत्र तत्र प्रदेशे हिरण्यं जनेभ्यः प्रकाशयति, तथाहि—बहवस्तत्र मिथुनकमनुष्याणामुपवेशनशयनादिरूपोपभोगयोग्या हिरण्यमयाः शिलापट्टकाः सन्ति प्रस्फुरन्ति च ते मनुष्यास्तत्र तत्र प्रदेशे मनोहारिणो हिरण्यमयान्निवेशान् ततो हिरण्यं प्रशस्यं प्रभूतं नित्ययोगि वाऽस्यास्तीति हिरण्यवत् तदेव हैरण्यवतं, स्वार्थेऽण्प्रत्ययः, यदिवा हैरण्यवतनामात्र देवः पल्योपमस्थितिकः आधिपत्यं परिपालयति तेनैतत्स्वामिकत्वाद्धैरण्यवतम्। अथ षष्ठवर्षधरावसरः—'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे शिखरीनामवर्ष-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरपर्वतः प्रज्ञप्तः?, गौतम! हैरण्यवतस्योत्तरस्या ऐरावतस्य-वक्ष्यमाणसप्तमक्षेत्रस्य दक्षिणस्यां 'पुरत्थिमे'त्यादि प्राग्वत्, एवमुक्ताभिलापेन यथा क्षुद्रहिमवान् तथैव शिखर्यपि, नवरं जीवा दक्षिणेन धनुरुत्तरेण अवशिष्टं तदेवेति-क्षुद्रहिमवत्प्रकरणोक्तमेव, तत्र पुण्डरीको द्रहः, तस्मात्सुवर्णकूला महानदी दक्षिणेन निर्गता नेतव्या, परिवारादिना च यथा रोहितांशा, सा च पश्चिमायां समुद्रं प्रविशति इयं च पूर्वस्यामित्यत आह—'पुरत्थिमेणं गच्छइ' एवमुक्ताभिलापेन सुवर्णकूलायाः रोहितांशातिदेशन्यायेन, यथैव गङ्गासिन्धू तथैव रक्तारक्तवत्यौ नेतव्ये, तत्रापि दिग्व्यक्तिमाह-पूर्वस्यां रक्ता पश्चिमायां रक्तावती अवशिष्टं तदेव-गङ्गासिन्धुप्रकरणोक्तमेव सम्पूर्णं नेतव्यं, अथात्र कूट-वक्तव्यमाह—'सिहरिम्मि णं भन्ते! वासहरपव्वए'इत्यादि, शिखरिणि पर्वते भगवन्! कति कूटानि प्रज्ञप्तानि?, गौतम! एकादश कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-पूर्वस्यां सिद्धायतनकूटं, ततः क्रमेण शिखरिकूटं-शिखरिवर्षधरनाम्ना कूटं हैरण्य-वतक्षेत्रसुरकूटं सुवर्णकूलानदीसुरीकूटं सुरादेवीदिक्कुमारीकूटं रक्तावर्त्तनकूटं लक्ष्मीकूटं-पुण्डरीकद्रहसूरीकूटं रक्ताव-त्यावर्त्तनकूटं इलादेवीदिक्कुमारीकूटं तिगिच्छिद्रहपतिकूटं एवं सर्वाण्यप्येतानि पञ्चशतिकानि ज्ञातव्यानि, क्षुद्रहिमवत्-कूटतुल्यवक्तव्यताकानि ज्ञेयानि, एतत्स्वामिनां राजधान्य उत्तरस्यामिति। अथास्य नामनिबन्धनं प्रष्टुमाह—'से केण-ट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते शिखरीवर्षधरपर्वतः २?, गौतम! शिखरिणि पर्वते बहूनि कूटानि शिखरी-वृक्षस्तत्संस्थानसंस्थितानि सर्वरत्नमयानि सन्तीति तद्योगाच्छिखरी, कोऽर्थः-अत्र वर्षधराद्रौ यानि सिद्धाय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

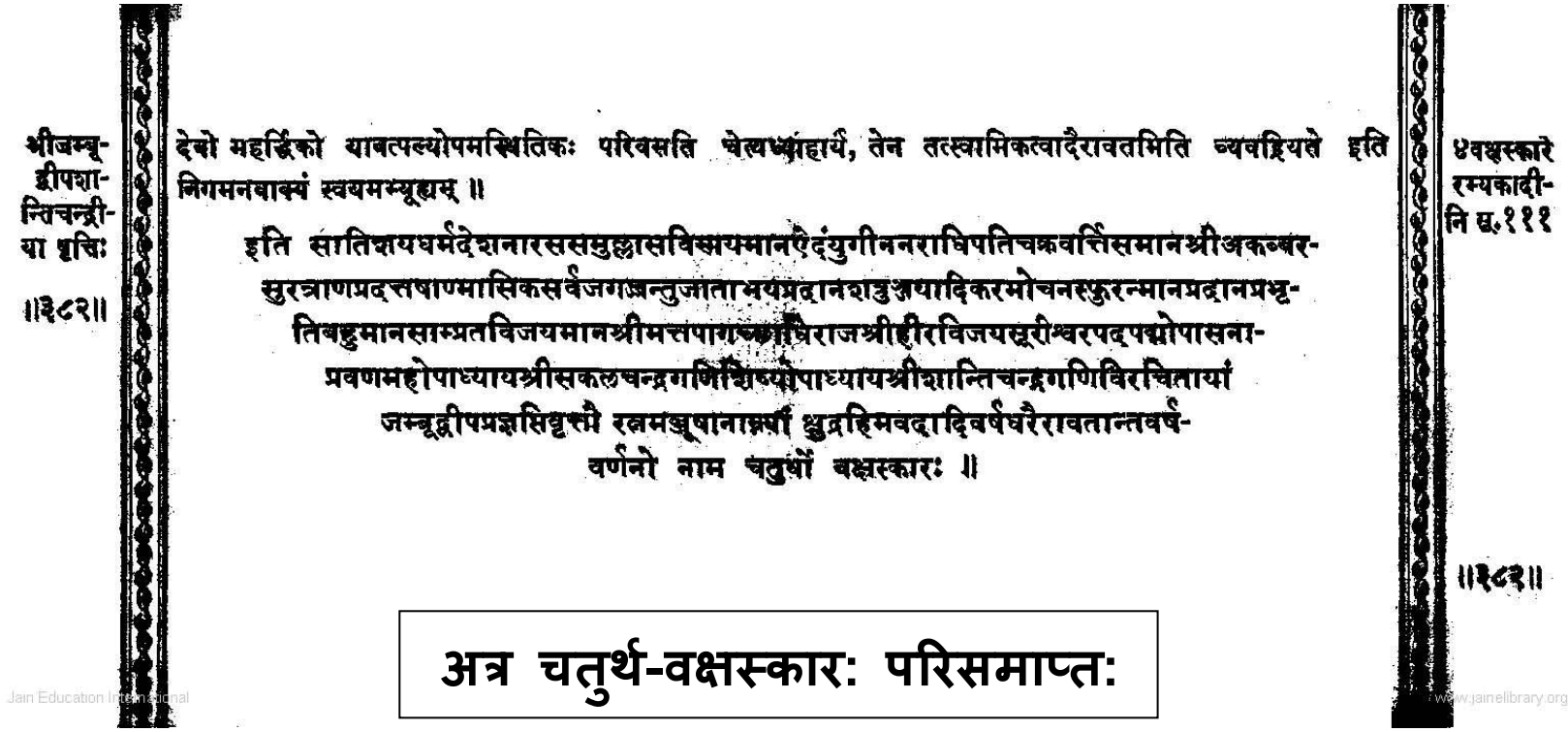
प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२११]

तनकूटादीन्येकादश कूटान्युक्तानि तेभ्योऽतिरिक्तानि बहूनि शिखराणि वृक्षाकारपरिणतानि सन्तीति, अनेन चान्येभ्यो वर्षधरेभ्यो व्यावृत्तिः कृता, अन्यथा तेषामपि कूटवत्त्वेन शिखरित्वव्यपदेशः स्यादिति, अथवा शिखरी चात्र देवो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति तेन तत्स्वामिकत्वात् शिखरीति, 'से तेणट्ठेण'मित्यादि निगमनवाक्यं पूर्ववदिति । अथ सप्तमवर्षावसरः–'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे ऐरावतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम्?, गौतम! शिखरिणो वर्षधरस्योत्तरस्यां उत्तरदिग्वर्त्तिनो लवणसमुद्रस्य दक्षिणस्यां 'पुरत्थिमे'त्यादि प्राग्वत् अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे ऐरावतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तं, स्थाणुबहुलं कण्टकबहुलं एवमनेन प्रकारेण यैव भरतस्य वक्तव्यता सैवास्यापि सर्वा निरवशेषा नेतव्या, यतो यन्मेरोर्दक्षिणभागे तन्निरवशेषमुत्तरेऽपि भागे भवति, यथा वैताढ्येन द्वेधा कृतं भरतमित्याद्युक्तं तथैवैरावतेऽपि विज्ञेयमिति, सा च कथंभूतेत्याह–सओअवणा–षट्खण्डैरावतक्षेत्रसाधनसहिता सनिक्खमणा–दीक्षाकल्याणकवर्णकसहिता सपरिनिर्वाणा–मुक्तिगमनकल्याणकसहिता, नवरं राजनगरी क्षेत्रदिगपेक्षया ऐरावतोत्तरार्द्धमध्ये तापक्षेत्रदिगपेक्षया त्वेषाऽपि दक्षिणार्द्ध एव केवलमिह शास्त्रे क्षेत्रदिगपेक्षया व्यवहारः, क्षेत्रदिक् च 'इंदा विजयदाराणुसाराओ' इत्यादिना भावनीयेति, तथा वैताढ्यश्चात्र विपर्ययनगरसङ्कुलः, जगत्यनुरोधेन क्षेत्रसङ्कीर्ण्यात्, तथैरावतनामा चक्रवर्त्ती वक्तव्यः, कोऽर्थः?–यथा भरतक्षेत्रे भरतश्चक्रवर्त्ती तस्य च दिग्विजयनिष्क्रमणादिकं निरूपितं तथैरावतचक्रवर्त्तिनो वाच्यं, अनेन चैरावतस्वामियोगादैरावतमिति नाम सिद्धं, अथवा ऐरावतो नाम्नाऽत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१११] + गाथा दीप अनुक्रम [२०९--२११]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित..आगमसूत्र-[१८],उपांगसूत्र-[७] "जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं शांतिचन्द्र विहिता वृत्ति:



श्रीजम्बू-द्वीपशा-न्तिचन्द्री-या वृत्तिः ॥३८२॥

देवो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति चेत्यध्याहार्यं, तेन तत्स्वामिकत्वादैरावतमिति व्यवह्रियते इति निगमनवाक्यं स्वयमभ्यूह्यम् ॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविसर्पमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमानश्रीअकब्बर-सुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजगज्जन्तुजाताभयप्रदानशत्रुञ्जयादिकरमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृ-तिबहुमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासना-प्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ रत्नमञ्जूषानाम्न्यां क्षुद्रहिमवदादिवर्षधरैरावतान्तर्वर्ष-वर्णनो नाम चतुर्थो वक्षस्कारः ॥

अत्र चतुर्थ-वक्षस्कार: परिसमाप्त:

४वक्षस्कारे रम्यकादी-नि सू.१११

॥३८२॥

Jain Education International www.jainelibrary.org

भाग 24	जंबूद्वीप-उवंगसूत्र [७/२] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:

मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुन: संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [18/2]

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति (उपांगसूत्र-७/२)” [मूलं एवं शांतिचंद्र विहिता वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति” मूलं एवं वृत्ति:” नामेण परिसमाप्त:

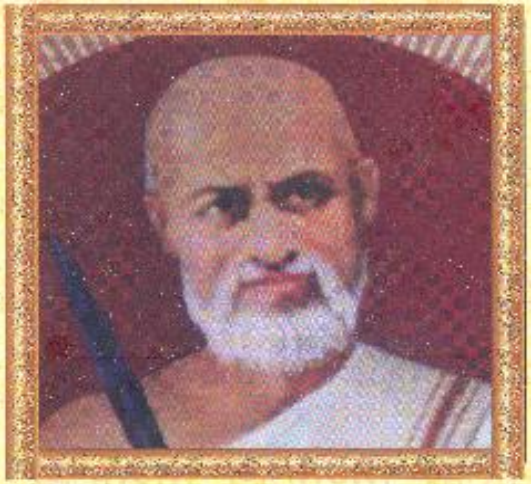
“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग-24


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

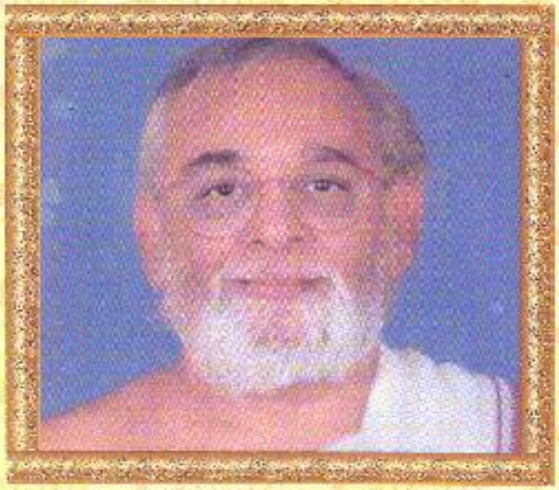
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

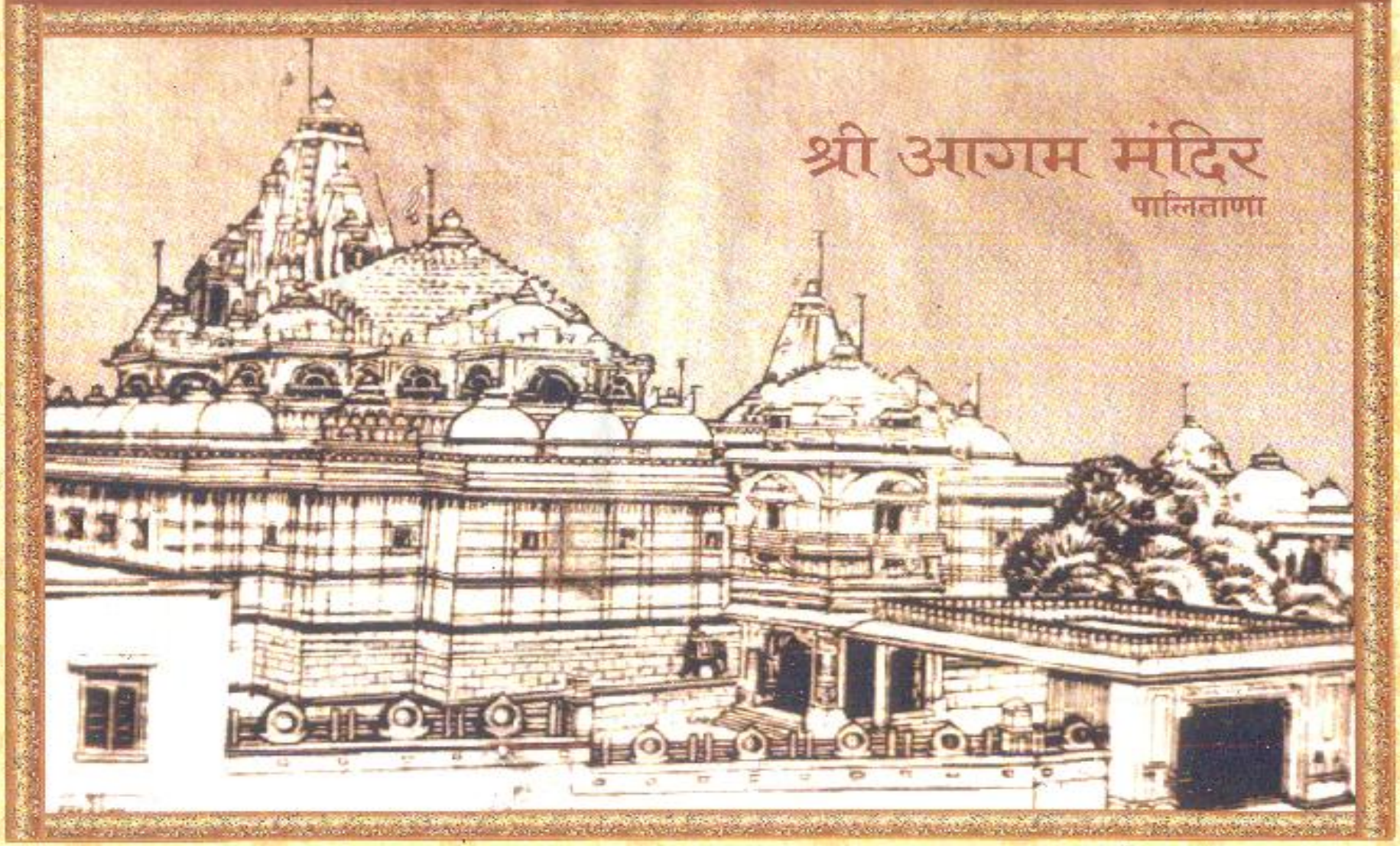
अभिनव-संकलनकर्ता

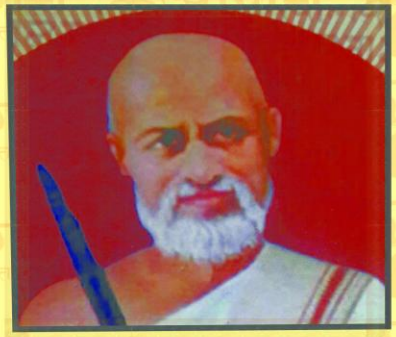


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम १८

"जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति" मूलं एवं वृत्तिः [२]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

